॥ ओ३म् ॥

पातञ्जल योगदर्शनम्

महर्षि व्यासदेव प्रणीत भाष्य

तथा

राजर्षि भोजदेव प्रणीत वृत्ति समेतम्

जिसको

श्रीमत्परमहंस परिव्राजकाचार्य श्री
स्वामी विज्ञानाश्रमजी

ने

योगतत्त्वभिलाषी मुमुक्षु पुरुषों के हितार्थ
भाषानुवाद किया

दी फाइन आर्ट प्रिन्टिंग प्रेस,
अजमेरनगरे मुद्रिता

वैदिक संवत् १९७२९४९०३३

प्रथमा वृत्ति
१०००

संवत् १९८९ वि०
सन् १९३२ ई०

मूल्य २) रु०
सजिल्द २।)

पुस्तक मिलने के पते—

~~सस्ता साहित्य मण्डल लिमिटेड~~,

अजमेर.

महेश बुक-डिपो,

~~घसेटी बाज़ार~~, अजमेर.

अथ योगसूत्रानुक्रमणिका

ई

श

स

समाप्तेयं पातञ्जलयोगसूत्राणां वर्णानुक्रमसूची ।

ओ३म्

शुद्ध्यशुद्धिपत्र

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
४	२४	ह	यह
७	४	सप्रज्ञायत	संप्रज्ञायत
१३	२४	तद्रपत्वम्	तद्रूपत्वम्
,,	२५	तादृग्रप	तादृग्रूप
१४	२	पुरुषस्तद्रपाकार	पुरुषस्तद्रूपाकार
२६	१	तदाश्विताः	तदाश्रिताः
२७	९	निदा	निद्रा
३०	९	मिमित्ता	निमित्ता
३९	७	वराग्यं	वैराग्यं
४२	९	परि	०
४६	२०	विरामश्नसौ	विरामश्वासौ
५२	६	जाननति	जानाति
५३	६	उपाया	उपायों
६५	१५	सृष्टी	सृष्टि
७८	१६	भ्रान्तिदशन	भ्रान्तिदर्शन
८१	२०	समाधिप्रतिक्षाः	समाधिप्रतिपक्षाः
८४	१८	शदृश—	सदृश—
८७	२७	मूविद्वेष	विद्वेषम्
९०	२४	विरोधेन	निरोधेन
९१	२६	सद्भत	सद्भूत
९८	११	तदाकरं	तदाकारं
९९	२	पूर्वोक्तलक्षण	पूर्वोक्तलक्षणा

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१०२	८	तद्रुपता	तद्रूपता
१०८	२२	सत्त्वाप्रधाना	सत्त्वप्रधाना
११२	५	तद्भत-	तद्भूत-
,,	२४	,,	,,
१२२	१७	तस्माच्छुतानुमान-	तस्माच्छ्रुतानुमान-
१३४	५	ह्यासेव्त्रमानं	ह्यासेव्यमानं
१३६	१	अविद्यास्मिता-रागद्वेषभिनि-वशाः	अविद्यास्मितारा-गद्वेषाभिनिवेशाः
१३८	३	वि.च्छिनाः	विच्छिन्नाः
१३९	३	उत्पत्ती	उत्पत्ति
१४३	९	विपर्ययान्वयनि पेक्षाणां	विपर्ययान्वयनिर-पेक्षाणां
१५१	११	दुखानु-	दुःखानु-
१५३	१४	दुःखानुभवदियं	दुःखानुभवादियं
१५५	२२	ध्यानहेस्त-याद्वृत्तयः	ध्यानहेयास्तद्-वृत्तयः
१६५	८	कर्नाशय	कर्माशय
१६८	११	सुखसंवि दुःखसंविश्च	सुखसंविद् दुःखसंविश्च
१६९	७	गुणप्रधानमावेन	गुणप्रधानभावेन
१६९	११	सासारिणां	सारिणां
१६९	२४	सुखफलाः	सुखफलाः
१७३	११	मात्री	भावी
१७४	१८	परमनुगृह्ला-त्यापन्ति	परमनुगृह्लात्युपहन्ति
१७६	६	दृष्टी	दृष्टि
,,	२३	,,	,,
१७७	३	मिदपि	मिदमपि
१८१	१	वर्तमान	वर्तमानं
१८५	८	भतेन्द्रियात्मकं	भूतेन्द्रियात्मकं
२०२	५	संपदनात्	संपादनात्

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२०९	२	बन्धोपरम	बन्धनोपरम
२०९	२३	स्वरूपविरूद्वेन	स्वरूपविरुद्धेन
२१३	२४	बद्धि	बुद्धि
२१९	१८	तारतम्यन	तारतम्येन
२२१	२५	विषययया	विषयया
२३०	७	मृज्जलादिभीः	मृज्जलादिभिः
२३२	१३	होता	होती
२३२	२२	उच्छसिति	उच्छ्वसिति
२४३	४	फललाह	फलमाह
२४४	२	सामर्थ्थ	सामर्थ्य
२४५	२०	प्रकरता	प्रकारता
२४७	२४	दृष्टी	दृष्टि
२५४	२१	होता	होती
२५६	५	समापात्तभ्याम्	समापत्तिभ्याम्
२५६	१३	समापक्ष	समापन्नं
२६१	७	इन	इत
२६८	१०	आवश्यकक्ता	आवश्यक्ता
२७२	१०	त्पाज्य	त्याज्य
२८२	९	ब्रह्य	ब्रह्म
२८४	२३	तस्यापयागमाह	तस्योपयोगमाह
३००	२५	वतमान	वर्तमान
३१९	६	प्रणियों	प्राणियों
३२०	३	गोरित्यर्थो	गौरित्यर्थो
,,	,,	गरिति	गौरिति
३२२	२२	शब्द	शब्द
३२३	१५	भवत्यश्वो	भवत्यश्वो
३२८	१३	जाती	जाति
,,	२३	प्रावल्य	आवल्य
३२९	२	हुए	हुए
३३०	१६	जाबि	जाति
३४४	७	मिद्धि	सिद्धि
३५१	१३	विजनीयात्	विजानीयात्
३५२	१०	,,	,,
३५८	१३	वातिनः	वर्तिनः

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
३६२	१४	ह्यक्तम्	ह्युक्तम्
३७४	२४	प्रज्वज्ञन्निव	प्रज्वलन्निव
३७५	१	आ।वेष्ट्य	आवेष्ट्य
४१४	१६	सर्व	सर्वं
,,	,,	सर्वं	सर्वं
४१६	१८	परमार्थतस्त	परमार्थतस्तु
४१८	२१	तसाम्	तासाम्
४२३	१०	दुराच्छवण	दुराच्छ्रवण
४२७	२४	दुराचारा	दुराचारी
४३८	१७	वचक्षणानां	विचक्षणानां
,,	२३	कम	कर्म

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
४४४	२६	संस्कराः	संस्कारः
४४५	७	सुस	सुख
४५५	१८	मध्वना।मिति	मध्वानामिति
४५७	२१	शाक्तानुशासनम्	शास्त्रानुशासनम्
४५८	९	दृष्टिपधमृच्छति	दृष्टिपथमृच्छति
,,	१२	प्रकृती	प्रकृति
४८५	१८	चेतनज्ञक्ति	चेतनशक्ति
४८७	३	तदेतश्चित्तमेव	तदेतच्चित्तमेव
४९४	५	किञ्चित्परं	किञ्चित्परं
४९९	१६	विवेकनिम्न	विवेकनिम्नं
५०७	१५	शुक्रादिभेदेन	शुक्लादिभेदेन

विशेष सूचना

यद्यपि हमने पुस्तक शोधने में बहुत परिश्रम किया तथापि प्रेसों के काम में ऐसी अशुद्धि रह जाना कुछ आश्चर्य नहीं है, क्योंकि प्रायः देखा गया कि ऐसी अशुद्धि प्रेसों में रह ही जाया करती हैं इसलिये पाठकगण ! क्षमा करें और इस शुद्धि पत्र के अनुसार पुस्तक शोध कर पढ़ें ।

ओ३म्

पातञ्जल योगदर्शन

भूमिका

ओ३म् यो भूतं च भव्यं च सर्वं यश्चाधितिष्ठति ।
स्व॑र्यस्य च केवलं तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः ॥ १ ॥

अर्थ—जो परमेश्वर भूत, भविष्यत्, वर्तमान तीनों काल है कभी जिस का काल से बाध नहीं होता, और जो सर्व काल सर्व का अधिष्ठाता, केवल सुख ही जिसका स्वरूप है, उस सब से बड़े ब्रह्म के लिये मेरा नमस्कार है ।

अहो ! उस दयालु न्यायकारी सच्चिदानन्दस्वरूप जगदीश्वर ने संसार की कैसी आश्चर्यरूप रचना की है कि जीवों के भोग मोक्षार्थ अनेक प्रकार की असंख्यात योनियाँ बनाई, परन्तु उन में मनुष्य शरीरातिरिक्त सर्व योनियाँ केवल भोग के लिये ही हैं, क्योंकि उन योनियों में किसी प्राणी को भी तत्त्वज्ञान नहीं होता, और यह भी खबर नहीं होती कि हम कौन हैं ? कहां से आये हैं ? किस प्रकार हमारा जन्म हुआ है ? कौन हमारा नियन्ता है ? जिस के नियम में बंधे हुए हम सुख-दुःख को भोगते हैं । नहीं उन प्राणियों को दुःख दूर करने के उपायों का ज्ञान होता है, न दूर कर सक्ते, न किसी एक जीव से दूसरा जीव उन योनियों में तत्त्वज्ञान प्राप्त कर सक्ता, क्योंकि वह सार्थक शब्दों का उच्चारण नहीं कर सक्ते, न सुन कर अर्थ जान सक्ते, किस कारण कि उनकी बुद्धि और वाणी आदि पूर्व कृत कर्मानुसार ईश्वर नियम से आवृत रहती हैं । केवल एक मनुष्य शरीर में ही परमपिता परमात्मा ने यह सामर्थ्य दी है कि वह यथार्थ ज्ञान के भंडाररूप वेद से शिक्षा पाकर अपने

ज्ञान की वृद्धि करता हुआ अन्त में ब्रह्मदर्शन को प्राप्त होकर सब दुःखों से छूट जाता है। इसलिये जीवों के कल्याण का द्वार एक मात्र मनुष्य शरीर ही है, अन्य सब शरीर भोगार्थ हैं, जिस पुरुष ने इस मनुष्य शरीर में आकर आत्मकल्याणार्थ यत्न न किया उस का जन्म तो व्यर्थ ही हुआ, अतः मनुष्यों को जन्म साफल्यार्थ मोक्ष मार्ग ही अन्वेष्टव्य और जिज्ञासतव्य है। और इस मार्ग के अन्वेषणार्थ उस ईश्वर का वचन वेद ही प्रमाण है।

जैसा कि निम्नलिखित वेदमन्त्रों से ज्ञात होता है:—

ऋचो अक्षरे परमे व्योमन् यस्मिन्देवा अधि विश्वे निषेदुः।
यस्तन्न वेद किमृचा करिष्यति य इत्तद्विदुस्त इमे समासते ॥२॥
ऋ० मं० १। सू० १६४। मं० ३९॥

अर्थ—ऋचायें उसी अविनाशी सर्वरक्षक परमात्मा में स्थित हैं। जिस में सब देव स्थित हैं, जो उसको नहीं जानता वह ऋचा से क्या करेगा अर्थात् जिस पुरुष ने वेद पढ़कर उस परमात्मा को न जाना उस ने वेद पढ़ने के परिश्रम से क्या लाभ उठाया अर्थात् कुछ लाभ नहीं उठाया, इस वेदमन्त्र द्वारा यह शिक्षा मिलती है कि वेदाध्ययन का परिश्रम भी उस परमात्मा के साक्षात् करने पर सफल होता है, और उस के साक्षात् ज्ञान का मार्ग उपनिषदों में इस प्रकार वर्णन किया है।

न चक्षुषा गृह्यते नापि वाचा नान्यैर्देवैस्तपसा कर्मणा वा।
ज्ञानप्रसादेन विशुद्धसत्त्वस्ततस्तु तं पश्यते निष्कलं ध्यायमानः॥३॥
मुं० ३। खं० १। श्लो० ८॥

अर्थ—वह परमात्मा न चक्षु से ग्रहण होता है, न वाणी से, न अन्य इन्द्रियों से, न तप से, न कर्म से, एकमात्र ज्ञान प्रसाद से शुद्ध अन्तःकरण होकर, कला रहित ब्रह्म को समाधि द्वारा देखता है॥

निम्नलिखित वेद मन्त्र में भी ऐसा ही वर्णन है:—

वेदाहमेतं पुरुषं महान्तमादित्यवर्णं तमसः परस्तात् ।
तमेव विदित्वातिमृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय ॥ ४ ॥
य० अ० ३१ । मं० १८ ।

अर्थ—इस परम प्रकाशस्वरूप अविद्या अन्धकार से अति पृथक् सर्व से बड़े पुरुष अर्थात् ब्रह्म को मैं जानता हूँ, इस को ही जानकर मृत्यु को उल्लङ्घन कर सक्ते हैं । उसके ज्ञान के बिना अभीष्ट स्थान मोक्ष की प्राप्ति के लिये अन्य कोई मार्ग नहीं है ॥४॥

इस प्रकार सर्वत्र वेद उपनिषदों की अनेक श्रुतियाँ ब्रह्मज्ञान होने पर मोक्षफल और वेदाध्ययन का फल ब्रह्मज्ञान बतला रही हैं । इस कारण ज्ञान प्राप्ति के लिये वेद और उपनिषद् ही सर्वोपरि मुख्य माने जाते हैं, क्योंकि उन में ब्रह्मविद्या का विषय अति उत्तम प्रकार से कथन किया है । और उस सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान् सर्वान्तर्यामी परमात्मा की महिमा, शक्ति, स्वरूप, ज्ञान, बल, क्रिया बड़ी उत्तमता से वर्णन की हैं । परमात्मा का जगत् और जीवों के साथ स्व स्वामी भाव सम्बन्ध और उन पर जैसा प्रभाव है तथा उसकी उपासना ज्ञान का फल भी हेतु सहित वर्णन किया है । परन्तु उस परमपिता परमात्मा के साक्षात् ज्ञान प्राप्ति का उपाय और साधन क्रम से उपनिषदादि में नहीं मिलते, उपनिषद वाक्य भी जैसा उपर दिखलाया जा चुका है, अन्त में "तं पश्यते निष्कलं ध्यायमानः" उस कला रहित ब्रह्म को ध्यान द्वारा ही साक्षात् किया जाता है । यह कह कर समाधि योग को ही ब्रह्म साक्षात्कार का साधन बतलाते हैं सो यह समाधि और उसके साधन तथा अनुष्ठान का प्रकार उपायादि क्रम से केवल पतञ्जलि मुनि रचित योग शास्त्र में ही मिलते हैं । कैवल्य मुक्ति का वर्णन और मुक्ति पर्यन्त योगी की उच्च २ कोटियों की प्राप्ति क्रम से योग दर्शन ही में बतलाई हैं । उत्तम मध्यम दोनों प्रकार के अधिकारियों के भिन्न २ अनुष्ठान का प्रकार भी दिखलाया है, जिसका अनुष्ठान प्राणान्त

पर्यन्त अनवच्छिन्नरूप से करने पर मनुष्य को भविष्य में अभ्युदय की प्राप्ति होती है, पुनः उस से मोक्ष हो जाता है।

इस कारण उस सच्चिदानन्दस्वरूप सर्वरक्षक न्यायकारी दयालु परमपिता परमात्मा की कृपा से यह योग शास्त्र का भाषानुवाद जिस में मूल सूत्र ऊपर, पुनः सूत्रार्थ, पुनः महर्षि व्यासदेव जी कृत भाष्य नीचे उस पर भाषानुवाद, पुनः महाराज भोजदेव कृत वृत्ति और पश्चात् उसका भाषानुवाद इस क्रम से लिखा जायगा, और इस ग्रन्थ का मूल्य भी अति अल्प केवल व्यय मात्र ही रक्खा जायगा, क्योंकि यह परिश्रम केवल विद्या प्रचारार्थ किया गया है। ईश्वर आज्ञा पालन करना ही हम सबों का धर्म है और इसमें ही हमारी सफलता है। यद्यपि पातञ्जल योग सूत्र भाष्य पर अनेक टीकायें वर्तमान काल में विद्यमान हैं। परन्तु उन में टीकाकारों ने नाममात्र यह लिख दिया है कि हमने महर्षि व्यास देव के भाष्यानुसार लिखा है। वास्तव में उन्होंने कहीं कहीं तो किञ्चित् भाष्य के अनुसार और प्रायः अपनी मति और मत के अनुसार सब ने अर्थ किया है। जिससे महर्षियों के सत्यार्थ का पता जिज्ञासुओं को न लगने से सफलता नहीं होती।

योग जैसे शास्त्र का अगम्य विषय तो उन महान् तत्त्वदर्शी महर्षियों की बुद्धियों में ही दर्शित था, अस्मदादि आधुनिकों को उनके समान बुद्धि कहाँ, उन महर्षियों के भाष्य को छोड़कर अपनी २ बुद्धि से टीकाकारों का अर्थ करना यथार्थ नहीं।

इस कारण हमने इस भाषानुवाद में भाष्य के मूल शब्दों का ही अर्थ करके उसके अभिप्राय को दिखलाया है। जिस से मुमुक्षुओं को पूरा लाभ होगा, और यह भी विशेष सूचना कराने की आवश्यक्ता है कि व्यास भाष्य में कहीं २ नवीन वेदान्तियों ने कहीं पौराणिकों ने महर्षि व्यास के भाष्य से अपने मत का खुला खण्डन होता देख कर सूत्र भाष्य के अन्त में मन घड़त और प्रकरण से

असम्बद्ध आवश्यक्ता रहित प्रलाप करके भाष्य बढ़ा दिया है, और किसी सूत्र पर सर्वथा ही भाष्य बदल दिया है । जो कि भोज वृत्ति को देखने से स्पष्ट ज्ञात होता है कि महाराज भोज के समय तक भाष्य के शब्द दूसरे थे जिस के अनुसार वृत्ति है । सो वह हम यथा स्थान उन सूत्रों के भाषानुवाद में जतलावेंगे निष्पक्ष बुद्धिमान् जिज्ञासुओं को तो यह कथन इस भाषानुवाद से यथार्थ विदित हो जायगा ।

ईश्वर कृपा से इस ग्रन्थ द्वारा यदि एक भी जिज्ञासु को यथार्थ ज्ञान होगया तो मैं अपने परिश्रम को सफल मानूंगा, बुद्धिमान् जिज्ञासु यदि इसका अच्छे प्रकार अभ्यास करेंगे तो अभ्युदय के अधिकारी तो अवश्य हो सकेंगे । "जिसमें यथेष्ट सुख साधन और तत्त्वज्ञान हो ऐसे जन्म को 'अभ्युदय' कहते हैं" और अभ्युदय के पश्चात् मोक्ष अवश्यंभावी है ।

(स्वामी) विज्ञानाश्रम अनुवादक

॥ ॐ ॥

ओ३म् सच्चिदानन्देश्वराय नमो नमः

अथ पातंजलयोग-दर्शनम्
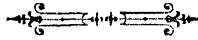
तत्र प्रथमः समाधिपादः प्रारभ्यते

अथ योगानुशासनम् ॥ १ ॥

सूत्रार्थ—(अथ) अब (योगानुशासनम्) योग के उपाय साधन फलादिका वर्णन करते हैं ॥ १ ॥

महर्षि व्यासदेव कृत भाष्यम्

अथेत्ययमधिकारार्थः । योगानुशासनं शास्त्रमधिकृतं वेदितव्यम् । योगः समाधिः । स च सार्वभौमश्चित्तस्य धर्मः । क्षिप्तं मूढं विक्षिप्तमेकाग्रं निरुद्धमिति चित्तभूमयः । तत्र विक्षिप्ते चेतसि विक्षेपोपसर्जनीभूतः समाधिर्न योगपक्षे वर्तते ।

यस्त्वेकाग्रे चेतसि सद्भूतमर्थं प्रद्योतयति क्षिणोति च क्लेशान्कर्मबन्धनानि श्लथयति निरोधमभिमुखं करोति स संप्रज्ञातो योग इत्याख्यायते । स च वितर्कानुगतो विचारानुगत आनन्दानुगतोऽस्मितानुगत इत्युपरिष्टात्प्रवेदयिष्यामः । सर्ववृत्तिनिरोधे त्वसंप्रज्ञातः समाधिः ॥ १ ॥

तस्य लक्षणाभिधित्सयेदं सूत्रं प्रवर्तते—

व्यास भाष्य पदार्थ

(अथेत्ययमधिकारार्थः) "अथ" यह शब्द अधिकार अर्थात् प्रारम्भ वाचक और मङ्गलार्थक है। (योग) यह शब्द युज् धातु से समाधि अर्थ में है। (अनुशासनं) "अनुशिष्यते व्याख्यायते लक्षणभेदोपायफलैर्येन तदनुशासनम्" जिसके द्वारा शिक्षा दी जाय अर्थात् व्याख्या की जाय लक्षण भेद उपाय और फलों के सहित वह "अनुशासन" कहलाता है (शास्त्रमधिकृतं वेदितव्यम्) योग शास्त्र का आरम्भ समझना चाहिये। (योगः समाधिः) योग समाधि को कहते हैं। (स च सार्वभौमश्चित्तस्य धर्मः) और वह सर्व अवस्थाओं में चित्त का धर्म है। (क्षिप्तं मूढं विक्षिप्तमेकाग्रं निरुद्धमिति) क्षिप्त मूढ़ विक्षिप्त एकाग्र और निरुद्ध यह (चित्तभूमयः) चित्त की भूमि हैं। (तत्र) उन में (विक्षिप्ते चेतसि विक्षेपोपसर्जनीभूतः) विक्षिप्त चित्त में विक्षेप से नष्ट हुई (समाधिर्न योगपक्षे वर्तते) चित्त वृत्ति योग में नहीं वर्तती, अर्थात् विक्षिप्त चित्तवाले का योग में प्रवेश नहीं होता।

(यस्त्वेकाग्रे चेतसि) जो एकाग्र चित्त में (सद्भूतमर्थं प्रद्योतयति) सत्पदार्थ को प्रकाश करता है (क्षिणोति च क्लेशान्) और क्लेशों को नष्ट करता है (कर्मबन्धनानि श्लथयति) कर्म बन्धनों को ढीला करता है (निरोधमभिमुखं करोति) निरोध के सम्मुख करता है अर्थात् निरोध के योग्य बनाता है (स संप्रज्ञातो योग इत्याख्यायते) वह संप्रज्ञात योग है ऐसा कहा जाता है। (स च वितर्कानुगतो विचारानुगत आनन्दानुगतोऽस्मितानुगत इत्युपरिष्टात्प्रवेदयिष्यामः) वह वितर्कानुगत, विचारानुगत, आनन्दानुगत, अस्मितानुगत भेद से चार प्रकार का है, यह आगे इस ही पाद के १७ सूत्र में वर्णन करेंगे। (सर्ववृत्तिनिरोधे त्वसंप्रज्ञातः

समाधिः) सर्व वृत्तियों के निरोध होने पर तो असंप्रज्ञात समाधि कहलाती है ॥ १ ॥

(तस्य लक्षणाभिधित्सयेदं सूत्रं प्रवर्तते) उसके लक्षण को प्रकाशित करने की इच्छा से अगला सूत्र बना है—

भावार्थ

भाष्य में क्षिप्त मूढ़ भूमियों का विषय भाष्यकार ने नहीं दिखलाया, इससे यह भी जान लेना चाहिये कि क्षिप्त मूढ़ भूमियों का तो किञ्चित् भी योग में अधिकार नहीं है । क्योंकि क्षिप्त अति चञ्चल और मूढ़ अति अज्ञान अन्धकार चित्त की अवस्था हैं, इस ही कारण भाष्यकार ने इनको छोड़दिया है ॥ १ ॥

भोज-वृत्ति

अनेन सूत्रेण शास्त्रस्य सम्बन्धाभिधेयप्रयोजनान्याख्यायन्ते । अथ—शब्दोऽधिकारद्योतको मङ्गलार्थकश्च । योगो युक्तिः समाधानम् । 'युज् समाधौ' । अनुशिष्यते व्याख्यायते लक्षणभेदोपायफलैर्येन तदनुशासनम् । योगस्यानुशासनं योगानुशासनम् । तदा शास्त्रपरिसमाप्तेरधिकृतं बोद्धव्यमित्यर्थः । तत्र शास्त्रस्य व्युत्पाद्यतया योगः ससाधनः सफलोऽभिधेयः । तद्व्युत्पादनञ्च फलम् । व्युत्पादितस्य योगस्य कैवल्यं फलम् । शास्त्राभिधेययोः प्रतिपाद्यप्रतिपादकभावलक्षणः सम्बन्धः । अभिधेयस्य योगस्य तत्फलस्य च कैवल्यस्य साध्यसाधनभावः । एतदुक्तं भवति—व्युत्पाद्यस्य योगस्य साधनानि शास्त्रेण प्रदर्श्यन्ते, तत्साधनसिद्धो योगः कैवल्याख्यं फलमुत्पादयति ॥ १ ॥

तत्र को योगः ? इत्याह—

भोज-वृत्ति पदार्थ

(अनेन सूत्रेण शास्त्रस्य सम्बन्धाभिधेय) इस सूत्र से शास्त्र का सम्बन्ध

ध्येय और (प्रयोजनान्याख्यायन्ते) प्रयोजन कहे जाते हैं। (अथ शब्दोऽधिकारद्योतकः) अथ—शब्द अधिकार का प्रकाशक और (मङ्गलार्थकश्च) मङ्गलार्थक है। (योगो युक्तिः समाधानम्) योग मेल को कहते हैं। (युज् समाधौ) युज् धातु समाधि अर्थ में होने से। (अनुशिष्यते व्याख्यायते लक्षणभेदोपायफलैर्येन तदनुशासनम्) व्याख्यान किया जाता लक्षण भेद उपाय और फलों के सहित जिस के द्वारा वह 'अनुशासन' कहलाता है। (योगस्यानुशासनं योगानुशासनम्) योग का अनुशासन योगानुशासन का अर्थ है। (तदा शास्त्रपरिसमाप्तेरधिकृतं बोद्धव्यमित्यर्थः) उस का शास्त्र समाप्ति पर्यन्त अधिकार है ऐसा जानना चाहिये, यह अर्थ है। (तत्र शास्त्रस्य व्युत्पाद्यतया योगः ससाधनः सफलोऽभिधेयः) उस में शास्त्र से प्रतिपादन किया हुआ साधन और फल सहित योग अभिधेय है। (तद्व्युत्पादनञ्च फलम्) और उसका प्रतिपादन किया हुआ फल योग है। (व्युत्पादितस्य योगस्य कैवल्यं फलम्) प्रतिपादन किये हुए योग का कैवल्य फल है। (शास्त्राभिधेययोः प्रतिपाद्यप्रतिपादकभावलक्षणः सम्बन्धः) शास्त्र और योग दोनों का प्रतिपाद्य प्रतिपादक भावरूप सम्बन्ध है। (अभिधेयस्य योगस्य तत्फलस्य च) और ध्येय योग का उसके फल (कैवल्येन साध्यसाधनभावः) कैवल्य के साथ साध्य साधन भाव सम्बन्ध है। (एतदुक्तं भवति) सारांश यह है कि—(व्युत्पाद्यस्य योगस्य साधनानि शास्त्रेण प्रदर्श्यन्ते) प्रतिपादन करने योग्य योग के साधन इस शास्त्र से दिखलाये जाते हैं, (तत्साधनसिद्धो योगः कैवल्याख्यं फलमुत्पादयति) वह साधन सिद्ध योग कैवल्य नामवाले फल को उत्पन्न करता है ॥१॥

(तत्र को योगः ?) उस विषय में योग क्या पदार्थ है ? (इत्याह) यह अगले सूत्र से कहा है—

योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः ॥२॥

सू०—चित्त की वृत्तियों के रोकने को योग कहते हैं ॥२॥

व्या० भाष्यम्

सर्वशब्दाग्रहणात्संप्रज्ञातोऽपि योग इत्याख्यायते । चित्तं हि प्रख्याप्रवृत्तिस्थितिशीलत्वात् त्रिगुणम् ।

प्रख्यारूपं हि चित्तसत्त्वं रजस्तमोभ्यां संसृष्टमैश्वर्यविषयप्रियं भवति । तदेव तमसाऽनुविद्धमधर्माज्ञानावैराग्यानैश्वर्योपगं भवति । तदेव प्रक्षीणमोहावरणं सर्वतः प्रद्योतमानमनुविद्धं रजोमात्रया धर्मज्ञानवैराग्यैश्वर्योपगं भवति ।

तदेव रजोलेशमलापेतं स्वरूपप्रतिष्ठं सत्त्वपुरुषान्यताख्यातिमात्रं धर्ममेघध्यानोपगं भवति । तत्परं प्रसंख्यानमित्याचक्षते ध्यायिनः । चितिशक्तिरपरिणामिन्यप्रतिसंक्रमा दर्शितविषया शुद्धा चानन्ता च सत्त्वगुणात्मिका चेयमतो विपरीता विवेकख्यातिरिति । अतस्तस्यां विरक्तं चित्तं तामपि ख्यातिं निरुणद्धि । तदवस्थं संस्कारोपगं भवति । स निर्बीजः समाधिः । न तत्र किंचित्संप्रज्ञायत इत्यसंप्रज्ञातः । द्विविधः स योगश्चित्तवृत्तिनिरोध इति ॥ २ ॥

तदवस्थे चेतसि विषयाभावाद् बुद्धिबोधात्मा पुरुषः किंस्वभाव इति—

व्या० भा० पदार्थ

(सर्वशब्दाग्रहणात्संप्रज्ञातोऽपि योग इत्याख्यायते) सर्व शब्द ग्रहण न होने से संप्रज्ञात भी योग है, यह ज्ञान कराता है अर्थात् सूत्र में सर्व चित्त वृत्ति निरोध शब्द नहीं, किन्तु चित्त वृत्ति निरोध है क्योंकि सर्व वृत्ति निरोध तो असंप्रज्ञात योग में होता है । संप्रज्ञात में तो कुछ वृत्ति रहती ही हैं । (चित्तं हि प्रख्याप्रवृत्तिस्थितिशीलत्वात् त्रिगुणम्) निश्चय चित्त ज्ञान और कामों में लगना और ठहरने का स्वभाव वाला होने से तीन गुणों का परिणाम अर्थात् कार्य है ।

(प्रख्यारूपं हि चित्तसत्त्वं) सत्त्वगुण प्रधान चित्त ज्ञान वाला होता है (रजस्तमोभ्यां संसृष्टमैश्वर्यविषयप्रियं भवति) रजोगुण तमोगुण दोनों की प्रधानता से ऐश्वर्य विषय प्रिय होते हैं। (तदेव तमसाऽनुविद्धमधर्माज्ञानावैराग्यानैश्वर्योपगं भवति) और वही चित्त तमोगुण से युक्त हुआ अधर्म अज्ञान अवैराग्य अनैश्वर्य–दरिद्रता को प्राप्त होता है। (तदेव प्रक्षीणमोहावरणं सर्वतः प्रद्योतमानमनुविद्धं रजोमात्रया धर्मज्ञानवैराग्यैश्वर्योपगं भवति) और वही चित्त रजोगुण के अंश से युक्त, नष्ट हो गया है मोह-रूपी आवरण जिसका सब ओर से प्रकाशमान हुआ धर्म ज्ञान वैराग्य और ऐश्वर्य को प्राप्त होता है।

(तदेव रजोलेशमलापेतं स्वरूपप्रतिष्ठं) और वही चित्त रजोगुण के लेशमात्र मल से भी रहित स्वरूप में स्थित जब पुरुष होता है (सत्त्वपुरुषान्यताख्यातिमात्रं) बुद्धि और पुरुष का भिन्न भिन्न ज्ञान परिपक्व होने पर (धर्ममेघध्यानोपगं भवति) धर्ममेघ समाधि की अवस्था को प्राप्त होता है। (तत्परं प्रसंख्यानमित्याचक्षते) उसको परं प्रसंख्यान कहते हैं (ध्यायिनः, चितिशक्तिरपरिणामिन्यप्रतिसंक्रमा:) ध्यान करने वाली चेतनशक्ति परिणाम को न प्राप्त होने वाली अदल बदल से रहित है (दर्शितविषया) देखा गया है शब्दादि विषयों को जिसके द्वारा वह बुद्धि (शुद्धा) अर्थात् सांसारिक विषयों से रहित (चानन्ता) अनन्त विषयों में है अधिकार जिसका (च सत्त्वगुणात्मिका) सत्त्वगुण रूपा (चेयमतो विपरीता) यह इससे विपरीत अर्थात् पुरुष से विपरीत जड़ है (विवेकख्यातिरिति) इन दोनों बुद्धि और पुरुष का भिन्न २ ज्ञान "विवेकख्याति" कहलाता है। (अतस्तस्यां विरक्तं चित्तं) इस कारण उस विवेकख्याति में भी वैराग्य को प्राप्त हुआ चित्त (तामपि ख्यातिं निरुणद्धि) उस ख्याति को भी रोक देता है। (तदवस्थं संस्कारोपगं भवति) उस अवस्था को प्राप्त चित्त

संस्कार लेशरूप होता है, इस ही अवस्था को जीवन्मुक्त भी कहते हैं। (स निर्बीजः समाधिः) वह निर्बीज समाधि है, अर्थात् संसार के बीज क्लेश कर्म वासना सब नष्ट हो जाते हैं। (न तत्र किंचित्सम्प्रज्ञायत इत्यसंप्रज्ञातः) नहीं जिसमें कुछ जाना जाता संसार का विषय वह असंप्रज्ञात योग है, अर्थात् केवल परमात्मा का ही ज्ञान और आनन्द अनुभव उसमें होता है, दूसरे किसी विषय का ज्ञान नहीं रहता। (द्विविधः स योगश्चित्तवृत्तिनिरोध इति) संप्रज्ञात असंप्रज्ञात भेद से चित्त वृत्ति निरोधरूप योग दो प्रकार का है ॥ २ ॥

(तदवस्थे चेतसि विषयाभावात्) उस अवस्था में चित्त में विषयों का अभाव होने से (बुद्धिबोधात्मा पुरुषः किंस्वभाव इति) बुद्धि और ज्ञान स्वरूप पुरुष किस स्वभाव वाले होते हैं? यह अगले सूत्र से कहते हैं—

भावार्थ

भाव यह है कि जब चित्त की सर्व सांसारिक वृत्तियें रुक जाती हैं, तब उसका ज्ञान ध्येय परमात्मा के स्वरूप में प्रवेश करता है। क्योंकि चित्त की वृत्तियों से इसका ज्ञान चलायमान रहता हुआ ध्येय को नहीं जान सक्ता, जैसे हिलते हुए पानी में वस्तु का स्वरूप ठीक २ नहीं देख सक्ते वह पानी जब हिलना बन्द हो जाता है तब उसमें वस्तु का स्वरूप ठीक दीखता है। इस ही समान चित्त वृत्ति निरोध होने पर जीवात्मा का ज्ञान ध्येय परमात्मा के स्वरूप का साक्षात् करता है।

चित्त शब्द से इस सूत्र और इस समस्त शास्त्र में अन्तःकरण का अर्थ समझना चाहिये, जिस में बुद्धि मन अहंकार सब सम्मिलित हैं ॥ २ ॥

भो० वृत्ति

चित्तस्य निर्मलसत्त्वपरिणामरूपस्य या वृत्तयोऽङ्गाङ्गिभावपरिणामरूपास्तासां निरोधो बहिर्मुखतया परिणतिविच्छेदादन्तर्मुखतया प्रतिलोमपरिणामेन स्वकारणे लयो योग इत्याख्यायते। स च निरोधः सर्वासां चित्तभूमीनां सर्वप्राणिनां धर्मः कदाचित् कस्याञ्चित् बुद्धिभूमावाविर्भवति। ताश्च क्षिप्तं मूढं विक्षिप्तमेकाग्रं निरुद्धमिति चित्तस्य भूमयश्चित्तस्यावस्थाविशेषाः। तत्र क्षिप्तं रजस उद्रेकादस्थिरं बहिर्मुखतया सुखदुःखादिविषयेषु विकल्पितेषु व्यवहितेषु संनिहितेषु वा रजसा प्रेरितं। तच्च सदैव दैत्यदानवादीनाम्। मूढं तमस उद्रेकात्कृत्याकृत्य विभागमन्तरेण क्रोधादिभिः विरुद्धकृत्येष्वेव नियमितं, तच्च सदैव रक्षः पिशाचादीनाम्। विक्षिप्तं तु सत्त्वोद्रेकाद्वैशिष्ट्येन परिहृत्य दुःखसाधनं सुखसाधनेष्वेव शब्दादिषु प्रवृत्तं, तच्च सदैव देवानाम्। एतदुक्तं भवति—रजसा प्रवृत्तिरूपं, तमसा परापकारनियतं, सत्त्वेन सुखमयं चित्तं भवति। एतास्तिस्रश्चित्तावस्थाः समाधावनुपयोगिन्यः। एकाग्रनिरुद्धरूपे द्वे च सत्त्वोत्कर्षाद्यथोत्तरमवस्थितत्वात् समाधावुपयोगं भजेते। सत्त्वादिक्रमव्युत्क्रमे तु अयमभिप्रायः—द्वयोरपि रजस्तमसोरत्यन्तहेयत्वेऽप्येतदर्थं रजसः प्रथममुपादानं, यावन्न प्रवृत्तिर्दर्शिता तावन्निवृत्तिर्न शक्यते दर्शयितुमिति द्वयोर्व्यत्ययेन प्रदर्शनम्। सत्त्वस्य त्वेतदर्थं पश्चात्प्रदर्शनं यत्तस्योत्कर्षेणोत्तरे द्वे भूमी योगोपयोगिन्याविति। अनयोर्द्वयोरेकाग्रनिरुद्धयोर्भूम्योर्यश्चित्तस्यैकाग्रतारूपः परिणामः स योग इत्युक्तं भवति। एकाग्रे बहिर्वृत्तिनिरोधः। निरुद्धे च सर्वासां वृत्तीनां संस्काराणां च प्रविलय इत्यनयोरेव भूम्योर्योगस्य सम्भवः ॥२॥

इदानीं सूत्रकारश्चित्तवृत्तिनिरोधपदानि व्याख्यातुकामः प्रथमं चित्तपदं व्याचष्टे—

भो० वृ० पदार्थ

(चित्तस्य निर्मलसत्त्वपरिणामरूपस्य) सतोगुण में परिणाम हुए निर्मल चित्त की (या वृत्तयोऽङ्गाङ्गिभावपरिणामरूपास्तासां निरोधः)

जो वृत्तियें अङ्ग अङ्गि भावपरिणामरूप हैं, उनका निरोध यह है कि (बहिर्मुखतया परिणतिविच्छेदादन्तर्मुखतया) बहिर्मुखता अर्थात् सांसारिक विषयों से रोककर अन्तर्मुखरूप से (प्रतिलोमपरिणामेन स्वकारणे लयो योग इत्याख्यायते) लौटाकर उसके कारण चित्त में ही लय करने को योग कहते हैं ॥ (स च निरोधः) और वह निरोध (सर्वासां चित्तभूमीनां) सर्व चित्त भूमियों में (सर्वप्राणिनां धर्मः) सर्व प्राणियों का धर्म है (कदाचित् कस्याञ्चित् बुद्धिभूमावाविर्भवति) कभी किसी की बुद्धि में एकाग्र निरोध दोनों भूमियों की प्रकटता होती है । (ताश्च क्षिप्तं मूढं विक्षिप्तमेकाग्रं निरुद्धमिति) और वह भूमि क्षिप्त मूढ विक्षिप्त एकाग्र और निरुद्ध हैं (चित्तस्य भूमयश्चित्तस्यावस्थाविशेषाः) चित्त की भूमि चित्त की अवस्था विशेष हैं । (तत्र क्षिप्तं रजस उद्रेकाद स्थिरं) उन में क्षिप्त भूमि रजोगुण की प्रबलता से अति चञ्चल है (बहिर्मुखतया सुखदुःखादिविषयेषु विकल्पितेषु) बहिर्मुखता से कल्पना किये सुख दुःख विषयरूप में (व्यवहितेषु संनिहितेषु) दुरस्थ वा समीपस्थ हुए (वा रजसा प्रेरितम्) रजोगुण से प्रेरित हुई चित्त वृत्ति होती है । (तच्च सदैव दैत्यदानवादीनाम्) और वह चित्त भूमि सदैव दैत्य दानवों की होती हैं । (मूढं तमस उद्रेकात्कृत्याकृत्य विभागमन्तरेण क्रोधादिभिः विरुद्धकृत्येष्वेव नियमितं) और मूढ भूमि तमोगुण की प्रधानता से कर्त्तव्य अकर्त्तव्य के विभाग को भुलाकर क्रोधादि के द्वारा बुरे कर्मों में जोड़ती है, (तच्च सदैव रक्षःपिशाचादीनाम्) वह मूढ भूमि सदैव राक्षस और पिशाचों की होती है । (विक्षिप्तं तु सत्त्वोद्रेकाद्वैशिष्ट्येन परिहृत्य दुःखसाधनं) और विक्षिप्त अवस्था वह है जो सत्त्वगुण की अधिकता से दुःख साधनों को विशेषता से नष्ट करके (सुखसाधनेष्वेव शब्दादिषु प्रवृत्तम्) शब्दादि विषयों और सुख साधनों में लगाती है, (तच्च सदैव देवानाम्) और वह सदैव विद्वानों की होती है । (एतदुक्तं भवति) यह कहना है कि—(रजसा प्रवृत्तिरूपं) रजोगुणी चित्त की वृत्ति कामों में लगाती (तमसा परपकारनियतं) तमोगुणी दूसरों

की बुराई में जोड़ती (सत्त्वेन सुखमयं चित्तं भवति) सतोगुणी सुख-दायक होती है। (एतास्तिस्रश्चित्तावस्थाः) और यह चित्त की तीन अवस्था (समाधावनुपयोगिन्यः) समाधि में उपयोगी नहीं हैं। (एकाग्र-निरुद्धरूपे द्वे च सत्त्वोत्कर्षाद्यथोत्तरमवस्थितत्वात्) एकाग्र और निरुद्ध यह दो अवस्था सत्त्वगुण की अधिकता के कारण उपरी अवस्था होने से (समा-धावुपयोगं भजेते) समाधि में सहायक होती हैं। (सत्त्वादिक्रमव्युत्क्रमे तु अयमभिप्रायः) सत्त्वादि का क्रम से कथन न करने का यह अभिप्राय है कि (द्वयोरपि रजस्तमसोरत्यन्तहेयत्वेऽप्येतदर्थं) रजोगुण और तमोगुण दोनों का अत्यन्त त्याज्य होनेपर भी यह अभिप्राय है (रजसः प्रथममु-पादानं) रजोगुण को प्रथम ग्रहण करके, (यावन्न प्रवृत्तिदर्शिता तावे-न्निवृत्तिर्न शक्यते दर्शयितुमिति) जबतक प्रवृत्ति नहीं दिखलाई जाय तबतक निवृत्ति नहीं दिखला सक्ते अर्थात् रजोगुण से विषयों में लगना पुनः उन से हटने का रूप दिखलाते हैं (द्वयोर्व्यत्ययेन प्रदर्शनम्) दोनों का विरुद्ध चिन्ह दिखलाया। (सत्त्वस्य त्वेतदर्थं पश्चात्प्रदर्शनम्) सत्त्व का तो पीछे दिखाने से यह अभिप्राय है कि (यत्तस्योत्कर्षेणोत्तरे द्वे भूमि योगोपयोगिन्याविति) जिस कारण कि उन से अधिक होने से पिछली एकाग्र और निरुद्ध दो भूमि योग की सहायक हैं। (अनयोर्द्वयोरेकाग्रनि-रुद्धयोर्भूम्योर्यश्चित्तस्यैकाग्रतारूपः परिणामः) इन दोनों एकाग्र और निरुद्ध भूमियों में जो चित्त का एकाग्रतारूप परिणाम, (स योग इत्युक्तं भवति) वह योग कहा जाता है। (एकाग्रे बहिर्वृत्तिनिरोधः) चित्त की एकाग्रता काल में बाह्य वृत्तियों का निरोध होता है। (निरुद्धे च सर्वासां वृत्तीनां संस्काराणां च प्रविलय इत्यनयोरेव भूम्योर्योगस्य सम्भवः) और चित्त की निरुद्ध अवस्था में सर्व वृत्तियों और संस्कारों का लय हो जाता है, इस कारण इन दोनों भूमियों में योग होसक्ता है ॥ २ ॥

(इदानीं सूत्रकारश्चित्तवृत्तिनिरोधपदानि व्याख्यातुकामः प्रथमं चित्त-पदं व्याचष्टे) अब सूत्रकार चित्त वृत्ति निरोध पदों की व्याख्या करने की इच्छा से प्रथम चित्त पद की व्याख्या करते हैं—

तदा द्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानम् ॥३॥ स्थिति

सू०—उस समय अर्थात् चित्त वृत्ति निरुद्धकाल में देखने वाले जीवात्मा का अपने स्वरूप में ठहराव होता है ॥ ३ ॥

व्या० भाष्यम्

स्वरूपप्रतिष्ठा तदानीं चितिशक्तिर्यथा कैवल्ये । व्युत्थानचित्ते तु सति तथाऽपि भवन्ति न तथा ॥ ३ ॥

कथं तर्हि, दर्शितविषयत्वात्—

व्या० भा० पदार्थ

(स्वरूपप्रतिष्ठा तदानीं चितिशक्तिः) उस चित्त वृत्ति निरुद्ध काल में चेतन शक्ति अपने स्वरूप में स्थिर होती है (यथा कैवल्ये) जैसी कैवल्य मुक्ति में होती है । (व्युत्थानचित्ते तु सति तथाऽपि भवन्ति न तथा) चित्त के व्युत्थान रहते हुए अर्थात् सांसारिक विषय में विचरते हुए जैसी वृत्तियें होती हैं वैसी नहीं होतीं ॥ ३ ॥

(कथं तर्हि दर्शितविषयत्वात्) तब फिर देखे हुए विषय होने से कैसी होती है, यह अगले सूत्र में कहेंगे—

भो० वृत्ति

द्रष्टुः पुरुषस्य तस्मिन्काले स्वरूपे चिन्मात्रतायामवस्थानं स्थितिर्भवति । अयमर्थः—उत्पन्नविवेकख्यातेश्चित्संक्रमाभावात् कर्तृत्वाभिमाननिवृत्तौ प्रोच्छन्नपरिणामायां बुद्धौ चाऽत्मानः स्वरूपेणावस्थानं स्थितिर्भवति ॥ ३ ॥

व्युत्थानदशायान्तु तस्य किं रूपम् ? इत्याह—

भो० वृ० पदार्थ

(द्रष्टुः पुरुषस्य तस्मिन्काले) देखने वाले पुरुष जीवात्मा का उस

चित्त वृत्ति निरुद्ध काल में (स्वरूपे चिन्मात्रतायामवस्थानं स्थितिर्भवति) चेतनतामात्र स्वरूप में ठहराव होता है। (अयमर्थः) यह अर्थ है— (उत्पन्नविवेकख्यातेश्चित्संक्रमाभावात्) विवेकख्याति उत्पन्न होनेपर वस्तु के आकार में परिणाम से रहित चित्त में (कर्तृत्वाभिमाननिवृत्तौ प्रोच्छ-न्नपरिणामायां बुद्धौ) कर्तापन का अभिमान निवृत्त होनेपर परिणाम रहित बुद्धि होती है (चाऽऽत्मानः स्वरूपेणावस्थानं स्थितिर्भवति) तब आत्मा की स्वरूप में स्थिति होती है ॥ ३ ॥

(व्युत्थानदशायान्तु तस्य किं रूपम् ? इत्याह) व्युत्थान दशा में उस जीव का क्या स्वरूप होता है ? यह अगले सूत्र से कहते हैं—

वृत्तिसारूप्यमितरत्र ॥ ४ ॥

सू०—इतरकाल अर्थात् जब चित्तवृत्ति निरुद्ध नहीं होती, तब इस जीव का ज्ञान चित्तवृत्ति के समान होता है ॥ ४ ॥

व्या० भाष्यम्

व्युत्थाने याश्चित्तवृत्तयस्तदविशिष्टवृत्तिः पुरुषः। तथा च सूत्रम्—'एकमेव दर्शनं ख्यातिरेव दर्शनम्' इति। चित्तमयस्का-न्तमणिकल्पं संनिधिमात्रोपकारि दृश्यत्वेन स्वं भवति पुरुषस्य स्वामिनः। तस्माच्चित्तवृत्तिबोधे पुरुषस्यानादिः संबन्धो हेतुः ॥ ४ ॥

ताः पुनर्निरोद्धव्या बहुत्वे सति चित्तस्य—

व्या० भा० पदार्थ

(व्युत्थाने याश्चित्तवृत्तयस्तदविशिष्टवृत्तिः पुरुषः) व्युत्थान काल में जैसी चित्त की वृत्ति होती है, उन वृत्तियों की विशेषता पूर्वक ही पुरुष का ज्ञान होता है। (तथा च सूत्रम्) वैसा ही सूत्र भी कहता है—(एकमेव दर्शनं ख्यातिरेव दर्शनम् इति) एक जीवात्मा का निज ज्ञान ही ज्ञान साधन है और बुद्धि में शब्दादि

विषयों का ज्ञान और विचार विषय वृत्ति भी उसी के आधार से ज्ञान कहलाते हैं । (चित्तमयस्कान्तमणिकल्पं) चित्त चुम्बक पत्थर के समान (संनिधिमात्रोपकारि दृश्यत्वेन) समीपतामात्र से उपकार करनेवाला दृश्यरूप से (स्वं भवति पुरुषस्य स्वामिनः) स्वामि = मालिक पुरुष की स्व = मिल्कियत होता है । (तस्माच्चित्त-वृत्तिबोधे पुरुषस्यानादिः संबन्धो हेतुः) इस कारण चित्तवृत्ति के ज्ञान में पुरुष का अनादि संबन्ध ही कारण है ॥ ४ ॥

(ताः पुनर्निरोद्धव्या बहुत्वे सति चित्तस्य) वह चित्त की वृत्तियें बहुत होनेपर भी जो निरोध करने योग्य हैं, वह आगे कही हुई पांच हैं—

भावार्थ

चित्त की वृत्तियें शान्त घोर मूढ़ तीन प्रकार की रहती हैं, अर्थात् सतोगुणी शान्त रजोगुणी घोर तमोगुणी मूढ़ होती हैं । व्यवहार काल में जब चित्त निरोध नहीं होता तब आत्मा का स्वरूप भी शान्त घोर मूढ़ ही जान पड़ता है । चित्त चुम्बक पत्थर के समान जीवात्मा के समीप होने से उसके भोग मोक्षरूप कार्य करने में उपकारी, जीवात्मा की स्व = मिल्कियत है और जीवात्मा इसका स्वामि = मालिक है । मोक्ष होनेपर जीवात्मा का चित्त से सम्बन्ध टूटता है पहले नहीं टूटता, अनादि से अभिप्राय यह है कि बहुत पुराना है, परन्तु जीवात्मा के समान अनादि नहीं है ॥ ४ ॥

भो० वृत्ति

इतरत्र योगादन्यस्मिन्काले वृत्तयो या वक्ष्यमाणलक्षणास्ताभिः सा-रूप्यं तद्रूपत्वम् । अयमर्थः—यादृश्यो वृत्तयो दुःखमोहसुखाद्यात्मिकाः प्रादुर्भवन्ति तादृग्रूप एव संवेद्यते व्यवहर्तृभिः पुरुषः । तदेवं यस्मिन्नेकाग्र-

तथा परिणते चितिशक्तेः स्वस्मिन् स्वरूपे प्रतिष्ठानं भवति, यस्मिंश्चेन्द्रिय-वृत्तिद्वारेण विषयाकारेण परिणते पुरुषस्तद्रूपाकार एव परिभाव्यते, यथा जलतरङ्गेषु चलत्सु चन्द्रश्चलन्निव प्रतिभासते तच्चित्तम् ॥ ४ ॥

वृत्तिपदं व्याख्यातुमाह—

भो० वृ० पदार्थ

(इतरत्र योगादन्यस्मिन्काले) दूसरे अर्थात् निरोध समाधि से अन्य काल में (वृत्तयो या वक्ष्यमाणलक्षणास्ताभिः सारूप्यं तद्रूपत्वं) वृत्तियें जो आगे लक्षण सहित कही जांयगी उनके समान रूप होता है। (अयमर्थः) यह अर्थ है—(यादृश्यो वृत्तयो दुःखमोहसुखाद्यात्मिकाः) जैसी सुख दुःख मोहरूप वृत्तियें (तादृग्रूप एव संवेद्यते व्यवहर्तृभिः पुरुषः) वैसा ही व्यवहार दशा में पुरुष का स्वरूप जाना जाता है। (तदेवं यस्मिन्नेकाग्रतया परिणते) और वही चित्त जिस काल में एकाग्रतारूप से परिणत होता है (चितिशक्तेः) चेतन शक्ति जीवात्मा का भी (स्वस्मिन् स्वरूपे प्रतिष्ठानं भवति) अपने स्वरूप में ठहराव होता है, (यस्मिंश्चे-न्द्रियवृत्तिद्वारेण विषयाकारेण परिणते) और जिस काल में इन्द्रिय वृत्तियों के साथ विषयाकार से परिणत होता है (पुरुषस्तद्रूपाकार एव परिभाव्यते) पुरुष भी उस चित्त वृत्ति के रूपाकार ही जान पड़ता है, (यथा जलतरङ्गेषु चलत्सु चन्द्रश्चलन्निव प्रतिभासते तच्चित्तम्) जैसे बहते हुए जल की तरङ्गों में चन्द्रमा भी चलता हुआ दीखता है, वैसे ही चित्त भी ॥ ४ ॥

(वृत्तिपदं व्याख्यातुमाह) उस चित्त की वृत्तियों की व्याख्या करने को अगला सूत्र कहते हैं—

सूचना

जो लोग तृतीय सूत्र में ‘ द्रष्टुः ’ शब्द से परमात्मा का अर्थ लेते हैं, यह उनकी भूल है, उनको इस वृत्ति और भाष्य से शिक्षा लेनी चाहिये ॥ ४ ॥

वृत्तयः पञ्चतय्यः क्लिष्टाक्लिष्टाः ॥ ५ ॥

सू०—क्लेश सहित और क्लेश रहित दोनों रूपों वाली वृत्तियों के पांच भेद हैं ॥ ५ ॥

व्या० भाष्यम्

क्लेशहेतुकाः कर्माशयप्रचये क्षेत्रीभूताः क्लिष्टाः । ख्यातिविषया गुणाधिकारविरोधिन्योऽक्लिष्टाः । क्लिष्टप्रवाहपतिता अप्यक्लिष्टाः । क्लिष्टच्छिद्रेष्वप्यक्लिष्टा भवन्ति । अक्लिष्टच्छिद्रेषु क्लिष्टा इति । तथाजातीयकाः संस्कारा वृत्तिभिरेव क्रियन्ते संस्कारैश्च वृत्तय इति । एवं वृत्तिसंस्कारचक्रमनिशमावर्तते । तदेवंभूतं चित्तमवसिताधिकारमात्मकल्पेन व्यवतिष्ठते प्रलयं वा गच्छतीति । ताः क्लिष्टाश्चाक्लिष्टाश्च पञ्चधा वृत्तयः ॥ ५ ॥

व्या० भा० पदार्थ

(क्लेशहेतुकाः कर्माशयप्रचये क्षेत्रीभूताः क्लिष्टाः) दुःखों की बीजरूप वृत्तियें कर्म और वासनाओं की उत्पत्ति में खेतरूप हुई २ क्लिष्टा अर्थात् दुःखदाई कहलाती हैं और (ख्यातिविषया गुणाधिकारविरोधिन्योऽक्लिष्टाः) ज्ञान का विषय करानेवाली तीन गुणों के अधिकार की विरोधी अक्लिष्टा कहलाती हैं । (क्लिष्टप्रवाहपतिता अप्यक्लिष्टाः) दुःखों के प्रवाह में पड़ी हुई भी अक्लिष्ट होती हैं । (क्लिष्टच्छिद्रेष्वप्यक्लिष्टा भवन्ति) क्लेशों के छिद्र अर्थात् अभाव काल में दुःखदाई नहीं होती । (अक्लिष्टच्छिद्रेषु क्लिष्टा इति) क्लेशों के भाव काल में क्लिष्टा होती है । (तथाजातीयकाः संस्कारा वृत्तिभिरेव क्रियन्ते) वैसे ही समान जाति वाले संस्कार वृत्ति को उत्पन्न करते हैं (संस्कारैश्च वृत्तय इति) संस्कार ही वृत्तियें हैं यह जानना चाहिये । (एवं वृत्तिसंस्कारचक्रमनिशमावर्तते) इस प्रकार

वृत्ति और संस्कारों का चक्र रात दिन चलता रहता है। (तदेवं-भूतं चित्तमवसिताधिकारमात्मकल्पेन व्यवतिष्ठते) इस प्रकार हुआ २ चित्त समाप्त होगये हैं विषयों में विचरने के अधिकार जिस के अपने स्वरूप में स्थिर होता है (प्रलयं वा गच्छतीति) वा कारण में लय हो जाता है। (ताः क्लिष्टाश्चाक्लिष्टाश्च पञ्चधा वृत्तयः) और वह क्लिष्ट अक्लिष्ट रूप वाली वृत्तियें पांच प्रकार की हैं ॥५॥

भावार्थ

चित्त की वृत्तियें जो सांसारिक विषयों में आत्मा को फसाये रखती हैं, वह क्लिष्टा अर्थात् दुःखदाई कहलाती हैं और ज्ञान विषयवाली जो तीन गुणों के अधिकार को नष्ट करके मोक्ष कराती हैं वेह अक्लिष्टा अर्थात् दुःख रहित कहलाती हैं। इस कारण जो दुःखदाई हैं वही त्याज्य हैं ज्ञान वाली त्याज्य नहीं ॥५॥

भो० वृत्ति

वृत्तयश्चित्तपरिणामविशेषाः वृत्तिसमुदायलक्षणस्यावयविनो या अवयवभूता वृत्तयस्तदपेक्षया तयप्प्रत्ययः। एतदुक्तं भवति—पञ्च वृत्तयः कीदृश्यः ? क्लिष्टा अक्लिष्टाः, क्लेशैर्वक्ष्यमाणलक्षणैराक्रान्ताः क्लिष्टाः। तद्विपरीता अक्लिष्टाः ॥ ५ ॥

एता एव पञ्च वृत्तयः संक्षिप्योद्दिश्यन्ते—

भो० वृ० पदार्थ

(वृत्तयः चित्तपरिणामविशेषाः) चित्त के परिणाम विशेष वृत्तियें कहलाती हैं (वृत्तिसमुदायलक्षणस्यावयविनः) समुदाय रूप चित्त अवयवी की वृत्ति (या अवयवभूता वृत्तयः) जो अवयव रूप हुई २ (तदपेक्षया तयप्प्रत्ययः) उन की अपेक्षा से सूत्र में "तयप्प्रत्ययः" शब्द आया है। (एतदुक्तं भवति) इस से यह जनाया जाता है कि—(पञ्च

वृत्तयः कीदृश्यः ? क्लिष्टा अक्लिष्टाः) पांचों वृत्तियें किस समान क्लिष्ट अक्लिष्ट हैं ? (क्लेशैर्वक्ष्यमाणलक्षणैराक्रान्ताः क्लिष्टाः) क्लेशों से जिनका लक्षण आगे कहेंगे बलवान हुई क्लिष्टा । (तद्विपरीता अक्लिष्टाः) उन से विपरीत अक्लिष्ट कहलाती हैं ॥ ५ ॥

(एता एव पञ्च वृत्तयः संक्षिप्योद्दिश्यन्ते) इन्हीं पांच वृत्तियों को संक्षेप से आगे दिखलाते हैं—

प्रमाणविपर्ययविकल्पनिद्रास्मृतयः ॥ ६ ॥

सू०—प्रमाण-विपर्य्य-विकल्प-निद्रा-स्मृति यह पांचों वृत्तियों के नाम हैं । क्रम से इन का लक्षण अगले सूत्रों में शास्त्रकार स्वयं करते हैं ॥ ६ ॥

व्या० भाष्यम्

इस सूत्र में शास्त्रकार ने केवल वृत्तियों के नाम ही बतलाये हैं, इस कारण भाष्यकार ने भी कुछ भाष्य की आवश्यक्ता न होने से भाष्य नहीं किया ॥ ६ ॥

भो० वृत्ति

आसां क्रमेण लक्षणमाह—

इनका क्रम से लक्षण अगले सूत्रों में करते हैं—

प्रत्यक्षानुमानागमाः प्रमाणानि ॥ ७ ॥

सू०—इन पांच वृत्तियों में प्रत्यक्ष अनुमान और आगम तीन प्रकार की प्रमाण वृत्ति कहलाती हैं ॥ ७ ॥

व्या० भाष्यम्

इन्द्रियप्रणालिकया चित्तस्य बाह्यवस्तूपरागात्तद्विषया सामान्यविशेषात्मनोऽर्थस्य विशेषावधारणप्रधाना वृत्तिः प्रत्यक्षं प्रमाणम् ।

फलमविशिष्टः पौरुषेयश्चित्तवृत्तिबोधः। प्रतिसंवेदी पुरुष इत्युपरिष्टादुपपादयिष्यामः।

अनुमेयस्य तुल्यजातीयेष्वनुवृत्तो भिन्नजातीयेभ्यो व्यावृत्तः संबन्धो यस्तद्विषया सामान्यावधारणप्रधाना वृत्तिरनुमानम्। यथा देशान्तरप्राप्तेर्गतिमच्चन्द्रतारकं चैत्रवत्, विन्ध्यश्चाप्राप्तिरगतिः। आप्तेन दृष्टोऽनुमितो वाऽर्थः परत्र स्वबोधसंक्रान्तये शब्देनोपदिश्यते, शब्दात्तदर्थविषया वृत्तिः श्रोतुरागमः। यस्याश्रद्धेयार्थो वक्ता न दृष्टानुमितार्थः स आगमः प्लवते। मूलवक्तरि तु दृष्टानुमितार्थे निर्विप्लवः स्यात्॥ ७॥

व्या० भा० पदार्थ

(इन्द्रियप्रणालिकया) इन्द्रिय द्वारा (चित्तस्य बाह्यवस्तूपरागात्) चित्त पर बाह्य वस्तुओं का उपराग पड़ने से (तद्विषया सामान्यविशेषात्मनोऽर्थस्य) उस चित्त के विषय अर्थ के सामान्य विशेषरूप को (विशेषावधारणप्रधाना वृत्तिः प्रत्यक्षं प्रमाणम्) विशेष धारण करने वाली प्रधान वृत्ति को "प्रत्यक्ष" प्रमाण कहते हैं। (फलमविशिष्टः पौरुषेयश्चित्तवृत्तिबोधः) फल सहित पुरुष के चित्त की वृत्ति पदार्थ का ज्ञान कहलाती है। (प्रतिसंवेदी पुरुष इत्युपरिष्टादुपपादयिष्यामः) उस चित्त की वृत्ति को जानने वाला पुरुष है, यह आगे कहेंगे।

(अनुमेयस्य) अनुमान करने योग्य वस्तु का (तुल्यजातीयेष्वनुवृत्तो भिन्नजातीयेभ्यो व्यावृत्तः संबन्धो यः) समान जातियों में युक्त करने वाला और भिन्न जातियों से पृथक करने वाला सम्बन्ध जो है (तद्विषया सामान्यावधारणप्रधाना वृत्तिरनुमानम्) उसके विषय वाली सामान्यरूप से धारण करने वाली प्रधान वृत्ति को "अनुमान" कहते हैं। (यथा देशान्तरप्राप्तेर्गतिमच्चन्द्रतारकं चैत्रवत्) जैसे देशान्तर की प्राप्ति होने से गतिवाले चन्द्र

तारागण हैं, चैत्र पुरुष के समान, (विन्ध्यश्चाप्राप्तिरगतिः) बिन्ध्याचल के देशान्तर में प्राप्त न होने से उसमें गति नहीं, जैसे विन्ध्याचल पर्वत एक जगह ठहरा हुआ होने से अनुमान होता है कि वह गतिमान नहीं है । और एक देश से दूसरे देश में चन्द्र तारागण को देखकर चलने का अनुमान होता है, क्योंकि चैत्र पुरुष को बिना चलने के एक स्थान से दूसरे स्थान में नहीं देख सक्ते ।

(आप्तेन दृष्टोऽनुमितो वाऽर्थः) आप्त पुरुष से देखा हुआ वा अनुमान किया हुआ अर्थ का विषय (परत्र स्वबोधसंक्रान्तये शब्देनोपदिश्यते) दूसरे पुरुष में अपने ज्ञान का प्रदान करने के लिये शब्द द्वारा जो उपदेश किया जाता है, (शब्दात्तदर्थविषया वृत्तिः श्रोतुरागमः) सुनने वाले को शब्द से उसके अर्थ के विषय वाली वृत्ति "आगम" प्रमाण कहलाती है । (यस्या वक्ता न दृष्टानुमितार्थः) जिसका वक्ता साक्षात् और अनुमान ज्ञान से रहित है (स आगमः अश्रद्धेयार्थः प्लवते) वह शास्त्र अश्रद्धेय अर्थ को प्रकाश करता है । (मूलवक्तरि तु) वेदों का मूल वक्ता परमेश्वर तो (दृष्टानुमितार्थे निर्विप्लवः स्यात्) देखे और अनुमान किये अर्थों में वासना रहित और मिथ्या ज्ञान रहित है । इसलिये आप्त पुरुष तो वही है जिसको वस्तु का साक्षात् ज्ञान हो और सत्य वक्ता निष्पक्ष धर्मात्मा सर्व हितार्थ सत्यार्थ का उपदेश करने वाला हो, उसके उपदेश को आगम प्रमाण कहते हैं और वह मुख्य परमेश्वर और गौण उस परमात्मा के साक्षात् जाननेवाले व्यास पतञ्जलादि महर्षि भी उपरोक्त गुणों वाले होने से आप्त माने जाते हैं ॥ ७ ॥

भो० वृत्ति

अत्रातिप्रसिद्धत्वात् प्रमाणानां शास्त्रकारेण भेदलक्षणेनैव गतत्वात्

लक्षणस्य पृथक्कलक्षणं न कृतम्। प्रमाणलक्षणन्तु अविसंवादिज्ञानं प्रमाणमिति। इन्द्रियद्वारेण बाह्यवस्तूपरागाच्चित्तस्य तद्विषयसामान्यविशेषात्मनोऽर्थस्य विशेषावधारणप्रधाना वृत्तिः प्रत्यक्षम्। गृहीतसम्बन्धाल्लिङ्गात् लिङ्गिनि सामान्यात्मनाऽध्यवसायोऽनुमानम्। आप्तवचनं आगमः॥ ७॥

एवं प्रमाणरूपां वृत्तिं व्याख्याय विपर्ययरूपामाह—

भो० वृ० पदार्थ

(अत्रातिप्रसिद्धत्वात् प्रमाणानां) इस सूत्र में प्रमाणों के अति प्रसिद्ध होने से (शास्त्रकारेण भेदलक्षणेनैवं गतत्वात्) शास्त्रकार से ही भेद लक्षण के सहित प्राप्त होने से (लक्षणस्य पृथक्कलक्षणं न कृतम्) लक्षण का पृथक् लक्षण नहीं किया। (प्रमाणलक्षणन्तु अविसंवादिज्ञानं प्रमाणमिति) प्रमाण का लक्षण तो यह है कि सम्वाद रहित ज्ञान अर्थात् जिसको सब विद्वान् मानते हैं, वही "प्रमाण" कहलाता है। (इन्द्रियद्वारेण बाह्यवस्तूपरागात्) इन्द्रियों के द्वारा बाह्य वस्तुओं का उपराग पड़ने से (चित्तस्य) चित्त की (तद्विषयसामान्यविशेषात्मनोऽर्थस्य विशेषावधारण) उसके विषय अर्थ के सामान्य विशेष रूप को विशेष रूप से धारण करनेवाली (प्रधाना वृत्तिः प्रत्यक्षम्) प्रधान वृत्ति प्रत्यक्ष कहलाती है। (गृहीतसम्बन्धाल्लिङ्गात् लिङ्गिनि) ग्रहण करके लिङ्ग से लिङ्गि का सम्बन्ध (सामान्यात्मनाऽध्यवसायोऽनुमानम्) सामान्यरूप से निश्चय करने को अनुमान कहते हैं। (आप्तवचनं आगमः) आप्त पुरुष के वचन को आगम प्रमाण कहते हैं॥ ७॥

(एवं प्रमाणरूपां वृत्तिं व्याख्याय) इस प्रकार प्रमाणरूपों वाली वृत्ति को कथन करके (विपर्य्यरूपामाह) विपर्य्य वृत्ति के रूप को कथन करते हैं।

विपर्ययो मिथ्याज्ञानमतद्रूपप्रतिष्ठम्॥ ८॥

सू०—मिथ्याज्ञान जो यथार्थ स्वरूप में प्रतिष्ठित न हो उसे विपर्य्य कहते हैं॥ ८॥

व्या० भाष्यम्

स कस्मान्न प्रमाणम् । यतः प्रमाणेन बाध्यते । भूतार्थविषयत्वात्प्रमाणस्य । तत्र प्रमाणेन बाधनमप्रमाणस्य दृष्टम् । तद्यथा—द्विचन्द्रदर्शनं सद्विषयेणैकचन्द्रदर्शनेन बाध्यत इति ।

सेयं पञ्चपर्वा भवत्यविद्या, अविद्यास्मितारागद्वेषाभिनिवेशाः क्लेशा इति । एत एव स्वसंज्ञाभिस्तमो मोहो महामोहस्तामिस्रोऽन्धतामिस्र इति । एते चित्तमलप्रसङ्गेनाभिधास्यन्ते ॥ ८ ॥

व्या० भा० पदार्थ

(स कस्मान्न प्रमाणम्) वह किस कारण प्रमाण नहीं है ? (यतः प्रमाणेन बाध्यते) जिस कारण प्रमाण से बाध हो जाती है, इसलिये उस को प्रमाण वृत्ति नहीं कह सक्ते । (भूतार्थविषयत्वात्प्रमाणस्य) प्रमाणों का विषय पूर्व सूत्र में कहा गया । (तत्र प्रमाणेन बाधनमप्रमाणस्य दृष्टम्) उन में प्रमाण से अप्रमाण का बाध देखा गया । (तद्यथा) उस विषय में यह दृष्टान्त है—(द्विचन्द्रदर्शनं सद्विषयेणैकचन्द्रदर्शनेन बाध्यत इति) जैसे दो चन्द्रमा का दर्शन, सत्य विषय एक चन्द्र दर्शन से बाध हो जाता है ।

(सेयं पञ्चपर्वा भवत्यविद्या) सो यह अविद्या पांच भेदों वाली है, (अविद्यास्मितारागद्वेषाभिनिवेशाः क्लेशा इति) अविद्या अस्मिता, राग, द्वेष, अभिनिवेश पांच क्लेशों के नाम से कही जाती है । (एत एव स्वसंज्ञाभिः) यही अपने दूसरे नामों से (तमो मोहो महामोहस्तामिस्रोऽन्धतामिस्र इति) तम, मोह, महामोह तामिस्र, अन्धतामिस्र कहलाती है ।

(एते चित्तमलप्रसङ्गेनाभिधास्यन्ते) यह चित्तमल प्रसङ्ग में कहे जायंगे ॥ ८ ॥

भो० वृत्ति

अतथाभूतेऽर्थे तथोत्पद्यमानं ज्ञानं विपर्ययः। यथा शुक्तिकायां रजत-ज्ञानम्। अतद्रूपप्रतिष्ठमिति। तस्यार्थस्य यद्रूपं तस्मिन्रूपे न प्रतितिष्ठति तस्यार्थस्य यत्पारमार्थिकं रूपं न तत्प्रतिभासयतीति यावत्। संशयोऽप्य-तद्रूपप्रतिष्ठत्वान्मिथ्याज्ञानम्। यथा स्थाणुर्वा पुरुषो वेति॥ ८॥

विकल्पवृत्तिं व्याख्यातुमाह—

भो० वृ० पदार्थ

(अतथाभूतेऽर्थे तथोत्पद्यमानं ज्ञानं विपर्ययः) जैसा अर्थ नहीं है वैसा उत्पन्न हुआ ज्ञान विपर्यय कहलाता है। (यथा शुक्तिकायां रजत-ज्ञानम्) जैसे सीपी में चांदी का ज्ञान। (अतद्रूपप्रतिष्ठमिति) अत-द्रूपप्रतिष्ठम्, इसका यह अर्थ है कि (तस्यार्थस्य यद्रूपं तस्मिन्रूपे न प्रतितिष्ठति) उस वस्तु का जो स्वरूप है उस रूप में ज्ञान नहीं ठहरता (तस्यार्थस्य यत्पारमार्थिकं रूपं) उस वस्तु का जो यथार्थ रूप है (न त-त्प्रतिभासयतीति यावत्। संशयः अपि) वह नहीं भासित होता है, इस प्रकार जहां तक संशय है (अतद्रूपप्रतिष्ठत्वान्मिथ्याज्ञानम्) स्वरूप में स्थिर न होने से मिथ्याज्ञान है। (यथा स्थाणुर्वा पुरुषो वेति) जैसे स्थाणु में पुरुष का ज्ञान॥ ८॥

(विकल्पवृत्तिं व्याख्यातुमाह) विकल्प वृत्ति की व्याख्या करने को आगे सूत्र कहते हैं—

शब्दज्ञानानुपाती वस्तुशून्यो विकल्पः॥ ९॥

सू०—शब्द से उत्पन्न हुआ जो ज्ञान उस ज्ञान के पश्चात् होने का है स्वभाव जिस का वह शब्दज्ञानानुपाती वस्तु का जिस में अभाव हो वह विकल्प ज्ञान कहलाता है अर्थात् जिस में ज्ञेय वस्तु कुछ न हो, केवल शब्दों के उच्चारण से व्यवहार होता है।

जैसा किसी ने कहा है—

मृगतृष्णांभसि स्नातः ख पुष्पकृत शेखरः ।
एषं बन्ध्या सुतोयाति शशश्रृंग धनुर्धरः ॥

अर्थ—मृगतृष्णा के जल में स्नान किये हुए और आकाश के पुष्प सिर में धारण करके यह बन्ध्या का पुत्र जाता है जिस के हाथ में खरगोश के सिगों का धनुष है ॥ ९ ॥

व्या० भाष्यम्

स न प्रमाणोपारोही । न विपर्ययोपारोही च । वस्तुशून्यत्वेऽपि शब्दज्ञानमाहात्म्यनिबन्धनो व्यवहारो दृश्यते । तद्यथा—चैतन्यं पुरुषस्य स्वरूपमिति । यदा चितिरेव पुरुषस्तदा किमत्र केन व्यपदिश्यते ।

भवति च व्यपदेशे वृत्तिः । यथा चैत्रस्य गौरिति । तथा प्रतिषिद्धवस्तुधर्मो निष्क्रियः पुरुषः, तिष्ठति बाणः स्थास्यति स्थित इति, गतिनिवृत्तौ धात्वर्थमात्रं गम्यते । तथाऽनुत्पत्तिधर्मा पुरुष इति—उत्पत्तिधर्मस्याभावमात्रमवगम्यते न पुरुषान्वयी धर्मः । तस्माद्विकल्पितः स धर्मस्तेन चास्ति व्यवहार इति ॥ ९ ॥

व्या० भा० पदार्थ

(स न प्रमाणोपारोही) वह न प्रमाणान्तरगत है । (न विपर्ययोपारोही च) और न विपर्य्य अन्तरगत है । (वस्तुशून्यत्वेऽपि) वस्तु के न होनेपर भी (शब्दज्ञानमाहात्म्यनिबन्धनः) शब्द ज्ञान के बल से बंधा हुआ (व्यवहारः दृश्यते) व्यवहार देखा जाता है । (तद्यथा) उस विषय में यह दृष्टान्त है-(चैतन्यं पुरुषस्य स्वरूपमिति) जैसे कोई कहे पुरुष का चैतन्य स्वरूप है । (यदा चितिरेव पुरुषः) जब चैतन्यता ही पुरुष है (तदा किमत्र केन व्यप-

दिश्यते) तब इस में क्या किस के द्वारा कहा जाता है, क्योंकि पुरुष का चैतन्य स्वरूप है और इस कहने में षष्ठी विभक्ति द्वारा पुरुष चैतन्य का स्वामी प्रकट होता है, यही विकल्प है।

(भवति च व्यपदेशे वृत्तिः) ऐसी वृत्ति द्वैत ज्ञान के उपदेश में होती है। (यथा चैत्रस्य गौरिति) जैसे चैत्र की गौ है इस में भी चैत्र और गौ दो वस्तुओं की सिद्धि होती है। (तथा प्रतिषिद्धवस्तुधर्मा:) वैसे ही निषिद्ध धर्मोंवाली वस्तु में (निष्क्रियः पुरुषः) पुरुष क्रिया रहित है, यहां जड़ के धर्मों को पुरुष में मान लिया जड़ पृथिवि आदि पञ्चभूत निष्क्रिय हैं, (तिष्ठति बाणः स्थास्यति स्थित इति) बाण ठहरता है, ठहरेगा, ठहरा हुआ। (गतिनिवृत्तौ धात्वर्थमात्रं गम्यते) इस वाक्य में बाण में चलने की क्रिया न होनेपर भी धातु के अर्थमात्र ही प्राप्त होते हैं। (तस्माद्विकल्पितः स धर्मः) इसलिये वह धर्म विकल्प है (तेन चास्ति व्यवहार इति) उस से यह व्यवहार है॥ ९॥

विशेष सूचना

भाष्य के अन्त में एक दृष्टान्त और भी अयुक्तसा नीचे लिखा है, सम्भव है किसी आधुनिक पुरुष ने बढ़ा दिया हो जैसा कि भूमिका में लिख आये हैं। इस ही कारण उसके अर्थ करने की आवश्यका नहीं समझी छोड़ दिया है ॥९॥

भो० वृत्ति

शब्दजनितं ज्ञानं शब्दज्ञानं, तदनु पतितुं शीलं यस्य स शब्दज्ञानानुपाती। वस्तुनस्तथात्वमनपेक्षमाणो योऽध्यवसायः स विकल्प इत्युच्यते। यथा पुरुषस्य चैतन्यं स्वरूपमिति। अत्र देवदत्तस्य कम्बल इति शब्दजनिते ज्ञाने षष्ठ्या योऽध्यवसितो भेदस्तमिहाविद्यमानमपि समारोप्य प्रवर्त्ततेऽध्यवसायः। वस्तुतस्तु चैतन्यमेव पुरुषः॥ ९॥

निद्रां व्याख्यातुमाह—

भो० वृ० पदार्थ

(शब्दजनितं ज्ञानं शब्दज्ञानं) शब्द से उत्पन्न हुआ ज्ञान शब्द-ज्ञान कहलाता है, (तदनु पतितुं शीलं यस्य) उस के पीछे होने का है स्वभाव जिसका (स शब्दज्ञानानुपाती) वह शब्दज्ञान अनुपाती कहलाता है। (वस्तुनस्तथात्वमनपेक्षमाणो योऽध्यवसायः स विकल्प इत्युच्यते) वस्तु के यथार्थ स्वरूप की अपेक्षा न करके जो निश्चय करना वह विकल्प ज्ञान कहाता है। (यथा पुरुषस्य चैतन्यं स्वरूपमिति) जैसे पुरुष का चैतन्य स्वरूप है। (अत्र देवदत्तस्य कम्बलः) इस में देवदत्त का कम्बल (इति शब्दजनिते ज्ञाने षष्ठ्या) इस शब्द से उत्पन्न हुए ज्ञान में षष्ठी विभक्ति द्वारा (योऽध्यवसितो भेदः) जैसा निश्चित हुआ भेद (तमिहाविद्यमानमपि समारोप्य प्रवर्त्ततेऽध्यवसायः) वैसा भेद इस में न होते हुए भी आरोपण करके निश्चय किया है। (वस्तुतस्तु चैतन्यमेव पुरुषः) यथार्थ में तो चैतन्य ही पुरुष है ॥ ९ ॥

(निद्रां व्याख्यातुमाह) निद्रा की व्याख्या अगले सूत्र से करते हैं—

अभावप्रत्ययालम्बना वृत्तिर्निद्रा ॥ १० ॥

सू०—जो वृत्ति ज्ञानों के अभाव को आश्रित करे वह निद्रा कहाती है, या यों कहो कि जिस के आश्रय से ज्ञानों का अभाव होता है वह निद्रा वृत्ति है, इसका आशय सुषुप्ति अवस्था से है ॥१०॥

व्या० भाष्यम्

सा च संप्रबोधे प्रत्यवमर्शात्प्रत्ययविशेषः । कथं, सुखमहमस्वाप्सम् । प्रसन्नं मे मनः प्रज्ञां मे विशारदी करोति । दुःखमहमस्वाप्सं स्त्यानं मे मनो भ्रमत्यनवस्थितम् । गाढं मूढोऽहमस्वाप्सम् । गुरूणि मे गात्राणि । क्लान्तं मे चित्तम् । अलसं मुषितमिव तिष्ठतीति । स खल्वयं प्रबुद्धस्य प्रत्यवमर्शो न स्यादसति प्रत्ययानुभवे

तदाश्रिताः स्मृतयश्च तद्विषया न स्युः। तस्मात्प्रत्ययविशेषो निद्रा। सा च समाधावितरप्रत्ययवन्निरोद्धव्येति ॥ १० ॥

व्या० भा० पदार्थ

(सा च संप्रबोधे प्रत्यवमर्शात्प्रत्ययविशेषः) वह निद्रावृत्ति जाग्रत होने पर वृत्तियों के विचार से जानी जाती है कि अन्य वृत्तियों से विशेष एक वृत्ति निद्रा भी है। (कथम्) किस प्रकार यह जाना जाता है ? सो कहते हैं, (सुखमहमस्वाप्सम्) मैं सुख से सोया। (प्रसन्नं मे मनः) मेरा मन प्रसन्न है (प्रज्ञां मे विशारदी करोति) मेरी बुद्धि प्रकाश करती है। (दुःखमहमस्वाप्सम्) मैं दुःख के साथ सोया। (स्त्यानं मे मनः) मेरा मन अकर्मण्यता को धारण करता है (भ्रमत्यनवस्थितम्) घूमता सा है अनवस्थित अर्थात् अस्थिर होरहा है। (गाढं मूढोऽहमस्वाप्सम्) मैं अति बेसुध सोया। (गुरूणि मे गात्राणि) मेरे शरीर के अङ्ग भारी होरहे हैं। (क्लान्तं मे चित्तम्) मेरा चित्त व्याकुल है। (अलसं मुषितमिव तिष्ठतीति) आलस्ययुक्त चुराया हुआ सा होरहा है। (स खल्वयं प्रबुद्धस्य प्रत्यवमर्शो न स्यात्) निश्चय जाग्रत हुए को इन वृत्तियों का विचार न होवे (असति प्रत्ययानुभवे तदाश्रिता स्मृतयश्च) वृत्तियों के अनुभव के विना और उन के आश्रयवाली स्मृतियें (तद्विषा न स्युः) और वह विषय भी न होवे। (तस्मात्प्रत्ययविशेषो निद्रा) इसलिये अन्य वृत्तियों से एक विशेष वृत्ति निद्रा भी है। (सा च समाधावितरप्रत्ययवन्निरोद्धव्येति) और वह समाधि में दूसरी वृत्तियों के समान निरोध करने योग्य है ॥ १० ॥

भो० वृत्ति

अभावप्रत्यय आलम्बनं यस्या वृत्तेः सा तथोक्ता। एतदुक्तं भवति— या सन्ततमुद्रिक्तत्वात्तमसः समस्तविषयपरित्यागेन प्रवर्त्तते वृत्तिः सा

निद्रा । तस्याश्च सुखमहमस्वाप्समिति स्मृतिदर्शनात् स्मृतेश्चानुभवव्यतिरेकेणानुपपत्तेर्वृत्तित्वम् ॥ १० ॥

स्मृतिं व्याख्यातुमाह—

भो० वृ० पदार्थ

(अभावप्रत्यय आलम्बनं यस्या वृत्तेः सा तथोक्ता) ज्ञानों के अभाव को धारण करना जिस वृत्ति का स्वभाव है वह निद्रा कहाती है । (एतदुक्तं भवति) फलितार्थ यह हुआ कि—(या सन्ततमुद्रिक्तत्वात्तमसः समस्तविषयपरित्यागेन प्रवर्त्तते) जो तमोगुण की प्रबलता से विस्तृत हुई समस्त विषयों के त्याग द्वारा प्रवर्त्त होती है (वृत्तिः सा निद्रा) वह वृत्ति निद्रा है । (तस्याश्च) और उसका (सुखमहमस्वाप्समिति स्मृतिदर्शनात्) मैं सुख के साथ सोया यह स्मृति देखने से (स्मृतेश्चानुभवव्यतिरेकेणानुपपत्तेर्वृत्तित्वम्) और स्मृति अनुभव के विना न होने से वृत्तिपन को सिद्ध करती है ॥ १० ॥

(स्मृतिं व्याख्यातुमाह) स्मृति को अगला सूत्र कहता है—

अनुभूतविषयासंप्रमोषः स्मृतिः ॥ ११ ॥

सू०—अनुभव किये हुए विषयों का चित्त में से न खोया जाना, न चुराया जाना अर्थात् न भूलना स्मृति कहाती है ॥ ११ ॥

व्या० भाष्यम्

किं प्रत्ययस्य चित्तं स्मरति आहोस्विद्विषयस्येति । ग्राह्योपरक्तः प्रत्ययो ग्राह्यग्रहणोभयाकारनिर्भासस्तज्जातीयकं संस्कारमारभते । स संस्कारः स्वव्यञ्जकाञ्जनस्तदाकारामेव ग्राह्यग्रहणोभयात्मिकां स्मृतिं जनयति ।

तत्र ग्रहणाकारपूर्वा बुद्धिः । ग्राह्याकारपूर्वा स्मृतिः । सा च द्वयी—भावितस्मर्तव्या चाभावितस्मर्तव्या च । स्वप्ने भावितस्म-

र्तव्या । जाग्रत्समये त्वभावितस्मर्तव्येति । सर्वाश्चैताः स्मृतयः प्रमाणविपर्ययविकल्पनिद्रास्मृतीनामनुभवात्प्रभवन्ति । सर्वाश्चैता वृत्तयः सुखदुःखमोहात्मिकाः । सुखदुःखमोहाश्च क्लेशेषु व्याख्येयाः। सुखानुशयी रागः । दुःखानुशयी द्वेषः । मोहः पुनरविद्येति । एताः सर्वा वृत्तयो निरोद्धव्याः । आसां निरोधे संप्रज्ञातो वा समाधिर्भवत्यसंप्रज्ञातो वेति ॥ ११ ॥

अथाऽऽसां निरोधे क उपाय इति—

व्या० भा० पदार्थ

(किं प्रत्ययस्य चित्तं स्मरति आहोस्विद्विषयस्येति) क्या पूर्व अनुभव की हुई वृत्तियों को चित्त स्मरण करता है वा विषयों को ? (ग्राह्योपरक्तः प्रत्ययः) ग्रहण करने योग्य वस्तु में उपराग को प्राप्त हुआ बुद्धि का ज्ञान (ग्राह्यग्रहणोभयाकारनिर्भासः) ग्रहण करने योग्य विषय और ग्रहण बुद्धि दोनों के आकार से भासित होकर (तज्जातीयकं संस्कारमारभते) समान संस्कार को उत्पन्न करता है। (स संस्कारः) वह संस्कार (स्वव्यञ्जकाञ्जनस्तदाकारामेव) अपने कारणाकार से बोधक होता हुआ वह आकार ही (ग्राह्यग्रहणोभयात्मिकां स्मृतिं जनयति) ग्राह्य ग्रहण दोनों रूपों वाली स्मृति को उत्पन्न करता है।

(तत्र ग्रहणाकारपूर्वा बुद्धिः) उन में ग्रहण रूपवाली बुद्धि। (ग्राह्याकारपूर्वा स्मृतिः) और विषय के रूपवाली स्मृति है। (सा च द्वयी) और वह दो प्रकार की है—(भावितस्मर्तव्या चाभावितस्मर्तव्या च) वह विद्यमान पदार्थों के स्मरण करने योग्य और अविद्यमान पदार्थों के स्मरण करने योग्य, भेद से (स्वप्ने भावितस्मर्तव्या) स्वप्नावस्था में जो जाग्रत अवस्था के देखे हुए पदार्थों का स्मरण होता है वह "भावितस्मर्तव्या स्मृति" कहलाती है। (जाग्रत्समये त्वभावितस्मर्तव्येति) जाग्रत् अवस्था में

जो स्वप्नावस्था के पदार्थों की स्मृति होती है वह "अभावितस्मर्तव्या स्मृति" कहलाती है। (सर्वाश्चैताः स्मृतयः) यह सब स्मृतियें (प्रमाणविपर्ययविकल्पनिद्रास्मृतीनामनुभवात्प्रभवन्ति) प्रमाण, विपर्यय, विकल्प, निद्रा, स्मृति इन पांचों के अनुभव से होती हैं। (सर्वाश्चैता वृत्तयः सुखदुःखमोहात्मिकाः) यह सब वृत्तियें सुख दुःख मोहरूप हैं। (सुखदुःखमोहाश्च क्लेशेषु व्याख्येयाः) सुख दुःख और मोह का क्लेशों में व्याख्यान किया जायगा। (सुखानुशयी रागः) सुख भोग के पश्चात् जो उस की वासनायें रहती हैं वह "राग" कहलाता है। (दुःखानुशयी द्वेषः) दुःख भोग के पश्चात् जो उस के साधनों में क्रोध करने की इच्छा होती है वह "द्वेष" कहाता है। (मोहः पुनरविद्येति) मोह तो अविद्या ही है (एताः सर्वा वृत्तयो निरोद्धव्याः) यह सब वृत्तियें निरोध करने योग्य हैं। (आसां निरोधे संप्रज्ञातो वा समाधिर्भवत्यसंप्रज्ञातो वेति) इन के निरोध होने पर संप्रज्ञात और असंप्रज्ञात दोनों समाधि होती हैं॥ ११ ॥

(अथाऽऽसां निरोधे क उपाय इति) इन के निरोध करने में कौन उपाय है ? यह आगे कहते हैं—

भो० वृत्ति

प्रमाणेनानुभूतस्य विषयस्य योऽयमसंप्रमोषः संस्कारद्वारेण बुद्धावारोहः सा स्मृतिः। तत्र प्रमाणविपर्ययविकल्पा जाग्रदवस्था। त एव तदनुभवबलात् प्रत्यक्षायमाणाः स्वप्नाः। निद्रा तु असंवेद्यमानविषया। स्मृतिश्च प्रमाणविपर्ययविकल्पनिद्रानिमित्ता ॥ ११ ॥

एवं वृत्तीर्व्याख्याय सोपायं निरोधं व्याख्यातुमाह—

भो० वृ० पदार्थ

(प्रमाणेनानुभूतस्य विषयस्य योऽयमसंप्रमोषः) प्रमाण के द्वारा

अनुभव किये विषय का जो चित्त में से न चुराया जाना न खोया जाना अर्थात् न भूलना (संस्कारद्वारेण बुद्धावारोहः) संस्कार के द्वारा बुद्धि में बीजरूप से रहना (सा स्मृतिः) वह स्मृति कहलाती है। (तत्र प्रमाणविपर्ययविकल्पा जाग्रदवस्था) उन में प्रमाण विपर्य्य विकल्प जाग्रत् की अवस्था हैं, (त एव तदनुभवबलात् प्रत्यक्षायमाणाः स्वप्नाः) उन के अनुभव के बल से प्रत्यक्ष के समान ज्ञान कराने वाली स्वप्न की वृत्ति होती है। (निद्रा तु असंवेद्यमानविषया) निद्रा तो वह है जिस में विषय तो बिल्कुल नहीं जाने जाते इस का अभिप्राय सुषुप्ति से है। (स्मृतिश्च प्रमाणविपर्ययविकल्पनिद्रानिमित्ता) स्मृति तो प्रमाण, विपर्यय, विकल्प और निद्रा चारों के निमित्त से होती है ॥ ११ ॥

(एवं वृत्तीर्व्याख्याय सोपायं निरोधं व्याख्यातुमाह) इस प्रकार वृत्तियों को कहकर उपाय सहित निरोध की व्याख्या करने को अगला सूत्र कहा है—

अभ्यासवैराग्याभ्यां तन्निरोधः ॥ १२ ॥

सू०—अभ्यास और वैराग्य दोनों के द्वारा उन वृत्तियों का निरोध होता है, अभिप्राय यह है कि अभ्यास और वैराग्य दोनों साथ २ करने की आवश्यक्ता है, आगे पीछे नहीं दोनों मिलकर ही वृत्तियों का निरोध कर सक्ते हैं। इनमें प्रथम वैराग्य द्वारा चित्त वृत्तियों का निरोध करना चाहिये पश्चात् अभ्यास द्वारा उन निरुद्ध संस्कारों की दृढ़ता करनी चाहिये यह अभिप्राय है ॥१२॥

व्या० भाष्यम्

चित्तनदी नामोभयतोवाहिनी वहति कल्याणाय वहति पापाय च। या तु कैवल्यप्राग्भारा विवेकविषयनिम्ना सा कल्याणवहा। संसारप्राग्भाराऽविवेकविषयनिम्ना पापवहा। तत्र वैराग्येण विषयस्रोतः खिली क्रियते। विवेकदर्शनाभ्यासेन विवेकस्रोत उद्घाट्यत इत्युभयाधीनश्चित्तवृत्तिनिरोधः ॥ १२ ॥

व्या० भा० पदार्थ

(चित्तनदी नामोभयतोवाहिनी) चित्त दो धारों वाली नदी के समान है (वहति कल्याणाय वहति पापाय च) चित्त की एक धाररूपा वृत्ति कल्याण के लिये बहती है, दूसरी पाप के लिये बहती है। (या तु कैवल्यप्राग्भारा) पूर्व जन्म में कैवल्यार्थ किये हैं उपाय जिसने वह कैवल्यप्राग्भारा जो वृत्ति (विवेकविषयनिम्ना) वह विवेक विषय में निम्न हुई अर्थात् विवेक की तरफ चलनेवाली (सा कल्याणवहा) वह मानो कल्याण की तरफ बहनेवाली धारा है।

(संसारप्राग्भारा) सांसारिक विषयों का भोग किया है, पूर्व जन्म में जिस पुरुष ने उस की वृत्ति संसारप्राग्भारा (अविवेक-विषयनिम्ना) वह विवेकज्ञान की विरोधी सांसारिक विषयों में चलनेवाली (पापवहा) पाप की धारा है। (तत्र वैराग्येण वि-षयस्रोतः खिलीक्रियते) उन में वैराग्य से विषयों का स्रोत नष्ट अर्थात् बन्द किया जाता है। (विवेकदर्शनाभ्यासेन) विवेकज्ञान के अभ्यास से (विवेकस्रोत उद्घाट्यते) विवेक का स्रोत खोला जाता है (इत्युभयाधीनश्चित्तवृत्तिनिरोधः) इस प्रकार अभ्यास वैराग्य दोनों के आधीन चित्त वृत्ति का निरोध है ॥ १२ ॥

भो० वृत्ति

अभ्यासवैराग्ये वक्ष्यमाणलक्षणे, ताभ्यां प्रकाशप्रवृत्तिनियमरूपा या वृत्तयस्तासां निरोधो भवतीत्युक्तं भवति। तासां विनिवृत्तबाह्याभिनिवेशानां अन्तर्मुखतया स्वकारण एव चित्ते शक्तिरूपतयाऽवस्थानम्। तत्र विषयदोष-दर्शनजेन वैराग्येण तद्वैमुख्यमुत्पाद्यते। अभ्यासेन च सुखजनकशान्तप्रवाह-प्रदर्शनद्वारेण दृढं स्थैर्य्यमुत्पाद्यते। इत्थं ताभ्यां भवति चित्तवृत्तिनिरोधः॥ १२॥

अभ्यासं व्याख्यातुमाह—

भो० वृ० पदार्थ

(अभ्यासवैराग्ये वक्ष्यमाणलक्षणे) अभ्यास वैराग्य जिन का लक्षण आगे कहा जायगा, (ताभ्यां प्रकाशप्रवृत्तिनियमरूपा या वृत्तयस्तासां निरोधो भवति) उन के द्वारा प्रकाश प्रवृत्ति स्थिति रूपवाली जो वृत्तियें हैं उन का निरोध होता है (इत्युक्तं भवति) यह सूत्र में कहा है। (तासां विनिवृत्तबाह्याभिनिवेशानां अन्तर्मुखतया) बाह्य विषय क्लेशादि निवृत्त होगये जिनके उन वृत्तियों का अन्तर्मुखता से (स्वकारण एव चित्ते) अपने कारण चित्त में (शक्तिरूपतयाऽवस्थानम्) शक्तिरूप से ठहरना ही निरोध है। (तत्र विषयदोपदर्शनजेन वैराग्येण) उन में विषयों के दोष दर्शन से उत्पन्न हुए वैराग्य द्वारा (तद्वैमुख्यमुत्पाद्यते) उन विषयों में विमुखता उत्पन्न की जाती है अर्थात् विषयों की तरफ से चित्त हटाया जाता है। (अभ्यासेन च सुखजनकशान्तप्रवाहप्रदर्शनद्वारेण) अभ्यास द्वारा सुख के उत्पन्न करने वाले शान्त प्रवाह दर्शन द्वारा (दृढं स्थैर्य-मुत्पाद्यते) दृढ़ स्थिरता को प्राप्त किया जाता है। (इत्थं ताभ्यां भवति चित्तवृत्तिनिरोधः) इस प्रकार अभ्यास वैराग्य दोनों के द्वारा चित्त वृत्ति का निरोध होता है ॥ १२ ॥

(अभ्यासं व्याख्यातुमाह) अभ्यास की व्याख्या अगला सूत्र करता है—

तत्र स्थितौ यत्नोऽभ्यासः ॥ १३ ॥

सू०—उन में स्थिति का यत्न अभ्यास कहाता है ॥ १३ ॥

व्या० भाष्यम्

चित्तस्यावृत्तिकस्य प्रशान्तवाहिता स्थितिः। तदर्थः प्रयत्नो वीर्यमुत्साहः। तत्संपिपादयिषया तत्साधनानुष्ठानमभ्यासः ॥ १३ ॥

व्या० भा० पदार्थ

(चित्तस्यावृत्तिकस्य) चक्र के समान निरन्तर घूमने वाले

चित्त की (प्रशान्तवाहिता स्थितिः) शान्त प्रवाह में बहना ही स्थिति कहलाती है। (तदर्थः प्रयत्नो वीर्यमुत्साहः) उस ऐसी स्थिति के लिये यत्न करना, बल लगाना और उत्साह होना (तत्संपिपादयिषया) उसके सम्पादन करने की इच्छा से (तत्साधनानुष्ठानमभ्यासः) उसके साधनों का अनुष्ठान करना अभ्यास कहलाता है अर्थात् साधनों से अभिप्राय भाष्य में यम नियमादि का पालन करना जानना चाहिये ॥ १३ ॥

भो० वृत्ति

वृत्तिरहितस्य चित्तस्य स्वरूपनिष्ठः परिणामः स्थितिस्तस्यां यत्न उत्साहः पुनः पुनस्तत्त्वेन चेतसि निवेशनमभ्यास इत्युच्यते ॥ १३ ॥

तस्यैव विशेषमाह—

भो० वृ० पदार्थ

(वृत्तिरहितस्य चित्तस्य) वृत्ति रहित चित्त का (स्वरूपनिष्ठः परिणामः) स्वरूप में स्थिर रहनारूप परिणाम (स्थितिः) स्थिति कहलाती है (तस्यां यत्न उत्साहः) उस स्थिति में उत्साह पूर्वक यत्न करना (पुनः पुनस्तत्त्वेन चेतसि निवेशनम्) बार २ विचार के द्वारा चित्त का प्रवेश करना (अभ्यास इत्युच्यते) इस को अभ्यास कहते हैं ॥ १३ ॥

(तस्यैव विशेषमाह) उस के ही विशेष स्वरूप को आगे कहते हैं—

स तु दीर्घकालनैरन्तर्यसत्कारासेवितो दृढभूमिः॥१४॥

सू०—वह अभ्यास दीर्घकाल अर्थात् मरणपर्यन्त, सर्व अवस्थाओं सर्व भूमियों में, आदरयुक्त किया हुआ दृढभूमि होता है ॥ १४ ॥

व्या० भाष्यम्

दीर्घकालासेवितो निरन्तरासेवितः सत्कारासेवितः। तपसा

ब्रह्मचर्येण विद्यया श्रद्धया च संपादितः सत्कारवान्दृढभूमिर्भवति। व्युत्थानसंस्कारेण द्रागित्येवानभिभूतविषय इत्यर्थः ॥ १४ ॥

व्या० भा० पदार्थ

(दीर्घकालासेवितः) बहुत काल अर्थात् मरण पर्यन्त सेवन किया हुआ (निरन्तरासेवितः) सर्व अवस्था और सर्व भूमियों में प्रतिदिन निर्विघ्नता के साथ (सत्कारासेवितः) आदरयुक्त सेवन किया हुआ। (तपसा ब्रह्मचर्येण विद्यया श्रद्धया च संपादितः) तप ब्रह्मचर्य विद्या और श्रद्धा सहित सम्पादन किया हुआ (सत्कारवान्दृढभूमिर्भवति) आदर वाला दृढ भूमि होता है। (व्युत्थानसंस्कारेण द्रागित्येवानभिभूतविषय इत्यर्थः) व्युत्थान संस्कारों से गुप्तरूप में विषय रहते हुए एक दम अभ्यास से दृढभूमि नहीं होते, यह अभिप्राय है ॥ १४ ॥

भो० वृत्ति

बहुकालं नैरन्तर्य्येण आदरातिशयेन च सेव्यमानो दृढभूमिः स्थिरो भवति। दार्ढ्याय प्रभवतीत्यर्थः ॥ १४ ॥

वैराग्यस्य लक्षणमाह—

भो० वृ० पदार्थ

(बहुकालं) बहुत काल पर्यन्त (नैरन्तर्य्येण) सर्व अवस्थाओं भूमियों में प्रतिदिन विघ्न रहित (आदरातिशयेन च सेव्यमानः) अति आदर के सहित सेवन किया हुआ (दृढभूमिः स्थिरो भवति) दृढभूमि अर्थात् ठहरने वाला होता है। (दार्ढ्याय प्रभवतीत्यर्थः) दृढता के लिये होता है यह अर्थ है ॥ १४ ॥

(वैराग्यस्य लक्षणमाह) वैराग्य का लक्षण आगे कहते हैं—

दृष्टानुश्रविकविषयवितृष्णस्य वशीकारसंज्ञा वैराग्यम्॥ १५॥

स०—दृष्ट=देखे और आनुश्रविक=सुने हुए विषयों की तृष्णा से रहित होना वशीकार नाम वाला वैराग्य कहाता है ॥१५॥

व्या० भाष्यम्

स्त्रियोऽन्नपानमैश्वर्यमिति दृष्टविषये वितृष्णस्य स्वर्गवैदेह्यप्रकृतिलयत्वप्राप्तावानुश्रविकविषये वितृष्णस्य दिव्यादिव्यविषयसंयोगेऽपि चित्तस्य विषयदोषदर्शिनः प्रसंख्यानबलादनाभोगात्मिका हेयोपादेयशून्या वशीकारसंज्ञा वैराग्यम्॥ १५॥

व्या० भा० पदार्थ

(स्त्रियोऽन्नपानमैश्वर्यमिति दृष्टविषये) स्त्री और खान पान धन राज्यादि ऐश्वर्य दृष्ट विषयों की (वितृष्णस्य) तृष्णा से रहित (स्वर्गवैदेह्यप्रकृतिलयत्वप्राप्तावानुश्रविकविषये वितृष्णस्य) स्वर्ग वैदेह्य प्रकृतिलय की प्राप्ति आनुश्रविक विषय इनकी तृष्णा से भी रहित (दिव्य) विद्वानों महानुभावी पुरुषों के सांसारिक भोग (अदिव्यविषय) सांसारिक पुरुषों के सांसारिक भोग (संयोगेऽपि) संयोग होनेपर भी (चित्तस्य) चित्त का (विषयदोशदर्शिनः) विषय के दोष देखने वाले को (प्रसंख्यानबलादनाभोगात्मिका) प्रसंख्यानज्ञान के बल से अनभोगरूप (हेयोपादेयशून्या) त्यागने योग्य और ग्रहण करने योग्य भाव से शून्य (वशीकारसंज्ञा वैराग्यम्) वशीकार नामवाला वैराग्य कहाता है॥ १५॥

भावार्थ

प्रतिपक्ष भावना द्वारा विषयों को अनित्य और दुःख का कारण विद्या द्वारा निश्चित् करना विषय दोष दर्शन का प्रकार है

और बुद्धि पुरुष का भिन्न २ साक्षात् ज्ञान "प्रसंख्यान" कहलाता है। पुरुष शब्द से जीवात्मा और परमात्मा दोनों का अर्थ है, बुद्धि से उसके कारण प्रकृति पर्यन्त जानना अभिप्रेत है॥१५॥

भो० वृत्ति

द्विविधो हि विषयो दृष्ट आनुश्रविकश्च। दृष्ट इहैवोपलभ्यमानः शब्दादिः। देवलोकादावानुश्रविकः। अनुश्रूयते गुरुमुखादित्यनुश्रवो वेदस्त-त्समधिगत आनुश्रविकः। तयोर्द्वयोरपि विषययोः परिणामविरसत्वदर्शना-द्विगतगर्द्धस्य या वशीकारसंज्ञा ममैते वश्या नाहमेतेषां वश्य इति योऽयं विमर्षस्तद्वैराग्यमुच्यते॥ १५॥

तस्यैव विशेषमाह—

भो० वृ० पदार्थ

(द्विविधो हि विषयो दृष्ट आनुश्रविकश्च) दो प्रकार के विषय हैं, देखे और सुने। (दृष्ट इहैवोपलभ्यमानः शब्दादिः) देखे हुए तो शब्दादि जो यहां संसार में ही प्राप्त हैं दृष्ट कहलाते हैं। (देवलोकादावानुश्रविकः) देवलोकादि आनुश्रविक है। (अनुश्रूयते गुरुमुखादित्यनुश्रवो वेदः) गुरु मुखादि से जो वेद सुनकर (तत्समधिगत आनुश्रविकः) उस को प्राप्त होना आनुश्रविक कहलाता है (तयोर्द्वयोरपि विषययोः परिणामविरसत्व-दर्शनात्) उन दोनों विषयों में अनित्यता और आनन्द रहितता देखने से (विगतगर्द्धस्य या) दूर हो गई है ग्रहण करने की इच्छा जिस की (वशीकारसंज्ञा) वशीकार नामवाला (ममैते वश्या नाहमेतेषां वश्य इति) मेरे यह वश में है, मैं इन के वश में नहीं इस प्रकार (योऽयं विमर्षस्तद्वैराग्यमुच्यते) जो यह विचार है उस को वैराग्य कहते हैं॥१५॥

(तस्यैव विशेषमाह) उस वैराग्य का ही विशेष स्वरूप आगे कहते हैं—

तत्परं पुरुषख्यातेर्गुणवैतृष्ण्यम् ॥ १६ ॥

सू०—पुरुष ज्ञान होनेपर गुणों में तृष्णा रहित होना रूप जो वैराग्य वह परम वैराग्य कहाता है, अर्थात् जब जीवात्मा को अपने स्वरूप और परमात्मा के स्वरूप का साक्षात् ज्ञान हो जाता है तब तीन गुणरूप जो बुद्धि उस में भी तृष्णा नहीं रहती अर्थात् उस को भी जीव त्याग देता है, उस ही अवस्था में गुणातीत कहलाता है और वही कैवल्य मुक्ति है ॥ १६ ॥

व्या० भाष्यम्

दृष्टानुश्रविकविषयदोषदर्शी विरक्तः पुरुषदर्शनाभ्यासात्तच्छुद्धिप्रविवेकाप्यायितबुद्धिर्गुणेभ्यो व्यक्ताव्यक्तधर्मकेभ्यो विरक्त इति । तद्द्वयं वैराग्यम् । तत्र यदुत्तरं तज्ज्ञानप्रसादमात्रम् । यस्योदये योगी प्रत्युदितख्यातिरेवं मन्यते—प्राप्तं प्रापणीयं, क्षीणाः क्षेतव्याः क्लेशाः, छिन्नः श्लिष्टपर्वा भवसंक्रमः । यस्याविच्छेदाज्जनित्वाम्रियते मृत्वा च जायत इति । ज्ञानस्यैव परा काष्ठा वैराग्यम् । एतस्यैव हि नान्तरीयकं कैवल्यमिति ॥ १६ ॥

अथोपायद्वयेन निरुद्धचित्तवृत्तेः कथमुच्यते संप्रज्ञातः समाधिरिति—

व्या० भा० पदार्थ

(पुरुषदर्शनाभ्यासात्) पुरुष दर्शन के अभ्यास से (दृष्टानुश्रविकविषयदोषदर्शी विरक्तः) देखे और सुने विषयों के दोष का देखनेवाला वैराग्य को प्राप्त होता है (तत् शुद्धि) वह शुद्धि कहलाती है (प्रविवेकाप्यायितबुद्धिः) परम विवेकज्ञान को प्राप्त हुई बुद्धि (गुणेभ्यः व्यक्ताव्यक्तधर्मकेभ्यः) स्थूल सूक्ष्म धर्मवाले

गुणों से जिस काल में होती है (विरक्त इति) इस को विरक्त कहते हैं। (तद्द्वयं वैराग्यम्) वह विरक्तता ही दूसरा वैराग्य कहलाती है। (तत्र यदुत्तरं तज्ज्ञानप्रसादमात्रम्) उन में जो पिछला है वह ज्ञान प्रसादमात्र अर्थात् बुद्धि सर्व सांसारिक विषयों की तृष्णा से रहित हो जाती है। (यस्योदये) जिस के उदय होने के पश्चात् (योगी प्रत्युदितख्यातिरेवं मन्यते) विवेक ज्ञान उदय होने पर योगी इस प्रकार मानता है—(प्राप्तं प्रापणीयं) जो प्राप्त करने योग्य था वह मैंने प्राप्त किया, (क्षीणाः क्षेतव्याः क्लेशाः) नाश करने योग्य क्लेश नष्ट होगये, (छिन्नः श्लिष्टपर्वा भवसंक्रमः) संसाररूपी चक्र जो जन्म मरण का प्रवाह उस की सन्धियां कटगई। (यस्याविच्छेदाज्जनित्वा म्रियते) जिस के न कटने से उत्पन्न होकर मरता है (मृत्वा च जायते) और मरकर उत्पन्न होता है (इति ज्ञानस्यैव परा काष्ठा वैराग्यम्) इस प्रकार के ज्ञान की परम सीमा को ही वैराग्य कहते हैं। (एतस्यैव हि नान्तरीयकं कैवल्यमिति) इस का ही अभ्यास लगातार होना अर्थात् बीच में न कटना, उस से कैवल्य होता है ॥ १६ ॥

(अथोपायद्वयेन निरुद्धचित्तवृत्ते) अब दोनों उपायों द्वारा चित्तवृत्ति निरुद्ध होने पर (कथमुच्यते संप्रज्ञातः समाधिरिति) संप्रज्ञात समाधि किस प्रकार की होती है, यह अगले सूत्र से वर्णन करते हैं—

भावार्थ

भाष्य में व्यक्त अर्थात् स्थूल धर्मवाले गुणों का अर्थ वर्तमान धर्म का है और अव्यक्त अर्थात् सूक्ष्म धर्म वाले गुणों का अर्थ भूत भविष्यत् रूप का है, क्योंकि बुद्धि भूत भविष्यत् वर्तमान तीनों काल के ज्ञान वाली होती है ॥ १६ ॥

भो० वृत्ति

तद्वैराग्यं परं प्रकृष्टं प्रथमं वैराग्यं विषयविषयं । द्वितीयं गुणविषयमुत्पन्नगुणपुरुषविवेकख्यातेरेव भवति, निरोधसमाधेरत्यन्तानुकूलत्वात् ॥ १६ ॥

एवं योगस्य स्वरूपमुक्त्वा संप्रज्ञातस्वरूपं भेदमाह—

भो० वृ० पदार्थ

(तद्वैराग्यं परं प्रकृष्टं) वह वैराग्य परला अति बलवान है (प्रथमं वैराग्यं विषयविषयं) पहला वैराग्य तो सांसारिक विषयों में वैराग्य कहाता है, (द्वितीयं गुणविषयम्) दूसरा वैराग्य तीन गुणों का त्याग कहाता है, (उत्पन्नगुणपुरुषविवेकख्यातेरेव भवति) वह तीन गुणरूप बुद्धि और पुरुष के साक्षात् रूप ज्ञान होने पर उत्पन्न होता है, (निरोधसमाधेरत्यन्तानुकूलत्वात्) निरोध समाधि का अत्यन्त सहायकरूप होने से कहा गया ॥ १६ ॥

(एवं योगस्य स्वरूपमुक्त्वा) इस प्रकार योग के स्वरूप को कह कर (संप्रज्ञातस्वरूपं भेदमाह) संप्रज्ञातयोग का स्वरूप और भेद आगे कहते हैं—

वितर्कविचारानन्दास्मितारूपानुगमात्संप्रज्ञातः ॥ १७ ॥

सू०—वितर्कानुगत, विचारानुगत, आनन्दानुगत, अस्मितानुगत भेद से संप्रज्ञातयोग चार प्रकार का है ॥ १७ ॥

व्या० भाष्यम्

वितर्कश्चित्तस्याऽऽलम्बने स्थूल आभोगः । सूक्ष्मो विचारः । आनन्दो ह्लादः । एकात्मिका संविदस्मिता । तत्र प्रथमश्चतुष्टयानुगतः समाधिः सवितर्कः । द्वितीयो वितर्कविकलः सविचारः ।

तृतीयो विचारविकलः सानन्दः। चतुर्थस्तद्विकलोऽस्मितामात्र इति। सर्वे एते सालम्बनाः समाधयः ॥ १७ ॥

अथासंप्रज्ञातः समाधिः किमुपायः किंस्वभाव इति—

व्या॰ भा॰ पदार्थ—

(वितर्कश्चित्तस्याऽऽलम्बने स्थूल आभोगः) तर्क रहित चित्त के आलम्बन में देह के स्थूल भूतों का ग्रहण अर्थात् विचार होता है। (सूक्ष्मो विचारः) देह के सूक्ष्म भूतों के विचार को विचार कहते हैं। (आनन्दो ह्लादः) देह में ध्यानावस्था में जो आनन्द प्रतीत होता है वह सुख है। (एकात्मिका संविदस्मिता) केवल जीवात्मा का अपने स्वरूप को जानना अस्मिता कहलाता है। (तत्र प्रथमश्चतुष्टयानुगतः समाधिः सवितर्कः) उन में प्रथम चार भेदों से युक्त सवितर्क समाधि कहलाती है। (द्वितीयो वितर्क-विकलः) दूसरी तर्क से रहित (सविचारः) सविचार कहलाती है। (तृतीयो विचारविकलः सानन्दः) तीसरी विचार से रहित सानन्द नामवाली। (चतुर्थस्तद्विकलोऽस्मितामात्र इति) चौथी आनन्द रहित (मैं हूँ) जिस में जीवात्मा को अपने स्वरूपमात्र का ज्ञान होता है। (सर्वे एते सालम्बनाः समाधयः) यह सब सांसारिक पदार्थों के आश्रयवाली समाधि हैं ॥ १७ ॥

(अथासंप्रज्ञातः समाधिः किमुपायः किंस्वभाव इति) अब असंप्रज्ञात समाधि के क्या उपाय हैं ? क्या स्वरूप है ? यह अगले सूत्र से कहते हैं—

भो॰ वृत्ति

समाधिरिति शेषः। सम्यक्संशयविपर्ययरहितत्वेन प्रज्ञायते प्रकर्षेण ज्ञायते भाव्यस्य स्वरूपं येन स संप्रज्ञातः, समाधिर्भावनाविशेषः। स वितर्कादिभेदाच्चतुर्विधः—सवितर्कः सविचारः सानन्दः सास्मितश्च। भावना भाव्यस्य विषयान्तरपरिहारेण चेतसि पुनः पुनर्निवेशनम्। भाव्यं

नहीं देखते (तेषां चेतसि स्वकारणे लयमुपागते) उन का चित्त अपने कारण में लय प्राप्त होने पर (प्रकृतिलया इत्युच्यन्ते) प्रकृतिलय कहे जाते हैं, (ये परं पुरुषं ज्ञात्वा) जो सब से महान् पुरुष परमात्मा को जान कर (भावनायां प्रवर्त्तन्ते) उस का ध्यान करते हैं (तेषामियं विवेकख्यातिर्ग्रहीतृसमापत्तिरित्युच्यते) उन को यह विवेकज्ञान होता है, ग्रहीतृसमापत्ति यह कही जाती है । विवेकज्ञान का अर्थ यह है कि परमात्मा, जीवात्मा, बुद्धि इन का भिन्न २ साक्षात् होना । (तत्र संप्रज्ञाते समाधौ चतस्रोऽवस्थाः) उस संप्रज्ञात समाधि में चारों अवस्था (शक्तिरूपतयाऽवतिष्ठन्ते) शक्तिरूप से रहती हैं । (तत्रैकैकस्यास्त्याग उत्तरोत्तरा इति चतुरवस्थाः) उन में एक २ के त्याग करते उत्तर २ वाली चार अवस्था हैं (अयं संप्रज्ञातः समाधिः) यह संप्रज्ञात समाधि है ॥ १७ ॥

(असंप्रज्ञातमाह) असंप्रज्ञात समाधि को अगले सूत्र से कहते हैं—

विरामप्रत्ययाभ्यासपूर्वः संस्कारशेषोऽन्यः ॥१८॥

सू०—सर्व वृत्ति निरोध के कारण परमवैराग्य के अभ्यास पूर्वक संस्कार शेष रूप से चित्त का ठहराव हो जिस में वह दूसरी असंप्रज्ञात समाधि कहलाती है ॥ १८ ॥

व्या० भाष्यम्

सर्ववृत्तिप्रत्यस्तमये संस्कारशेषो निरोधश्चित्तस्य समाधिरसंप्रज्ञातः । तस्य परं वैराग्यमुपायः । सालम्बनो ह्यभ्यासस्तत्साधनाय न कल्पत इति विरामप्रत्ययो निर्वस्तुक आलम्बनी क्रियते । स चार्थशून्यः । तदभ्यासपूर्वकं हि चित्तं निरालम्बनमभावप्राप्तमिव भवतीत्येष निर्बीजः समाधिरसंप्रज्ञातः ॥ १८ ॥

स खल्वयं द्विविधः—उपायप्रत्ययो भवप्रत्ययश्च । तत्रोपायप्रत्ययो योगिनां भवति—

व्या० भा० पदार्थ

(सर्ववृत्तिप्रत्यस्तमये संस्कारशेषो निरोधश्चित्तस्य) निरुद्ध चित्त की सब वृत्ति लय होने पर संस्कार शेष जिस में रह जाता है (समाधिरसंप्रज्ञातः) वह असंप्रज्ञात समाधि कहलाती है। (तस्य परं वैराग्यमुपायः) उस का परं वैराग्य उपाय है। (सालम्बनो ह्यभ्यासस्तत्साधनाय न कल्पतः) निश्चय आलम्बनवाला अभ्यास उस का साधन नहीं (इति विरामप्रत्ययो निर्वस्तुक आलम्बनी क्रियते) इस कारण सब वृत्तियों के निरोध पूर्वक जिस में किसी सांसारिक विषय का आलम्बन न हो उस प्रकार किया जाता है। (स चार्थशून्यः। तदभ्यासपूर्वकं हि चित्तं निरालम्बनमभावप्राप्तमिव भवति) और वह अर्थ से शून्य उस के अभ्यासानुकूल चित्त हुआ २ निराश्रय अभाव प्राप्त हुए के समान होता है (इत्येष निर्बीजः समाधिरसंप्रज्ञातः) इस प्रकार यह निर्बीज समाधि असंप्रज्ञात कहाती है ॥ १८ ॥

(स खल्वयं द्विविधः) निश्चय यह असंप्रज्ञात समाधि दो प्रकार की है—(उपायप्रत्ययो भवप्रत्ययश्च) एक उपायप्रत्यय वाली और दूसरी भवप्रत्यय वाली (तत्रोपायप्रत्ययो योगिनां भवति) उन में उपायप्रत्ययवाली योगियों की होती है—

भो० वृत्ति

विरम्यतेऽनेनेति विरामो वितर्कादिचिन्तात्यागः विरामश्चासौ प्रत्ययश्चेति विरामप्रत्ययस्तस्याभ्यासः पौनः पुन्येन चेतसि निवेशनम्। तत्र या काचित् वृत्तिरुल्लसति तस्या नेति नेतीतिनैरन्तर्येण पर्युदसनं तत्पूर्वः संप्रज्ञातसमाधेः संस्कारशेषोऽन्यस्तद्विलक्षणोऽसंप्रज्ञात इत्यर्थः। न तत्र किंचिद्वेद्यम् संप्रज्ञायते इति असंप्रज्ञातो निर्बीजः समाधिः। इह चतुर्विधश्चित्तस्य परिणामः। व्युत्थानं समाधिप्रारम्भो एकाग्रता निरोधश्च। तत्र क्षिप्त-

मूढे चित्तभूमी व्युत्थानं । विक्षिप्तभूमिः सत्त्वोद्रेकात् समाधिप्रारम्भः । निरुद्धैकाग्रते च पर्य्यन्तभूमी । प्रतिपरिणामञ्च संस्काराः । तत्र व्युत्थानजनिताः संस्काराः समाधिप्रारम्भजैः संस्कारैः प्रत्याहन्यन्ते । तत्राश्चैकाग्रताजैः, निरोधजनितैरेकाग्रताजाः संस्काराः स्वरूपञ्च हन्यन्ते । यथा सुवर्णसम्वलितं ध्मायमानं सीसकमात्मानं सुवर्णमलञ्च निर्दहति । एवमेकाग्रताजनितान् संस्कारान् निरोधजाः स्वात्मानञ्च निर्दहन्ति ॥ १८ ॥

तदेवं योगस्य स्वरूपं भेदं संक्षेपेणोपायञ्च अभिधाय विस्तररूपेणोपायं योगाभ्यासप्रदर्शनपूर्वकं वक्तुमुपक्रमते—

भो० वृ० पदार्थ

(विरम्यतेऽनेनेति विरामः) जिस के द्वारा वितर्कादि चिन्ता को त्याग दिया जाता है उसे विराम कहते हैं (वितर्कादिचिन्तात्यागः) यम नियमादि की विरोधी चिन्ताओं का त्याग (विरामश्चासौ प्रत्ययश्चेति विरामप्रत्ययः) निरोध हो वृत्तियों का जिस में वह विरामप्रत्यय कहलाता है (तस्याभ्यासः पौनः पुन्येन चेतसि निवेशनम्) बार २ चित्त के प्रवेश करने को उस का अभ्यास कहते हैं । (तत्र या काचित् वृत्तिरुल्लसति) जो कोई वृत्ति ऊपर उठती है (तस्या नेति नेतीतिनैरन्तर्येण पर्युदसनं) उसका यह आत्मस्वरूप नहीं है, यह आत्मस्वरूप नहीं है, इस प्रकार निरन्तर त्यागना (तत्पूर्वः संप्रज्ञातसमाधिः) इस प्रकार संप्रज्ञात समाधि में होता है (संस्कारशेषोऽन्यस्तद्विलक्षणोऽयमसंप्रज्ञात इत्यर्थः) संस्कार शेष जिस में रहता है, वह दूसरी समाधि उस से भिन्न लक्षणवाली यह असंप्रज्ञात है, यह अर्थ है । (न तत्र किञ्चिद्वेद्यम् संप्रज्ञायते) उस में सांसारिक कोई वस्तु भी नहीं जानी जाती (इति असंप्रज्ञातो निर्बीजः समाधिः) इस ही कारण असंप्रज्ञात समाधि को निर्बीज कहते हैं । (इह चतुर्विधश्चित्तस्य परिणामः) इस योग में चित्त का परिणाम चार प्रकार से होता है । (व्युत्थानं समाधिप्रारम्भो एकाग्रता निरोधश्च) पहला व्युत्थान दूसरा समाधि का प्रारम्भ करना तीसरा एकाग्रता चौथा

निरोध है। (तत्र क्षिप्तमूढे चित्तभूमी व्युत्थानं) उन क्षिप्त मूढ चित्त की भूमियों में व्युत्थान होता है। (विक्षिप्ताभूमिः) विक्षिप्त भूमि में (सत्त्वोद्रेकात् समाधिप्रारम्भः) सत्त्व की प्रबलता से समाधि का प्रारम्भ होता है। (निरुद्धैकाग्रते च पर्य्यन्तभूमी। प्रतिपरिणामश्च संस्काराः) एकाग्र निरोध पर्य्यन्त भूमियों में एक २ संस्कार का परिणाम होता चला जाता है। (तत्र व्युत्थानजनिताः संस्काराः समाधिप्रारम्भजैः संस्कारैः प्रत्याहन्यन्ते) उन में व्युत्थान से उत्पन्न हुए संस्कारों का समाधि से उत्पन्न हुए संस्कारों से नाश हो जाता है। (तज्जाश्चैकाग्रताजैः) उस समाधि प्रारम्भ से उत्पन्न हुए संस्कार एकाग्रता के संस्कारों से नष्ट हो जाते हैं, (निरोधजनितैरेकाग्रताजाः संस्काराः) और निरोध से उत्पन्न हुए संस्कारों से एकाग्रता से उत्पन्न हुए संस्कार नष्ट हो जाते हैं (स्वरूपञ्च हन्यन्ते) और अपने को भी नष्ट करते हैं, इस प्रकार अगले २ संस्कार पिछले २ के स्वरूप को नाश करते हैं। (यथा सुवर्णसम्वलितं ध्मायमानं सीसकमात्मानं सुवर्णमलञ्च निर्दहति) जैसे अग्नि में सुवर्ण को तपाते हुए उस में डाला हुआ सीसा सुवर्ण के मल को जला देता है और अपने को भी। (एवमेकाग्रताजनितान् संस्कारान्) इस प्रकार एकाग्रता से उत्पन्न हुए संस्कारों को (निरोधजाः स्वात्मानञ्च निर्दहन्ति) और अपने संस्कारों को भी निरोध से उत्पन्न हुए संस्कार जला देते हैं ॥ १८ ॥

(तदेवं योगस्य स्वरूपं भेदं संक्षेपेणोपायञ्च अभिधाय) इस प्रकार योग के स्वरूप और भेद और उपायों को संक्षेप से बतलाकर (विस्तररूपेणोपायं योगाभ्यासप्रदर्शनपूर्वकं वक्तुमुपक्रमते) विस्तार के सहित उपाय योग का अभ्यास साक्षात् रूप से कहने को आरम्भ करते हैं—

भवप्रत्ययो विदेहप्रकृतिलयानाम् ॥ १९ ॥

सू०—"भवः संसारः स एव प्रत्ययः कारणं यस्य स भवप्रत्ययः" = भव नाम संसार का वह है प्रत्यय अर्थात् कारण जिसका

वह भवप्रत्यय कहलाता है । संसार का ज्ञान जिसमें बना रहता है वह समाधि विदेहलय, प्रकृतिलयों की होती है ॥ १९ ॥

व्या० भाष्यम्

विदेहानां देवानां भवप्रत्ययः । ते हि स्वसंस्कारमात्रोपयोगेन चित्तेन कैवल्यपदमिवानुभवन्तः स्वसंस्कारविपाकं तथाजातीयकमतिवाहयन्ति । तथा प्रकृतिलयाः साधिकारे चेतसि प्रकृतिलीने कैवल्यपदमिवानुभवन्ति, यावन्न पुनरावर्ततेऽधिकारवशाच्चित्तमिति ॥ १९ ॥

व्या० भा० पदार्थ

(विदेहानां देवानां भवप्रत्ययः) विदेहलय योगियों की समाधि में सांसारिक विषयों का ज्ञान रहता है। (ते हि स्वसंस्कारमात्रोपयोगेन चित्तेन) वह अपने संस्कारमात्र के उपयोग वाले चित्त से (कैवल्यपदमिवानुभवन्तः) कैवल्यपद के समान अनुभव करते हैं (स्वसंस्कारविपाकं तथाजातीयकमतिवाहयन्ति) अपने संस्कार के समान फल भोगकर लोटाते हैं। (तथा प्रकृतिलयाः) उस ही समान प्रकृतिलय भी (साधिकारे चेतसि प्रकृतिलीने) अपने अधिकार के सहित चित्त के प्रकृति में लीन होनेपर (कैवल्यपदमिवानुभवन्ति) कैवल्यपद के समान अनुभव करते हैं, (यावन्न पुनरावर्ततेऽधिकारवशाच्चित्तमिति) जब तक चित्त के अधिकार वश से पुनर्जन्म नहीं पाते तब तक प्रकृतिलय रहते हैं॥ १९ ॥

भावार्थ

विदेहलय योगी जो प्रकृति, आत्मज्ञान, परमात्मज्ञान पर्य्यन्त नहीं जानते और ध्यान समय में उन के चित्त का सात्त्विक परिणाम होकर एकाग्रता के कारण चित्त में सुख सा प्रतीत होता है

और उस सुख समय अहङ्कार रहित हो जाने से अपने देह की योगी को बेखबरी हो जाती है, इसलिये उस का नाम विदेहलय है, और इस संस्कार को कैवल्यपद मानकर सर्व वासना जो योगी त्याग देता है, वह इस संस्कार के परिपक्व होनेपर अन्धकार में उस का चित्त लीन हो जाता है और कुछ काल के लिये जन्म मरण रहित हो जाता है। इस ही प्रकार प्रकृतिलय पुरुष का चित्त अपने आत्मस्वरूप को साक्षात् करते समय प्रकृति में लीन होना सीख जाता है और परमात्मज्ञान से रहित होने के कारण मोक्ष नहीं होता और अपने इस संस्कार जनित ज्ञान को कैवल्यपद मान लेता है, अतः कुछ काल तक वह भी प्रकृतिलय हुआ पड़ा रहता है, पुनः संसार में जन्म होता है क्योंकि उसको भी आत्मा का ही ज्ञान हुआ जो कि संसार में है, परमात्मा का नहीं हुआ जिससे मोक्ष होता है।

जैसा की मुण्डकोपनिषद् की श्रुति वर्णन करती है—

भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन्दृष्टे परावरे॥ २। २। ८॥

अर्थ—परमात्मस्वरूप के साक्षात् होनेपर हृदय की अविद्यारूपी गांठ खुल जाती है और सब संशय दूर हो जाते हैं और कर्म भी सब नष्ट हो जाते हैं अर्थात् इस का मोक्ष हो जाता है। यह फल विदेहलय प्रकृतिलयों को परमात्मज्ञान न होने के कारण नहीं प्राप्त होता, इसीलिये उनका मोक्ष भी नहीं होता॥ ९॥

भो० वृत्ति

विदेहाः प्रकृतिलयाश्च वितर्कादिभूमिकासूत्रे व्याख्याताः, तेषां समाधिर्भवप्रत्ययः, भवः संसारः स एव प्रत्ययः कारणं यस्य स भवप्रत्ययः। अयमर्थः—अधिमात्रान्तर्भूता एव ते संसारे तथाविधसमाधिभाजो भवन्ति।

तेषां परतत्त्वादर्शनाद्योगाभासोऽयम् । अतः परतत्त्वज्ञाने तद्भावनायाञ्च मुक्तिकामेन महान्यत्नो विधेय इत्येतदर्थमुपदिष्टम् ॥ १९ ॥

तदन्येषान्तु—

भो० वृ० पदार्थ

(विदेहाः प्रकृतिलयाश्च) विदेह और प्रकृतिलय (वितर्कादिभूमिकासूत्रे व्याख्याताः) पूर्व वितर्कादि भूमिका सूत्र में कथन किया गया, (तेषां समाधिर्भवप्रत्ययः) उन की समाधि भवप्रत्यय वाली, (भवः संसारः स एव प्रत्ययः कारणं यस्य स भवप्रत्ययः) भव नाम संसार का वह है प्रत्यय अर्थात् कारण जिस का वह भवप्रत्यय कहलाता है । (अयमर्थः) यह अर्थ है—(अधिमात्रान्तर्भूता एव ते संसारे तथाविधसमाधिभाजो भवन्ति) सांसारिक ऐश्वर्य के अन्तरगत ही वह लोग हैं, उस ऐश्वर्य के अनुकूल ही उन की समाधि होती है । (तेषां परतत्त्वादर्शनाद्योगाभासोऽयम्) उन का यह योग परमतत्त्व परमात्मा के दर्शन न होने से योगाभास है योग नहीं । (अतः परतत्त्वज्ञाने तद्भावनायाञ्च मुक्तिकामेन महान्यत्नो विधेय) इस कारण ब्रह्मज्ञान होने पर ही मोक्ष होता है, इसलिये मुक्ति की इच्छा से उस के जानने के लिये महान् यत्न करना चाहिये (इत्येतदर्थमुपदिष्टम्) इस कारण इस अर्थ का उपदेश किया गया है ॥ १९ ॥

(तदन्येषान्तु) वह योग योगियों का तो अगले सूत्र अनुसार होता है—

श्रद्धावीर्यस्मृतिसमाधिप्रज्ञापूर्वक इतरेषाम् ॥ २० ॥

सू०—"श्रद्धादयः पूर्वे उपाया यस्य स श्रद्धादिपूर्वकः" श्रद्धा उत्साह तत्त्वज्ञान की स्मृति और समाधि उस समाधि से उत्पन्न हुआ ज्ञान इतने उपायों वाले दूसरे ज्ञानी योगी होते हैं ॥२०॥

व्या० भाष्यम्

उपायप्रत्ययो योगिनां भवति। श्रद्धा चेतसः संप्रसादः। सा हि जननीव कल्याणी योगिनं पाति। तस्य हि श्रद्दधानस्य विवेकार्थिनो वीर्यमुपजायते। समुपजातवीर्यस्य स्मृतिरुपतिष्ठते। स्मृत्युपस्थाने च चित्तमनाकुलं समाधीयते। समाहितचित्तस्य प्रज्ञाविवेक उपावर्तते। येन यथार्थं वस्तु जानाति। तदभ्यासत्तद्विषयाच्च वैराग्यादसंप्रज्ञातः समाधिर्भवति॥ २०॥

ते खलु नव योगिनो मृदुमध्याधिमात्रोपाया भवन्ति। तद्यथा—मृदूपायो मध्योपायोऽधिमात्रोपाय इति। तत्र मृदूपायस्त्रिविधः—मृदुसंवेगो मध्यसंवेगस्तीव्रसंवेग इति। तथा मध्योपायस्तथाऽधिमात्रोपाय इति। तत्राऽधिमात्रोपायानां—

व्या० भा० पदार्थ

(उपायप्रत्ययो योगिनां भवति) उपायप्रत्यय नामक योग ज्ञानी योगियों को होता है। (श्रद्धा चेतसः संप्रसादः) श्रद्धा चित्त को प्रसन्न करने वाली है। (सा हि जननीव कल्याणी योगिनं पाति) वह श्रद्धा ही माता के समान कल्याण करनेवाली योगी की रक्षा करती है। (तस्य हि श्रद्दधानस्य विवेकार्थिनो वीर्यमुपजायते) उस विवेकार्थी श्रद्धालु को उत्साह उत्पन्न होता है। (समुपजातवीर्यस्य स्मृतिरुपतिष्ठते) उस उत्साही को स्मृति उत्पन्न होती है। (स्मृत्युपस्थाने च) और स्मृति के रहनेपर (चित्तमनाकुलं समाधीयते) चित्त दुःख रहित हुआ २ एकाग्रता के साथ ध्यान करता है। (समाहितचित्तस्य प्रज्ञाविवेक उपावर्तते) उस समाधिस्थ चित्त में विवेकवाली बुद्धि उत्पन्न होती है। (येन यथार्थं वस्तु जानाति) जिससे यथार्थ रूप से वस्तु को जानता है। (तदभ्यासात्तद्विषयाच्च वैराग्यादसंप्रज्ञातः समाधिर्भवति) उस विवेकज्ञान

के अभ्यास और उसका बार २ अनुभव करने से और वैराग्य से असंप्रज्ञात समाधि होती है ॥ २० ॥

(ते खलु नव योगिनो मृदुमध्याधिमात्रोपाया भवन्ति) निश्चय वह नवीन योगी को मृदु, मध्य, अधिमात्रोपाय वाली होती हैं। (तद्यथा) उस विषय में जैसे—(मृदूपायो मध्योपायोऽधिमात्रोपाय इति) १—मन्द उपायों वाली २–मध्य उपायों वाली और ३–तीव्र उपायों वाली यह तीन भेद होते हैं। (तत्र) फिर उस में (मृदूपायस्त्रिविधः) मन्द उपाय के तीन भेद होते हैं—(मृदुसंवेगो मध्यसंवेगस्तीव्रसंवेग इति) मन्द वेग वाली, मध्य वेग वाली और तीव्र वेग वाली। (तथा मध्योपायस्तथाऽधिमात्रोपाय इति) इसी प्रकार मध्योपाय वाली, तीव्रोपाय वाली भी तीन २ भेदों से युक्त होती हैं। (तत्राऽधिमात्रोपायानां) उन में तीव्र उपाय वाला है वेग जिन का उन को अगले सूत्र से कहते हैं—

भो० वृत्ति

विदेहप्रकृतिलयव्यतिरिक्तानां योगिनां श्रद्धादिपूर्वकः श्रद्धादयः पूर्वे उपाया यस्य स श्रद्धादिपूर्वकः। ते च श्रद्धादयः क्रमादुपायोपेयभावेन प्रवर्त्तमानाः संप्रज्ञातसमाधेरुपायतां प्रतिपद्यन्ते। तत्र श्रद्धा योगविषये चेतसः प्रसादः। वीर्य्यमुत्साहः। स्मृतिरनुभूतासंप्रमोषः। समाधिरेकाग्रता। प्रज्ञा प्रज्ञातव्यविवेकः। तत्रश्रद्धावतो वीर्य्यं जायते योगविषये उत्साहवान् भवति। सोत्साहस्य च पाश्चात्यानुभूतिषु भूमिषु स्मृतिरुत्पद्यते तत्स्मरणाच्च चेतः समाधीयते। समाहितचित्तश्च भाव्यं सम्यग्विवेकेन जानाति। त एते संप्रज्ञातस्य समाधेरुपायाः। तस्याभ्यासात् पराच्च वैराग्यात् भवत्यसंप्रज्ञातः ॥ २० ॥

उक्तोपायवतां योगिनां उपायभेदाद्भेदानाह—

भो० वृ० पदार्थ

(विदेहप्रकृतिलयव्यतिरिक्तानां योगिनां श्रद्धादिपूर्वकः) विदेह प्रकृ-

तिल्यों से भिन्न योगियों का श्रद्धादिपूर्वक योग होता है (श्रद्धादयः पूर्वे उपाया यस्य स श्रद्धादि पूर्वकः) श्रद्धादि हैं प्रथम में उपाय जिसके वह श्रद्धादिपूर्वक कहलाता है। (ते च श्रद्धादयः क्रमादुपायोपेयभावेन) वह श्रद्धादि क्रम से उपाय उपेय भाव से (प्रवर्त्तमानाः) प्रवर्त्त हुए (संप्रज्ञातसमाधेरुपायतां प्रतिपद्यन्ते) संप्रज्ञात समाधि के उपाय पन को प्राप्त होते हैं। (तत्र श्रद्धा योगविषये चेतसः प्रसादः) उन में श्रद्धा योग के विषय में चित्त को प्रसन्न करने वाली है। (वीर्यमुत्साहः) वीर्य उत्साह को कहते हैं (स्मृतिरनुभूतासंप्रमोषः) स्मृति अनुभव किये हुए का न भूलना कहलाती है। (समाधिरेकाग्रता) समाधि का अर्थ एकाग्रता का है। (प्रज्ञा प्रज्ञातव्यविवेकः) प्रज्ञा का अर्थ जानने योग्य विवेक का है। (तत्र श्रद्धावतो वीर्य्यं जायते) उन में श्रद्धा वाले को उत्साह उत्पन्न होता है। (योगविषये उत्सहवान् भवति) योग विषय में उत्साही होता है (सोत्साहस्य च) और उस उत्साह वाले को (पाश्चात्यानुभूतिषु भूमिषु स्मृतिरुत्पद्यते) पिछले जन्म में अनुभव की हुई भूमियों में स्मृति उत्पन्न होती है (तत्स्मरणाच्च चेतः समाधीयते) उस के स्मरण होने से चित्त एकाग्र हो जाता है। (समाहितचित्तश्च भाव्यं सम्यग्विवेकेन जानाति) और वह एकाग्र चित्त जानने योग्य ध्येय को यथार्थ विचार के साथ जानता है। (त एते संप्रज्ञातस्य समाधेरुपायाः) वह यह सब संप्रज्ञात योग के उपाय हैं। (तस्याभ्यासात् पराच्च वैराग्यात् भवत्यसंप्रज्ञातः) उन के अभ्यास और परं वैराग्य से असंप्रज्ञात समाधि होती है ॥ २० ॥

(उक्तोपायवतां योगिनां) उपाय वाले योगियों का वर्णन किया गया (उपायभेदाद्भेदानाह) उपाय के बहुत भेद होने से अगले सूत्रो में भेद कथन करते हैं—

तीव्रसंवेगानामासन्नः ॥ २१ ॥

सू०—तीव्र है उपायों का वेग जिनके उन को समाधि बहुत समीप सिद्ध होती है अर्थात् शीघ्र हो जाती है ॥ २१ ॥

व्या० भाष्यम्

समाधिलाभः समाधिफलं च भवतीति ॥ २१ ॥

व्या० भा० पदार्थ

(समाधिलाभः समाधिफलं च भवतीति) समाधि का लाभ और उस का फल कैवल्य मुक्ति अति समीप होती है ॥ २१ ॥

भो० वृत्ति

समाधिलाभः इति शेषः । संवेगः क्रियाहेतुर्दृढतरः संस्कारः । स तीव्रो येषामधिमात्रोपायानां तेषामासन्नः समाधिलाभः समाधिफलञ्चाऽऽसन्नं भवति शीघ्रमेव सम्पद्यत इत्यर्थः ॥ २१ ॥

के ते तीव्रसंवेगा ? इत्यत आह—

भो० वृ० पदार्थ

(समाधिलाभः इति शेषः) समाधि का लाभ होता है यह शब्द सूत्र में शेष है सो सूत्र के अन्त में लगाना चाहिये । (संवेगः क्रियाहेतुर्दृढतरः संस्कारः) क्रिया के करने में जो कारणरूप दृढ़तर संस्कार है वह संवेग कहलाता है । (स तीव्रो येषामधिमात्रोपायानां) वह संस्कार तीव्र है जिन अधिमात्र उपाय वालों का (तेषामासन्नः समाधिलाभः) उन को समीप ही समाधि का लाभ होता है (समाधिफलञ्चाऽऽसन्नं भवति) और समाधि का फल भी समीप होता है (शीघ्रमेव सम्पद्यत इत्यर्थः) जल्दी ही प्राप्त होता है, यह अर्थ है ॥ २१ ॥

(के ते तीव्रसंवेगा) कौन वह तीव्रसंवेग हैं ? (इत्यत आह) यह अगले सूत्र में कहते हैं—

मृदुमध्याधिमात्रत्वात्ततोऽपि विशेषः ॥ २२ ॥

सू०—मन्द, मध्य, तीव्र रूप होने से इन से भी विशेष हैं

उपाय जिन का उन को समाधि का लाभ और कैवल्यमुक्ति अति-शीघ्र होती है ॥ २२ ॥

व्या० भाष्यम्

मृदुतीव्रो मध्यतीव्रोऽधिमात्रतीव्र इति । ततोऽपि विशेषः । तद्विशेषादपि मृदुतीव्रसंवेगस्याऽऽसन्नः, ततो मध्यतीव्रसंवेगस्याऽऽसन्नतरः, तस्मादधिमात्रतीव्रसंवेगस्याधिमात्रोपायस्याप्यासन्नतमः समाधिलाभः समाधिफलं चेति ॥ २२ ॥

किमेतस्मादेवाऽऽसन्नतमः समाधिर्भवति । अथास्य लाभे भवत्यन्योऽपि कश्चिदुपायो न वेति—

व्या० भा० पदार्थ

(मृदुतीव्रो मध्यतीव्रोऽधिमात्रतीव्र इति) मन्दतीव्र, मध्य-तीव्र और तीव्रतीव्र । (ततोऽपि विशेषः) इन तीनों से विशेष । (तद्विशेषादपि मृदुतीव्रसंवेगस्याऽऽसन्नः) उस से विशेष होने के कारण मृदुतीव्रसंवेग को समीप समाधि का लाभ होता है और उसका फल प्राप्त होता है, (ततो मध्यतीव्रसंवेगस्याऽऽसन्नतरः) उस से मध्यतीव्रसंवेग वाले को अधिक समीप, (तस्मादधिमात्र-तीव्रसंवेगस्याधिमात्रोपायस्याप्यासन्नतमः) उस से भी अधिमात्र तीव्रसंवेग और तीव्रोपायवाले को अतिसमीप (समाधिलाभः समाधिफलं चेति) असम्प्रज्ञात समाधि का लाभ और उस का फल होता है ॥ २२ ॥

(किमेतस्मादेवाऽऽसन्नतमः समाधिर्भवति) क्या इन्हीं से अतिसमीप समाधि होती है ? (अथास्यलाभे भवति) अथवा इस के लाभ होने पर होती है (अन्योऽपि कश्चिदुपायो न वेति) इस के अतिरिक्त दूसरा भी कोई उपाय है वा नहीं—

भो० वृत्ति

तेभ्य उपायेभ्यो मृद्वादिभेदभिन्नेभ्य उपायवतां विशेषो भवति । मृदु-

मध्योऽधिमात्र इत्युपायभेदाः । ते प्रत्येकं मृदुसंवेग–मध्यसंवेग–तीव्रसंवेगभेदात् त्रिधा । तद्भेदेन च नवयोगिनो भवन्ति । मृदुपायो–मृदूसंवेगो मध्यसंवेगस्तीव्रसंवेगश्च । मध्योपायो–मृदुसंवेगो मध्यसंवेगस्तीव्रसंवेगश्च । अधिमात्रोपायो–मृदुसंवेगो मध्यसंवेगस्तीव्रसंवेगश्च । अधिमात्रोपाये तीव्रसवेगे च महान् यत्नः कर्त्तव्य इति भेदोपदेशः ॥ २२ ॥

इदानीमेतदुपायविलक्षणं सुगममुपायान्तरं दर्शयितुमाह—

भा० वृ० पदार्थ

(तेभ्य उपायेभ्यो मृद्वादिभेदभिन्नेभ्यः) उन मृदु आदि भिन्न भेदों वाले उपायों से (उपायवतां विशेषो भवति) विशेष उपाय वाला होता है । (मृदुर्मध्योऽधिमात्र इत्युपायभेदाः) मन्द, मध्य, तीव्र, यह तीन उपाय के भेद हैं । (ते प्रत्येकं मृदुसंवेग–मध्यसंवेग–तीव्रसंवेगभेदात् त्रिधा) उन में से प्रत्येक मन्दसंवेग–मध्यसंवेग–तीव्रसंवेग भेद से तीन २ भेद वाले हैं । (तद्भेदेन च नवयोगिनो भवन्ति) उन भेदों के सहित नवीन योगी होते हैं । (मृदुपायो–मृदूसंवेगो मध्यसंवेगस्तीव्रसंवेगश्च) मन्द उपायों वाले के मन्दवेग, मध्यवेग, तीव्रवेग यह तीन भेद होते हैं । (मध्योपायो–मृदुसंवेगो मध्यसंवेगस्तीव्रसंवेगश्च) मध्यम उपाय वालों के भी मन्दवेग, मध्यवेग, और तीव्रवेग यही तीन भेद होते हैं । (अधिमात्रोपायो मृदुसंवेगो मध्यसंवेगस्तीव्रसंवेगश्च) तीव्र उपाय वाले के भी मन्दवेग, मध्यवेग, तीव्रवेग यह तीन भेद होते हैं । (अधिमात्रोपाये तीव्रसंवेगे च महान् यत्नः कर्त्तव्यः) तीव्रोपाय तीव्रसंवेग वाले को महान् ही यत्न करने योग्य है (इति भेदोपदेशः) इस कारण भेदों का उपदेश किया है ॥ २२ ॥

(इदानीमेतदुपायविलक्षणं सुगममुपायान्तरं दर्शयितुमाह) अब इन उपायों से विलक्षण दूसरा सुगम उपाय दिखलाने को अगले सूत्र से कहते हैं—

ईश्वरप्रणिधानाद्वा ॥ २३ ॥

सू०—अथवा ईश्वरप्रणिधान से अतिशीघ्र समाधि और उस का फल कैवल्य मुक्ति प्राप्त होती है ॥ २३ ॥

व्या० भाष्यम्

प्रणिधानाद्भक्तिविशेषादावर्जित ईश्वरस्तमनुगृह्णात्यभिध्यानमात्रेण। तदभिध्यानमात्रादपि योगिन आसन्नतरः समाधिलाभः समाधिफलं च भवतीति ॥ २३ ॥

अथ प्रधानपुरुषव्यतिरिक्तः कोऽयमीश्वरो नामेति—

व्या० भा० पदार्थ

(प्रणिधानाद्भक्तिविशेषादावर्जित) भक्ति विशेष से सन्मुख हुआ योगी (ईश्वरस्तमनुगृह्णात्यभिध्यानमात्रेण) ईश्वर उसपर अनुग्रह करता है, परिपक्क ध्यान होने से। (तदभिध्यानमत्रादपि) और उस के ध्यानमात्र से (योगिन आसन्नतरः) योगी को अतिशीघ्र ही (समाधिलाभः समाधिफलं च भवतीति) समाधि का लाभ और उस का फल प्राप्त होता है ॥ २३ ॥

(अथ प्रधानपुरुषव्यतिरिक्तः कोऽयमीश्वरो नाम) अब यह शङ्का होती है कि प्रधान अर्थात् प्रकृति और जीव से भिन्न कौन यह ईश्वर नामवाला है ? (इति) यह अगले सूत्र से कहते हैं—

भो० वृत्ति

ईश्वरो वक्ष्यमाणलक्षणः, तत्र प्रणिधानं भक्तिविशेषो विशिष्टमुपासनं सर्वक्रियाणां तत्रार्पणं विषयसुखादिकं फलमनिच्छन् सर्वाः क्रियास्तस्मिन्परमगुरावर्पयति, तत् प्रणिधानं समाधेस्तत्फललाभस्य च प्रकृष्ट उपायः ॥ २३ ॥

ईश्वरस्य प्रणिधानात् समाधिलाभ इत्युक्तं, तत्रेश्वरस्य स्वरूपं प्रमाणं प्रभावं वाचकं उपासनाक्रमं तत्फलञ्च क्रमेण वक्तुमाह—

भो० वृ० पदार्थ

(ईश्वरो वक्ष्यमाणलक्षणः) ईश्वर वह है जिस का अगले सूत्र में लक्षण कहा जायगा, (तत्र प्रणिधानं भक्तिविशेषः) उस में प्रणिधान अर्थात् भक्तिविशेष करना (विशिष्टमुपासनं) अर्थात् विशेष रूप से उपासना करना (सर्वक्रियाणां तत्रार्पणं) सर्व क्रियाओं को उस के अर्पण करना, (विषयसुखादिकं) और विषय सुखादि का भी ईश्वरार्पण छोड़ देना (फलमनिच्छन्) फल की इच्छा न करना (सर्वाः क्रियास्तस्मिन्परमगुरावर्पयति) सर्व क्रियाओं को उस परम गुरु के अर्पण करना (तत् प्रणिधानं) वह प्रणिधान का स्वरूप है (समाधेस्तत्फललाभस्य च प्रकृष्ट उपायः) समाधि और उस के फल लाभ के लिये सर्व श्रेष्ठ उपाय यह है ॥ २३ ॥

(ईश्वरस्य प्रणिधानात् समाधिलाभ इत्युक्तं) ईश्वर के प्रणिधान से समाधि का लाभ होता है यह कहा गया, (अथेश्वरस्य स्वरूपं प्रमाणं प्रभावं वाचकं उपासनाक्रमं तत्फलञ्च क्रमेण वक्तुमाह) उस विषय में ईश्वर का स्वरूप और उस में प्रमाण और उस का जगत् और जीवोंपर प्रभाव और उस का वाचक नाम उपासना का क्रम और उस का फल क्रम से महर्षि ने अगले सूत्रों में वर्णन किया है।

क्लेशकर्मविपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुषविशेष ईश्वरः ॥ २४ ॥

सू०—अविद्यादि क्लेश और पुण्यपापरूप कर्म और उन कर्मों के फल और वासनाओं से रहित पुरुषविशेष अर्थात् अन्य पुरुषों जीवों से विशेष ईश्वर है ॥ २४ ॥

व्या० भाष्यम्

अविद्यादयः क्लेशाः । कुशलाकुशलानि कर्माणि । तत्फलं विपाकः । तदनुगुणा वासना आशयाः । ते च मनसि वर्तमानाः पुरुषे

व्यपदिश्यन्ते, स हि तत्फलस्य भोक्तेति। यथा जयः पराजयो वा योद्धृषु वर्तमानः स्वामिनि व्यपदिश्यते। यो ह्यनेन भोगेनापरामृष्टः स पुरुषविशेष ईश्वरः।

कैवल्यं प्राप्तास्तर्हि सन्ति च बहवः केवलिनः। ते हि त्रीणि बन्धनानि च्छित्त्वा कैवल्यं प्राप्ता ईश्वरस्य च तत्संबन्धो न भूतो न भावी। यथा मुक्तस्य पूर्वा बन्धकोटिः प्रज्ञायते नैवमीश्वरस्य। यथा वा प्रकृतिलीनस्योत्तरा बन्धकोटिः संभाव्यते नैवमीश्वरस्य। स तु सदैव मुक्तः सदैवेश्वर इति।

योऽसौ प्रकृष्टसत्त्वोपादानादीश्वरस्य शाश्वतिक उत्कर्षः स किं सनिमित्त आहोस्विन्निर्निमित्त इति। तस्य शास्त्रं निमित्तम्।

शास्त्रं पुनः किंनिमित्तं, प्रकृष्टसत्त्वनिमित्तम्।

एतयो शास्त्रोत्कर्षयोरीश्वरसत्त्वे वर्तमानयोरनादिः संबन्धः। एतस्मादेतद्भवति सदैवेश्वरः सदैव मुक्त इति। तच्च तस्यैश्वर्यं साम्यातिशयविनिर्मुक्तम्। न तावदैश्वर्यान्तरेण तदतिशय्यते। यदेवातिशयि स्यात्तदेव तत्स्यात्।

तस्माद्यत्र काष्ठाप्राप्तिरैश्वर्यस्य स ईश्वर इति। न च तत्समानमैश्वर्यमस्ति। कस्मात्, द्वयोस्तुल्ययोरेकस्मिन्युगपत्कामितेऽर्थे नवमिदमस्तु पुराणमिदमस्त्वित्येकस्य सिद्धावितरस्य प्राकाम्यविघातादूनत्वं प्रसक्तम्। द्वयोश्च तुल्ययोर्युगपत्कामितार्थप्राप्तिर्नास्ति। अर्थस्य विरुद्धत्वात्। तस्माद्यस्य साम्यातिशयैर्विनिर्मुक्तमैश्वर्यं स एवेश्वरः। स च पुरुषविशेष इति॥ २४॥

किं च—

व्या० भा० पदार्थ

(अविद्यादयः क्लेशाः) अविद्यादि क्लेश हैं। (कुशलाकुशलानि कर्माणि) पुण्य पापरूप कर्म हैं। (तत्फलं विपाकः) उन के फल को विपाक कहते हैं। (तदनुगुणा वासना आशयाः) उन कर्मों

के गुण अनुसार वासना आशया कहलाती है। (ते च मनसि वर्तमाना) वह कर्म वासनादि मन में वर्तमान हुए (पुरुषेव्यपदिश्यन्ते) पुरुष में कही जाती हैं, (स हि तत्फलस्य भोक्तेति) क्योंकि वही उन के फल का भोक्ता है। (यथा जयः पराजयो वा योद्धेषु वर्तमानः स्वामिनि व्यपदिश्यते) जैसे जय पराजय योद्धाओं में वर्तती हुई उन के स्वामी राजा में कही जाती है। (यो ह्यनेन भोगेनापरामृष्टः स पुरुषविशेष ईश्वरः) जो इन भोगों से रहित है वह पुरुषविशेष ईश्वर है।

(कैवल्यं प्राप्तस्तर्हि सन्ति च बहवः केवलिन) बहुत से जो मुक्त पुरुष हैं वह कैवल्य को तभी प्राप्त होते हैं जब कि। (ते हि त्रीणि बन्धनानि च्छित्त्वा कैवल्यं प्राप्ताः) वह तीन बन्धनों अर्थात् आध्यात्मिक, आधिभौतिक, आधिदैविक दुःखों वा प्रारब्ध, सञ्चित, क्रियमाण, कर्म वासनाओं को काटकर कैवल्य को प्राप्त हुए (ईश्वरस्य च तत्संबन्धो न भूतो न भावी) ईश्वर का तो तीन बन्धनों से सम्बन्ध न कभी पहले हुआ था, न आगे कभी होगा, न अब है। (यथा मुक्तस्य पूर्वा बन्धकोटिः प्रज्ञायते नैवमीश्वरस्य) जैसे मुक्त पुरुष प्रथम बन्धनयुक्त होता है, तदनन्तर मुक्ति होती है, ईश्वर को इस प्रकार बन्धन मुक्ति नहीं होती। (यथा वा प्रकृतिलीनस्योत्तरा बन्धकोटिः संभाव्यते नैवमीश्वरस्य) जैसे प्रकृतिलीन पुरुष को उत्तर काल में पुनः बन्धन हो जाता है ईश्वर को तो इस प्रकार भी बन्धन नहीं होता। (स तु सदैव मुक्तः सदैवेश्वर इति) वह तो सदैव मुक्त और सदैव ऐश्वर्यवान् है।

(योऽसौ प्रकृष्टसत्त्वोपादानादीश्वरस्य शाश्वतिक उत्कर्ष) जो वह अतिश्रेष्ठ ज्ञान क्रिया के कारण ईश्वर की निरन्तर अति उच्चता है (स किं सनिमित्त आहोस्विन्निर्निमित्तः) क्या वह निमित्त सहित है वा निर्निमित्त है? (इति) यह प्रश्न होता है। (तस्य शास्त्रं निमित्तम्) उसका वेद निमित्त कारण है, अर्थात् वेद से

ईश्वर जाना गया है। पुनः प्रश्न उत्पन्न होता है, (शास्त्रं पुनः किं-निमित्तम्) वेद का निमित्त कारण कौन है? (प्रकृष्टसत्त्व-निमित्तम्) सर्वश्रेष्ठ ज्ञानस्वरूप ईश्वर निमित्त है।

(एतयोः शास्त्रोत्कर्षयोरीश्वरसत्त्वे वर्तमानयोरनादिः सम्बन्धः) यह वेद और सर्वोपरी ईश्वर में वर्तमान अनादि सम्बन्ध है। (एतस्मादेतद्भवति) इस कारण यह सिद्ध होता है कि (सदैवेश्वरः सदैव मुक्त इति) सदैव ऐश्वर्यवान् और सदैव मुक्त है। (तच्च तस्यैश्वर्यं साम्यातिशयविनिर्मुक्तम्) वह ईश्वर और उसका ऐश्वर्य समानता और अधिकता से रहित है। (न तावत्) अर्थात् न कोई उसके समान है और न कोई उस से बड़ा है (ऐश्वर्यान्तरेण तदतिशय्यते) वह दूसरे ऐश्वर्य से अधिक ऐश्वर्यवाला है। (यदेवातिशयि स्यात्तदेव तत्स्यात्) यदि कोई आग्रहवशात् कहे कि उस से भी अधिक ऐश्वर्यवान् है, उत्तर—वही वह ईश्वर है जो सब से अधिक ऐश्वर्यवान् है। (तस्माद्यत्र काष्ठाप्राप्तिरैश्वर्यस्य स ईश्वर इति) इस कारण जिस में असीम ऐश्वर्य है वही ईश्वर है। (न च तत्समानमैश्वयमस्ति) और उसके समान कोई ऐश्वर्य नहीं है। (कस्मात्) क्योंकि, (द्वयोस्तुल्ययोरेकस्मिन्युगपत्कामितेऽर्थे) दो समानों में एक ही काल में एक अर्थ में कामना करते हुए (नवमिदमस्तु) यह नया है (पुराणमिदमस्तु) यह पुराना है (इत्येकस्य सिद्धावितरस्य प्राकाम्यविघातादूनत्वं प्रसक्तम्) इस प्रकार एक की सिद्धि होनेपर दूसरे की कामनाओं का घात होने से उसमें न्यूनता सिद्ध होती है। (द्वयोश्च तुल्ययोर्युगपत्कामितार्थप्राप्तिर्नास्ति) सर्वथा दो बराबर होनेपर एक साथ कामना करते हुए अर्थ सिद्धि भी नहीं होगी। (अर्थस्य विरुद्धत्वात्) प्रयोजन के विरुद्ध होने से। (तस्माद्यस्य साम्यातिशयैर्विनिर्मुक्तमैश्वर्यं स एवेश्वरः) इस कारण जिस का समानता और अधिकता से रहित ऐश्वर्य है वह ही ईश्वर है। (स च पुरुषविशेष इति) और वही पुरुषविशेष है, यह अर्थ है॥२४॥

(किं च) और क्या उस में विशेषता है, यह अगले सूत्र में वर्णन करते हैं—

भो० वृत्ति

क्लिश्नन्तीति क्लेशा अविद्यादयो वक्ष्यमाणाः । विहितप्रतिषिद्धव्यामिश्ररूपाणि कर्माणि । विपच्यन्त इति विपाकाः कर्मफलानि जात्यायुर्भोगाः । आ फलविपाकाच्चित्तभूमौ शेरत इत्याशया वासनाख्याः संस्कारास्तैरपरामृष्टस्त्रिष्वपि कालेषु न संस्पृष्टः । पुरुषविशेषः—अन्येभ्यः पुरुषेभ्यो विशिष्यत इति विशेषः । ईश्वर ईशनशील इच्छामात्रेण सकलजगदुद्धरणक्षमः । यद्यपि सर्वेषामात्मनां क्लेशादिस्पर्शो नास्ति तथापि चित्तगतास्तेषामपदिश्यते । यथा योद्धृगतौ जयपराजयौ स्वामिनः । अस्य तु त्रिष्वपि कालेषु तथाविधोऽपि क्लेशादिपरामर्शो नास्ति । अतः स विलक्षण एव भगवानीश्वरः । तस्य च तथाविधमैश्वर्य्यमनादेः सत्त्वोत्कर्षात् । तस्य सत्त्वोत्कर्षश्च प्रकृष्टाज्ज्ञानादेव । न च अनयोर्ज्ञानैश्वर्य्ययोरितरेतराश्रयत्वं, परस्परानपेक्षत्वात् । ते द्वे ज्ञानैश्वर्ये ईश्वरसत्त्वे वर्तमाने अनादिभूते, तेन च तथाविधेन सत्त्वेन तस्यानादिरेव सम्बन्धः प्रकृतिपुरुषसंयोगवियोगयोरीश्वरेच्छाव्यतिरेकेणानुपपत्तेः यथेतरेषां प्राणिनां सुखदुःखमोहात्मकतया परिणतं चित्तं निर्मले सात्त्विके धर्मात्मप्रख्ये प्रतिसंक्रान्तं चिच्छायासंक्रान्तं संवेद्यं भवति नैवमीश्वरस्य, तस्य केवल एव सात्त्विकः परिणाम उत्कर्षवाननादिसंबन्धेन भोग्यतया व्यवस्थितः, अतः पुरुषान्तरविलक्षणतया स एवेश्वरः । मुक्तात्मनां तु पुनः क्लेशादियोगस्तैस्तैः शास्त्रोक्तैरुपायैर्निवर्तितः । अस्य पुनः सर्वदैव तथाविधत्वान्न मुक्तात्मतुल्यत्वम् । न चेश्वराणामनेकत्वं, तेषां तुल्यत्वे भिन्नाभिप्रायत्वात्कार्यस्यैवानुपपत्तेः । उत्कर्षापकर्षयुक्तत्वे य एवोत्कृष्टः स एवेश्वरस्तत्रैव काष्ठाप्राप्तत्वादैश्वर्यस्य ॥ २४ ॥

एवमीश्वरस्य स्वरूपमभिधाय प्रमाणमाह—

भो० वृ० पदार्थ

(क्लिश्नन्तीति क्लेशाः) जो दुःख देते हैं वह क्लेश कहाते हैं (अवि-

द्यादयो वक्ष्यमाणाः) वह अविद्यादि हैं जो आगे कहे जायेंगे। (विहित-प्रतिषिद्धव्यामिश्ररूपाणि कर्माणि) वेद में विधान किये हुए और निषेध किये हुए और मिश्रित रूप वाले कर्म कहाते हैं। (विपच्यन्त इति विपाकाः कर्मफलानि जात्यायुर्भोगाः) जो परिपक्व हो जाते हैं वह विपाक नाम वाले कर्मफल, जाति, आयु और भोग हैं। (आ फलविपाकाच्चित्त-भूमौ शेरत इत्याशया) फल पकने तक जो चित्त भूमि में पड़ी हुई सोती हैं वह वासना कहलाती हैं (वासनाख्याः संस्कारास्तैरपरामृष्टस्त्रिष्वपि कालेषु न संस्पृष्टः। पुरुषविशेषः) वासना नामवाले जो संस्कार उन से रहित तीनों काल में भी जिस का लेशमात्र सम्बन्ध नहीं होता वह पुरुष विशेष ईश्वर है। (अन्येभ्यः पुरुषेभ्यो विशिष्यत इति विशेषः) अर्थात अन्य पुरुषों से विशेषता मानी जाती है जिस में वह विशेष कहलाता है। (ईश्वरः) ईश्वर शब्द का अर्थ (ईशनशील इच्छामात्रेण सकलजगदु-द्धरणक्षमः) ईशनशील अर्थात् इच्छामात्र से सम्पूर्ण जगत् की उत्पत्ति और प्रलय करने में समर्थ है। (यद्यपि सर्वेषामात्मनां क्लेशादि स्पर्शो नास्ति) यद्यपि सब आत्माओं का क्लेशादि से सम्बन्ध भी नहीं है (तथापि) तो भी (चित्तगतास्तेषामपदिश्यते) चित्त से है सम्बन्ध जिनका उन के लिये कहा जाता है, क्योंकि मुक्त पुरुषों को क्लेश नहीं होते, बद्धों को होते हैं, जिनका चित्त से सम्बन्ध है, (यथा योद्धृगतौ जयपराजयौ स्वामिनः) जैसे युद्ध में योद्धाओं के जय पराजय का फल उन के स्वामी राजा को होता है, इस ही प्रकार चित्त में वर्तमान क्लेश कर्म वासनादि का फल चित्त के स्वामी जीवात्मा को होता है। (अस्य तु त्रिष्वपि कालेषु तथाविधोऽपि क्लेशादिपरामर्शो नास्ति) इस ईश्वर को तो तीनों काल में भी उस प्रकार के क्लेशादि का सम्बन्ध नहीं है। (अतः स विलक्षण एव भगवानीश्वरः) इस कारण वह ऐश्वर्यवान् परमात्मा जीवों से भिन्न लक्षणवाला है। (तस्य च तथाविधमैश्वर्यमनादेः सत्त्वो-त्कर्षात्) उस का उस प्रकार ऐश्वर्य, अनादि स्वरूप से उत्कर्ष होने के कारण है। (तस्य सत्त्वोत्कर्षश्च प्रकृष्टाज्ज्ञानादेव) उस के स्वरूप की

उच्चता अनन्त ज्ञानादि से है । (न च अनयोर्ज्ञानैश्वर्य्ययोरितरेतराश्रयत्वं) उस के ज्ञान और ऐश्वर्य इन दोनों में एक दूसरे का आश्रयत्व नहीं है । (परस्परानपेक्षत्वात्) एक में दूसरे की आवश्यक्ता न होने से, सारांश यह है कि जैसे जगत् में ज्ञानबल से ऐश्वर्य को प्राप्त कर लेते हैं और ऐश्वर्य के बल से ज्ञान को प्राप्त कर लेते हैं, इस प्रकार ईश्वर में प्राप्त किये हुए ज्ञान और ऐश्वर्य नहीं किन्तु स्वाभाविक हैं । (ते द्वे ज्ञानैश्वर्ये ईश्वरसत्त्वे वर्तमाने अनादिभूते) वह दोनों ज्ञान और ऐश्वर्य ईश्वर में अनादि रूप से वर्तमान हैं ।

(तेन च तथाविधेन सत्त्वेन तस्यानादिरेव सम्बन्धः) इस इतनी वृत्ति का पूर्व से विरोध आता है क्योंकि पूर्व ज्ञान ऐश्वर्य को अनादि कहा है और इस में सत्त्व का अनादि सम्बन्ध कहता है, सम्बन्ध का आद होता है अनादि नहीं होता इसलिये यह किसी आधुनिक ने मिला दिया है ।

(प्रकृतिपुरुषसंयोगवियोगयोरीश्वरेच्छाव्यतिरेकेणानुपपत्तेः) प्रकृति और जीव का संयोग और वियोग ईश्वरेच्छा के विना नहीं हो सक्ता, यहां यह जानना चाहिये कि जीवों के कर्मानुसार ही ईश्वर सृष्टी रचना का संकल्प करता है, यह इच्छा का अर्थ है । (यथेतरेषां प्राणिनां सुखदुःखमोहात्मकतया परिणतं चित्तं निर्मले सात्त्विके धर्मात्मप्रख्ये प्रतिसंक्रान्तं चिच्छायासंक्रान्ते संवेद्यं भवति नैवमीश्वरस्य) जैसे दूसरे प्राणियों का चित्त सुख दुःख मोहरूप से परिणाम को प्राप्त हुआ निर्मल सात्त्विक धर्म ज्ञान में परिणित होने पर चेतन शक्ति भी परिणित हुई जानी जाती है, ईश्वर का स्वरूप ऐसा भी नहीं होता ।

"(तस्य केवल एव सात्त्विकः परिणाम उत्कर्षवाननादिसंबन्धेन भोग्यतया व्यवस्थितः) यहां इतना भी नवीन वेदान्तियों का मिलाया हुआ है, क्योंकि न ईश्वर का कोई धर्म परिणामी है और न ईश्वर भोगता है ।"

(अतः पुरुषान्तरविलक्षणतया स एवेश्वरः) इस कारण अन्य पुरुषों से विलक्षण वह ईश्वर है । (मुक्तात्मनां तु पुनः क्लेशादियोगस्तैस्तैः शास्त्रोक्तैरुपायैर्निवर्तितः) मुक्त जीवों को तो बारम्बार क्लेशादि से योग होता है,

और उन २ शास्त्रोक्त उपायों द्वारा निवृत किया जाता है। (अस्य पुनः सर्वदैव तथाविधत्वान्न मुक्तात्मतुल्यत्वम्) इस ईश्वर का तो सर्वदा ही मुक्त स्वरूप होने से मुक्त जीवों की समानता नहीं है। (न चेश्वराणामनेकत्वं) और ईश्वर अनेक भी नहीं है, (तेषां तुल्यत्वे भिन्नाभिप्रायत्वात्कार्यस्यैवानुपपत्तेः) क्योंकि अनेक ईश्वर माने जांय तो उन के समान होने पर भिन्न अभिप्राय होने से कार्य सिद्धि न होगी। (उत्कर्षापकर्षयुक्तत्वे य एवोत्कृष्टः स एवेश्वरः) बड़ा छोटा माननेपर जो बड़ा है वही ईश्वर है (तत्रैव काष्ठाप्राप्तत्वादैश्वर्यस्य) उस में ही असीम ऐश्वर्य होने से, अन्यों के ऐश्वर्य की उस में सीमा प्राप्त होने से ॥ २४ ॥

(एवमीश्वरस्य स्वरूपमभिधाय प्रमाणमाह) इस प्रकार ईश्वर के स्वरूप का वर्णन करके आगे प्रमाण कहते हैं— सातिशयम्

तत्र निरतिशयं सर्वज्ञबीजम् ॥ २५ ॥

सू०—उस परमात्मा में सर्व से अधिक ज्ञान होने के कारण वह सर्वज्ञता का बीजरूप है ॥ २५ ॥

व्या० भाष्यम्

यदिदमतीतानागतप्रत्युत्पन्नप्रत्येकसमुच्चयातीन्द्रियग्रहणमल्पं बह्विति सर्वज्ञबीजमेतद्विवर्धमानं यत्र निरतिशयं स सर्वज्ञः। अस्ति काष्ठाप्राप्तिः सर्वज्ञबीजस्य सातिशयत्वात्परिमाणवदिति। यत्र काष्ठाप्राप्तिर्ज्ञानस्य स सर्वज्ञः। स च पुरुषविशेष इति।

सामान्यमात्रोपसंहारे च कृतोपक्षयमनुमानं न विशेषप्रतिपत्तौ समर्थमिति। तस्य संज्ञादिविशेषप्रतिपत्तिरागमतः पर्यन्वेष्या। (तस्याऽऽत्मानुग्रहाभावेऽपि भूतानुग्रहः प्रयोजनम्)। ज्ञानधर्मोपदेशेन कल्पप्रलयमहाप्रलयेषु संसारिणः पुरुषानुद्धरिष्यामीति। तथा चोक्तम्—आदिविद्वान्निर्माणचित्तमधिष्ठाय कारुण्याद्भगवान्परमर्षिरासुरये जिज्ञासमानाय तन्त्रं प्रोवाचेति ॥ २५ ॥

व्या॰ भा॰ पदार्थ

(यदिदमतीतानागतप्रत्युत्पन्नप्रत्येकसमुच्चयातीन्द्रियग्रहणमल्पं बहु) जो यह प्रत्येक वा समस्त अतिन्द्रिय अर्थात् सूक्ष्म अतीत, अनागत वस्तुओं का उत्पन्न हुआ ज्ञान वह थोड़ा वा बहुत होता है, अर्थात् एक से दूसरे का अधिक ज्ञान उससे किसी और का अधिक ज्ञान होता है (एतद्विवर्धमानं यत्र निरतिशयं स सर्वज्ञः) यह ज्ञान बढ़ते २ जिस में अतिशय रहित है अर्थात् जिस से अधिक किसी का ज्ञान नहीं है वह सर्वज्ञ है । (इति सर्वज्ञबीजम्) इस कारण वह सर्वज्ञता का बीज है (अस्ति काष्ठाप्राप्तिः सर्वज्ञबीजस्य) क्योंकि इस में सर्वज्ञता के बीज की सीमा प्राप्त है (सातिशयत्वात्) अतिशयता होने से (परिमाणवदिति) परिमाणवाला है अर्थात् नाप तोल के कारण अल्प होता है । (यत्र काष्ठाप्राप्तिर्ज्ञानस्य स सर्वज्ञः) जिस में मनुष्यों के ज्ञान की सीमा प्राप्त है वह सर्वज्ञ है (स च पुरुषविशेष) वह पुरुष विशेष ईश्वर है ।

(इति सामान्यमात्रोपसंहारे च कृतोपक्षयमनुमानं न विशेषप्रतिपत्तौ समर्थमिति) यह सामान्यदृष्टी से अनुमान द्वारा समाधान है विशेष प्राप्ति में समर्थ नहीं है । (तस्य संज्ञादिविशेषप्रतिपत्तिरागमतः पर्यन्वेष्या) उस के नाम और महिमा प्रभावादि की विशेष प्राप्ति वेदों से खोजनी चाहिये । (तस्याऽऽत्मानुग्रहाभावेऽपि भूतानुग्रहः प्रयोजनम्) उस परमात्मा का अपने लिये अनुग्रह अभाव होनेपर भी जीवों पर अनुग्रह करना ही प्रयोजन है। (ज्ञानधर्मोपदेशेन कल्पप्रलयमहाप्रलयेषु संसारिणः पुरुषानुद्धरिष्यामिति) इस दयालुता के ही कारण ज्ञान और धर्म्मोपदेश द्वारा सांसारिक पुरुषों का मैं उद्धार करूँगा, इस भाव से कल्पप्रलय और महाप्रलय में (वेदों का उपदेश करता है) (तथा चोक्तम्) ऐसा ही शास्त्र में पाया जाता है कि—(आदिविद्वान्निर्माणचित्तमधिष्ठाय

कारुण्याद्भगवान्परमर्षिरासुरये जिज्ञासमानाय तन्त्रं प्रोवाचेति) आदि विद्वान् भगवान् परम विज्ञानी परमात्मा ने जगत् निर्माण की दृष्टी से दया भाव के कारण अज्ञानी जिज्ञासुओं के लिये वेद का उपदेश किया है ॥ २५ ॥

भावार्थ

मनुष्यों को जो ज्ञान होता है वह ज्ञान बढ़ते २ अन्त में योगी पुरुष सर्वज्ञ हो जाता है। उस ज्ञान का दाता मूल परमेश्वर ही है, अतः सर्वज्ञता का बीज वही कहलासक्ता है। क्योंकि मनुष्यों में एक से दूसरे का ज्ञान अधिक भी होता है और दूसरे से तीसरे का अधिक होता है, इस प्रकार वृद्धि की परम्परा चलती है परन्तु ईश्वर से अधिक किसी का ज्ञान नहीं होता, इस कारण वह परमेश्वर अधिकता रहित अर्थात् निरतिशय ज्ञानवाला है। सूत्र में जो ईश्वर में ज्ञान की सीमा कथन की है, वह जीवों के ज्ञान की अपेक्षा से कथन है, ईश्वर का ज्ञान तो अनन्त है यह अर्थ लेना चाहिये ॥२५॥

भो० वृत्ति

तस्मिन्भगवति सर्वज्ञत्वस्य यद्बीजमतीतानागतादिग्रहणस्याल्पत्वं महत्त्वं च मूलत्वाद्बीजमिव बीजं तत्तत्र निरतिशयं काष्ठां प्राप्तम्। दृष्टा ह्यल्पत्वमहत्त्वादीनां धर्माणां सातिशयानां काष्ठाप्राप्तिः। यथा परमाणावल्पत्वस्याऽऽकाशे परममहत्त्वस्य। एवं ज्ञानादयोऽपि चित्तधर्मास्तारतम्येन परिदृश्यमानाः क्वचिन्निरतिशयतामासादयन्ति। यत्र चैते निरतिशयाः स ईश्वरः। यद्यपि सामान्यमात्रेऽनुमानमात्रस्य पर्यवसितत्वान्न विशेषावगतिः संभवति तथाऽपि शास्त्रादस्य सर्वज्ञत्वादयो विशेषा अवगन्तव्याः। तस्य स्वप्रयोजनाभावे कथं प्रकृतिपुरुषयोः संयोगवियोगावापादयतीति नाऽऽशङ्कनीयं, तस्य कारुणिकत्वाद्भूतानुग्रह एव प्रयोजनम्। कल्पप्रलयमहाप्रलयेषु निःशेषान्संसारिण उद्धरिष्यामीति तस्याध्यवसायः। यद्यस्येष्टं तत्तस्य प्रयोजनम् ॥ २५ ॥

एवमीश्वरस्य प्रमाणमभिधाय प्रभावमाह—

भो० सू० पदार्थ

(तस्मिन्भगवति सर्वज्ञत्वस्य यद्बीजम्) उस परमात्मा में जो सर्वज्ञता का बीज है (अतीतानागतादिग्रहणस्याल्पत्वं महत्वं च मूलत्वाद्बीजमिव बीजं) वह अतीत अनागतादि पदार्थों के ज्ञान की न्यूनता और अधिकता का मूल होने से बीज के समान बीज है (तत्त्र निरतिशयं काष्ठां प्राप्तम्) वह उस परमेश्वर में अतिशय रहित है अर्थात् ज्ञान की अवधि है। (दृष्टा ह्यल्पत्वमहत्त्वादीनां धर्माणां सातिशयानां काष्ठाप्राप्तिः) क्योंकि अति अल्प अतिमहान् सातिशय पदार्थों के धर्मों की सीमा प्राप्ति देखी गई है। (यथा परमाणावल्पत्वस्याऽऽकाशे परममहत्त्वस्य) जैसे परमाणुओं में अल्पत्व की और आकाश में महत्त्व की। (एवं ज्ञानादयोऽपि चित्तधर्मास्तारतम्येन परिदृश्यमानाः क्वचिन्निरतिशयतामासादयन्ति) इसी प्रकार मनुष्यों के ज्ञानादि भी चित्त के धर्म परम्परा से घटते बढ़ते देखे जाते हुए अनुमान होता है कि कहीं निरतिशयता को प्राप्त होते हैं। (यत्र चैते निरतिशयाः स ईश्वरः) जिस में यह अतिशय रहित हैं वह ईश्वर है। (यद्यपि सामान्यमात्रेऽनुमानमात्रस्य पर्यवसितत्वान्न विशेषावगतिः संभवति) यद्यपि सामान्यमात्र से अनुमान का निश्चय होने के कारण विशेष प्राप्ति नहीं होसक्ती (तथाऽपि) तो भी (शास्त्रादस्य सर्वज्ञत्वादयो विशेषा अवगन्तव्याः) शास्त्र से इस के सर्वज्ञतादि विशेष धर्म प्राप्त करने योग्य हैं। (तस्य स्वप्रयोजनाभावे कथं प्रकृतिपुरुषयोः संयोगवियोगावापादयतीति नाऽऽशङ्कनीयं) उस के अपने प्रयोजनाभाव होनेपर किस प्रकार प्रकृति और जीव दोनों के संयोग वियोगों को प्राप्त कराता है, यह शङ्का नहीं करनी चाहिये। (तस्य कारुणिकत्वाद्भूतानुग्रह एव प्रयोजनम्) क्योंकि उस का दयालु स्वभाव होने के कारण जीवों पर दया करना ही प्रयोजन है। (कल्पप्रलयमहाप्रलयेषु निःशेषान्संसारिण उद्धरिष्यामिति तस्याध्यवसायः) कल्पप्रलयवा महाप्रलय में सम्पूर्ण संसारी पुरुषों का मैं उद्धार करूँगा यह उस का इष्ट है। (यद्यस्येष्टं तत्तस्य प्रयोजनम्) जो जिसका इष्ट है वही उसका प्रयोजन है॥ २५॥

(एवमीश्वरस्य प्रमाणमभिधाय प्रभावमाह) इस प्रकार ईश्वर का प्रमाण कथन करके प्रभाव आगे कहते हैं—

स एषः पूर्वेषामपि गुरुः कालेनानवच्छेदात् ॥२६॥

सू०—(सः) वह पूर्वोक्त ईश्वर पूर्वजों का भी गुरु है, काल से उस का बाध न होने के कारण, सूत्र में पूर्व शब्द से अभिप्राय अग्नि वायु आदित्य अङ्गिरा महर्षियों का है। सृष्टि के आदि में जिन के हृदयों में ईश्वर वेदों का प्रकाश करता है, पूर्वज शब्द सब से प्रथम जन्म होने के कारण उन के लिये आता है ॥ २६ ॥

व्या० भाष्यम्

पूर्वे हि गुरवः कालेनावच्छिद्यन्ते। यत्रावच्छेदार्थेन कालो नोपावर्तते स एष पूर्वेषामपि गुरुः। यथाऽस्य सर्गस्याऽऽदौ प्रकर्षगत्या सिद्धस्तथाऽतिक्रान्तसर्गादिष्वपि प्रत्येतव्यः ॥ २६ ॥

व्या० भा० पदार्थ

(पूर्वे हि गुरवः कालेनावच्छिद्यन्ते) पूर्वज गुरु अग्नि आदि काल से बाध हो जाते हैं। (यत्रावच्छेदार्थेन कालो नोपावर्तते) जिस में सीमाबद्ध रूप से काल नहीं वर्तता अर्थात् जो त्रिकालाबाध्य है (स एष पूर्वेषामपि गुरुः) वह यह ईश्वर प्रथम गुरुओं का भी गुरु है। (यथाऽस्य सर्गस्याऽऽदौ प्रकर्षगत्या सिद्धस्तथाऽतिक्रान्तसर्गादिष्वपि प्रत्येतव्यः) जैसे इस सृष्टि की आदि में इसकी सर्वज्ञता सिद्ध है, वैसे ही सृष्टि के अन्त में भी जाननी चाहिये ॥२६॥

भो० वृत्ति

आद्यानां स्रष्टॄणां ब्रह्मादीनामपि स गुरुरुपदेष्टा। यतः स कालेन नावच्छिद्यते, अनादित्वात्। तेषां पुनरादिमत्त्वादस्ति कालेनावच्छेदः ॥ २६ ॥

एवं प्रभावमुक्त्वोपासनोपयोगाय वाचकमाह—

भो० वृ० पदार्थ

(आद्यानां स्रष्टृणां ब्रह्मादीनामपि स गुरुरुपदेष्टा) आदि सृष्टि में ब्रह्मादि का भी वह गुरु अर्थात् उपदेष्टा है। (यतः स कालेन नावच्छिद्यते अनादित्वात्) जिस कारण अनादि होने से परमात्मा काल से बाधित नहीं होता। (तेषां पुनरादिमत्त्वादस्ति कालेनावच्छेदः) उन ब्रह्मादिक का आदिमान् होने के कारण काल से बाध होगया ॥ २६ ॥

(एवं प्रभावमुक्त्वोपासनोपयोगाय वाचकमाह) इस प्रकार प्रभाव को बतलाकर उपासना के उपयोगार्थ उस का वाचक नाम अगले सूत्र में बतलाते हैं—

तस्य वाचकः प्रणवः ॥ २७ ॥

सू०—उस परमेश्वर का वाचक अर्थात् कथन करने वाला, नाम 'ओ३म्' है ॥ २७ ॥

व्या० भाष्यम्

वाच्य ईश्वरः प्रणवस्य । किमस्य संकेतकृतं वाच्यवाचकत्वमथ प्रदीपप्रकाशवदवस्थितमिति ?

स्थितोऽस्य वाच्यस्य वाचकेन सह संबन्धः । संकेतस्त्वीश्वरस्य स्थितमेवार्थमभिनयति । यथाऽवस्थितः पितापुत्रयोः संबन्धः संकेतेनावद्योत्यते, अयमस्य पिता, अयमस्य पुत्र इति । सर्गान्तरेष्वपि वाच्यवाचकशक्त्यपेक्षस्तथैव संकेतः क्रियते । संप्रतिपत्तिनित्यतया नित्यः शब्दार्थसंबन्ध इत्यागमिनः प्रतिजानते ॥ २७ ॥

विज्ञात वाच्यवाचकत्वस्य योगिनः—

व्या० भा० पदार्थ

(वाच्य ईश्वरः प्रणवस्य) वाचक प्रणव का वाच्य ईश्वर है । (किमस्य संकेतकृतं वाच्यवाचकत्वमथ प्रदीपप्रकाशवदवस्थितमिति) अब प्रश्नोत्तर द्वारा कहते हैं, क्या ईश्वर और प्रणव का वाच्य

वाचक संकेत मनुष्यों का कल्पना किया हुआ है अथवा दीपक और प्रकाश के समान नित्य धर्म है ?

(स्थितोऽस्य वाच्यस्य वाचकेन सह संबन्धः) इस वाच्य ईश्वर का वाचक प्रणव के साथ स्थायी अर्थात् नित्य संबन्ध है। (संकेतस्त्वीश्वरस्य स्थितमेवार्थमभिनयति) संकेत तो ईश्वर के नियत किये हुए अर्थ को प्रकाशित करता है। (यथाऽवस्थितः पितापुत्रयोः संबन्धः संकेतेनावद्योत्यते) जैसे पिता पुत्र दोनों का नियत सम्बन्ध संकेत से प्रकाशित किया जाता है। (अयमस्य पिता) यह इस का पिता है, (अयमस्य पुत्र इति) यह इसका पुत्र है। (सर्गान्तरेष्वपि) अन्य सृष्टियों में भी (वाच्यवाचकशक्त्यपेक्षस्तथैव संकेतः क्रियते) वाच्य वाचक(शब्द) शक्ति की अपेक्षा से ही उसी प्रकार संकेत किया जाता है।

भाव इस का यह है कि जैसे ओ३म् शब्द का अर्थ सर्वरक्षक सर्वजगत् की उत्पत्ति स्थिति पालन करता सर्वशक्तिमान् परमविज्ञानस्वरूप विज्ञानदाता सुखदातादि हैं, इस प्रकार इस के अर्थ जानने वाले को ओ३म् शब्द के उच्चारण करते ही इस शब्दार्थ के संकेत से यह बोध हो जाता है कि यह जगत् उपरोक्त धर्मवाले परमात्मा से रचागया उसी से रक्षा और जीवों की मुक्ति बन्धन कर्म फल भोग सब होते हैं, वही सर्वथा सर्वदा सब का आधार है, इस प्रकार इस वाचक प्रणव शब्द और वाच्य ईश्वर का संबन्ध जानकर ध्यान करना चाहिये। (संप्रतिपत्तिनित्यतया नित्यः शब्दार्थसंबन्ध इत्यागमिनः प्रतिजानते) नित्य होने के कारण शब्दार्थ संकेत वर्तमान में भी सिद्ध होने से नित्य है ऐसा वेदार्थ के जानने वाले जानते हैं ॥ २७ ॥

(विज्ञातवाच्यवाचकत्वस्य योगिनः) ज्ञात है वाच्य वाचक का संबन्ध जिस योगी को वह उस ओ३म् शब्द द्वारा ईश्वर का जप करे और ईश्वर के स्वरूप का ध्यान करे—

भो० वृत्ति

इत्थमुक्तस्वरूपस्येश्वरस्य वाचकोऽभिधायकः, प्रकर्षेण नूयते स्तूयतेऽनेनेति नौति स्तौतीति वा प्रणव ओंकारः, तयोश्च वाच्यवाचकभावलक्षणः संबन्धो नित्यः संकेतेन प्रकाश्यते न तु केनचित्क्रियते, यथा पितापुत्रयोर्विद्यमान एव संबन्धोऽस्यायं पिताऽस्यायं पुत्र इति केनचित्प्रकाश्यते ॥२७॥

उपासनमाह—

भो० वृ० पदार्थ

(इत्थमुक्तस्वरूपस्येश्वरस्य वाचकोऽभिधायकः) इस प्रकार पूर्व कहे ईश्वर का वाचक नाम प्रणव है, (प्रकर्षेण नूयते स्तूयतेऽनेनेति नौति स्तौतीति वा प्रणव ओंकारः) परम् नम्रता से स्तुति की जाय जिस के द्वारा वह नौति स्तुति अर्थक प्रणव शब्द है उसी को ओङ्कार भी कहते हैं, (तयोश्च वाच्यवाचकभावलक्षणः संबन्धो नित्यः संकेतेन प्रकाश्यते) उन दोनों का वाच्य वाचक भावरूप संबन्ध नित्य संकेत से प्रकाशित होता है (न तु केनचित्क्रियते) किसी ने बनाया नहीं, (यथा पिता-पुत्रयोर्विद्यमान एव संबन्धः) जैसे पिता पुत्र इन दोनों में वर्तमान संबन्ध है (अस्यायं पिताऽस्यायं पुत्रः) यह इस का पिता है, यह इस का पुत्र है (इति केनचित्प्रकाश्यते) यह किस से प्रकाशित किया जाता है अर्थात् किसी से भी नहीं स्वयमेव ही ज्ञात हो जाता है ॥ २७ ॥

(उपासनमाह) अगले सूत्र में उपासना का स्वरूप कहते हैं—

तज्जपस्तदर्थभावनम् ॥ २८ ॥

सू०—उस ओङ्कार का जप करना और उस के वाच्य ईश्वर स्वरूप का ध्यान करना ॥ २८ ॥

व्या० भाष्यम्

प्रणवस्य जपः प्रणवाभिधेयस्य चेश्वरस्य भावनम्। तदस्य

योगिनः प्रणवं जपतः प्रणवार्थं च भावयतश्चित्तमेकाग्रं संपद्यते। तथा चोक्तम्—

"स्वाध्यायाद्योगमासीत योगात्स्वाध्यायमासते।
स्वाध्याययोगसंपत्त्या परमात्मा प्रकाशते" इति ॥ २८ ॥

किं चास्य भवति—

व्या० भा० पदार्थ

(प्रणवस्य जपः प्रणवाभिधेयस्य चेश्वरस्य भावनम्) ओङ्कार का जप और ध्यान करने योग्य प्रणव अर्थात् ईश्वर के स्वरूप का ध्यान करना। (तदस्य योगिनः प्रणवं जपतः प्रणवार्थं च भावयतश्चित्तमेकाग्रं संपद्यते) इस योगी को प्रणव का जप करते हुए और उस के अर्थ ईश्वर के स्वरूप का ध्यान करते हुए चित्त एकाग्रता को प्राप्त होता है।

(तथा चोक्तम्) ऐसा ही अन्यत्र भी कहा है—

(स्वाध्यायाद्योगमासीत योगात्स्वाध्यायमासते।
स्वाध्याययोगसंपत्त्या परमात्मा प्रकाशते ॥ इति)

स्वाध्याय से योग में स्थिर होवे योग से स्वाध्याय में। स्वाध्याय और योग इन दोनों सम्पत्तियों से परमात्मा प्रकाशित होता है। यह योग की रीति है ॥ २८ ॥

(किं चास्य भवति) और क्या इसका फल होता है—

भो० वृत्ति

तस्य सार्धत्रिमात्रस्य प्रणवस्य जपो यथावदुच्चारणं तद्वाच्यस्य चेश्वरस्य भावनं पुनः पुनश्चेतसि विनिवेशनमेकाग्रताया उपायः। अतः समाधिसिद्धये योगिना प्रणवो जप्यस्तदर्थ ईश्वरश्च भावनीय इत्युक्तं भवति ॥ २८ ॥

उपासनायाः फलमाह—

भो० वृ० पदार्थ

(तस्य सार्धत्रिमात्रस्य प्रणवस्य जपो यथावदुच्चारणं) उस साढ़े

तीन मात्रा वाले प्रणव का जप यथार्थ रीति से उच्चारण करना (तद्वाच्यस्य चेश्वरस्य भावनं) और उस के वाच्य ईश्वर के स्वरूप का ध्यान करना (पुनः पुनश्चेतसि विनिवेशनम्) बार २ उस के स्वरूप में चित्त का प्रवेश करना (एकाग्रताया उपायः) एकाग्रता का उपाय है । (अतः समाधिसिद्धये योगिना प्रणवो जप्यस्तदर्थ ईश्वरश्च भावनीयः) इस कारण समाधि की सिद्धि के लिये योगी को प्रणव का जप और उस के अर्थ ईश्वर के स्वरूप का ध्यान करना चाहिये (इत्युक्तं भवति) यह सूत्र का अभिप्राय है ॥ २८ ॥

(उपासनायाः फलमाह) उपासना का फल आगे कहते हैं—

ततः प्रत्यक्चेतनाधिगमोऽप्यन्तरायाभावश्च ॥२९॥

सू०—पूर्वोक्त प्रकार उपासना करने से अन्तर्यामी चेतन परमात्मा की प्राप्ति और विघ्नों का नाश भी होता है ॥ २९ ॥

व्या० भाष्यम्

ये तावदन्तराया व्याधिप्रभृतयस्ते तावदीश्वरप्रणिधानान्न भवन्ति । स्वरूपदर्शनमप्यस्य भवति । यथैवेश्वरः पुरुषः शुद्धः प्रसन्नः केवलोऽनुपसर्गस्तथाऽयमपि बुद्धेः प्रतिसंवेदी पुरुष इत्येवमधिगच्छति ॥ २९ ॥

अथ केऽन्तरायाः । ये चित्तस्य विक्षेपाः । के पुनस्ते कियन्तो वेति-

व्या० भा० पदार्थ

(ये तावदन्तराया व्याधिप्रभृतयः) वह जितने विघ्न व्याधि आदि हैं (ते तावदीश्वरप्रणिधानान्न भवन्ति) वह जितने हैं सब ईश्वरप्रणिधान से नहीं होते हैं । (स्वरूपदर्शनमप्यस्य भवति) योगी को ईश्वर के स्वरूप का दर्शन भी होता है । (यथैवेश्वरः) जैसा ईश्वर है (पुरुषः) सब संसाररूपी पुरी में शयन करने वाला (शुद्धः) अविद्या रहित (प्रसन्नः केवलः) केवल आनन्दस्वरूप

(अनुपसर्गः) जन्म रहित (तथाऽयमपि बुद्धेः प्रतिसंवेदी पुरुषः) उसी प्रकार यह भी ज्ञान होता है बुद्धि को जानने वाला जीवात्मा पुरुष है (इत्येवमधिगच्छति) इस प्रकार ऐसा ज्ञान होता है ॥२९॥

(अथ केऽन्तरायाः) अब वह योग के विघ्न क्या हैं ? (ये चित्तस्य विक्षेपाः) जो चित्त के विक्षेप कहलाते हैं। (के पुनस्ते कियन्तो वेति) वह कौन हैं ? और कितने हैं ? यह आगे कहते हैं—

भो० वृत्ति

तस्माज्जपात्तदर्थभावनाच्च योगिनः प्रत्यक्चेतनाधिगमो भवति, विषय प्रातिकूल्येन स्वान्तःकरणाभिमुखमञ्चति या चेतना दृक्शक्तिः सा प्रत्यक्चेतना तस्या अधिगमो ज्ञानं भवति। अन्तराया वक्ष्यमाणास्तेषामभावः शक्तिप्रतिबन्धोऽपि भवति ॥ २९ ॥

अथ केऽन्तराया इत्याशङ्कायामाह—

भो० वृ० पदार्थ

(तस्माज्जपात्तदर्थभावनाच्च योगिनः प्रत्यक्चेतनाधिगमो भवति) उस प्रणव के जप और उस के अर्थ ईश्वर के स्वरूप का ध्यान करने से योगी को अन्दर चेतन परमात्मा का ज्ञान होता है, (विषयप्रातिकूल्येन स्वान्तः करणाभिमुखमञ्चति) विषयों की प्रतिकूलता से अर्थात् विषयों को त्यागकर अपने अन्तःकरण का परमात्मा के सन्मुख होना (या चेतना दृक्शक्तिः सा प्रत्यक्चेतना) जो चेतन देखनेवाली शक्ति है वह प्रत्यक्चेतना का अर्थ है (तस्या अधिगमो ज्ञानं भवति) उस की प्राप्ति अर्थात् ज्ञान होता है। (अन्तराया वक्ष्यमाणास्तेषामभावः) विघ्न जो आगे कहे जायँगे उन का अभाव होता है (शक्तिप्रतिबन्धोऽपि भवति) उन विघ्नों की शक्ति का रोक देना भी होता है ॥ २९ ॥

(अथ केऽन्तराया इत्याशङ्कायामाह) अब वह कौन विघ्न हैं, इस शङ्का के निवारणार्थ अगले सूत्र को कहते हैं—

व्याधिस्त्यानसंशयप्रमादालस्याविरतिभ्रान्तिदर्शनालब्धभूमिकत्वानवस्थितत्वानि चित्तविक्षेपास्तेऽन्तरायाः ॥ ३० ॥

सू०—व्याधि, स्त्यान, संशय, प्रमाद, आलस्य, अविरति, भ्रान्तिदर्शन, अलब्धभूमिकत्व, अनवस्थितत्व यह नव प्रकार के चित्त के विक्षेप विघ्न कहलाते हैं, इन का लक्षण भाष्यकार स्वयं करते हैं ॥ ३० ॥

व्या० भाष्यम्

नवान्तरायाश्चित्तस्य विक्षेपाः । सहैते चित्तवृत्तिभिर्भवन्ति । एतेषामभावे न भवन्ति पूर्वोक्ताश्चित्तवृत्तयः । तत्र व्याधिर्धातुरसकरणवैषम्यम् । स्त्यानमकर्मण्यता चित्तस्य । संशय उभयकोटिस्पृग्विज्ञानं स्यादिदमेवं नैवं स्यादिति । प्रमादः समाधिसाधनानामभावनम् । आलस्यं कायस्य चित्तस्य च गुरुत्वादप्रवृत्तिः । अविरतिश्चित्तस्य विषयसंप्रयोगात्मा गर्धः । भ्रान्तिदर्शनं विपर्ययज्ञानम् । अलब्धभूमिकत्वं समाधिभूमेरलाभः । अनवस्थितत्वं लब्धायां भूमौ चित्तस्याप्रतिष्ठा । समाधिप्रतिलम्भे हि सति तदवस्थितं स्यादिति । एते चित्तविक्षेपा नव योगमला योगप्रतिपक्षा योगान्तराया इत्यभिधीयन्ते ॥ ३० ॥

व्या० भा० पदार्थ

(नवान्तरायाश्चित्तस्य विक्षेपाः) यह नव विघ्न चित्त के विक्षेप हैं । (सहैते चित्तवृत्तिभिर्भवन्ति) वह ९ विघ्न चित्त वृत्तियों के सहित होते हैं । (एतेषामभावे न भवन्ति) इन वृत्तियों के अभाव में विघ्न भी नहीं होते हैं (पूर्वोक्ताश्चित्तवृत्तयः) चित्त की वृत्तियें पूर्व सूत्र ६ में कथन कर चुके हैं । (तत्र व्याधिर्धातुरसकरणवैष-

म्यम्) उन में चर्म्म, रुधिर, मांस, नसादि, धातु, खान, पानादि का रस और मनादि इन्द्रियों की विषमता से उत्पन्न हुए ज्वरादिक रोगों को "व्याधि" कहते हैं। (स्त्यानमकर्मण्यता चित्तस्य) चित्त में कर्म रहित होने की इच्छा को "स्त्यान" कहते हैं। (संशय उभयकोटिस्पृग्विज्ञानं स्यादिदमेवं नैवं स्यादिति) दोनों कोटियों को छूने वाला ज्ञान अर्थात् यह वस्तु ऐसी है वा ऐसी नहीं है दोनों में से एक का भी निश्चय न होना "संशय" कहलाता है। (प्रमादः समाधिसाधनानामभावनम्) समाधि के साधनों का पालन न करना अर्थात् उन के लिये यत्न न करना "प्रमाद" कहाता है। (अलस्यं कायस्य चित्तस्य च गुरुत्वादप्रवृत्तिः) कफादि के कारण शरीर के भारी होने और तमोगुण के कारण चित्त के भारी होने से ध्यान में प्रवेश न होना "आलस्य" कहाता है। (अविरतिश्चित्तस्य विषयसंप्रयोगात्मा गर्धः) चित्त का विषयों से संयोग होकर आत्मा में भी लौटकर विषयों की इच्छा हो जाने को "अविरति" कहते हैं। (भ्रान्तिदर्शनं विपर्ययज्ञानम्) अविद्यादि उल्टे ज्ञान को "भ्रान्तिदर्शन" कहते हैं। (अलब्धभूमिकत्वं समाधिभूमेरलाभः) समाधि भूमि का प्राप्त न होना अर्थात् ध्येय को न पहचानने को "अलब्धभूमिकत्व" कहते हैं। (अनवस्थित्वं लब्धायां भूमौ चित्तस्याप्रतिष्ठा) योग भूमि लाभ होने पर भी चित्त का उस में ठहराव न होने को "अनवस्थित्व" कहते हैं। (समाधिप्रतिलम्भे हि सति तदवस्थितं स्यात्) निश्चय समाधि लाभ होने पर चित्त स्थिर हो जाता है। (इति एते चित्तविक्षेपा नव योगमला योगप्रतिपक्षा योगान्तराया इत्यभिधीयन्ते) इस कारण यह नव चित्त के विक्षेप, योगमल, योग के शत्रु, योग में विघ्न, इन चार नामों से कहे जाते हैं ॥ ३० ॥

भो० वृत्ति

नवैते रजस्तमोबलात्प्रवर्तमानाश्चित्तस्य विक्षेपा भवन्ति । तैरेकाग्रताविरोधिभिश्चित्तं विक्षिप्यत इत्यर्थः । तत्र व्याधिर्धातुवैषम्यनिमित्तो ज्वरादिः । स्त्यानमकर्मण्यता चित्तस्य । उभयकोट्यालम्बनं ज्ञानं संशयः—योगः साध्यो न वेति । प्रमादोऽननुष्ठानशीलता समाधिसाधनेष्वौदासीन्यम् । आलस्यं कायचित्तयोर्गुरुत्वं योगविषये प्रवृत्त्यभावहेतुः । अविरतिश्चित्तस्य विषयसंप्रयोगात्मा गर्धः । भ्रान्तिदर्शनं शुक्तिकायां रजतवद्विपर्ययज्ञानम् । अलब्धभूमिकत्वं कुतश्चिन्निमित्तात्समाधिभूमेरलाभोऽसंप्राप्तिः । अनवस्थितत्वं लब्धायामपि समाधिभूमाव चित्तस्य तत्राप्रतिष्ठा । त एते समाधेरेकाग्रताया यथायोगं प्रतिपक्षत्वादन्तराया इत्युच्यन्ते ॥ ३० ॥

चित्तविक्षेपकारकानन्यानप्यन्तरायान्प्रतिपादयितुमाह—

भो० वृ० पदार्थ

(नवैते रजस्तमोबलात्प्रवर्तमानाश्चित्तस्य विक्षेपा भवन्ति) रज तम के बल से प्रवर्त्त हुए यह नव चित्त के विक्षेप होते हैं । (तैरेकाग्रताविरोधिभिश्चित्तं विक्षिप्यत इत्यर्थः) उन एकाग्रता के विरोधियों से चित्त विक्षेप को प्राप्त हो जाता है, यह अर्थ है । (तत्र व्याधिर्धातुवैषम्यनिमित्तो ज्वरादिः) उन में धातुओं की विषमता के कारण ज्वरादि को "व्याधि" कहते हैं । (स्त्यानमकर्मण्यता चित्तस्य) चित्त में कर्म रहित होने की इच्छा "स्त्यान" कहाती है । (उभयकोट्यलम्बनं ज्ञानं संशयः) दोनों कोटियों को आश्रय करने वाला ज्ञान "संशय" कहलाता है (योगः साध्यो न वेति) योग साधना चाहिये वा नहीं इस प्रकार । (प्रमादोऽननुष्ठानशीलता समाधिसाधनेष्वौदासीन्यम्) योगानुष्ठान न करने का स्वभाव और समाधि के साधनों में उदासीनता को "प्रमाद" कहते हैं । (आलस्यं कायचित्तयोर्गुरुत्वं योगविषये प्रवृत्त्यभावहेतुः) शरीर और चित्त दोनों का भारी होना योग विषय में प्रवृत्ति के अभाव का कारण "आलस्य" कहाता है । (अविरतिश्चित्तस्य विषयसंप्रयोगात्मा गर्धः) चित्त का

विषयों से संयोग होनेपर छूटे हुए विषयों की लौटकर आत्मा में दुबारा इच्छा हो जाना "अविरति" कहलाती है। (भ्रान्तिदर्शनं शुक्तिकायां रजतवद्विपर्ययज्ञानम्) सीप में चांदी का भ्रम इस प्रकार उल्टे ज्ञान को "भ्रान्तिदर्शन" कहते हैं। (अलब्धभूमिकत्वं कुतश्चिन्निमित्तात्समाधिभूमेरलाभोऽसंप्राप्तिः) किसी कारण से समाधि भूमि का लाभ न होना अर्थात् प्राप्ति न होना "अलब्धभूमिकत्व" है। (अनवस्थितत्वं लब्धायामपि समाधिभूमाव चित्तस्य तत्राप्रतिष्ठा) समाधि भूमि के लाभ होने पर भी चित्त का उस में ठहराव न होना "अनवस्थित्व" कहाता है। (त एते समाधेरेकाग्रताया यथायोगं प्रतिपक्षत्वादन्तराया इत्युच्यन्ते) वह यह विक्षेप समाधि की यथायोग एकाग्रता में शत्रु होने के कारण विघ्न कहलाते हैं ॥ ३० ॥

(चित्तविक्षेपकारकानन्यानप्यन्तरायान्प्रतिपादयितुमाह) चित्त को विक्षिप्त करने वाले दूसरे विघ्नों को प्रतिपादन करने के लिये अगला सूत्र कहते हैं—

दुःखदौर्मनस्याङ्गमेजयत्वश्वासप्रश्वासा विक्षेपसहभुवः ॥ ३१ ॥

सू०—दुख, दौर्मनस्य, अङ्गमेजयत्व, श्वास, प्रश्वास यह पांचों भी विक्षेपों के साथ २ होनेवाले हैं ॥ ३१ ॥

व्या० भाष्यम्

दुःखमाध्यात्मिकमाधिभौतिकमाधिदैविकं च। येनाभिहताः प्राणिनस्तदुपघाताय प्रयतन्ते तद्दुःखम्। दौर्मनस्यमिच्छाविघाताच्चेतस क्षोभः। यदङ्गान्येजयति कम्पयति तदङ्गमेजयत्वम्। प्राणो यद्बाह्यं वायुमाचामति स श्वासः। यत्कौष्ठ्यं वायुं निःसारयति स प्रश्वासः। एते विक्षेपसहभुवो विक्षिप्तचित्तस्यैते भवन्ति। समाहितचित्तस्यैते न भवन्ति ॥ ३१ ॥

अथैते विक्षेपाः समाधिप्रतिपक्षास्ताभ्यामेवाभ्यासवैराग्याभ्यां निरोद्धव्याः। तत्राभ्यासस्य विषयमुपसंहरन्निदमाह—

व्या० भा० पदार्थ

(दुःखमाध्यात्मिकमाधिभौतिकमाधिदैविकं च) आध्यात्मिक, आधिभौतिक, आधिदैविक दुःख कहलाते हैं। (येनाभिहताः प्राणिनस्तदुपघाताय प्रयतन्ते तद्दुःखम्) जिस से पीड़ित हुए प्राणी उस के नाश के लिये यत्न करते हैं, वह "दुःख" कहलाता है। (दौर्मनस्यमिच्छाविघाताच्चेतसः क्षोभः) इच्छा के पूर्ण न होने पर चित्त में जो निराशता उत्पन्न होती है यह "दौर्मनस्य" का अर्थ है अर्थात् इतना काल हो गया परन्तु योग प्राप्ति नहीं हुई इस प्रकार निराश हुआ चित्त यत्न करने को छोड़ना चाहता है। (यदङ्गान्येजयति कम्पयति तदङ्गमेजयत्वम्) जो शरीर के अङ्गो का हिलना वा कांपना वह "अङ्गमेजयत्व" है। (प्राणो यद्बाह्यं वायुमाचामति स श्वासः) नासिका द्वारा जो बाह्य वायु को अन्दर खींचना वह "श्वास" कहलाता है। (यत्कौष्ठ्यं वायु निःसारयति स प्रश्वासः) जो उदर के वायु को बाहर निकालना है वह "प्रश्वास" कहलाता है। (एते विक्षेपसहभुवो विक्षिप्तचित्तस्यैते भवन्ति) यह विक्षेपों के साथ २ होने वाले विक्षिप्त चित्त वाले को होते हैं। (समाहितचित्तस्यैते न भवन्ति) एकाग्र चित्त वाले को यह नहीं होते हैं॥३१॥

(अथैते विक्षेपाः) अब यह विक्षेप (समाधिप्रतिक्षाः) जो समाधि के शत्रु हैं (ताभ्यामेव अभ्यासवैराग्याभ्यां निरोद्धव्याः) अभ्यास वैराग्य के द्वारा उन का निरोध करना चाहिये। (तत्राभ्यासस्य विषयमुपसंहरन्निदमाह) उन में अभ्यास के विषय को उपसंहार करने के लिये अगला सूत्र कहा है—

भो० वृत्ति

कुतश्चिन्निमित्तादुत्पन्नेषु विक्षेपेषु एते दुःखादयः प्रवर्तन्ते। तत्र दुःखं

चित्तस्य राजसः परिणामो बाधनालक्षणः। यद्बाधात्प्राणिनस्तदुपघाताय प्रवर्तन्ते। दौर्मनस्यं बाह्याभ्यन्तरैः कारणैर्मनसोदौस्थ्यम्। अङ्गमेजयत्वं सर्वाङ्गीणो वेपथुरासनमनः स्थैर्यस्य बाधकः। प्राणो यद्बाह्यं वायुमाचामति स श्वासः। यत्कौष्ठ्यं वायुं निःश्वसिति सः प्रश्वासः। त एते विक्षेपैः सह प्रवर्तमाना यथोदिताभ्यासवैराग्याभ्यां निरोद्धव्या इत्येषामुपदेशः॥ ३१॥

सोपद्रवविक्षेपप्रतिषेधर्थामुपायान्तरमाह—

भो० वृ० पदार्थ

(कुतश्चिन्निमित्तादुत्पन्नेषु विक्षेपेषु एते दुःखादयः प्रवर्तन्ते) किन्हीं निमित्तों से उत्पन्न हुए विक्षेपों में यह दुःखादि वर्तते हैं। (तत्र दुःखं चित्तस्य राजसः परिणामो बाधनालक्षणः) उन में चित्त का राजस परिणाम बाधनारूप "दुःख" है। (यद्बाधात्प्राणिनस्तदपघाताय प्रवर्तन्ते) जिस से बाध होने के कारण प्राणधारी जीव उस के नाश करने के लिये प्रवर्त होते हैं। (दौर्मनस्यं बाह्याभ्यन्तरैः कारणैर्मनसोदौस्थ्यम्) बाह्य आभ्यन्तर कारणों से मन का उदासीन होना "दौर्मनस्य" है। (अङ्गमेजयत्वं सर्वाङ्गीणो वेपथुरासनमनः स्थैर्यस्य बाधकः) अङ्गों का सर्वथा कम्प, आसन और मन की स्थिरता का बाधक "अङ्गमेजयत्व" कहाता है। (प्राणो यद्बाह्यं वायुमाचामति स श्वासः) नासिका द्वारा जो बाह्य वायु को अन्दर खींचना है वह "श्वास" कहलाता है। (यत्कौष्ठ्यं वायुं निःश्वसिति सः प्रश्वासः) जो उदर के वायु को बाहर निकाला जाता है वह "प्रश्वास" कहलाता है। (त एतेः विक्षेपै सह प्रवर्तमाना) वह यह दुःखादि विक्षेपों के साथ वर्तते हुए (यथोदिताभ्यासवैराग्याभ्यां निरोद्धव्या इत्येषामुपदेशः) जैसे ऊपर प्रकाशित किये गये अभ्यास वैराग्य से निरोध करने योग्य हैं, इस कारण इन का उपदेश किया गया है॥ ३१॥

(सोपद्रवविक्षेपप्रतिषेधार्थमुपायान्तरमाह) इन उपद्रवों के सहित विक्षेपों के निवारणार्थ अन्य उपाय कहते हैं—

तत्प्रतिषेधार्थमेकतत्त्वाभ्यासः ॥ ३२ ॥

सू०—उन विक्षेपादि के निवारणार्थ एक मात्र ब्रह्म स्वरूप के ध्यान का अभ्यास करना चाहिये ॥ ३२ ॥

व्या० भाष्यम्

विक्षेपप्रतिषेधार्थमेकतत्त्वालम्बनं चित्तमभ्यसेत् । यस्य तु प्रत्यर्थनियतं प्रत्ययमात्रं क्षणिकं च चित्तं तस्य सर्वमेव चित्तमेकाग्रं नास्त्येव विक्षिप्तम् । यदि पुनरिदं सर्वतः प्रत्याहृत्यैकस्मिन्नर्थे समाधीयते तदा भवत्येकाग्रमित्यतो न प्रत्यर्थनियतम् ।

योऽपि सदृशप्रत्ययप्रवाहेण चित्तमेकाग्रं मन्यते तस्यैकाग्रता यदि प्रवाहचित्तस्य धर्मस्तदैकं नास्ति प्रवाहचित्तं क्षणिकत्वात् । अथ प्रवाहांशस्यैव प्रत्ययस्य धर्मः, स सर्वः सदृशप्रत्ययप्रवाही वा विसदृशप्रत्ययप्रवाही वा प्रत्यर्थनियतत्वादेकाग्र एवेति विक्षिप्तचित्तानुपपत्तिः । तस्मादेकमनेकार्थमवस्थितं चित्तमिति ।

यदि च चित्तेनैकेनानन्विताः स्वभावभिन्नाः प्रत्यया जायेरन्नथ कथमन्यप्रत्ययदृष्टस्यान्यः स्मर्ता भवेत् । अन्यप्रत्ययोपचितस्य च कर्माशयस्यान्यः प्रत्यय उपभोक्ता भवेत् । कथंचित्समाधीयमानमप्येतद्गोमयपायसीयन्यायमाक्षिपति ।

किं च स्वात्मानुभवापह्नवश्चित्तस्यान्यत्वे प्राप्नोति । कथं, यदहमद्राक्षं तत्स्पृशामि यच्चास्प्राक्षं तत्पश्यामीत्यहमिति प्रत्ययः सर्वस्य प्रत्ययस्य भेदे सति प्रत्ययिन्यभेदेनोपस्थितः । एकप्रत्ययविषयोऽयमभेदात्माऽहमिति प्रत्ययः । कथमत्यन्तभिन्नेषु चित्तेषु वर्तमानः सामान्यमेकं प्रत्ययिनमाश्रयेत् स्वानुभवग्राह्यश्चायमभेदात्माऽहमिति प्रत्ययः । न च प्रत्यक्षस्य माहात्म्यं प्रमाणान्तरेणाभिभूयते । प्रमाणान्तरं च प्रत्यक्षबलेनैव व्यवहारं लभते । तस्मादेकमनेकार्थमवस्थितं च चित्तम् ॥ ३२ ॥

यच्चित्तस्यावस्थितस्येदं शास्त्रेण परिकर्म निर्दिश्यते तत्कथम्—

व्या० भा० पदार्थ

(विक्षेपप्रतिषेधार्थमेकतत्त्वालम्बनं चित्तमभ्यसेत्) विक्षेपों के निवारणार्थ एक ब्रह्म स्वरूप के आश्रय द्वारा चित्त का अभ्यास करे (यस्य तु प्रत्यर्थनियतं) जिस के मत में प्रत्येक वस्तु स्वरूप में नियत = नियम बद्ध है।

अब आगे कोई नास्तिक पक्ष उठाता है—(प्रत्ययमात्रं क्षणिकं च चित्तम्) वृत्ति और चित्त क्षणिक है (तस्य सर्वमेव चित्तमेकाग्रं, नास्त्येव विक्षिप्तम्) उस के मत में चित्त सर्वत्र एकाग्र नहीं है किन्तु विक्षिप्त है। (यदि पुनरिदं सर्वतः प्रत्याहृत्यैकस्मिन्नर्थे समाधीयते तदा भवत्येकाग्रमिति) पुनः यदि यह सब तरफ से वृत्तियों को हटाकर एक विषय में ध्यान करता है तब एकाग्र होता है। (अतः न प्रत्यर्थनियतम्) इस कारण नास्तिक कहता है एक २ विषय नियत नहीं है।

(योऽपि सदृशप्रत्ययप्रवाहेन चित्तमेकाग्रं मन्यते) क्योंकि जो समान वृत्तियों के प्रवाह के कारण चित्त की एकाग्रता मानता है (तस्यैकाग्रता यदि प्रवाहचित्तस्य धर्मस्तदैकं, नास्ति, प्रवाहचित्तं क्षणिकत्वात्) यदि प्रवाह चित्त का धर्म है तो एक नहीं है प्रवाहरूप चित्त क्षणिक होने से। (अथ प्रवाहांशस्यैव प्रत्ययस्य धर्मः) अब यदि प्रवाहांश ही वृत्तियों का धर्म है, (स सर्वः शादृशप्रत्ययप्रवाही वा विसदृशप्रत्ययप्रवाही वा प्रत्यर्थनियतत्त्वादेकाग्र एव) वह सर्व समान वृत्तियों का प्रवाह वा विरुद्ध वृत्तियों का प्रवाह एक २ विषय नियत होने से तो एकाग्र ही है। (इति विक्षिप्तचित्तानुपपत्तिः) इस प्रकार विक्षिप्त चित्त नहीं हो सक्ता तो क्या उस की एकाग्रता है अर्थात् कुछ नहीं यह कथन नास्तिक क्षणिकवादी का है, आगे समाधान करते हैं। (तस्मादेकमनेकार्थमवस्थितं चित्तमिति) इस कारण एक चित्त अनेक अर्थों में अवस्थित है।

(यदि च चित्तेनैकेनानन्विताः स्वभावभिन्नाः प्रत्यया जायेरन्) और यदि एक ही चित्त से असम्बद्ध भिन्न स्वभावों वाले ज्ञान उत्पन्न हों नास्तिक के कथनानुसार (अथ कथमन्यप्रत्ययदृष्टस्यान्यः स्मर्ता भवेत्) तो किस प्रकार अन्य के देखे हुए ज्ञान का अन्य स्मर्ता होवे। (अन्य प्रत्ययोपचितस्य च कर्माशयस्यान्यः प्रत्यय उपभोक्ता भवेत्) अन्य के ज्ञानों से संग्रह किये हुए कर्म और वासनाओं का दूसरे का ज्ञान उपभोक्ता होवे। (कथंचित्समाधीयमानमप्येतद्गोमयपायसीयन्यायं माक्षिपति) किसी प्रकार समाधान करने पर भी यह गाय से बनी हुई खीर इस गोमयपायसीय-न्याय को सिद्ध करता है। अर्थात् किसी ने गौ के दुग्ध से बनी हुई खीर को खाते हुए सुना कि गौ से बनी है, पुनः उस ने गाय के गोबर को चावलों में मिलाकर अग्नि में सिद्ध करके खाना आरम्भ कर दिया।

(किं च स्वात्मानुभवापह्नवश्चित्तस्यान्यत्वे प्राप्नोति) और क्या कि चित्त के अन्यत्व में अपने अनुभव को त्यागकर प्राप्त होते हैं। (कथं) किस प्रकार कि ? (यदहमद्राक्षं तत्स्पृशामि यश्चास्प्राक्षं तत्पश्यामीति) जो मैंने देखा है उसे छूता हूँ जिसे मैंने छुआ है उस को देखता हूँ (अहमिति प्रत्ययः सर्वस्य प्रत्ययस्य भेदे सति प्रत्ययिन्यभेदेनोपस्थितः) यह अहम् वृत्ति सर्व ज्ञान के भेद में होते हुए जानने वाले के अभेद के साथ उपस्थित है। (एकप्रत्ययविषयोऽयमभेदात्माऽहमिति प्रत्ययः) एक ज्ञान का विषय यह अभेद रूप अहं वृत्ति (कथमत्यन्तभिन्नेषु चित्तेषु वर्तमानः) किस प्रकार अत्यन्त भिन्न चित्तों में वर्तमान हुई २ (सामान्यमेकं प्रत्ययिनमाश्रयेत्) सामान्यरूप से एक जानने वाले को आश्रय करे अर्थात् नहीं करसक्ती। (स्वानुभवग्राह्यश्चायमभेदात्माऽहमिति प्रत्ययः) यह अभेदरूप अहं वृत्ति अपने अनुभव से ग्रहण करने योग्य है। (न च प्रत्यक्षस्य माहात्म्यं प्रमाणान्तरेणाभिभूयते) क्योंकि

प्रत्यक्ष प्रमाण का महत्त्व अन्य प्रमाणों से नहीं दबसक्ता । (प्रमाणान्तरं च प्रत्यक्षबलेनैव व्यवहारं लभते) दूसरे अनुमानादि प्रमाण तो प्रत्यक्ष प्रमाण के बल से ही वर्तते हैं । (तस्मादेकमनेकार्थमवस्थितं च चित्तम्) इस कारण एक चित्त अनेक अर्थों में अवस्थित है, यही सिद्धान्त है ॥ ३२ ॥

(यच्चित्तस्यावस्थितस्येदं शास्त्रेण परिकर्म निर्दिश्यते तत्कथम्) जिस एकाग्र हुए चित्त का यह परिकर्म शास्त्र से बतलाया गया है, वह किस प्रकार है यह आगे कहते हैं—

भो० वृत्ति

तेषां विक्षेपाणां प्रतिषेधार्थमेकस्मिन्कस्मिंश्चिदभिमते तत्त्वेऽभ्यासश्चेतसः पुनः पुनर्निवेशनं कार्यः । यद्बलात् प्रत्युदितायामेकाग्रतायां विक्षेपाः प्रशममुपयान्ति ॥ ३२ ॥

इदानीं चित्तसंस्कारापादकपरिकर्मकथनमुपायान्तरमाह—

भो० वृ० पदार्थ

(तेषां विक्षेपाणां) उन विक्षेपों के (प्रतिषेधार्थम्) निषेधार्थं (एकस्मिन्कस्मिंश्चिदभिमते तत्त्वेऽभ्यासश्चेतसः पुनः पुनर्निवेशनं कार्यः) किसी एक अभीष्ट तत्त्व में अभ्यास करना अर्थात् चित्त का बारम्बार प्रवेश करना चाहिये । (यद्बलात् प्रत्युदितायामेकाग्रतायां विक्षेपाः प्रशममुपयान्ति) जिस के बल से एकाग्रता उदय होनेपर विक्षेप शान्त हो जाते हैं॥ ३२॥

(इदानीं चित्तसंस्कारापादकपरिकर्म कथनमुपायान्तरमाह) अब चित्त के संस्कारों के प्रतिपादक कर्म कथन करने के लिये दूसरे उपाय आगे कहते हैं—

मैत्रीकरुणामुदितोपेक्षाणां सुखदुःखपुण्यापुण्यविषयाणां भावनातश्चित्तप्रसादनम् ॥ ३३ ॥

सू०—सुखी, दुःखी, पुण्यात्मा, तथा अपुण्यात्माओं के

साथ क्रम से मित्रता, दया, हर्ष तथा उपेक्षा की भावना करने से चित्त प्रसन्न होता है ॥ ३३ ॥

व्या० भाष्यम्

तत्र सर्वप्राणिषु सुखसंभोगापन्नेषु मैत्रीं भावयेत् । दुःखितेषु करुणाम् । पुण्यात्मकेषु मुदिताम् । अपुण्यशीलेषूपेक्षाम् । एवमस्य भावयतः शुक्लो धर्म उपजायते । ततश्च चित्तं प्रसीदति । प्रसन्नमेकाग्रं स्थितिपदं लभते ॥ ३३ ॥

व्या० भा० पदार्थ

(तत्र सर्वप्राणिषु सुखसंभोगापन्नेषु मैत्रीं भावयेत्) उन में सुख भोग को प्राप्त हुए सर्व प्राणियों में मित्रता की भावना करे। (दुःखितेषु करुणाम्) दुःखित पुरुषों में दया की। (पुण्यात्मकेषु मुदिताम्) पुण्यात्माओं में हर्ष की भावना करे। (अपुण्यशीलेषूपेक्षाम्) अपुण्यशीलों अर्थात् पापियों में उपेक्षा बुद्धि करे अर्थात् उदासीन भाव रक्खे। (एवमस्य भावयतः शुक्लो धर्म उपजायते) इस प्रकार इस योगी के भावना करते हुए सात्त्विक धर्म उत्पन्न होता है। (ततश्च चित्तं प्रसीदति) उस से चित्त प्रसन्न होता है। (प्रसन्नमेकाग्रं स्थितिपदं लभते) प्रसन्न हुआ चित्त एकाग्रता को लाभ करता है ॥ ३३ ॥

भो॰ वृत्ति

मैत्री सौहार्दम् । करुणा कृपा । मुदिता हर्षः । उपेक्षौदासीन्यम् । एता यथाक्रमं सुखितेषु दुःखितेषु पुण्यवत्सु अपुण्यवत्सु च विभावयेत् । तथा हि—सुखितेषु साधु एषां सुखित्वमिति मैत्रीं कुर्यान्न तु ईर्ष्याम् । दुःखितेषु कथं नु नामैषां दुःखनिवृत्तिः स्यादिति कृपामेव कुर्यान्न ताटस्थ्यम् । पुण्यवत्सु पुण्यानुमोदनेन हर्षमेव कुर्यान्न तु किमेते पुण्यवन्त इति मूविद्वेषं । अपुण्यवत्सु चौदासीन्यमेव भावयेन्नानुमोदनं न वा द्वेषम् । सूत्रे

सुखदुःखादिशब्दैस्तद्वन्तः प्रतिपादिताः। तदेवं मैत्र्यादिपरिकर्मणा चित्ते प्रसीदति सुखेन समाधेराविर्भावो भवति। परिकर्म चैतद्बाह्यं कर्म। यथा गणिते मिश्रकादिव्यवहारो गणितनिष्पत्तये संकलितादिकर्मोपकारकत्वेन प्रधानकर्मनिष्पत्तये भवति एवं द्वेषरागादिप्रतिपक्षभूतमैत्र्यादिभावनया समुत्पादितप्रसादं चित्तं संप्रज्ञातादिसमाधियोग्यं संपद्यते। रागद्वेषावेव मुख्यतया विक्षेपमुत्पादयतः। तौ चेत्समूलमुन्मूलितौ स्यातां तदा प्रसन्नत्वान्मनसो भवत्येकाग्रता॥ ३३॥

उपायान्तरमाह—

भो० वृ० पदार्थ

(मैत्री सौहार्दम्) मैत्री सुहृदय भाव को कहते हैं, विना उपकार के मित्रता करने को सुहृदय भाव कहते हैं। (करुणा कृपा) करुणा का अर्थ कृपा है। (मुदिता हर्षः) मुदिता हर्ष को कहते हैं। (उपेक्षौदासीन्यम्) उपेक्षा उदासीनता को कहते हैं (एता यथाक्रमं) यह सब यथाक्रम (सुखितेषु दुःखितेषु पुण्यवत्सु अपुण्यवत्सु च विभावयेत्) सुखियों, दुःखियों, पुण्यात्मा, पुण्य रहित पुरुषों में भावना करे। (तथा हि) उसी प्रकार—(सुखितेषु साधु एषां सुखित्वम्) सुखी पुरुषों में इन पुरुषों को सुख है, बहुत अच्छा है (इति मैत्रीं कुर्यान्न तु ईर्ष्याम्) इस भाव से प्रिति करे किन्तु ईर्ष्या न करे। (दुःखितेषु कथं नु नामैषां दुःखनिवृत्तिः स्यादिति कृपामेव कुर्यान्न ताटस्थ्यम्) किसी प्रकार इन के दुःख की निवृत्ति हो इस प्रकार कृपा भाव ही करे, किन्तु उसके उपायों में स्वयं न फँस जावे। (पुण्यवत्सु पुण्यानुमोदनेन हर्षमेव कुर्यान्न तु किमेते पुण्यवन्त इति विद्वेषम्) पुण्यात्माओं में पुण्य की प्रसंशा करते हुए प्रसन्न होवे, किन्तु यह क्या पुण्य करने वाले हैं अर्थात् कुछ नहीं इस प्रकार द्वेष न करे। (अपुण्यवत्सु चौदासीन्यमेव भावयेन्नानुमोदनं न वा द्वेषम्) पापियों में उदासीन भाव रहे, उन के कर्मों का न अनुमोदन करे न विरोध करे। (सूत्रे सुख दुःखादिशब्दैस्तद्वन्तः प्रतिपादिताः) सूत्र

में सुख दुःखादि शब्दों से सुख दुःख वाले का प्रतिपादन किया है। (तदेवं मैत्र्यादिपरिकर्मणा चित्ते प्रसीदति) इस प्रकार मैत्री आदि कर्मों से चित्त प्रसन्न होता और (सुखेन समाधिराविर्भावो भवति) सुगमता से समाधि का लाभ होता है। (परिकर्म चैतद्बाह्यं कर्म) यह मैत्री आदि का परिकर्म तो बाह्य साधन है। (यथा गणिते मिश्रकादिव्यवहारो गणितनिष्पत्तये) जैसे गणित विद्या में जोड़ आदि का व्यवहार गणित निर्णय के लिये है (संकलितादिकर्मोपकारकत्वेन प्रधानकर्मनिष्पत्तये भवति) वह जोड़ादि कर्म उपकारक भाव से प्रधान कर्म की सिद्धि के लिये होते हैं (एवं द्वेषरागादिप्रतिपक्षभूतमैत्र्यादिभावनया समुत्पादितप्रसादं चित्तं संप्रज्ञातादिसमाधियोग्यं संपद्यते) इस प्रकार मैत्री आदि भावना द्वारा उत्पन्न हुई प्रसन्नता से द्वेष रागादि शत्रुओं का बाध होनेपर चित्त संप्रज्ञातादि समाधि की योग्यता को प्राप्त होता है। (रागद्वेषावेव मुख्यतया विक्षेपमुत्पादयतः) राग द्वेष दोनों मुख्यरूप से विक्षेप को उत्पन्न करते हैं (तौ चेत्समूलमुन्मूलितौ स्यातां) यदि राग द्वेष दोनों मूल से निर्मूल हो जावें (तदा प्रसन्नत्वान्मनसो भवत्येकाग्रता) तब प्रसन्नता वाला होने से मन एकाग्र हो जाता है ॥३३॥

(उपायान्तरमाह) अब अन्य उपाय कहते हैं—

प्रच्छर्दनविधारणाभ्यां वा प्राणस्य ॥ ३४ ॥

सू०—अथवा प्राणो के रेचक पूरकादि करने से चित्त एकाग्र होता है॥ ३४ ॥

व्या० भाष्यम्

कौष्ठ्यस्य वायोर्नासिकापुटाभ्यां प्रयत्नविशेषाद्वमनं प्रच्छर्दनं, विधारणं प्राणायामस्ताभ्यां वा मनसः स्थितिं संपादयेत् ॥ ३४ ॥

व्या० भा० पदार्थ

(कौष्ठ्यस्य वायोर्नासिकापुटाभ्यां प्रयत्नविशेषाद्वमनं प्रच्छर्दनं)

उदरस्थ वायु को नासिका के दोनों छिद्रों द्वारा विशेष प्रयत्न से बाहर निकालने को "प्रच्छर्दन" कहते हैं, (विधारणं प्राणायामः) बाहर के वायु को अन्दर धारण करना अर्थात् रोकना प्राणायाम कहलाता है (ताभ्यां वा मनसः स्थितिं संपादयेत्) अथवा इन दोनों के द्वारा मन की स्थिति सम्पादन करे ॥ ३४ ॥

भो० वृत्ति

प्रच्छर्दनं कौष्ठयस्य वायोः प्रयत्नविशेषान्मात्राप्रमाणेन बहिर्निःसारणम्। विधारणं मात्राप्रमाणेनैव प्राणस्य वायोर्बहिर्गतिविच्छेदः। स च द्वाभ्यां प्रकाराभ्यां बाह्यस्याभ्यन्तरापूरणेन पूरितस्य वा तत्रैव निरोधेन। तदेवं रेचकपूरककुम्भकभेदेन त्रिविधः प्राणायामश्चित्तस्य स्थितिमेकाग्रतया निबध्नाति, सर्वासामिन्द्रियवृत्तीनां प्राणवृत्तिपूर्वकत्वात्। मनः प्राणयोश्च स्वव्यापारे परस्परमेकयोगक्षेमत्वात्क्षीयमाणः प्राणः समस्तेन्द्रियवृत्तिनिरोधद्वारेण चित्तस्यैकाग्रतायां प्रभवति। समस्तदोषक्षयकारित्वं चास्याऽऽगमे श्रूयते। दोषकृताश्च सर्वा विक्षेपवृत्तयः। अतो दोषनिर्हरणद्वारेणाप्यस्यैकाग्रतायां सामर्थ्यम् ॥३४॥

इदानीमुपायान्तरप्रदर्शनोपक्षेपेण संप्रज्ञातस्य समाधेः पूर्वाङ्गं कथयति—

भो० वृ० पदार्थ

(प्रच्छर्दनं कौष्ठयस्य वायोः प्रयत्नविशेषान्मात्राप्रमाणेन बहिर्निःसारणम्) उदर के वायु को प्रयत्न विशेष से प्रमाणमात्र बाहर निकालना प्रच्छर्दन कहलाता है। (विधारणं मात्राप्रमाणेनैव प्राणस्य वायोर्बहिर्गति विच्छेदः) मात्रा प्रमाण से प्राण वायु की बहिर्गति का रोकना विधारण कहलाता है। (स च द्वाभ्यां प्रकाराभ्यां बाह्यस्याभ्यन्तरापूरणेन पूरितस्य) और वह बाह्य आभ्यन्तर दोनों प्रकारों से वा पूरण द्वारा पूरित का (वा तत्रैव विरोधेन) वहीं रोक देने से। (तदेवं रेचकपूरककुम्भकभेदेन त्रिविधः प्राणायामश्चित्तस्य स्थितिमेकाग्रतया निबध्नाति) इस प्रकार रेचक

पूरक और कुम्भक भेद से तीन प्रकार के प्राणायाम चित्त को एकाग्र करते हैं, (सर्वासामिन्द्रियवृत्तिनां प्राणवृत्तिपूर्वकत्वात्) सर्व इन्द्रियों की वृत्तियों के प्राणवृत्ति पूर्वक होने से । (मनः प्राणयोश्चस्वव्यापारे परस्परमेकयोगक्षेमत्वात्क्षीयमाणः प्राणः) मन और प्राण दोनों का अपने व्यापार में एक योगक्षेम के कारण प्राण निर्बल होने पर (समस्तेन्द्रियवृत्तिनिरोधद्वारेण) समस्त इन्द्रिय वृत्तियों के निरोध द्वारा (चित्तस्यैकाग्रतायां प्रभवति) चित्त की एकाग्रता में समर्थता होती है । (समस्तदोषक्षयकारित्वं चास्याऽऽगमे श्रूयते) समस्त दोषों का नाशकरनापन इस का वेद में सुना जाता है । (दोषकृताश्च सर्वा विक्षेपवृत्तयः) दोषों के कारण, सब विक्षेप वृत्ति उत्पन्न होती हैं । (अतो दोषनिर्हरणद्वारेणास्य स्यैकाग्रतायां सामर्थ्यम्) इस कारण दोषों के नाश द्वारा इस की एकाग्रता में सामर्थ्य होती है ॥ ३४ ॥

(इदानीमुपायान्तरप्रदर्शनोपक्षेपेण संप्रज्ञातस्य समाधेः पूर्वाङ्गं कथयति) अब अन्य उपायों के दिखलाने को व्यर्थ समझकर संप्रज्ञात समाधि के पूर्वाङ्ग का कथन करते हैं—

विषयवती वा प्रवृत्तिरुत्पन्ना मनसः स्थितिनिबन्धनी ॥ ३५ ॥

सू०—अथवा विषयवती प्रवृत्ति उत्पन्न हुई मन की स्थिति को बांधने वाली होती है ॥ ३५ ॥

व्या० भाष्यम्

नासिकाग्रे धारयतोऽस्य या दिव्यगन्धसंवित्सा गन्धप्रवृत्तिः । जिह्वाग्रे रससंवित् । तालुनि रूपसंवित् । जिह्वामध्ये स्पर्शसंवित् । जिह्वामूले शब्दसंविदित्येता वृत्तय उत्पन्नाश्चित्तं स्थितौ निबध्नन्ति, संशयं विधमन्ति, समाधिप्रज्ञायां च द्वारी भवन्तीति । एतेन चन्द्रादित्यग्रहमणिप्रदीपरश्म्यादिषु प्रवृत्तिरुत्पन्ना विषयवत्येव वेदितव्या । यद्यपि हि तत्तच्छास्त्रानुमानाचार्योपदेशैरवगतमर्थतत्त्वं सद्भूत-

मेव भवति, एतेषां यथाभूतार्थप्रतिपादनसामर्थ्यात्, तथाऽपि याव-देकदेशोऽपि कश्चिन्न स्वकरणसंवेद्यो भवति तावत्सर्वं परोक्षमिवाप-वर्गादिषु सूक्ष्मेष्वर्थेषु न दृढां बुद्धिमुत्पादयति। तस्माच्छास्त्रानुमा-नाचार्योपदेशोपोद्बलनार्थमेवावश्यं कश्चिदर्थविशेषः प्रत्यक्षीकर्त-व्यः। तत्र तदुपदिष्टार्थैकदेशप्रत्यक्षत्वे सति सर्वं सूक्ष्मविषयमपि आऽपवर्गाच्छ्रद्धीयते। एतदर्थमेवेदं चित्तपरिकर्म निर्दिश्यते। अनि-यतासु वृत्तिषु तद्विषयायां वशीकारसंज्ञायामुपजातायां समर्थं स्यात्त-स्य तस्यार्थस्य प्रत्यक्षीकरणायेति। तथा च सति श्रद्धावीर्यस्मृति-समाधयोऽस्याप्रतिबन्धेन भविष्यन्तीति ॥३५॥

व्या० भा० पदार्थ

(नासिकाग्रेधारयतोऽस्य या दिव्यगन्धसंवित्) नासिका के अग्र भाग में ध्यान करते हुए इस को जो सूक्ष्म गन्ध का ज्ञान होता है (सा गन्धप्रवृत्तिः) वह गन्ध प्रवृत्ति कहलाती है। इस ही प्रकार (जिह्वाग्रे रससंवित्) जिह्वा के अग्र भाग में रस का ज्ञान, (तालुनि रूपसंवित्) तालू में रूप का ज्ञान, (जिह्वामध्ये स्पर्शसंवित्) जिह्वा के मध्य में स्पर्श का ज्ञान, (जिह्वामूले शब्दसंवित्) जिह्वा के मूल में शब्द का ज्ञान (इत्येता वृत्तय उत्पन्नाश्चित्तं स्थितौ निबध्नन्ति) इस प्रकार यह प्रवृत्तियें उत्पन्न हुई चित्त की स्थिति को बांधती हैं। (संशयं विधमन्ति) संशय को नाश करती हैं, (समाधिप्रज्ञायां च द्वारी भवन्तीति) समाधि कालनी बुद्धि की उत्पत्ति में द्वार रूप होती हैं। (एतेन चन्द्रादित्यग्रहमणिप्रदीपर-श्म्यादिषु प्रवृत्तिरुत्पन्ना विषयवत्येव वेदितव्या) इस से ही चन्द्रमा, सूर्य्य, ग्रह, मङ्गलादि, मणि, दीपक की रश्मि, आदि में विषयवती प्रवृत्ति उत्पन्न हुई जानने योग्य है। (यद्यपि हि तत्तच्छास्त्रानुमाना-चार्योपदेशैरवगतमर्थतत्त्वं सद्भूतमेव भवति) यदि वह शास्त्र अनु-मान और आचार्य्य के उपदेश से प्राप्त हुआ अर्थ का तत्त्व सत्य

ही होता है, (एतेषां यथाभूतार्थं यावदेकदेशोऽपि कश्चिन्न स्वकरण-संवेद्यो भवति) इन का जैसा अर्थ है जब तक उस का कोई एक देश भी अपनी इन्द्रियों से जाना नहीं जाता (प्रतिपादनसामर्थ्यात् तथाऽपि) प्रतिपादन की सामर्थ्य से तब भी (तावत्सर्वं परोक्षमिवापवर्गादिषु सूक्ष्मेष्वर्थेषु न दृढां बुद्धिमुत्पादयति) तब तक परोक्ष के समान सब मोक्षादि सूक्ष्म विषयों में नहीं दृढ़ ज्ञान को उत्पन्न करता (तस्माच्छास्त्रानुमानाचार्योपदेशोपोद्बलनार्थमेवावश्यं कश्चिदर्थविशेषः प्रत्यक्षीकर्त्तव्यः) इस कारण शास्त्र, अनुमान, आचार्य्य के उपदेश से दृढ़ निश्चय के लिये अवश्य कोई एक विषय विशेष प्रत्यक्ष करना चाहिये । (तत्र तदुपदिष्टार्थैकदेशप्रत्यक्षत्वे सति सर्वं सूक्ष्मविषयमपि आऽपवर्गाच्छ्रद्धीयते) उन में से उस उपदेश किये हुए अर्थ के एक देश प्रत्यक्ष होने पर सब सूक्ष्म विषय अपवर्ग पर्यन्त में श्रद्धा की जाती है । (एतदर्थमेवेदं चित्तपरिकर्म निर्दिश्यते) इस कारण यह चित्त का परिकर्म निर्देश किया गया । (अनियतासु वृत्तिषु तद्विषयायां वशीकारसंज्ञायामुपजातायां समर्थं स्यात्) विक्षिप्त वृत्तियों में और उन के विषयों में उत्पन्न हुआ वशीकार नामवाला वैराग्य समर्थ होता है (तस्य तस्यार्थस्य प्रत्यक्षीकरणायेति) उस २ अर्थ के प्रत्यक्ष करने के लिये यह अभिप्राय है । (तथा च सति श्रद्धावीर्यस्मृतिसमाधयोऽस्याप्रतिबन्धेन भविष्यन्तीति) और वैसा होते हुए श्रद्धा, वीर्य्य, स्मृति तथा समाधि भी इस की निर्विघ्न अर्थात् बिना रुकावट होती हैं ॥ ३५ ॥

भो• वृत्ति

विषया गन्धरसरूपस्पर्शशब्दास्ते विद्यन्ते फलत्वेन यस्याः सा विषयवती प्रवृत्तिर्मनसः स्थैर्यं करोति । तथा हि नासाग्रे चित्तं धारयतो दिव्यगन्धसंविदुपजायते । तादृश्येव जिह्वाग्रे रससंवित् । ताल्वग्रे रूपसंवित् । जिह्वामध्ये स्पर्शसंवित् । जिह्वामूले शब्दसंवित् । तदेवं तत्तदिन्द्रियद्वारेण

तस्मिंस्तस्मिन्दिव्यविषये जायमाना संविच्चित्तस्यैकाग्रताया हेतुर्भवति। अस्ति योगस्य फलमिति योगिनः समाश्वासोत्पादनात् ॥ ३५ ॥

एवंविधमेवोपायान्तरमाह—

भो० वृ० पदार्थ

(विषया गन्धरसरूपस्पर्शशब्दाः) गन्ध, रस, रूप, स्पर्श, शब्द विषय हैं (ते विद्यन्ते फलत्वेन यस्याः सा विषयवती प्रवृत्तिः) वह पांचों हैं फल रूप जिस के वह विषयवती प्रवृत्ति है (मनसः स्थैर्यं करोति) वह मन को स्थिर करती है। (तथा हि) वैसे ही—(नासाग्रे चित्तं धारयतो दिव्यगन्धसंविदुपजायते) नासिका के अग्र भाग में चित्त वृत्ति को धारण करते हुए सूक्ष्म गन्ध का ज्ञान उत्पन्न होता है। (तादृश्येव जिह्वाग्रे रससंवित्) उस ही प्रकार जिह्वा के अग्र भाग में रस का ज्ञान होता है। (ताल्वग्रे रूपसंवित्) तालु के अग्र भाग में रूप का ज्ञान। (जिह्वामध्ये स्पर्शसंवित्) जिह्वा के मध्य में स्पर्श का ज्ञान (जिह्वा-मूले शब्दसंवित्) जिह्वा के मूल में शब्द का ज्ञान। (तदेवं तत्तदिन्द्रि-यद्वारेण तस्मिंस्तस्मिन्दिव्यविषये जायमाना संविच्चित्तस्यैकाग्रताया हेतु-र्भवति) इस प्रकार उस २ इन्द्रिय द्वारा उस २ दिव्य विषय का उत्पन्न हुआ वह ज्ञान चित्त की एकाग्रता का हेतु होता है। (अस्ति योगस्य फलमिति योगिनः समाश्वासोत्पादनात्) विश्वास उत्पन्न करने से योगी को योग का फल होता है ॥ ३५ ॥

(एवंविधमेवोपायान्तरमाह) इस ही प्रकार अन्य उपाय आगे कहते हैं—

विशोका वा ज्योतिष्मती ॥ ३६ ॥

सू०—अथवा शोक रहित ज्योतिष्मती प्रवृत्ति उत्पन्न हुई मन की स्थिति को बांधती है अर्थात् चित्त एकाग्र होता है ॥ ३६ ॥

व्या० भाष्यम्

प्रवृत्तिरुत्पन्ना मनसः स्थितिनिबन्धनीत्यनुवर्तते। हृदयपुण्डरीके

धारयतो या बुद्धिसंवित्, बुद्धिसत्त्वं हि भास्वरमाकाशकल्पं, तत्र स्थितिवैशारद्यात्प्रवृत्तिः "सूर्येन्दुग्रहमणिप्रभारूपाकारेण विकल्पते"। तथाऽस्मितायां समापन्नं चित्तं निस्तरङ्गमहोदधिकल्पं शान्तमनन्तमस्मितामात्रं भवति। यत्रेदमुक्तम्—"तमणुमात्रमात्मानमनुविद्यास्मीत्येवं तावत्संप्रजानीते" इति। एषा द्वयी विशोका विषयवती, अस्मितामात्रा च प्रवृत्तिर्ज्योतिष्मतीत्युच्यते। यया योगिनश्चित्तं स्थितिपदं लभत इति ॥ ३६ ॥

व्या० भा० पदार्थ

(प्रवृत्तिरुत्पन्ना मनसः स्थितिनिबन्धनीत्यनुवर्तते) प्रवृत्ति उत्पन्न हुई मन की स्थिरता को स्थिर करती है, यह पूर्व सूत्र से इस सूत्र में अनुवृत्ति आती है। (हृदयपुण्डरीके धारयतो या बुद्धिसंवित्) हृदय कमल में धारण करते हुए जो बुद्धि का ज्ञान, (बुद्धिसत्त्वं हि भास्वरमाकाशकल्पं) निश्चय सात्त्विक बुद्धि आकाश के समान प्रकाशवाली है, (तत्र स्थिति) उस में ठहराव (वैशारद्यात्प्रवृत्तिः) प्रकाश होने से प्रवृत्ति (सूर्येन्दुग्रहमणिप्रभारूपाकारेण विकल्पते) सूर्य, चन्द्र, ग्रह, मणि के प्रकाश समान बदल जाती है (तथाऽस्मितायां समापन्नं चित्तं निस्तरङ्गमहोदधिकल्पं शान्तमनन्तमस्मितामात्रं भवति) उसी प्रकार अस्मिता में लगाया हुआ चित्त शान्त अनन्त तरङ्ग रहित समुद्र के समान अस्मितामात्र होता है अर्थात् चित्त आत्मस्वरूपाकार होता है। (यत्रेदमुक्तम्) जिस में यह कहा है— (तमणुमात्रमात्मानमनुविद्यास्मीत्येवं) उस अणुमात्र अपने स्वरूप को जानकर यह मैं हूँ, यह मेरा स्वरूप है, इस प्रकार (तावत्संप्रजानीते) जब तक जानता है (इति एषा द्वयी विशोका विषयवती, अस्मितामात्रा च) इस प्रकार यह दूसरी शोक रहित विषयवाली और अस्मितामात्र (प्रवृत्तिर्ज्योतिष्मतीत्युच्यते) प्रवृत्ति ज्योति-

वाली इस कारण कही जाती है। (यया योगिनश्चित्तं स्थितिपदं लभत इति) जिस से योगी का चित्त एकाग्रता को प्राप्त होता है॥३६॥

भावार्थ

ज्योति का अर्थ ज्ञान का है, जिस कारण जीवात्मा ज्ञान स्वरूप है और इस सूत्र में उस के स्वरूप में प्रवृत्ति कही गई है, इसलिये इसका नाम "ज्योतिष्मती प्रवृत्ति" हुआ ॥ ३६ ॥

भो० वृत्ति

प्रवृत्तिरुत्पन्ना चित्तस्य स्थितिनिबन्धिनीति वाक्य शेषः। ज्योतिः शब्देन सात्त्विकः प्रकाश उच्यते। स प्रशस्तो भूयानतिशयवांश्च विद्यते यस्यां सा ज्योतिष्मती प्रवृत्तिः। विशोका विगतः सुखमयत्वाभ्यासवशा-च्छोको रजः परिणामो यस्याः सा विशोका चेतसः स्थितिनिबन्धिनी। अयमर्थः—हृत्पद्मसंपुटमध्ये प्रशान्तकल्लोलक्षीरोदधिप्रख्यं चित्तसत्त्वं भाव-यतः प्रज्ञालोकात्सर्ववृत्तिपरिक्षये चेतसः स्थैर्यमुत्पद्यते ॥ ३६ ॥

उपायान्तरप्रदर्शनद्वारेण संप्रज्ञातसमाधेर्विषयं दर्शयति—

भो० वृ० पदार्थ

(प्रवृत्तिरुत्पन्ना चित्तस्य स्थितिनिबन्धिनीति वाक्य शेष.) प्रवृत्ति उत्पन्न हुई चित्त की स्थिति को बांधने वाली होती है, इतना वाक्य सूत्र में शेष है सो लगाना चाहिये। (ज्योतिः शब्देन सात्त्विकः प्रकाश उच्यते) ज्योति शब्द से सात्त्विक प्रकाश को कहा जाता है। (स प्रशस्तो भूया-नतिशयवांश्च विद्यते यस्यां सा ज्योतिष्मती प्रवृत्तिः) वह सात्विक प्रकाश अधिक है जिसमें वह "ज्योतिष्मती प्रवृत्ति" कहलाती है। (विशोका विगतः सुखमयत्वाभ्यासवशाच्छोको रजः परिणामो यस्याः सा विशोका) दूर हो गया है सुखमय अभ्यास के वश से शोक अर्थात् रजोगुण का परि-णाम जिस का वह विशोका कही जाती है (चेतसः स्थितिनिबन्धिनी) वह चित्त की स्थिरता बांधनेवाली है। (अयमर्थः) यह अर्थ है—(हृत्पद्मसंपुट-

मध्ये प्रशान्तकल्लोलक्षीरोदधिप्रख्यं चित्तसत्त्वं भावयतः) हृदय कमल के मध्य में परम शान्त सुखमय दूध के समुद्र के समान सात्त्विक चित्त द्वारा विचार करते हुए (प्रज्ञालोकात्सर्ववृत्तिपरिक्षये चेतसः स्थैर्यमुत्पद्यते) ज्ञान के प्रकाश से सब वृत्तियों के क्षय होने पर चित्त एकाग्रता को प्राप्त हो जाता है । ज्ञान शब्द से अभिप्राय ज्ञानस्वरूप जीवात्मा से लेना चाहिये ॥ ३६ ॥

(उपायान्तरप्रदर्शनद्वारेण संप्रज्ञातसमाधेर्विषयं दर्शयति) अन्य उपायों के द्वारा संप्रज्ञात समाधि के विषय को आगे दिखलाया जाता है—

वीतरागविषयं वा चित्तम् ॥ ३७ ॥

सू०—अथवा राग रहित चित्त का विषय करने से चित्त एकाग्र होता है ॥ ३७ ॥

व्या० भाष्यम्

वीतरागचित्तालम्बनोपरक्तं वा योगिनश्चित्तं स्थितिपदं लभत इति ॥ ३७ ॥

व्या० भा० पदार्थ

(वीतरागचित्तालम्बनोपरक्तं वा) अथवा राग रहित चित्त का विषय करने से (योगिनश्चित्तं) योगी का चित्त (स्थितिपदं लभत इति) एकाग्रता को प्राप्त होता है ॥३७॥

भो० वृत्ति

मनसः स्थितिनिबन्धनं भवतीति शेषः । वीतरागः परित्यक्तविषयाभिलाषस्तस्य यच्चित्तं परिहृतक्लेशं तदालम्बनीकृतं चेतसः स्थितिहेतुर्भवति॥३७॥

एवंविधमुपायान्तरमाह—

भो० वृ० पदार्थ

(मनसः स्थितिनिबन्धनं भवतीति शेषः) मन की स्थिति को स्थिर

करने वाला होता है यह सूत्र में शेष है। (वीतरागः परित्यक्तविषयाभिलाषस्तस्य यच्चित्तं परिहृतक्लेशं तदालम्बनीकृतं चेतसः स्थितिहेतुर्भवति) वीतराग इस शब्द का अर्थ करते हैं, त्यागी है विषयों की अभिलाषा जिसने उस का जो चित्त क्लेशों को हरण किये हुए है वह आलम्बन किया हुआ, चित्त की स्थिति का हेतु होता है ॥ ३७ ॥

(एवंविधमुपायान्तरमाह) इसी प्रकार अन्य उपाय आगे कहते हैं-

स्वप्ननिद्राज्ञानालम्बनं वा ॥ ३८ ॥

सू०—अथवा स्वप्न, निद्रा ज्ञानालम्बन से भी चित्त एकाग्र होता ॥ ३८ ॥

व्या० भाष्यम्

स्वप्नज्ञानालम्बनं वा निद्राज्ञानालम्बनं वा तदाकरं योगिनश्चित्तं स्थितिपदं लभत इति ॥३८॥

व्या० भा० पदार्थ

(स्वप्नज्ञानालम्बनं वा) अथवा स्वप्नज्ञान (निद्राज्ञानालम्बनं वा) अथवा निद्राज्ञान का आलम्बन करने से (तदाकारं योगिनश्चित्तं स्थितिपदं लभत इति) उस के आकार को प्राप्त हुआ योगी का चित्त एकाग्रता को प्राप्त करता है ॥ ३८ ॥

भो० वृत्ति

प्रत्यस्तमितबाह्येन्द्रियवृत्तेर्मनोमात्रेणैव यत्र भोक्तृत्वमात्मनः स स्वप्नः। निद्रा पूर्वोक्तलक्षणा। तदालम्बनं स्वप्नालम्बनं निद्रालम्बनं वा ज्ञानमालम्ब्यमानं चेतसः स्थितिं करोति ॥ ३८ ॥

नानारुचित्वात्प्राणिनां यस्मिन्कस्मिंश्चिद्वस्तुनि योगिनः श्रद्धा भवति तस्य ध्यानेनाप्यभीष्टसिद्धिरिति प्रतिपादयितुमाह—

भो० वृ० पदार्थ

(प्रत्यस्तमितबाह्येन्द्रियवृत्तेर्मनोमात्रेणैव यत्र भोक्तृत्वमात्मनः स स्वप्नः)

इन्द्रियों की बाह्य वृत्ति लय होने पर केवल मन से जिस में आत्मा का भोक्तापन हो वह स्वप्न का लक्षण है । (निद्रा पूर्वोक्तलक्षण) और निद्रा का लक्षण पूर्व सूत्र १० में कह आये हैं । (तदालम्बनं स्वप्नालम्बनं निद्रालम्बनं वा) उन का आलम्बन स्वप्न और निद्रा के आलम्बन आकार (ज्ञानमालम्ब्यमानं) ज्ञान हुआ २ (चेतसः स्थितिं करोति) चित्त की एकाग्रता को सम्पादन करता है ॥३८॥

(नानारुचित्वात्प्राणिनां) प्राणियों की भिन्न २ रुचि होने के कारण (यस्मिन्कस्मिंश्चिद्वस्तुनि योगिनः श्रद्धा भवति) जिस किसी वस्तु में योगी की श्रद्धा हो (तस्यध्यानेनापीष्टसिद्धिः) उस के ध्यान से भी इष्ट सिद्धि होती है (इति प्रतिपादयितुमाह) यह प्रतिपादन करने को आगे कहते हैं—

यथाभिमतध्यानाद्वा ॥ ३९ ॥

सू०—अथवा उपरोक्त कथन किये हुए साधनों में से जो जिसको इष्ट हो उस ही के ध्यान से चित्त एकाग्र होता है ॥३९॥

व्या० भाष्यम्

यदेवाभिमतं तदेव ध्यायेत् । तत्र लब्धस्थितिकमन्यत्रापि स्थितिपदं लभत इति ॥३९॥

व्या० भा० पदार्थ

(यदेवाभिमतं तदेव ध्यायेत्) जो जिस को शास्त्रीय मर्यादा से इष्ट हो उस का ही ध्यान करे, जैसे कि शास्त्र तत्त्व विचारादि भी हैं । (तत्र लब्धस्थितिकमन्यत्रापि स्थितिपदं लभत इति) उन में एकाग्रता को प्राप्त हुआ चित्त अन्य ध्येय में भी एकाग्रता को प्राप्त होता है ॥३९॥

भो० वृत्ति

यथाभिमतवस्तुनि बाह्ये चन्द्रादावाभ्यन्तरे नाडीचक्रादौ वा भाव्यमाने चेतः स्थिरीभवति ॥३९॥

एवमुपायान्प्रदर्श्य फलदर्शनायाऽऽह—

भो० वृ० पदार्थ

(यथाभिमतवस्तुनि) इष्ट वस्तु में (बाह्ये चन्द्रादावाभ्यन्तरे नाडी-चक्रादौ वा) बाह्य चन्द्रादि में अथवा अन्दर नाड़ी चक्रादि में (भाव्यमाने चेतः स्थिरीभवति) लगाया हुआ चित्त स्थिर होता है ॥३९॥

(एवमुपायान्प्रदर्श्य फलदर्शनायाऽऽह) इस प्रकार उपायों को दिखलाकर आगे फल दिखलाते हैं—

परमाणुपरममहत्त्वान्तोऽस्य वशीकारः ॥ ४० ॥

सू०—अति सूक्ष्म परमाणुओं से लेकर अति महान् आकाश पर्यन्त इस एकाग्रचित्त का वशीकार है ॥ ४० ॥

व्या० भाष्यम्

सूक्ष्मे निविशमानस्य परमाण्वन्तं स्थितिपदं लभत इति । स्थूले निविशमानस्य परममहत्त्वान्तं स्थितिपदं चित्तस्य । एवं तामुभयीं कोटिमनुधावतो योऽस्याप्रतीघातः स परो वशीकारः । तद्वशीकारात्परिपूर्णं योगिनश्चित्तं न पुनरभ्यासकृतं परिकर्मापेक्षत इति ॥४०॥

अथ लब्धस्थितिकस्य चेतसः किंस्वरूपा किंविषया वा समापत्तिरिति, तदुच्यते—

व्या० भा० पदार्थ

(सूक्ष्मे) सूक्ष्म विषय में (निविशमानस्य) प्रवेश किया हुआ चित्त (परमाण्वन्तं स्थितिपदं लभत इति) परमाणु पर्यन्त एकाग्रता को लाभ करता है । (स्थूले निविशमानस्य परममहत्त्वान्तं स्थितिपदं चित्तस्य) स्थूल पदार्थ में प्रवेश किया हुआ चित्त अति महान् आकाशादि पर्यन्त स्थिति को पाता है । (एवं तामुभयीं कोटिमनुधावतो योऽस्याप्रतीघातः स परो वशीकारः) इस प्रकार दोनों कोटियों में जाता हुआ चित्त जो इस का रुकाव न होना वह परमवशीकार कहलाता है । (तद्वशीकारात्परिपूर्णं योगिनश्चित्तं)

उस के वशीकार से परिपूर्ण हुआ योगी का चित्त (न पुनरभ्यासकृतं परिकर्मापेक्षत इति) पुनः किसी उपाय के करने की आवश्यक्ता नहीं रखता ॥ ४० ॥

(अथ लब्धस्थितिकस्य चेतसः) अब एकाग्र हुए चित्त की (किंस्वरूपा) किस स्वरूपवाली ? (किंविषया वा समापत्तिरिति तदुच्यते) किस विषयवाली ? कैसी समापत्ति होती है ? वह आगे कहा जाता है—

भो० वृत्ति

एभिरुपायैश्चित्तस्य स्थैर्यं भावयतो योगिनः सूक्ष्मविषयभावनाद्वारेण परमाण्वन्तो वशीकारोऽप्रतिघातरूपो जायते, न क्वचित्परमाणुपर्यन्ते सूक्ष्मे विषयेऽस्य मनः प्रतिहन्यत इत्यर्थः । एवं स्थूलमाकाशादिपरममहत्पर्यन्तं भावयतो न क्वचिच्चेतसः प्रतिघात उत्पद्यते सर्वत्र स्वातन्त्र्यं भवतीत्यर्थः॥४०॥

एवमेभिरुपायैः संस्कृतस्य चेतसः कीदृग्रूपं भवतीत्याह—

भो० वृ० पदार्थ

(एभिरुपायैश्चित्तस्य स्थैर्यं भावयतो योगिनः) इन उपायों से योगी के एकाग्रता को प्राप्त हुए चित्त में (सूक्ष्मविषयभावनाद्वारेण) सूक्ष्म विषय के विचार द्वारा (परमाण्वन्तो वशीकारोऽप्रतिघातरूपो जायते) परमाणु पर्यन्त वशीकार अर्थात् न रुकना उत्पन्न होता है, (न क्वचित्परमाणुपर्यन्ते सूक्ष्मे विषयेऽस्य मनः प्रतिहन्यत इत्यर्थः) सूक्ष्म विषय में इस योगी का मन परमाणु पर्यन्त कहीं भी उल्टा नहीं लोटता, यह अर्थ है । (एवं स्थूलमाकाशादिपरममहत्पर्यन्तं भावयतः) इस ही प्रकार स्थूल विषय में अति महान् आकाशादि पर्यन्त विचार करते हुए (न क्वचिच्चेतसः प्रतिघात उत्पद्यते) कहीं चित्त की गति नहीं रुकती (सर्वत्र स्वातन्त्र्यं भवतीत्यर्थः) सर्वत्र स्वतन्त्र होता है, यह अर्थ है ॥ ४० ॥

(एवमेभिरुपायैः) इस प्रकार इन उपायों द्वारा (संस्कृतस्य चेतसः)

शुद्ध किये हुए चित्त का (किंरूपं भवतीत्याह) कैसा स्वरूप होता है सो आगे कहते हैं—

क्षीणवृत्तेरभिजातस्येव मणेर्ग्रहीतृग्रहणग्राह्येषु तत्स्थतदञ्जनता समापत्तिः ॥ ४१ ॥

सू०—नष्ट हो गई हैं सर्व वृत्तियें जिसकी उस योगी के चित्त की निर्मल स्फटिक मणि के समान ग्रहीता = जीवात्मा और ग्रहण शक्ति = बुद्धि और ग्राह्य = विषय इन तीनों में एकाग्रता और तद्रूपता प्राप्त होती है ॥ ४१ ॥

व्या० भाष्यम्

क्षीणवृत्तेरिति प्रत्यस्तमितप्रत्ययस्येत्यर्थः । अभिजातस्येव मणेरिति दृष्टान्तोपादानम् । यथा स्फटिक उपाश्रयभेदात्तत्तद्रूपोपरक्त उपाश्रयरूपाकारेण निर्भासते तथा ग्राह्यालम्बनोपरक्तं चित्तं ग्राह्यसमापन्नं ग्राह्यस्वरूपाकारेण निर्भासते । तथा भूतसूक्ष्मोपरक्तं भूतसूक्ष्मसमापन्नं भूतसूक्ष्मस्वरूपाभासं भवति । तथा स्थूलालम्बनोपरक्तं स्थूलरूपसमापन्नं स्थूलरूपाभासं भवति । तथा विश्वभेदोपरक्तं विश्वभेदसमापन्नं विश्वरूपाभासं भवति ।

तथा ग्रहणेष्वपीन्द्रियेषु द्रष्टव्यम् । ग्रहणालम्बनोपरक्तं ग्रहणसमापन्नं ग्रहणस्वरूपाकारेण निर्भासते । तथा ग्रहीतृपुरुषालम्बनोपरक्तं ग्रहीतृपुरुषसमापन्नं ग्रहीतृपुरुषस्वरूपाकारेण निर्भासते । तथा मुक्तपुरुषालम्बनोपरक्तं मुक्तपुरुषसमापन्नं मुक्तपुरुषस्वरूपाकारेण निर्भासते । तदेवमभिजातमणिकल्पस्य चेतसो ग्रहीतृग्रहणग्राह्येषु पुरुषेन्द्रियभूतेषु या तत्स्थतदञ्जनता तेषु स्थितस्य तदाकारापत्तिः सा समापत्तिरित्युच्यते ॥ ४१ ॥

व्या० भा० पदार्थ

(क्षीणवृत्तेरिति प्रत्यस्तमितप्रत्ययस्येत्यर्थः) क्षीण हो गई हैं

वृत्तियें जिस की अर्थात् लय हो गई हैं वृत्तियें जिसकी यह अर्थ है। (अभिजातस्येव मणेरिति दृष्टान्तोपादानम्) निर्मल स्फटिक मणि के समान इस से सूत्र में दृष्टान्त का ग्रहण है। (यथा स्फटिक उपाश्रयभेदात्तत्तद्रूपोपरक्त उपाश्रयरूपाकारेण निर्भासते) जैसे स्फटिक मणि उपाश्रय के भेद से उस २ रूप से उपरक्त हुई उपाश्रय के स्वरूपाकार से भासित होती है (तथा ग्राह्यालम्बनोपरक्तं चित्तं ग्राह्यसमापन्नं ग्राह्यस्वरूपाकारेण निर्भासते) उस ही प्रकार चित्त ग्राह्य के आश्रय से उपराग को प्राप्त होकर ग्राह्य को प्राप्त हुआ ग्राह्यस्वरूपाकार से भासित होता है। (तथा भूतसूक्ष्मोपरक्तं भूतसूक्ष्मसमापन्नं भूतसूक्ष्मस्वरूपाभासं भवति) ऐसे ही सूक्ष्म भूतों से उपराग को प्राप्त होकर चित्त सूक्ष्म भूतों को प्राप्त हुआ सूक्ष्म भूतों के स्वरूप को प्रकाशित करता है। (तथा स्थूलालम्बनोपरक्तं स्थूलरूपसमापन्नं स्थूलरूपाभासं भवति) उसी प्रकार स्थूल आश्रय से उपराग को प्राप्त होकर स्थूल स्वरूप को प्राप्त हुआ अर्थात् स्थूलरूप में परिणाम को प्राप्त हुआ, स्थूलरूप से भासित होता है। (तथा विश्वभेदोपरक्तं विश्वभेदसमापन्नं विश्वरूपाभासं भवति) उसी प्रकार विश्व के भेद से उपराग को प्राप्त होकर विश्व भेद को प्राप्त हुआ विश्वरूप से भासित होता है।

(तथा ग्रहणेष्वपीन्द्रियेषु द्रष्टव्यम्) इस ही प्रकार ग्रहणरूप इन्द्रियों में भी जानना चाहिये। (ग्रहणालम्बनोपरक्तं ग्रहणसमापन्नं ग्रहणस्वरूपाकारेण निर्भासते) ग्रहणशक्ति अर्थात् बुद्धि के आश्रय से उपराग को प्राप्त होकर चित्त ग्रहणशक्ति को प्राप्त हुआ, ग्रहण स्वरूप के आकार से भासित होता है। (तथा ग्रहीतृपुरुषालम्बनोपरक्तं ग्रहीतृपुरुषसमापन्नं ग्रहीतृपुरुषस्वरूपाकारेण निर्भासते) उसी प्रकार ग्रहण करने वाले पुरुष जीवात्मा के आश्रय से उपराग को प्राप्त होकर, ग्रहण करने वाले पुरुष जीवात्मा के स्वरूप समान परिणाम को प्राप्त हुआ, ग्रहण करने वाले पुरुष जीवात्मा

के स्वरूपाकार से भासित होता है। (तथा मुक्तपुरुषालम्बनोपरक्तं मुक्तपुरुषसमापन्नं मुक्तपुरुषस्वरूपाकारेण निर्भासते) उसी प्रकार मुक्त पुरुष के आश्रय से उपराग को प्राप्त होकर, मुक्त पुरुष को प्राप्त हुआ अर्थात् मुक्त पुरुष स्वरूप समान परिणाम को प्राप्त हुआ चित्त मुक्तपुरुष स्वरूपाकार से भासित होता है, यह सारांश है। (तदेवमभिजातमणिकल्पस्य चेतसो ग्रहीतृग्रहणग्राह्येषु पुरुषेन्द्रियभूतेषु) वह चित्त इस प्रकार स्फटिकमणि के समान शुद्ध हुआ ग्रहीता ग्रहण तथा ग्राह्य में अर्थात् पुरुष इन्द्रिय और भूतों में (या तत्स्थतदञ्जनता तेषु स्थितस्य तदाकारापत्तिः सा समापत्तिरित्युच्यते) जो उन में चित्त का ठहराव और उन के रूप में परिणाम होना उन में ठहरे हुए तथा उनके आकार की प्राप्ति वह समापत्ति कहलाती है॥ ४१॥

भो० वृत्ति

क्षीणा वृत्तयो यस्य तत्क्षीणवृत्ति तस्य ग्रहीतृग्रहणग्राह्येषु आत्मेन्द्रियविषयेषु तत्स्थतदञ्जनता समापत्तिर्भवति। तत्स्थत्वं तत्रैकाग्रता, तदञ्जनता तन्मयत्वं, क्षीणभूते चित्ते विषयस्य भाव्यमानस्यैवोत्कर्षः, तथाविधा समापत्तिः, तद्रूपः परिणामो भवतीत्यर्थः। दृष्टान्तमाह—अभिजातस्येव मणेर्यथाऽभिजातस्य निर्मलस्य स्फटिकमणेस्तत्तदुपाधिवशात्तत्तद्रूपापत्तिरेवं निर्मलस्य चित्तस्य तत्तद्भावनीयवस्तूपरागात्तत्तद्रूपापत्तिः। यद्यपि ग्रहीतृग्रहणग्राह्येषु इत्युक्तं तथाऽपि भूमिकाक्रमवशाद्ग्राह्यग्रहणग्रहीतृषु इति बोध्यम्। यतः प्रथमं ग्राह्यनिष्ठ एव समाधिस्ततो ग्रहणनिष्ठस्ततोऽस्मितामात्ररूपो ग्रहीतृनिष्ठः, केवलस्य पुरुषस्य ग्रहीतुर्भाव्यत्वासंभवात्। ततश्च स्थूलसूक्ष्मग्राह्योपरक्तं चित्तं तत्र समापन्नं भवति। एवं ग्रहणे ग्रहीतरि च समापन्नं तद्रूपपरिणामत्वं बोद्धव्यम्॥ ४१॥

इदानीमुक्ताया एव समापत्तेश्चातुर्विध्यमाह—

भो० वृ० पदार्थ

(क्षीणा वृत्तयो यस्य तत्क्षीणवृत्ति) क्षीण हो गई हैं वृत्तियें जिस चित्त की वह क्षीण वृत्ति का अर्थ है (तस्य ग्रहीतृग्रहणग्राह्येषु आत्मेन्द्रियविषयेषु तत्स्थतदञ्जनता समापत्तिर्भवति) उस की ग्रहीता अर्थात् ग्रहण करने वाले, ग्रहण, ग्राह्य में अर्थात् आत्मा बुद्धि और विषयों में एकाग्रता तद्रूपतावाली समापत्ति होती है । (तत्स्थत्वं तत्रैकाग्रता) उसमें ठहरना उसमें एकाग्रता होना है, (तदञ्जनता तन्मयत्वं) तद्रूपता तन्मयता है, (क्षीणभूते चित्ते विषयस्य भाव्यमानस्यैवोत्कर्षः) वृत्ति रहित चित्त में विचारणीय विषयों की उत्कृष्टता होती है, (तथाविधा समापत्तिः) उस प्रकार की समापत्ति, (तद्रूपः परिणामो भवतीत्यर्थः) उस के स्वरूप समान परिणाम होता है, यह अर्थ है । (दृष्टान्तमाह) दृष्टान्त कहते हैं—(अभिजातस्येव मणेः) निर्मल स्फटिक मणि के समान (यथाऽभिजातस्य निर्मलस्य स्फटिकमणेस्तत्तदुपाधिवशात्तत्तद्रूपापत्तिः) जिस प्रकार निर्मल स्फटिक मणि उस २ उपाधि के वश से उस २ रूप को प्राप्त होती है । जैसे मणि के नीचे रक्खे हुए लाल और पीले दो पुष्प बीच में खाली छोड़ी हुई लाल पीले पुष्पों के रूप से और जहां खाली है वहां मणि अपने रूप से श्वेत भासित होती है । इस ही प्रकार चित्त ग्राह्य विषय और ग्रहण करने वाले पुरुष और अपने ग्रहण स्वरूप से भासित होता है, यह अभिप्राय है (एवं निर्मलस्य चित्तस्य तत्तद्भावनीयवस्तूपरागात्तत्तद्रूपापत्तिः) इसी प्रकार निर्मल चित्त में उस २ विचारणीय वस्तु के उपराग से उस २ रूप की प्राप्ति होती है । (यद्यपि ग्रहीतृग्रहणग्राह्येषु इत्युक्तं) यद्यपि सूत्र में ग्रहीता, ग्रहण, ग्राह्य इस क्रम से लिखा है (तथाऽपि भूमिकाक्रमवशाद्ग्राह्यग्रहणग्रहीतृषु इति बोध्यम्) तो भी भूमिका के क्रम अनुसार ग्राह्य = विषय और ग्रहण = बुद्धि और ग्रहीता = पुरुष में इस प्रकार जानना चाहिये (यतः प्रथमं ग्राह्यनिष्ठ एव समाधिः) जिस कारण कि प्रथम समाधि ग्राह्य विषय विषयक ही

होती है (ततो ग्रहणनिष्ठस्ततोऽस्मितामात्ररूपो ग्रहीतृनिष्ठः) उसके पश्चात् ग्रहण अर्थात् बुद्धि विषयक उस के पश्चात् अस्मितामात्ररूप जीवात्म स्वरूप विषयक होती है, (केवलस्य पुरुषस्य ग्रहीतुर्भाव्यत्वासंभवात्) केवल ग्रहीता पुरुष के स्वरूप में विचारणीयत्व के असंभव होने से अर्थात् अस्मिता यह मैं हूँ, यह मेरा स्वरूप है, इस भाव के विना धारण किये जीवात्मा से अपना स्वरूप ग्रहण नहीं हो सक्ता। (ततश्च स्थूलसूक्ष्म-ग्राह्योपरक्तं चित्तं तत्र समापन्नं भवति) इस कारण स्थूल, सूक्ष्म, ग्रहण करने योग्य विषयों में उपराग को प्राप्त हुआ चित्त उन में प्रथम समापत्ति वाला होता है। (एवं ग्रहणे ग्रहीतरि च समापन्नं तद्रूपपरिणामत्वं बोद्धव्यम्) इस ही प्रकार पश्चात् ग्रहण तत्पश्चात् ग्रहीता को प्राप्त होकर उन के रूप में परिणाम हो जाने का धर्म चित्त में जानने योग्य है ॥४१॥

(इदानीमुक्ताया एव समापत्तेश्चातुर्विध्यमाह) अब ऊपर कही समापत्तियों के चार भेदों को कहते हैं—

तत्र शब्दार्थज्ञानविकल्पैः संकीर्णा सवितर्का समापत्तिः ॥ ४२ ॥

सू०—उन समापत्तियों में शब्द और उसका अर्थ और उसका ज्ञान इन तीन भेदों से मिली हुई "सवितर्क" समाधि होती है ॥ ४२ ॥

व्या० भाष्यम्

तद्यथा, गौरितिशब्दो गौरित्यर्थो गौरिति ज्ञानमित्यविभागेन विभक्तानामपि ग्रहणं दृष्टम्। विभज्यमानाश्चान्ये शब्दधर्मा अन्येऽर्थधर्मा अन्ये ज्ञानधर्मा इत्येतेषां विभक्तः पन्थाः। तत्र समापन्नस्य योगिनो यो गवाद्यर्थ समाधिप्रज्ञायां समारूढः स चेच्छब्दार्थज्ञान-विकल्पानुविद्ध उपावर्तते सा संकीर्णा समापत्तिः सवितर्केत्युच्यते।

यदा पुनः शब्दसंकेतस्मृतिपरिशुद्धौ श्रुतानुमानज्ञान विकल्पशून्यायां समाधिप्रज्ञायां स्वरूपमात्रेणावस्थितोऽर्थस्तत्स्वरूपाकारमात्रत-

यैवावच्छिद्यते। सा च निर्वितर्का समापत्तिः। तत्परं प्रत्यक्षम्। तच्च श्रुतानुमानयोर्बीजम्। ततः श्रुतानुमाने प्रभवतः। न च श्रुतानुमानज्ञानसहभूतं तद्दर्शनम्। तस्मादसंकीर्णं प्रमाणान्तरेण योगिनो निर्वितर्कसमाधिजं दर्शनमिति ॥ ४२ ॥

निर्वितर्कायाः समापत्तेरस्याः सूत्रेण लक्षणं द्योत्यते—

व्या० भा० पदार्थ

(तद्यथा गौरितिशब्दः) उस विषय में जैसे "गौ" यह शब्द और (गौरित्यर्थः) "गौ" यह पशु विशेष उस का अर्थ (गौरिति ज्ञानम्) और "गौ" अर्थात् इस पशु का गौ नाम है यह ज्ञान (इति अविभागेन विभक्तानामपि ग्रहणं दृष्टम्) इन तीनों का भिन्न होते हुए भी एकत्र रूप से ग्रहण होना देखा गया। (विभज्यमानाश्चान्ये शब्दधर्मा अन्येऽर्थधर्मा अन्ये ज्ञानधर्माः) शब्द के धर्म अन्य भेद को प्राप्त हुए हैं, अर्थ के धर्म अन्य हैं, ज्ञान के भिन्न हैं, (इति एतेषां विभक्त पन्थाः) अतः इन तीनों का भिन्न २ मार्ग है। (तत्र समापन्नस्य योगिनो यो गवाद्यर्थः) उन में समापत्ति वाले योगी को जो "गौ" आदि विषय हैं (समाधिप्रज्ञायां) यदि वह समाधि की बुद्धि में (समारूढः स चेच्छब्दार्थज्ञानविकल्पानुविद्ध उपावर्तते) आरूढ़ हुआ शब्द, अर्थ, और ज्ञान के भेद सहित वर्तता है (सा सङ्कीर्णा समापत्तिः सवितर्केत्युच्यते) वह संकीर्णा समापत्ति सवितर्क नाम से कही जाती है।

(यदा पुनः शब्दसंकेतस्मृतिपरिशुद्धौ) जब पुनः शब्द के संकेतवाली स्मृति शुद्ध होने पर (श्रुतानुमानज्ञानविकल्पशून्यायां समाधिप्रज्ञायां स्वरूपमात्रेणावस्थितोऽर्थः) श्रुत अनुमान ज्ञान की कल्पना से शून्य समाधिस्थ बुद्धि में स्वरूपमात्र से ठहरा हुआ अर्थ (तत्स्वरूपाकारमात्रतयैवावच्छिद्यते) उस के स्वरूपाकारमात्र से ही भासित होता है, विकल्प रूप से नहीं कटता। (सा च निर्वितर्का

समापत्तिः) वह निर्वितर्क समाधि कहलाती है। (तत्परंप्रत्यक्षम्) वह परं प्रत्यक्ष है। (तच्च श्रुतानुमानयोर्बीजम्) वह श्रुत और अनुमान ज्ञान का बीज है अर्थात् उस यथार्थ वस्तु के स्वरूपाधार से ही शास्त्र कहता और अनुमान किया जाता है। (ततः श्रुतानुमाने प्रभवतः) उस से ही श्रुत और अनुमान ज्ञान उत्पन्न होते हैं। (न च श्रुतानुमानज्ञानसहभूतं तद्दर्शनम्) श्रुत और अनुमान ज्ञान के साथ २ वर्तते हुए वह दर्शन नहीं होता * (तस्मादसंकीर्णं प्रमाणान्तरेण योगिनो निर्वितर्कसमाधिजं दर्शनमिति) इस कारण योगी को निर्वितर्क समाधि से उत्पन्न हुआ दर्शन दूसरे प्रमाणों से असम्बद्ध होता है ॥४२॥

(निर्वितर्कायाः समापत्तेरस्याः सूत्रेण लक्षणं द्योत्यते) इस निर्वितर्क समापत्ति का लक्षण अगले सूत्र से प्रकाशित करते हैं—

भो० वृत्ति

श्रोत्रेन्द्रियग्राह्यः स्फोटरूपो वा शब्दः। अर्थो जात्यादिः। ज्ञानं सत्त्वप्रधाना बुद्धिवृत्तिः। विकल्प उक्तलक्षणः। तैः संकीर्णा यस्यामेते शब्दादयः परस्पराध्यासेन प्रतिभासन्ते गौरिति शब्दो गौरित्यर्थो गौरिति ज्ञानमित्यनेनाऽऽकारेण सा सवितर्का समापत्तिरुच्यते ॥४२॥

उक्तलक्षणविपरीतां निर्वितर्कामाह—

भो० वृ० पदार्थ

(श्रोत्रेन्द्रियग्राह्यः स्फोटरूपो वा शब्दः) कर्णेन्द्रिय से ग्रहण करने योग्य अथवा अक्षरों की विशेष योजनारूप शब्द है। (अर्थो जात्यादिः) अर्थ जाति आदि को कहते हैं। (ज्ञानं सत्त्वप्रधाना बुद्धिवृत्तिः) सत्त्व गुण प्रधान हो जिस में ऐसी बुद्धि की वृत्ति को ज्ञान कहते हैं। (विकल्प

* श्रुत और अनुमान ज्ञान के आश्रित वस्तु नहीं होती, किन्तु वस्तु के आश्रित श्रुत और अनुमान ज्ञान होता है।

उक्तलक्षणः) विकल्प का लक्षण पूर्व कह चुके हैं । (तैः संकीर्णा यस्यामेते शब्दादयः) जिस में यह शब्दादि मिले हुए हों (परस्पराध्यासेन प्रतिभासन्ते) एक दूसरे के अध्यास से भासित होते हैं कि (गौरिति शब्दो गौरित्यर्थो गौरिति ज्ञानमित्यनेनाऽऽकारेण सा सवितर्का समापत्तिरुच्यते) "गौ" यह शब्द "गौ" यह पशु विशेष अर्थ "गौ" यह ज्ञान इस आकार से भासित होते हों वह "सवितर्क" समापत्ति कही जाती है ॥४२॥

(उक्तलक्षणविपरीतां निर्वितर्कामाह) ऊपर कहे लक्षण से विपरीत लक्षणवाली निर्वितर्क समाधि को आगे कहते हैं—

स्मृतिपरिशुद्धौ स्वरूपशून्येवार्थमात्रनिर्भासा निर्वितर्का ॥ ४३ ॥

सू०—स्मृति शुद्ध होने पर बुद्धि अपने स्वरूप से शून्य के समान अर्थमात्र को भासित करने वाली निर्वितर्क समाधि कहलाती है ॥ ४३ ॥

व्या० भाष्यम्

या शब्दसंकेतश्रुतानुमानज्ञानविकल्पस्मृतिपरिशुद्धौ ग्राह्यस्वरूपोपरक्ता प्रज्ञा स्वमिव प्रज्ञास्वरूपं ग्रहणात्मकं त्यक्त्वा पदार्थमात्रस्वरूपा ग्राह्यस्वरूपापन्नेव भवति सा निर्वितर्का समापत्तिः ।

तथा च व्याख्यातम्—तस्या एकबुद्ध्युपक्रमो ह्यर्थात्माऽणुप्रचयविशेषात्मा गवादिर्घटादिर्वा लोकः ।

स च संस्थानविशेषो भूतसूक्ष्माणां साधारणो धर्म आत्मभूतः फलेन व्यक्तेनानुमितः स्वव्यञ्जकाञ्जनः प्रादुर्भवति । धर्मान्तरस्य कपालादेरुदये च तिरो भवति । स एष धर्मोऽवयवीत्युच्यते । योऽसावेकश्च महांश्चाणीयांश्च स्पर्शवांश्च क्रियाधर्मकश्चानित्यश्च तेनावयविना व्यवहाराः क्रियन्ते ।

यस्य पुनरवस्तुकः स प्रचयविशेषः सूक्ष्मं च कारणमनुपलभ्य-

सविकल्पस्य तस्यावयव्यभावादतद्रूपप्रतिष्ठं मिथ्याज्ञानमिति प्रायेण सर्वमेव प्राप्तं मिथ्याज्ञानमिति।

तदा च सम्यग्ज्ञानमपि किं स्याद्विषयाभावात्। यद्यदुपलभ्यते तत्तदवयवित्वेनाऽऽम्नातम्। तस्मादस्त्यवयवी यो महत्त्वादिव्यवहारापन्नः समापत्तेर्निर्वितर्काया विषयी भवति॥ ४३॥

व्या० भा० पदार्थ

(या शब्दसंकेतश्रुतानुमानज्ञानविकल्प) श्रुत और अनुमान ज्ञान जो शब्द और अर्थ के संकेत से कल्पना वाला होता है (स्मृतिपरिशुद्धौ) वह स्मृति शुद्ध होने पर, इस का अभिप्राय यह है कि पूर्वोक्त शब्दार्थ की कल्पना सहित समाधि का अभ्यास करते हुए जब अर्थ के स्वरूप का साक्षात् ज्ञान हो जाता है, तब बिना शब्दार्थ की कल्पना से योगी उस को जानने लगता है, वह स्मृति शुद्ध कहलाती है। उस स्मृति के शुद्ध होने पर (ग्राह्यस्वरूपोपरक्ता प्रज्ञा) बुद्धि ग्राह्य के स्वरूप से उपराग को प्राप्त हुई (स्वमिव प्रज्ञास्वरूपं ग्रहणात्मकं त्यक्त्वा) ग्रहणात्मक बुद्धि के स्वरूप को बुद्धि स्वयं ही त्याग कर (पदार्थमात्रस्वरूपा) पदार्थ मात्र के स्वरूप वाली (ग्राह्यस्वरूपापन्नेव भवति) ग्राह्य के स्वरूप को प्राप्त होती है (सा निर्वितर्का समापत्तिः) वह निर्वितर्का समापत्ति कहलाती है॥ ४३॥

सूचना

यहां तक व्यास देव जी का भाष्य समाप्त हो चुका आगे किसी नवीन वेदान्ती आदि का मन घड़त वृथा प्रलाप सूत्र के अभिप्राय से असम्बद्ध बढ़ाया हुआ मालूम होता है। जैसा कि हम भूमिका में जतला चुके हैं इसलिये उस का अर्थ नहीं किया गया, मूल में वह सब है, बुद्धिमान् उस को विचार लेवें, भोज वृत्ति में भी उतना ही भाष्य माना है जो हमने लिया है। आगे के मिथ्या

प्रलाप पर उन्होंने भी कुछ नहीं लिखा सूत्र तो शब्दार्थ संकेत की कल्पना से रहित समाधि के स्वरूप को कहता है और यह कोई स्थूल सूक्ष्म पदार्थों की असम्बद्ध कल्पना करता है ॥ ४३ ॥

भो० वृत्ति

शब्दार्थस्मृतिप्रविलये सति प्रत्युदितस्पष्टग्राह्याकारप्रतिभासितया न्यग्भूतज्ञानांशत्वेन स्वरूपशून्येव निर्वितर्का समापत्तिः ॥ ४३ ॥

भेदान्तरं प्रतिपादयितुमाह—

भो० वृ० पदार्थ

(शब्दार्थस्मृतिप्रविलये सति) शब्द और उस के अर्थ की स्मृति लय होने पर (प्रत्युदितस्पष्टग्राह्याकारप्रतिभासितया) स्पष्ट ग्राह्याकार से भासित होने वाली बुद्धि से जब ज्ञान उदय होता है (न्यग्भूतज्ञानांशत्वेन स्वरूपशून्येव) ज्ञानांश रूप की पृथक्ता वाले स्वरूप से शून्य के समान जब बुद्धि होती है (निर्वितर्का समापत्तिः) वह निर्वितर्क समापत्ति कहलाती है अर्थात् जब त्रिपुटी रूप ज्ञान नष्ट होकर केवल ध्येय मात्र का ज्ञान रह जाता है वह समापत्ति "निर्वितर्क" समाधि कहलाती है ॥ ४३ ॥

(भेदान्तरं प्रतिपादयितुमाह) अन्य भेद वर्णन करने को आगे सूत्र कहते हैं—

एतयैव सविचारा निर्विचारा च सूक्ष्मविषया व्याख्याता ॥ ४४ ॥

सू०—इन सवितर्क निर्वितर्क समापत्तियों के वर्णन करने से ही सविचार निर्विचार सूक्ष्म विषय भी कहे गये जानो ॥ ४४ ॥

व्या० भाष्यम्

तत्र भूतसूक्ष्मेष्वभिव्यक्तधर्मकेषु देशकालनिमित्तानुभवावच्छिन्नेषु या समापत्तिः सा सविचारेत्युच्यते । तत्राप्येकबुद्धिनिर्ग्रा-

ह्यमेवोदितधर्मविशिष्टं भूतसूक्ष्ममालम्बनीभूतं समाधिप्रज्ञायामुपतिष्ठते।

या पुनः सर्वथा सर्वतः शान्तोदिताव्यपदेश्यधर्मानवच्छिन्नेषु सर्वधर्मानुपातिषु सर्वधर्मात्मकेषु समापत्तिः सा निर्विचारेत्युच्यते। एवं स्वरूपं हि तद्भूतसूक्ष्ममेतेनैव स्वरूपेणाऽऽलम्बनीभूतमेव समाधिप्रज्ञास्वरूपमुपरञ्जयति।

प्रज्ञा च स्वरूपशून्येवार्थमात्रा यदा भवति तदा निर्विचारेत्युच्यते। तत्र महद्वस्तुविषया सवितर्का निर्वितर्का च, सूक्ष्मवस्तुविषया सविचारा निर्विचारा च। एवमुभयोरेतयैव निर्वितर्कया विकल्पहानिर्व्याख्यातेति॥ ४४॥

व्या० भा० पदार्थ

(तत्र भूतसूक्ष्मेष्वभिव्यक्तधर्मकेषु) उन में प्रगटरूप सूक्ष्म भूतों में (देशकालनिमित्तानुभवावच्छिन्नेषु) देश काल निमित्त और अनुभव सहितों में (या समापत्तिः सा सविचारेत्युच्यते) जो समापत्ति होती है वह "सविचार" कही जाती है। (तत्राप्येकबुद्धिनिर्ग्राह्यमेवोदितधर्मविशिष्टं) उन में भी एकाग्र बुद्धि से वर्तमान धर्म विशेष वाले (भूतसूक्ष्ममालम्बनीभूतं समाधिप्रज्ञायामुपतिष्ठते) सूक्ष्म भूत आश्रय हुए समाधि की बुद्धि में रहते हैं।

(या पुनः सर्वथा सर्वतः शान्तोदिताव्यपदेश्यधर्मानवच्छिन्नेषु) जब फिर सब प्रकार से सर्व भेदादि सहित अतीत अनागत वर्तमान धर्मों सहित (सर्वधर्मानुपातिषु सर्वधर्मात्मकेषु समापत्तिः) सर्व धर्मों सहित सर्व धर्मरूप से समापत्ति होती है (सा निर्विचारेत्युच्यते) वह निर्विचार कही जाती है। (एवं स्वरूपं हि तद्भूतसूक्ष्ममेतेनैव स्वरूपेणाऽऽलम्बनीभूतमेव समाधिप्रज्ञास्वरूपमुपरञ्जयति) इस प्रकार ही वह सूक्ष्म भूतों का स्वरूप है, इस

स्वरूप से ही आश्रित हुई समाधि की बुद्धि सूक्ष्म भूतों के स्वरूप से उपरक्त होती है ।

(प्रज्ञा च स्वरूपशून्येवार्थमात्रा यदा भवति) और बुद्धि भी अपने स्वरूप से शून्य के समान अर्थ मात्र के आकार वाली जब होती है (तदा निर्विचारेत्युच्यते) तब निर्विचार कही जाती है। (तत्र महद्वस्तुविषया सवितर्का निर्वितर्का च) और उन में महत् वस्तु विषयक सवितर्क निर्वितर्क हैं। (सूक्ष्मवस्तुविषया सविचारा निर्विचारा च) सूक्ष्म वस्तु विषयक सविचार और निर्विचार हैं। (एवमुभयोरेतयैव निर्वितर्कया विकल्पहानिर्व्याख्यातेति) इस प्रकार दोनों की ही इस निर्वितर्का द्वारा विकल्प की हानि कही जानो ॥ ४४ ॥

भो० वृत्ति

एतयैव सवितर्कया निर्वितर्कया च समापत्त्या सविचारा निर्विचारा च व्याख्याता । कीदृशी, सूक्ष्मविषया सूक्ष्मस्तन्मात्रेन्द्रियादिर्विषयो यस्याः सा तथोक्ता । एतेन पूर्वस्याः स्थूलविषयत्वं प्रतिपादितं भवति । सा हि महाभूतेन्द्रियालम्बना । शब्दार्थविषयत्वेन शब्दार्थविकल्पसहितत्वेन देशकालधर्माद्यवच्छिन्नः सूक्ष्मोऽर्थः प्रतिभाति यस्यां सा सविचारा । देशकालधर्मादिरहितो धर्मिमात्रतया सूक्ष्मोऽर्थस्तन्मात्रेन्द्रियरूपः प्रतिभाति यस्यां सा निर्विचारा ॥ ४४ ॥

अस्या एव सूक्ष्मविषयायाः किंपर्यन्तः सूक्ष्मविषय इत्याह—

भो० वृ० पदार्थ

(एतयैव सवितर्कया निर्वितर्कया च समापत्त्या सविचारा निर्विचारा च व्याख्याता) इन सवितर्क निर्वितर्क समापत्तियों के वर्णन करने से ही सविचार निर्विचार कही गई जानो । (कीदृशी) किस प्रकार ? (सूक्ष्मविषया सूक्ष्मस्तन्मात्रेन्द्रियादिर्विषयो यस्याः सा तथोक्ता) सूक्ष्म विषय वाली अर्थात् सूक्ष्म तन्मात्रा इन्द्रियादि विषय हैं जिस के वह " सूक्ष्म-

विषया" कहलाती है। (एतेन पूर्वस्याः स्थूलविषयत्वं प्रतिपादितं भवति) इस से ही पूर्व स्थूल विषयत्व वाली कही गई जानो। (सा हि महाभूतेन्द्रियालम्बना) और वही पञ्चमहाभूत इन्द्रियों के आश्रय वाली। (शब्दार्थविषयत्वेन शब्दार्थविकल्पसहितत्वेन) शब्द अर्थ के विषयत्व से शब्दार्थ की कल्पना सहित (देशकालधर्माद्यवच्छिन्नः सूक्ष्मोऽर्थः प्रतिभाति यस्यां सा सविचारा) देश काल धर्मादि सहित सूक्ष्म अर्थ भासित होता है जिसमें वह "सविचार" है। (देशकालधर्मादिरहितो धर्मिमात्रतया सूक्ष्मोऽर्थस्तन्मात्रेन्द्रियरूपः प्रतिभाति यस्यां सा निर्विचारा) देश काल धर्मादि से रहित धर्मिमात्र स्वरूप से सूक्ष्म अर्थ तन्मात्रेन्द्रियरूप भासित होते हैं जिस में वह "निर्विचार" है॥ ४४॥

(अस्या एव सूक्ष्मविषयायाः किंपर्यन्तः सूक्ष्मविषय इत्याह) इस ही सूक्ष्म विषय वाली का कहां तक सूक्ष्म विषय है, यह आगे कहते हैं—

सूक्ष्मविषयत्वं चालिङ्गपर्यवसानम्॥ ४५॥

सू०—सूक्ष्म विषयों की अवधि अलिङ्ग परम पुरुष परमात्मा पर्यन्त है।

जैसा कि कठोपनिषद् षष्ठी वल्ली मंत्र ७। ८ में कहा है—

इन्द्रियेभ्यः परं मनो मनसः सत्वमुत्तमम्।
सत्त्वादधि महानात्मा महतोऽव्यक्तमुत्तमम्॥ १॥

अर्थ—इन्द्रियों से मन सूक्ष्म है, मन से बुद्धि सूक्ष्म है, बुद्धि से महतत्त्व सूक्ष्म है, महतत्त्व से अव्यक्त मूल प्रकृति सूक्ष्म है॥१॥

अव्यक्तात्तु परः पुरुषो व्यापकोऽलिङ्ग एव च।
यज्ज्ञात्वा मुच्यते जन्तुरमृतत्वं च गच्छति॥ २॥

अर्थ—अव्यक्त प्रकृति से पुरुष परमात्मा सूक्ष्म है जो सब में व्यापक और "अलिङ्ग" अर्थात् निराकार है, जिस को जान कर सब जीव मोक्ष को प्राप्त होते हैं॥ २॥

इस सूत्र में "अलिङ्ग" शब्द से परमात्मा का ही ग्रहण है। जैसा कि महर्षि व्यासदेवजी अपने भाष्य में कहते हैं ॥ ४५ ॥

व्या० भाष्यम्

पार्थिवस्याणोर्गन्धतन्मात्रं सूक्ष्मो विषयः। आप्यस्य रसतन्मात्रम्। तैजसस्य रूपतन्मात्रम्। वायवीयस्य स्पर्शतन्मात्रम्। आकाशस्य शब्दतन्मात्रमिति। तेषामहंकारः। अस्यापि लिङ्गमात्रं सूक्ष्मो विषयः। लिङ्गमात्रस्याप्यलिङ्गं सूक्ष्मो विषयः। न चालिङ्गात्परं सूक्ष्ममस्ति ?। नन्वस्ति पुरुषः सूक्ष्म इति। सत्यम्। यथा लिङ्गात्परमलिङ्गस्य सौक्ष्म्यं न चैवं पुरुषस्य। किन्तु, लिङ्गस्यान्वयिकारणं पुरुषो न भवति। हेतुस्तु भवतीति। अतः प्रधाने सौक्ष्म्यं निरतिशयं व्याख्यातम् ॥ ४५ ॥

व्या० भा० पदार्थ

(पार्थिवस्याणोर्गन्धतन्मात्रं सूक्ष्मो विषयः) पृथ्वी का सूक्ष्म भूत गन्धतन्मात्रा अर्थात् सूक्ष्म विषय है। (आप्यस्य रसतन्मात्रम्) इसी प्रकार जल का सूक्ष्मभूत अर्थात् कारण रसतन्मात्रा सूक्ष्म विषय है। (तैजसस्य रूपतन्मात्रम्) वैसे ही अग्नि का सूक्ष्म कारण रूपतन्मात्रा। (वायवीयस्य स्पर्शतन्मात्रं) और वायु का कारण स्पर्शतन्मात्रा। (आकाशस्य शब्दतन्मात्रमिति) आकाश का कारण शब्दतन्मात्रा है। (तेषामहंकारः) उन तन्मात्राओं का कारण अहङ्कार है। (अस्यापि लिङ्गमात्रं सूक्ष्मो विषयः) इस अहंकार का भी लिङ्गमात्र अर्थात् बुद्धि सूक्ष्म विषय कारण है। (लिङ्गमात्रस्याप्यलिङ्गं सूक्ष्मो विषयः) और बुद्धि का भी सूक्ष्म कारण अलिङ्ग अर्थात् प्रकृति है। (न चालिङ्गात्परं सूक्ष्ममस्ति) अलिङ्ग प्रकृति से परे सूक्ष्म कारण नहीं है ? (ननु अस्ति पुरुषः सूक्ष्मः) उत्तर—नहीं, निश्चय पुरुष सूक्ष्म है। (इति सत्यम्) यह

सत्य है। किस प्रकार सत्य है यह आगे कहते हैं, (यथा) जैसे (लिङ्गात् परं) बुद्धि से परे (अलिङ्गस्य सौक्ष्म्यं) प्रकृति की सूक्ष्मता है (न चैवं पुरुषस्य) इस प्रकार पुरुष की नहीं। (किंतु लिङ्गस्यान्वयिकारणं पुरुषो न भवति) किन्तु लिङ्ग का उपादान कारण पुरुष नहीं है। (हेतुस्तु भवतीति) परन्तु निमित्त कारण तो पुरुष है। (अतः प्रधाने सौक्ष्म्यं निरतिशयं व्याख्यातम्) इसलिये उपादान कारण की दृष्टि से प्रकृति में सर्व से अधिक सूक्ष्मता कही गई है ॥ ४५ ॥

भो० वृत्ति

सविचारनिर्विचारयोः समापत्त्योर्यत्सूक्ष्मविषयत्वमुक्तं तदलिङ्गपर्यवसानं—न क्वचिल्लीयते न वा किंचिल्लिङ्गति गमयतीत्यलिङ्गं प्रधानं तत्पर्यन्तं सूक्ष्मविषयत्वम्। तथा हि—गुणानां परिणामे चत्वारि पर्वाणि विशिष्टलिङ्गमविशिष्टलिङ्गं लिङ्गमात्रमलिङ्गं चेति। विशिष्टलिङ्गं भूतेन्द्रियाणि। अविशिष्टलिङ्गं तन्मात्रेन्द्रियाणि। लिङ्गमात्रं बुद्धिः। अलिङ्गं प्रधानमिति। नातः परं सूक्ष्ममस्तीत्युक्तं भवति ॥ ४५ ॥

एतासां समापत्तिनां प्रकृते प्रयोजनमाह—

भो० वृ० पदार्थ

(सविचारनिर्विचारयोः समापत्त्योर्यत्सूक्ष्मविषयत्वमुक्तं तदलिङ्गपर्यवसानम्) सविचार निर्विचार दोनों समापत्तियों का जो सूक्ष्म विषय कहा गया उस की अलिङ्ग पर्यन्त अवधि है। (न क्वचिल्लीयते न वा किंचिल्लिङ्गति गमयतीत्यलिङ्गं प्रधानं) न किसी में लय होता है, न कुछ लिङ्ग होता है, इस कारण अलिङ्ग प्रकृति है (तत्पर्यन्तं सूक्ष्मविषयत्वम्) प्रकृति पर्यन्त सूक्ष्म विषयता है। (तथा हि—गुणानां परिणामे चत्वारि पर्वाणि) उस ही प्रकार गुणों के परिणाम में चार भेद हैं। (विशिष्टलिङ्गम्) प्रथमः—विशिष्टलिङ्ग (अविशिष्टलिङ्गम्) द्वितियः—अविशिष्टलिङ्ग (लिङ्गमात्रम्) तृतीयः—लिङ्गमात्र (अलिङ्गं चेति) और चतुर्थः—अलिङ्ग, इस

प्रकार चार भेद हैं। (विशिष्टलिङ्गं भूतेन्द्रियाणि) विशिष्टलिङ्ग स्थूल भूत और इन्द्रियें हैं। (अविशिष्टलिङ्गं तन्मात्रेन्द्रियाणि) अविशिष्टलिङ्ग तन्मात्रा और अन्तःकरण है। (लिङ्गमात्रं बुद्धिः) लिङ्गमात्र बुद्धि को कहते हैं (अलिङ्गं प्रधानमिति) अलिङ्ग प्रधान प्रकृति है। (नातः परं सूक्ष्ममस्तीत्युक्तं भवति) इस अलिङ्ग से परे सूक्ष्म नहीं है, यह कहा है ॥ ४५ ॥

(एतासां समापत्तिनां प्रकृते प्रयोजनमाह) इस प्रकरण में इन सब समापत्तियों के कहने का प्रयोजन आगे कहते हैं—

ता एव सबीजः समाधिः ॥ ४६ ॥

सू०—वह चारों समापत्ति बीज वाली समाधि अर्थात् संप्रज्ञात योग कहलाती हैं ॥ ४६ ॥

व्या० भाष्यम्

ताश्चतस्रः समापत्तयो बहिर्वस्तुबीजा इति समाधिरपि सबीजः। तत्र स्थूलेऽर्थे सवितर्को निर्वितर्कः। सूक्ष्मेऽर्थे सविचारो निर्विचार इति चतुर्धोपसंख्यातः समाधिरिति ॥ ४६ ॥

व्या० भा० पदार्थ

(ताश्चतस्रः) वह चारों (समापत्तयः) समापत्तियां (बहिर्वस्तुबीजाः) बाह्य अर्थात् सांसारिक विषयों के बीज सहित हैं (इति) इस कारण (समाधिः अपि सबीजः) समाधि भी सबीज कहलाती है। (तत्र) उन में (स्थूलेऽर्थे) स्थूल पदार्थों में होनेवाली (सवितर्कः निर्वितर्कः) सवितर्क निर्वितर्क हैं। (सूक्ष्मेऽर्थे) सूक्ष्म विषयों में होने वाली (सविचारः निर्विचार इति) सविचार निर्विचार हैं। (चतुर्धोपसंख्यातः समाधिरिति) इस लिये वह चार भेदों से चार नाम वाली समाधि कहलाती है ॥ ४६ ॥

भो० वृत्ति

ता एवोक्तलक्षणाः समापत्तयः सह बीजेनाऽऽलम्बनेन वर्तन्त इति

सबीजः संप्रज्ञातः समाधिरित्युच्यते, सर्वासां सालम्बनत्वात् ॥ ४६ ॥

अथेतरासां समापत्तीनां निर्विचारफलत्वान्निर्विचारायाः फलमाह—

भो० वृ० पदार्थ

(ता एवोक्तलक्षणाः समापत्तयः सह बीजेनाऽऽलम्बनेन वर्तते) पूर्वोक्त लक्षणों से कही गई समापत्ति बीज के सहित अर्थात् आश्रय के साथ वर्तती है (इति सबीजः संप्रज्ञातः समाधिरित्युच्यते) इस कारण बीज सहित संप्रज्ञात समाधि है ऐसा कहा जाता है, (सर्वासां सालम्बनत्वात्) क्योंकि सब के आलम्बन सहित होने से ॥ ४६ ॥

(अथेतरासां समापत्तीनां निर्विचारफलत्वान्निर्विचारायाः फलमाह) अन्य तीन समापत्तियों की निर्विचार समापत्तिफलरूप होने से निर्विचार समापत्ति का फल आगे कहते हैं—

निर्विचारवैशारद्येऽध्यात्मप्रसादः ॥ ४७ ॥

सू०—निर्विचार समाधि के निर्मल होने पर आत्म प्रसन्नता होती है ॥ ४७ ॥

व्या० भाष्यम्

अशुद्ध्यावरणमलापेतस्य प्रकाशात्मनो बुद्धिसत्त्वस्य रजस्तमोभ्यामनभिभूतः स्वच्छः स्थितिप्रवाहो वैशारद्यम् । यदा निर्विचारस्य समाधेर्वैशारद्यमिदं जायते तदा योगिनो भवत्यध्यात्मप्रसादो भूतार्थविषयः क्रमाननुरोधी स्फुटः प्रज्ञालोकः । तथा चोक्तम्—

प्रज्ञाप्रसादमारुह्य अशोच्यः शोचतो जनान् ।
भूमिष्ठानिव शैलस्थः सर्वान्प्राज्ञोऽनुपश्यति ॥ ४७ ॥

व्या० भा० पदार्थ

(अशुद्ध्यावरणमलापेतस्य प्रकाशात्मनो बुद्धिसत्त्वस्य) अशुद्धिरूप आवरण मल नष्ट हुए प्रकाशरूप सात्त्विक बुद्धि के (रजस्तमोभ्यामनभिभूतः) रज और तम से रहित होने पर (स्वच्छः

स्थितिप्रवाहो वैशारद्यम्) शुद्ध एकाग्रता का प्रवाह वैशारद्य कहलाता है। (यदा निर्विचारस्य समाधेर्वैशारद्यमिदं जायते तदा योगिनो भवत्यध्यात्मप्रसादः) जब निर्विचार समाधि का यह वैशारद्य उत्पन्न होता है, तब योगी को आत्म प्रसन्नता प्राप्त होती है (भूतार्थविषयः क्रमाननुरोधी स्फुटः प्रज्ञालोकः) भूत और अर्थों के विषय में क्रमानुकूल प्रत्यक्ष कराने वाली बुद्धि का प्रकाश होता है।

(तथा चोक्तम्) वैसा ही यह वाक्य है—

(प्रज्ञाप्रसादमारुह्य अशोच्यः शोचतो जनान् ।

भूमिष्ठानिव शैलस्थः सर्वान्प्राज्ञोऽनुपश्यति) योगी प्रसन्नता में आरूढ़ होकर शोक रहित और शोक करते हुए सब जनों को इस प्रकार देखता है, जैसे पर्वत की चोटी पर चढ़ा हुआ पुरुष भूमिस्थ पुरुषों और पदार्थों को देखता है ॥ ४७ ॥

भो० वृत्ति

निर्विचारत्वं व्याख्यातम् । वैशारद्यं नैर्मल्यम् । सवितर्कां स्थूलविषयामपेक्ष्य निर्वितर्कायाः प्राधान्यम् । ततोऽपि सूक्ष्मविषयायाः सविचारायाः, ततोऽपि निर्विकल्परूपाया निर्विचारायाः तस्यास्तु निर्विचारायाः प्रकृष्टाभ्यासवशाद्वैशारद्ये नैर्मल्ये सत्यध्यात्मप्रसादः समुपजायते । चित्तं क्लेशवासनारहितं स्थितिप्रवाह योग्यं भवति । एतदेव चित्तस्य वैशारद्यं यत्स्थितौ दार्ढ्यम् ॥ ४७ ॥

तस्मिन्सति किं भवतीत्याह—

भो० वृ० पदार्थ

(निर्विचारत्वं व्याख्यातम्) निर्विचारता ऊपर कही गई । (वैशारद्यं नैर्मल्यम्) निर्मलता को वैशारद्य कहते हैं । (सवितर्कां स्थूलविषयामपेक्ष्य निर्वितर्कायाः प्राधान्यम्) स्थूल विषयों वाली सवितर्क समापत्ति की अपेक्षा से निर्वितर्क समापत्ति को प्रधानता है । (ततोऽपि सूक्ष्म-

विषयायाः सविचारायाः) सूक्ष्म विषय वाली होने से सविचार समापत्ति को उस से भी प्रधानता है। (ततोऽपि निर्विकल्परूपाया निर्विचारायाः) निर्विकल्परूप होने से निर्विचार समापत्ति की उस से भी प्रधानता है। (तस्यास्तु निर्विचारायाः प्रकृष्टाभ्यासवशाद्वैशारद्ये नैर्मल्ये) उस निर्विचार समापत्ति के अत्यन्त अभ्यास के वश से वैशारद्य अर्थात् निर्मलता होने पर (सत्यध्यात्मप्रसादः समुपजायते) आत्मा में प्रसन्नता उत्पन्न होती है। (चित्तं क्लेशवासनारहितं स्थितिप्रवाह योग्यं भवति) चित्त क्लेश और वासनाओं से रहित हुआ स्थिति प्रवाह के योग्य होता है। (एतदेव चित्तस्य वैशारद्यं यत्स्थितौ दार्ढ्यम्) यही चित्त की निर्मलता है, जो एकाग्रता की दृढ़ता है ॥ ४७ ॥

(तस्मिन्सति किं भवतीत्याह) उस में ठहराव होने पर क्या लाभ होता है ? यह अगले सूत्र में वर्णन किया है—

ऋतंभरा तत्र प्रज्ञा ॥ ४८ ॥

सू०—उस काल में बुद्धि सत्य की पालन करने वाली होती है। अर्थात् कभी भी विपर्यय अविद्यादि क्लेशों से आच्छादित नहीं होती ॥ ४८ ॥

व्या० भाष्यम्

तस्मिन्समाहितचित्तस्य या प्रज्ञा जायते तस्या ऋतंभरेति संज्ञा भवति। अन्वर्था च सा, सत्यमेव बिभर्ति न च तत्र विपर्यासज्ञानगन्धोऽप्यस्तीति। तथा चोक्तम्—

आगमेनानुमानेन ध्यानाभ्यासरसेन च।
त्रिधा प्रकल्पयन्प्रज्ञां लभते योगमुत्तमम् ॥ इति ॥ ४८ ॥

सा पुनः—

व्या० भा० पदार्थ

(तस्मिन्समाहितचित्तस्य या प्रज्ञा जायते) उस एकाग्र चित्त में जो बुद्धि उत्पन्न होती है (तस्या ऋतंभरेति संज्ञा भवति) उस

की ऋतंभरा संज्ञा है। (अन्वर्था च सा) वह बुद्धि यथार्थ ज्ञान वाली होती है, (सत्यमेव बिभर्ति) और सत्य को ही पालन करती है (न च तत्र विपर्यासज्ञानगन्धोऽप्यस्तीति) विपर्य्य ज्ञान अर्थात् अविद्या का गन्ध भी उसमें नहीं होता।

(तथा चोक्तम्) उस के विषय में यह अगला वाक्य है—

आगमेनानुमानेन ध्यानाभ्यासरसेन च।
त्रिधा प्रकल्पयन्प्रज्ञां लभते योगमुत्तमम् ॥ इति ॥ ४८ ॥

वेद अनुमान और ध्यान के अभ्यास से उत्पन्न रस द्वारा तीन प्रकार से बुद्धि में विचार करता हुआ उत्तम योग को प्राप्त होता है ॥ ४८ ॥

(सा पुनः) फिर वह प्रज्ञा कैसी होती है ? यह अगले सूत्र में कहते हैं—

भो० वृत्ति

ऋतं सत्यं बिभर्ति कदाचिदपि न विपर्ययेणाऽऽच्छाद्यते सा ऋतंभरा प्रज्ञा तस्मिन्सति भवतीत्यर्थः। तस्माच्च प्रज्ञालोकात्सर्वं यथावत्पश्यन्योगी प्रकृष्टं योगं प्राप्नोति ॥ ४८ ॥

अस्याः प्रज्ञान्तराद्वैलक्षण्यमाह—

भो० वृ० पदार्थ

(ऋतं सत्यं बिभर्ति कदाचिदपि न विपर्ययेणाऽऽच्छाद्यते) ऋत अर्थात् सत्य को ही पालन करती है कभी भी अविद्या से आच्छादित नहीं होती अर्थात् अविद्यारूपी ढकना कभी भी उस बुद्धि पर नहीं आता (सा ऋतंभरा प्रज्ञा तस्मिन्सति भवतीत्यर्थः) वह ऋतंभरा बुद्धि उस अविद्या के अति अभाव में होती है, यह अर्थ है। (तस्माच्च प्रज्ञालोकात्सर्वं यथावत्पश्यन्योगी प्रकृष्टं योगं प्राप्नोति) उस बुद्धि के प्रकाश से सब पदार्थों को यथार्थ देखता हुआ योगी अति उत्तम योग को प्राप्त होता है ॥४८॥

(अस्याः प्रज्ञान्तराद्वैलक्षण्यमाह) उस बुद्धि की अन्य बुद्धियों से विलक्षणता आगे वर्णन करते हैं—

श्रुतानुमानप्रज्ञाभ्यामन्यविषया विशेषार्थत्वात् ॥ ४९ ॥

सू०—वेद और अनुमान ज्ञान इन दोनों से अन्य विषयवाली वह बुद्धि होती है क्योंकि विशेषार्थवाली अर्थात् अर्थ को साक्षात् जानने वाली होने से ॥ ४९ ॥

व्या० भाष्यम्

श्रुतमागमविज्ञानं तत्सामान्यविषयम् । न ह्यागमेन शक्यो विशेषोऽभिधातुं । कस्मात् । न हि विशेषेण कृतसंकेतः शब्द इति । तथाऽनुमानं सामान्यविषयमेव । यत्र प्राप्तिस्तत्र गतिर्यत्राप्राप्तिस्तत्र न गतिरित्युक्तम् । अनुमानेन च सामान्येनोपसंहारः । तस्माच्छ्रुतानुमानविषयो न विशेषः कश्चिदस्तीति ।

[illegible] चास्य सूक्ष्मव्यवहितविप्रकृष्टस्य वस्तुनो लोकप्रत्यक्षेण ग्रहणमस्ति । न चास्य विशेषस्याप्रमाणकस्याभावोऽस्तीति समाधिप्रज्ञानिर्ग्राह्य एव स विशेषो भवति भूतसूक्ष्मगतो वा पुरुषगतो वा । तस्माच्छ्रुतानुमानप्रज्ञाभ्यामन्यविषया सा प्रज्ञा विशेषार्थत्वादिति ॥ ४९ ॥

समाधिप्रज्ञाप्रतिलम्भे योगिनः प्रज्ञाकृतः संस्कारो नवो नवो जायते—

व्या० भा० पदार्थ

(श्रुतमागमविज्ञानं तत्सामान्यविषयम्) श्रुत = वेद से उत्पन्न हुआ ज्ञान वह सामान्यरूप से पदार्थ का ज्ञान कराने वाला है । (न ह्यागमेन शक्यो विशेषोऽभिधातुं) निश्चय वेद से यथार्थ स्वरूप को बुद्धि नहीं धारण कर सक्ती । (कस्मात्) क्योंकि । (न हि

विशेषेण कृतसंकेतः शब्द इति) निश्चय अर्थ के विशेष स्वरूप के साथ शब्द का संकेत नहीं हुआ है । (तथाऽनुमानं सामान्यविषयमेव) उसी प्रकार अनुमान भी सामान्य विषय ही है । (यत्र प्राप्तिस्तत्र गतिर्यत्राप्राप्तिस्तत्र न गतिरित्युक्तम्) जहां तक लिङ्ग की प्राप्ति है वहां तक अनुमान की गति है, क्योंकि लिङ्ग से लिङ्गि का ज्ञान होता है, जहां लिङ्ग की प्राप्ति नहीं है, वहां अनुमान नहीं हो सक्ता यह शास्त्र का सिद्धान्त है । (अनुमानेन च सामान्येनोपसंहारः) अनुमान से भी सामान्यरूप से समाधान होता है । (तस्माच्छ्रुतानुमानविषयो न विशेषः कश्चिदस्तीति) इस कारण श्रुत और अनुमान दोनों विषयों में विशेष अर्थ कुछ भी लाभ नहीं होता ।

(न चास्य सूक्ष्मव्यवहितविप्रकृष्टस्य वस्तुनो लोकप्रत्यक्षेण ग्रहणमस्ति) सांसारिक पदार्थ के प्रत्यक्ष करने के मार्ग से इस सूक्ष्म, आवृत्त, अति कठिनता से जानने योग्य आत्मस्वरूप का ग्रहण नहीं हो सक्ता । (न चास्य विशेषस्याप्रमाणकस्याभावोऽस्तीति) और इस अनुमान तथा आगम प्रमाण से रहित विशेष वस्तु का अभाव भी नहीं है (समाधिप्रज्ञानिर्ग्राह्य एव स विशेषो भवति) समाधिनिष्ठ बुद्धि द्वारा निश्चयरूप से ग्रहण करने योग्य वह विशेषार्थ है (भूतसूक्ष्मगतो वा पुरुषगतो वा) वह ज्ञान सूक्ष्म भूतों का हो अथवा पुरुष स्वरूप का हो (तस्माच्छ्रुतानुमानप्रज्ञाभ्यामन्यविषया सा प्रज्ञा विशेषार्थत्वादिति) इस कारण श्रुत और अनुमान की बुद्धि से वह बुद्धि अन्य विषय करने वाली होती है, क्योंकि यथार्थ अर्थ का साक्षात् करती है ॥ ४९ ॥

(समाधिप्रज्ञाप्रतिलम्भे) समाधि द्वारा ज्ञान लब्ध होने पर (योगिनः प्रज्ञाकृतः संस्कारो नवो नवो जायते) योगी को उस ज्ञान से उत्पन्न हुए संस्कार नवीन २ उत्पन्न होते हैं—

भो० वृत्ति

श्रुतमागमज्ञानम्, अनुमानमुक्तलक्षणम्, ताभ्यां या जायते प्रज्ञा सा सामान्यविषया। न हि शब्दलिङ्गयोरिन्द्रियवद्विशेषप्रतिपत्तौ सामर्थ्यम्। इयं पुनर्निर्विचारवैशारद्यसमुद्भवा प्रज्ञा ताभ्यां विलक्षणा विशेषविषयत्वात्। अस्यां हि प्रज्ञायां सूक्ष्मव्यवहितविप्रकृष्टानामपि विशेषः स्फुटेनैव रूपेण भासते। अतस्तस्यामेव योगिना परः प्रयत्नः कर्तव्य इत्युपदिष्टं भवति ॥ ४९ ॥

अस्याः प्रज्ञायाः फलमाह—

भो० वृ० पदार्थ

(श्रुतमागमज्ञानम्) वेद ज्ञान को "श्रुत" कहते हैं, (अनुमानमुक्तलक्षणम्) अनुमान का लक्षण सूत्र ७ में कहा गया, (ताभ्यां या जायते प्रज्ञा सा सामान्यविषया) उन दोनों के द्वारा जो बुद्धि उत्पन्न होती है वह सामान्य विषय वाली है। (न हि शब्दलिङ्गयोरिन्द्रियवद्विशेषप्रतिपत्तौ सामर्थ्यम्) निश्चय शब्द और अनुमान इन दोनों प्रमाणों द्वारा साक्षात् ज्ञान के समान विशेष अर्थ प्राप्ति में सामर्थ्य नहीं होती। (इयं पुनर्निर्विचारवैशारद्यसमुद्भवा प्रज्ञा ताभ्यां विलक्षणा विशेषविषयत्वात्) फिर यह निर्विचार समाधि की निर्मलता से उत्पन्न हुई बुद्धि तो इन दोनों से विलक्षण स्वरूप वाली है, क्योंकि विशेष अर्थ के स्वरूप को विषय करने वाली है। (अस्यां हि प्रज्ञायां सूक्ष्मव्यवहितविप्रकृष्टानामपि) इस ही बुद्धि में अति सूक्ष्म और आवृत, दुरस्थ अति कठिनता से जानने योग्य वस्तु (विशेषः स्फुटेनैव रूपेण भासते) यथार्थ साक्षात् रूप से भासित होती हैं। (अतस्तस्यामेव योगिना परः प्रयत्नः कर्तव्य इत्युपदिष्टं भवति) इस कारण उस में ही योगी को परम प्रयत्न करना योग्य है, यही उपदेश है ॥ ४९ ॥

(अस्याः प्रज्ञायाः फलमाह) इस ही समाधि की बुद्धि का फल आगे कहते हैं—

तज्जः संस्कारोऽन्यसंस्कारप्रतिबन्धी ॥ ५० ॥

सू०—उस निर्विचार समाधि से उत्पन्न हुए संस्कार अन्य संस्कारों के नाशक होते हैं ॥ ५० ॥

व्या० भाष्यम

समाधिप्रज्ञाप्रभवः संस्कारो व्युत्थानसंस्काराशयं बाधते । व्युत्थानसंस्काराभिभवात्तत्प्रभवाः प्रत्यया न भवन्ति । प्रत्ययनिरोधे समाधिरुपतिष्ठते । ततः समाधिजा प्रज्ञा, ततःप्रज्ञाकृताः संस्कारा इति नवो नवः संस्काराशयो जायते । ततश्च प्रज्ञा, ततश्च संस्कारा इति । कथमसौ संस्काराशयश्चित्तं साधिकारं न करिष्यतीति । न ते प्रज्ञाकृताः संस्काराः क्लेशक्षयहेतुत्वाच्चित्तमधिकारविशिष्टं कुर्वन्ति । चित्तं हि ते स्वकार्यादवसादयन्ति । ख्यातिपर्यवसानं हि चित्तचेष्टितमिति ॥ ५० ॥

किं चास्य भवति—

व्या० भा० पदार्थ

(समाधिप्रज्ञाप्रभवः संस्कारो व्युत्थानसंस्काराशयं बाधते) समाधि प्रज्ञा से उत्पन्न हुए संस्कार व्युत्थान के संस्कारों और वासनाओं को नष्ट करते हैं । (व्युत्थानसंस्काराभिभवात्तत्प्रभवाः प्रत्यया न भवन्ति) व्युत्थान संस्कार तिरस्कृत हो जाने से उन से उत्पन्न हुई वृत्तियें भी नहीं होतीं । (प्रत्ययनिरोधे समाधिरुपतिष्ठते) वृत्तियों के निरोध होने पर समाधि उपस्थित होती है । (ततः समाधिजा प्रज्ञा) उस के पश्चात् समाधि से उत्पन्न हुई बुद्धि, (ततः प्रज्ञाकृताः संस्काराः) उस के पश्चात् बुद्धि से उत्पन्न हुए संस्कार, (इति नवो नवः संस्काराशयो जायते) इस प्रकार चक्रवत् नये २ संस्कार और वासनायें उत्पन्न होती हैं । (ततश्च प्रज्ञा) उससे पुनः बुद्धि, (ततश्च संस्काराः) उस से पुनः संस्कार, (इति)

इस प्रकार चक्र चलता है। (कथमसौ) पुनः किस प्रकार (संस्काराशयश्चित्तं) वह संस्कार और वासनायें चित्त को (साधिकारं न करिष्यतीति) परमात्म ज्ञान का अधिकारी न बनावेंगी अर्थात् अवश्य बनावेंगी। (न ते प्रज्ञाकृताः संस्काराः क्लेशक्षयहेतुत्वाच्चित्तमधिकारविशिष्टं कुर्वन्ति। चित्तं हि ते स्वकार्यादवसादयन्ति) वह समाधि की बुद्धि से उत्पन्न हुए संस्कार क्लेश नाश के हेतु होने से चित्त को अधिकार विशिष्ट ही नहीं बनाते किन्तु चित्त को वह संस्कार उस के कार्य भोग संपादन आदि से भी हटाते हैं अर्थात् असमर्थ करते हैं। (ख्यातिपर्यवसानं हि चित्तचेष्टितमिति) क्योंकि जब तक विवेकख्याति उत्पन्न नहीं होती तब तक ही चित्त भोग सम्पादन के लिये क्रिया करता है ॥ ५० ॥

(किं चास्य भवति) और इसका क्या फल होता है—

भो० वृत्ति

तया प्रज्ञया जनितो यः संस्कारः सोऽन्यान्व्युत्थानजान्समाधिजांश्च संस्कारान्प्रतिबध्नाति स्वकार्यकरणाक्षमान्करोतीत्यर्थः। यतस्तत्त्वरूपतयाऽनया जनिताः संस्कारा बलवत्त्वादतत्स्वरूपप्रज्ञाजनितान्संस्कारान्बाधितुं शक्नुवन्ति। अतस्तामेव प्रज्ञामभ्यसेदित्युक्तं भवति ॥ ५० ॥

एवं संप्रज्ञातं समाधिमभिधायासंप्रज्ञातं वक्तुमाह—

भो० वृ० पदार्थ

(तया प्रज्ञया जनितो यः संस्कारः सोऽन्यान्व्युत्थानजान्समाधिजांश्च संस्कारान्प्रतिबध्नाति) उस बुद्धि से उत्पन्न हुए जो संस्कार वह व्युत्थान और समाधि से उत्पन्न हुए अन्य संस्कारो को रोकते हैं (स्वकार्यकरणाक्षमान्करोतीत्यर्थः) अर्थात् अपने कार्य करने में असमर्थ होते हैं, यह अर्थ है। (यतस्तत्त्वरूपतयाऽनया जनिताः संस्कारा बलवत्त्वादतत्स्वरूपप्रज्ञाजनितान्संस्कारान्बाधितुं शक्नुवन्ति) जिस कारण तत्त्वरूप बुद्धि से

संस्कार उत्पन्न हुए बलवान होने से अतत्त्वरूप बुद्धि से उत्पन्न हुए संस्कारों के नष्ट करने में समर्थ होते हैं (अतस्तामेव प्रज्ञामभ्यसेदित्युक्तं भवति) इस कारण उसी बुद्धि का अभ्यास करे, यह उपदेश है ॥ ५० ॥

(एवं) इस प्रकार (संप्रज्ञातं समाधिम्) संप्रज्ञात समाधि को (अभिधायासंप्रज्ञातं वक्तुमाह) कथन करके आगे असंप्रज्ञात योग का वर्णन करते हैं—

तस्यापि निरोधे सर्वनिरोधान्निर्बीजः समाधिः ॥५१॥

सू०—उस संप्रज्ञात समाधि के निरोध होने पर सर्व वृत्तियों के निरोध होने से निर्बीज समाधि "असंप्रज्ञात" होती है॥५१॥

व्या० भाष्यम्

स न केवलं समाधिप्रज्ञाविरोधी प्रज्ञाकृतानामपि संस्काराणां प्रतिबन्धी भवति । कस्मात् । निरोधजः संस्कारः समाधिजान्संस्कारान्बाधत इति ।

निरोधस्थितिकालक्रमानुभवेन निरोधचित्तकृतसंस्कारास्तित्वमनुमेयम् । व्युत्थाननिरोधसमाधिप्रभवैः सह कैवल्यभागीयैः संस्कारैश्चित्तं स्वस्यां प्रकृतावव स्थितायां प्रविलीयते । तस्मात्ते संस्काराश्चित्तस्याधिकारविरोधिनो न स्थितिहेतवो भवन्तीति । यस्मादवसिताधिकारं सह कैवल्यभागीयैः संस्कारैश्चितं निवर्तते, तस्मिन्निवृत्ते पुरुषः स्वरूपमात्रप्रतिष्ठोऽतः शुद्धः केवलो मुक्त इत्युच्यत इति ॥५१॥

इति श्रीपातञ्जले सांख्यप्रवचने योगशास्त्रे श्रीमद्व्यासभाष्ये प्रथमः समाधिपादः ॥ १ ॥

व्या० भा० पदार्थ

(स न केवलं समाधिप्रज्ञाविरोधी) वह संस्कार केवल समाधि की बुद्धि के ही विरोधी नहीं (प्रज्ञाकृतानामपि संस्काराणां प्रतिबन्धी भवति) किन्तु बुद्धि से उत्पन्न हुए संस्कारों को भी नाश

करते हैं। (कस्मात्, निरोधजः संस्कारः समाधिजान्संस्कारान्बाधत इति) जिस कारण कि निरोध समाधि से उत्पन्न हुए संस्कार समाधि से उत्पन्न हुए संस्कारों को भी नष्ट करते हैं।

(निरोधस्थितिकालक्रमानुभवेन निरोधचित्तकृतसंस्कारास्तित्वमनुमेयम्) निरोध अवस्था काल के क्रम अनुभव द्वारा निरोध चित्त से उत्पन्न हुए संस्कारों का अस्तित्व अनुमान करने योग्य है। (व्युत्थाननिरोधसमाधिप्रभवैः सह कैवल्यभागीयैः संस्कारैश्चित्तं स्वस्यां प्रकृताववस्थितायां प्रविलीयते) व्युत्थान के निरोध करने वाली संप्रज्ञात समाधि से उत्पन्न हुए संस्कारों से और साथ ही कैवल्य के भागी निरोध संस्कारों से चित्त अपनी प्रकृति में स्थित हुआ लीन हो जाता है। (तस्मात्ते संस्काराश्चित्तस्याधिकारविरोधिनो न स्थितिहेतवो भवन्तीति) इस कारण वह निरोध संस्कार चित्त अधिकार के विरोधी होने के कारण ठहरने के हेतु नहीं होते। (यस्मादवसिताधिकारं सह कैवल्यभागीयैः संस्कारैश्चित्तं निवर्तते) जिस कारण चित्त भोगों में असमर्थ अधिकार वाला हुआ २ कैवल्य के भागी निरोध संस्कारों सहित निवर्त हो जाता है। (तस्मिन्निवृत्ते पुरुषः स्वरूपमात्रप्रतिष्ठोऽतः शुद्धः केवलो मुक्त इत्युच्यत इति) उस चित्त निवृत्ति काल में पुरुष स्वरूप मात्र से स्थित होने के कारण शुद्ध केवल मुक्त ऐसा कहा जाता है, "इति" शब्द पाद समाप्ति अर्थ है॥ ५१॥

भो० वृत्ति

तस्यापि संप्रज्ञातस्य निरोधे प्रविलये सति सर्वासां चित्तवृत्तीनां स्वकारणे प्रविलयाद्या या संस्कारमात्राद्वृत्तिरुदेति तस्यास्तस्या नेति नेतीति केवलं पर्युदसनान्निर्बीजः समाधिराविर्भवति। यस्मिन्सति पुरुषः स्वरूपनिष्ठः शुद्धो भवति।

तदत्राधिकृतस्य योगस्य लक्षणं चित्तवृत्तिनिरोधपदानां च व्याख्यानम-भ्यासवैराग्यलक्षणं तस्योपायद्वयस्य स्वरूपं भेदं चाभिधाय संप्रज्ञातासंप्रज्ञा-तभेदेन योगस्य मुख्यामुख्यभेदमुक्त्वा योगाभ्यासप्रदर्शनपूर्वकं विस्तरेणोपा-यान्प्रदर्श्य सुगमोपायप्रदर्शनपरतयेश्वरस्य स्वरूपप्रमाणप्रभाववाचकोपास-नाक्रमं तत्फलानि च निर्णीय चित्तविक्षेपांस्तत्सहभुवश्च दुःखादीन्वि-स्तरेण च तत्प्रतिषेधोपायानेकतत्त्वाभ्यासमैत्र्यादीन्प्राणायामादीन्संप्रज्ञातासं-प्रज्ञातपूर्वाङ्गभूतविषयवती प्रवृत्तिरित्यादीन् च आख्यायोपसंहारद्वारेण च समापत्तीः सलक्षणाः सफलाः स्वस्वविषयसहिताश्चोक्त्वा संप्रज्ञातासंप्रज्ञात-योरुपसंहारमभिधाय सबीजपूर्वको निर्बीजः समाधिरभिहित इति व्याकृतो योगपादः ॥ ५१ ॥

इति श्री भोजदेवविरचितायां पातञ्जलयोगशास्त्रसूत्रवृत्तौ
प्रथमः समाधिपादः ॥ १ ॥

भो० वृ० पदार्थ

(तस्यापि संप्रज्ञातस्य निरोधे प्रविलये सति सर्वासां चित्तवृत्तीनां स्वकारणे प्रविलयात्) उस संप्रज्ञात समाधि के निरोध होनेपर वृत्तियों के लय होते हुए चित्त की सब वृत्तियों के अपने कारण में लय होने से (या या संस्कारमात्राद्वृत्तिरुदेति) जो २ संस्कारमात्र वृत्ति उदय होती है (तस्यास्तस्या नेति नेतीति केवलं पर्युदसनान्निर्बीजः समाधिराविर्भवति) उस उस का यह आत्मस्वरूप नहीं ! यह आत्मस्वरूप नहीं !! इस प्रकार कैवल्य पर्यन्त त्याग करने से निर्बीज समाधि का आविर्भाव होता है । (यस्मिन्सति पुरुषः स्वरूपनिष्ठः शुद्धो भवति) जिस अवस्था में रहता हुआ पुरुष स्वरूप में स्थिर हुआ शुद्ध होता है ।

(तदत्राधिकृतस्य योगस्य लक्षणं) इस पाद में आरम्भ किये हुए योग का लक्षण (चित्तवृत्तिनिरोधपदानां च व्याख्यानम्) चित्त वृत्तियों का निरोध और उसके भेदों का व्याख्यान (अभ्यासवैराग्यलक्षणं) अभ्यास और वैराग्य का लक्षण (तस्योपायद्वयस्य स्वरूपं भेदं) और

उस के दोनों उपायों का स्वरूप और भेद (चाभिधाय) कथन करके (संप्रज्ञातासंप्रज्ञातभेदेन योगस्य मुख्यामुख्यभेदमुक्त्वा) संप्रज्ञात और असंप्रज्ञात भेद से योग के मुख्य अमुख्य भेद को कहकर (योगाभ्यास-प्रदर्शनपूर्वकम्) योगाभ्यास के प्रदर्शनपूर्वक (विस्तरेणोपायान्प्रदर्श्य) विस्तार के सहित उपायों को दिखलाकर (सुगमोपायप्रदर्शनपरतयेश्वरस्य स्वरूपप्रामणप्रभाववाचकोपासनाक्रमं तत्फलानि च) सुगम उपाय दिखलाने के लिये ईश्वर का स्वरूप प्रमाण प्रभाव और उस का वाचक नाम तथा उपासना का क्रम और फल (निर्णीय) निर्णय करके (चित्तविक्षेपांस्त-त्सहभुवश्च दुःखादीन्विस्तरेण च तत्प्रतिषेधोपायानेकतत्त्वाभ्यास) चित्त के विक्षेपों और उन के साथ होने वाले दुःखादि विस्तार के सहित और उस के निशेधक उपाय एकतत्त्व का अभ्यास (मैत्र्यादीन्प्राणायामादीन्संप्रज्ञा-तासंप्रज्ञातपूर्वाङ्गभूतविषयवती प्रवृत्तिरित्यादीन्) मैत्री, करुणा आदि प्राणायामादिक संप्रज्ञात तथा असप्रज्ञात की प्रथम अङ्गस्वरूप हुई २ विषयवती प्रवृत्ति आदि (च अख्यायोपसंहारद्वारेण च समापत्तीः सलक्षणाः सफलाः) और उस के व्याख्यानोपसंहार द्वारा समापत्ति लक्षण सहित तथा फल सहित को (स्वस्वविषयसहिताश्चोक्त्वा) अपने २ विषय के सहित कह कर (संप्रज्ञातासंप्रज्ञातयोरुपसंहारमभिधाय) सम्प्रज्ञात, असम्प्रज्ञात योग की समाप्ति दिखलाकर (सबीजपूर्वको निर्बीजः समाधि-रभिहित इति व्याकृतो योगपादः) सबीज = बीज पूर्वक, निर्बीज समाधि को इस ही समाधिपाद में प्रकाशित किया है, इस कारण इस पाद को समाधिपाद कहते हैं।

समाप्तोऽयं प्रथमः समाधिपादः ॥ १ ॥

॥ ॐ ॥

पातंजलयोगदर्शनम्
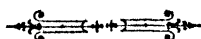
अथ द्वितीयः साधनपादः प्रारभ्यते

उद्दिष्टः समाहितचित्तस्य योगः । कथं व्युत्थितचित्तोऽपि योगयुक्तः स्यादित्येतदारभ्यते—

अर्थ—(उद्दिष्टः समाहितचित्तस्य योगः) एकाग्र चित्त वाले के लिये प्रथम समाधि पाद में योग का उपदेश किया गया। (कथं व्युत्थितचित्तोऽपि योगयुक्तः स्यादित्येतदारभ्यते) किस प्रकार विक्षिप्त चित्त वाला भी योग से युक्त होता है, यह इस द्वितियः साधन पाद में आरम्भ किया जाता है—

तपः स्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि क्रियायोगः॥ १ ॥

सू०—तप, स्वाध्याय और ईश्वरप्रणिधान यह योग की क्रिया हैं ॥ १ ॥

व्या० भाष्यम्

नातपस्विनो योगः सिध्यति। अनादिकर्मक्लेशवासनाचित्रा प्रत्युपस्थितविषयजाला चाशुद्धिर्नान्तरेण तपः संभेदमापद्यत इति तपस उपादानम्। तच्च चित्तप्रसादनमबाधमानमनेनाऽऽसेव्यमिति मन्यते।

स्वाध्यायः प्रणवादिपवित्राणां जपो मोक्षशास्त्राध्ययनं वा। ईश्वरप्रणिधानं सर्वक्रियाणां परमगुरावर्पणं तत्फलसंन्यासो वा ॥१॥

स हि क्रियायोगः—

व्या० भा० पदार्थ

(नातपस्विनो योगः सिध्यति) तप रहित पुरुष को योग सिद्ध नहीं होता। (अनादिकर्मक्लेशवासनाचित्रा प्रत्युपस्थितविषय-जाला चाशुद्धिः) अनादि काल से कर्म, क्लेश और वासनायें बुद्धि में चित्रित हुई विषयजाल को उठानेवाली अशुद्धि है (नान्तरेण तपः संभेदमापद्यते) वह वासनायें कर्म आदि बिना तप के नहीं नाश को प्राप्त होतीं (इति तपस उपादानम्) इस कारण तप का ग्रहण है। (तच्च चित्तप्रसादनमबाधमानमनेनाऽऽसेव्यमिति मन्यते) और वह तप चित्त का प्रसन्न करने वाला है, निरन्तर अर्थात् लगा-तार सेवन करने योग्य है, ऐसा योगी लोग मानते हैं।

(स्वाध्यायः प्रणवादिपवित्राणां जपो मोक्षशास्त्राध्ययनं वा) ओङ्कार आदि पवित्र करने वाले नामों का जप और मुक्ति प्रति-पादक शास्त्रों का पढ़ना "स्वाध्याय" कहलाता है।

(ईश्वरप्रणिधानं सर्वक्रियाणां परमगुरावर्पणं तत्फलसंन्यासो वा) सर्वक्रियाओं का उस परम गुरु परमात्मा के अर्पण करना और उनके फल की इच्छा का त्याग करना अर्थात् निष्काम कर्म करना "ईश्वरप्रणिधान" कहलाता है ॥ १ ॥

(स हि क्रियायोगः) निश्चय वह योग की क्रिया—

भावार्थ

बहुत से लोग यह समझते हैं कि तप करने से शरीर में रोगादि उत्पन्न हो जाते हैं। परन्तु यहां महर्षि व्यास ने तप को चित्त का प्रसन्न करने वाला बतलाया है। इसलिये जानना चाहिये कि विधि पूर्वक तप करना, जिसमें कि धातु रसादिक विषमता को प्राप्त न हो ॥१॥

भो० वृत्ति

तदेवं प्रथमे पादे समाहितचित्तस्य सोपायं योगमभिधाय व्युत्थितचित्तस्यापि कथमुपायाभ्यासपूर्वको योगः स्वास्थ्यम् उपयातीति तत्साधनानुष्ठानप्रतिपादनाय क्रियायोगमाह ।

तपः शास्त्रान्तरोपदिष्टं कृच्छ्रचान्द्रायणादि । स्वाध्यायः प्रणवपूर्वाणां मन्त्राणां जपः । ईश्वरप्रणिधानं सर्वक्रियाणां तस्मिन्परमगुरौ फलनिरपेक्षतया समर्पणम् । एतानि क्रियायोग इत्युच्यते ॥ १ ॥

स किमर्थं इत्यत आह—

भो० वृ० पदार्थ

(तदेवं प्रथमे पादे समाहितचित्तस्य सोपायं योगमभिधाय) वह इस प्रकार प्रथम पाद में एकाग्र चित्त वाले के लिये उपाय सहित योग का कथन करके (व्युत्थितचित्तस्यापि कथमुपायाभ्यासपूर्वको योगः स्वास्थ्यमुपयातीति) व्युत्थान चित्त वाले को भी किस प्रकार अभ्यास पूर्वक उपायों द्वारा योग आरोग्यता को प्राप्त कराता है (तत्साधनानुष्ठादप्रतिपादनाय क्रियायोगमाह) उस के साधन और अनुष्ठान को वर्णन करने के लिये प्रथम क्रियायोग को कहते हैं ।

(तपः शास्त्रान्तरोपदिष्टं) शास्त्र में कहा हुआ तप है (कृच्छ्रचान्द्रायणादि) जो कृच्छ्र चान्द्रायणादि हैं । (स्वाध्यायः प्रणवपूर्वाणां मन्त्राणां जपः) मन्त्रों के पूर्व में ओंकार लगा कर जप करना "स्वाध्याय" कहलाता है । (ईश्वरप्रणिधानं सर्वक्रियाणां तस्मिन्परमगुरौ फलनिरपेक्षतया समर्पणम्) सर्व क्रियाओं को फल की अपेक्षा से रहित उस परम गुरु में अर्पण करना "ईश्वरप्रणिधान" कहलाता है । (एतानि क्रियायोग इत्युच्यते) इन को "क्रियायोग" कहते हैं ॥ १ ॥

(स किमर्थं इत्यत आह) वह किस प्रयोजन से की जाती है, यह अगले सूत्र में वर्णन करते हैं—

समाधिभावनार्थः क्लेशतनूकरणार्थश्च ॥ २ ॥

सू०—निश्चय वह क्रिया योग समाधि की सिद्धि के लिये और क्लेशों को शिथिल करने के लिये है ॥ २ ॥

व्या० भाष्यम्

स ह्यासेव्यमानः समाधिं भावयति क्लेशांश्च प्रतनू करोति। प्रतनूकृतान्क्लेशान्प्रसंख्यानाग्निना दग्धबीजकल्पानप्रसवधर्मिणः करिष्यतीति। तेषां तनूकरणात्पुनः क्लेशैरपरामृष्टा सत्त्वपुरुषान्यतामात्रख्यातिः सूक्ष्मा प्रज्ञा समाप्ताधिकारा प्रतिप्रसवाय कल्पिष्यत इति ॥ २ ॥

अथ के क्लेशाः कियन्तो वेति—

व्या० भा० पदार्थ

(स ह्यासेव्यमानः समाधिं भावयति क्लेशांश्च प्रतनू करोति) निश्चय वह योग की क्रिया सेवन की हुई समाधि को प्रकाशित करती है और क्लेशों को शिथिल करती है। (प्रतनूकृतान्क्लेशान्प्रसंख्यानाग्निना दग्धबीजकल्पानप्रसवधर्मिणः करिष्यतीति) प्रसंख्यान ज्ञान अग्नि द्वारा दग्धबीज के समान निर्बल किये हुए क्लेशों को अनुत्पत्ति के योग्य बनायेगी। (तेषां तनूकरणात्पुनः क्लेशैरपरामृष्टा सत्त्वपुरुषान्यतामात्रख्यातिः सूक्ष्मा प्रज्ञा समाप्ताधिकारा प्रतिप्रसवाय कल्पिष्यत इति) उन क्लेशों के निर्बल करने से फिर क्लेशों के स्पर्श से रहित, बुद्धि और पुरुष के भिन्न २ परिपक्व ज्ञान वाली सूक्ष्म बुद्धि, समाप्त हो गये भोगों में अधिकार जिस के कारण में लय होने को समर्थ होगी ॥ २ ॥

(अथ के क्लेशाः) अब वह क्लेश कौन हैं ? (कियन्तो वेति) और कितने हैं ? यह अगले सूत्र में वर्णन करते हैं—

भो० वृत्ति

क्लेशा वक्ष्यमाणास्तेषां तनूकरणं स्वकार्यकारणप्रतिबन्धः । समाधिरुक्तलक्षणस्तस्य भावना चेतसि पुनः पुनर्निवेशनं सोऽर्थः प्रयोजन यस्य स तथोक्तः । एतदुक्तं भवति—एते तपः प्रभृतयोऽभ्यस्यमानाश्चित्तगतानविद्यादीन्क्लेशाञ्छिथिली कुर्वन्तः समाधेरुपकारकतां भजन्ते । तस्मात्प्रथमतः क्रियायोगावधानपरेण योगिना भवितव्यमित्युपदिष्टम् ॥ २ ॥

क्लेशतनूकरणार्थं इत्युक्तं, तत्र के क्लेशा इत्यत आह—

भो० वृ० पदार्थ

(क्लेशा वक्ष्यमाणाः) क्लेश वह हैं जो अगले सूत्र में कहे जांयगे (तेषां तनूकरणं स्वकार्यकारणप्रतिबन्धः) उन का निर्बल करना उनके कार्य और कारण का रोकना अर्थात् कार्य उन के कर्म वासनादि, कारण संस्कार (समाधिरुक्तलक्षणस्तस्य भावना चेतसि पुनः पुनर्निवेशनं) समाधि ऊपर कहे लक्षण वाली उस की भावना चित्त का बारम्बार प्रवेश करना (सोऽर्थः प्रयोजनं यस्य स तथोक्तः) वह अर्थ प्रयोजन है जिस का वह क्रिया ऊपर कही गई । (एतदुक्तं भवति) यह उपदिष्ट है कि—(एते तपः प्रभृतयोऽभ्यस्यमानाश्चित्तगतानविद्यादीन्क्लेशाञ्छिथिली कुर्वन्तः) इन तप आदि का अभ्यास किया हुआ चित्त में प्रविष्ट अविद्यादि क्लेशों को शिथिल करता है (समाधेरुपकारकतां भजन्ते) समाधि के सहायक होते हैं । (तस्मात्प्रथमतः क्रियायोगावधानपरेण योगिना भवितव्यमित्युपदिष्टम्) इस कारण प्रथम योगी के लिये क्रियायोग का धारण करना आगे होने वाली समाधि आदि के लिये उपदेश किया गया ॥ २ ॥

(क्लेशतनूकरणार्थं इत्युक्तं) सूत्र में क्लेशों के निर्बल करने के लिये ऐसा कहा है, (तत्र के क्लेशा इत्यत आह) उन में क्लेश कौन हैं, इस कारण अगला सूत्र कहते हैं—

अविद्यास्मितारागद्वेषाभिनिवेशाःपञ्च क्लेशाः ॥३॥

सू०—अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष, और अभिनिवेश ये पांच क्लेश हैं जिन के लक्षण स्वयं भाष्कार कहेंगे ॥ ३ ॥

व्या० भाष्यम्

क्लेशा इति पञ्च विपर्यया इत्यर्थः । ते स्यन्दमाना गुणाधिकार दृढयन्ति, परिणाममवस्थापयन्ति, कार्यकारणस्रोत उन्नमयन्ति, परस्परानुग्रहतन्त्री भूत्वा कर्मविपाकं चाभिनिर्हरन्तीति ॥ ३ ॥

व्या० भा० पदार्थ

(क्लेशा इति पञ्च विपर्यया इत्यर्थः) क्लेश इस शब्द से पांच भेदों वाले विपरीत ज्ञान का अर्थ है । (ते स्यन्दमाना गुणाधिकारं दृढयन्ति) वह गति करते हुए सत्त्वादि तीनों गुणों के अधिकार को दृढ़ करते हैं, (परिणाममवस्थापयन्ति) परिणाम को स्थिर करते हैं, (कार्यकारणस्रोत उन्नमयन्ति) कार्य कर्म वासनादि और कारण संस्कारादि के प्रवाह को बढ़ाते हैं । (परस्परानुग्रहतन्त्री भूत्वा कर्मविपाकं चाभिनिर्हरन्तीति) परस्पर एक दूसरे के सहकारी होकर कर्म फल को प्रकाशित करते हैं ॥ ३ ॥

भो० वृत्ति

अविद्यादयो वक्ष्यमाणलक्षणाः पञ्च । ते च बाधनालक्षणं परितापमुपजनयन्तः क्लेशशब्दवाच्या भवन्ति । ते हि चेतसि प्रवर्तमानाः संस्कारलक्षणं गुणपरिणामं दृढयन्ति ॥ ३ ॥

सत्यपि सर्वेषां तुल्ये क्लेशत्वे मूलभूतत्वादविद्यायाः प्राधान्यं प्रतिपादयितुमाह—

भो० वृ० पदार्थ

(अविद्यादयो वक्ष्यमाणलक्षणाः पञ्च) अविद्यादि जिन के लक्षण

अगले सूत्र में कहे जांयगे पांच हैं । (ते च बाधनालक्षणं परितापमुपजनयन्तः) वह अविद्यादि बाधनारूप पीड़ा को उत्पन्न करते हैं (क्लेशशब्दवाच्या भवन्ति) इस कारण क्लेश नाम से कहे जाते हैं । (ते हि चेतसि) वह क्लेश चित्त में (प्रवर्तमानाः) वर्तमान हुए (संस्कारलक्षणं) संस्काररूप (गुणपरिणामं) गुणों के परिणाम को (दृढयन्ति) दृढ़ करते हैं ॥ ३ ॥

(सत्यपि सर्वेषां तुल्ये क्लेशत्वे) क्लेशत्व सब में समान होते हुए भी (मूलभूतत्वादविद्यायाः) मूल होने के कारण अविद्या की (प्राधान्यं) प्रधानता (प्रतिपादयितुमाह) प्रतिपादन करने को अगला सूत्र कहते हैं—

अविद्या क्षेत्रमुत्तरेषां प्रसुप्ततनुविच्छिन्नोदाराणाम ॥ ४ ॥

सू०—प्रसुप्त, तनु, विच्छिन्न और उदार अवस्था वाले अस्मिता, राग, द्वेष, अभिनिवेश चारों क्लेशों की अविद्या भूमिरूप है, अर्थात् जैसे भूमि के विना बीज उत्पन्न नहीं हो सक्ता ऐसे ही अविद्या के विना चारों उत्तर क्लेश भी नहीं हो सक्ते, अतएव अविद्या को क्षेत्र=भूमि कहा है ॥ ४ ॥

व्या० भाष्यम्

अत्राविद्या क्षेत्रं प्रसवभूमिरुत्तरेषामस्मितादीनां चतुर्विधविकल्पानां प्रसुप्ततनुविच्छिन्नोदाराणाम् । तत्र का प्रसुप्तिः । चेतसि शक्तिमात्रप्रतिष्ठानां बीजभावोपगमः । तस्य प्रबोध आलम्बने संमुखीभावः । प्रसंख्यानवतो दग्धक्लेशबीजस्य संमुखीभूतेऽप्यालम्बने नासौ पुनरस्ति । दग्धबीजस्य कुतः प्ररोह इति । अतः क्षीणक्लेशः कुशलश्चरमदेह इत्युच्यते । तत्रैव सा दग्धबीजभावा पञ्चमी क्लेशावस्था नान्यत्रेति । सतां क्लेशानां तदा बीजसामर्थ्यं दग्धमिति विषयस्य संमुखीभावेऽपि सति न भवत्येषां प्रबोध इत्युक्ता प्रसुप्तिर्दग्धबीजानामप्ररोहश्च ।

तनुत्वमुच्यते—प्रतिपक्षभावनोपहताः क्लेशास्तनवो भवन्ति। (तथा विच्छिद्य विच्छिद्य तेन तेनाऽऽत्मना पुनः पुनः समुदाचरन्तीति विच्छिन्नाः) कथं, रागकाले क्रोधस्यादर्शनात्। न हि रागकाले क्रोधः समुदाचरति। रागश्च क्वचिद्दृश्यमानो न विषयान्तरे नास्ति। नैकस्यां स्त्रियां चैत्रो रक्त इत्यन्यासु स्त्रीषु विरक्तः किं तु तत्र रागो लब्धवृत्तिरन्यत्र तु भविष्यद्वृत्तिरिति। स हि तदा प्रसुप्ततनुविच्छिन्नो भवति।

विषये यो लब्धवृत्तिः स उदारः। सर्व एवैते क्लेशविषयत्वं नातिक्रामन्ति। कस्तर्हि विच्छिन्नः प्रसुप्तस्तनुरुदारो वा क्लेश इति। उच्यते—सत्यमेवैतत्, किंतु विशिष्टानामेवैतेषां विच्छिन्नादित्वम्। यथैव प्रतिपक्षभावनातो निवृत्तस्तथैव स्वव्यञ्जकाञ्जनेनाभिव्यक्त इति। सर्व एवामी क्लेशा अविद्याभेदाः। कस्मात्, सर्वेष्वविद्यैवाभिप्लवते। यदविद्यया वस्त्वाकार्यते तदेवानुशेरते क्लेशा विपर्यासप्रत्ययकाल उपलभ्यन्ते क्षीयमाणां चाविद्यामनु क्षीयन्त इति॥ ४॥

तत्राविद्यास्वरूपमुच्यते—

व्या० भा० पदार्थ

(अत्राविद्या क्षेत्रं प्रसवभूमिरुत्तरेषामस्मितादीनां चतुर्विधविकल्पानां प्रसुप्ततनुविच्छिन्नोदाराणाम्) इन में अविद्या उत्तर क्लेश अस्मितादि, प्रसुप्त, तनु, विच्छिन्न, उदार चार अवस्थावालों की खेत के समान उत्पत्ति स्थान भूमि है। (तत्र का प्रसुप्तिः) उन में प्रसुप्त क्लेश कौन हैं? (चेतसि शक्तिमात्रप्रतिष्ठानां बीजभावोपगमः) इस का उत्तर यह है कि जो चित्त में बीज भाव को प्राप्त हुए शक्ति मात्र से रहते हैं। (तस्य प्रबोध आलम्बने संमुखीभावः) आलम्बन अर्थात् विषय के सन्मुख होने पर उनकी जाग्रति होती है। (प्रसंख्यानवतो दग्धक्लेशबीजस्य) प्रसंख्यान ज्ञान वाले योगी को जिस के क्लेश दग्धबीज के समान हो गये हैं (संमुखीभूतेऽ-

प्यालम्बने नासौ पुनरस्ति) विषयरूप आश्रय के सन्मुख होने पर भी वह क्लेशों की जाग्रति फिर नहीं होती । (दग्धबीजस्य) क्योंकि जले हुए बीज की (कुतः प्ररोह इति) कहां से उत्पत्ती हो सक्ती है । (अतः) इस कारण (क्षीणक्लेशः) क्षीण हो गये हैं क्लेश जिस योगी के (कुशलश्चरमदेह इत्युच्यते) वह "कुशल चरमदेह" कहलाता है । चरमदेह, देह पड़ने तक ही देर है, मुक्ति में जिस के वह चरमदेह है, इस प्रकार इस शब्द का समासार्थ है, "कुशल" शब्द का अर्थ ज्ञानी है । (तत्रैव सा दग्धबीजभावा पञ्चमी क्लेशावस्था) उस योगी में ही वह पञ्चमी क्लेशों की अवस्था दग्धबीज भाववाली विद्यमान है (नान्यत्रेति) दूसरे में नहीं । (सतां क्लेशानां तदा बीजसामर्थ्यं दग्धम्) क्लेशों के रहते हुए भी उस पञ्चमी अवस्था में बीज की सामर्थ्य जल जाती है (इति) इस कारण (विषयस्य संमुखीभावेऽपि सति) विषयों के सन्मुखरूप से रहते हुए भी (न भवति एषां प्रबोध इति) इन की जाग्रति नहीं होती (उक्ता प्रसुप्तिर्दग्धबीजानामप्ररोहश्च) सोये हुए क्लेशों का स्वरूप और दग्धबीज क्लेशों की अनुत्पत्ति यहां तक कही गई है ।

(तनुत्वमुच्यते) अब क्लेशों की निर्बलता का स्वरूप कहा जाता है—(प्रतिपक्षभावनोपहताः) प्रतिपक्ष भावना द्वारा नष्ट किये हुए (क्लेशास्तनवो भवन्ति) क्लेश निर्बल होते हैं । (तथा विच्छिद्य विच्छिद्य तेन तेनाऽऽत्मना, पुनः पुनः समुदाचरन्तीति विच्छिन्नाः) उसी प्रकार नष्ट हो २ कर उस २ रूप से फिर २ वर्तने लगते हैं वह "विच्छिन्न" कहलाते हैं । (कथं) किस प्रकार ? (रागकाले क्रोधस्यादर्शनात्) राग काल में क्रोध के न देखे जाने से । (न हि रागकाले क्रोधः समुदाचरति) निश्चय राग काल में क्रोध नहीं वर्तता । (रागश्च क्वचिद्दृश्यमानो न विषयान्तरे नास्ति) राग भी किसी एक पदार्थ में देखे जाते हुए अन्य विषय में नहीं है यह नहीं देखा जाता । (नैकस्यां स्त्रियां चैत्रो रक्त इत्यन्यासु स्त्रीषु

विरक्तः) ऐसा नहीं है कि एक स्त्री में चैत्र नामी पुरुष प्रितिमान हो और अन्य स्त्रियों में न हो (किं तु तत्र रागो लब्धवृत्तिरन्यत्र तु भविष्यद्वृत्तिरिति) किन्तु उस में राग वर्तमान है और अन्य में आगे होने वाला है । (स हि तदा प्रसुप्ततनुविच्छिन्नो भवति) वह लब्धवृत्ति ही तब प्रसुप्त, तनु और विच्छिन्न होती है ।

(विषये यो लब्धवृत्तिः स उदारः) विषय में जो वर्तमान वृत्ति है वह उदार कहलाती है । (सर्व एवैते क्लेशाविषयत्वं नातिक्रामन्ति) यह सब क्लेश विषयत्व को नहीं छोड़ते । (कस्तर्हि विच्छिन्नः प्रसुप्ततनुरुदारो वा क्लेश इति, उच्यते) तब वह कौन से क्लेश नहीं छोड़ते ? (उत्तर) प्रसुप्त, तनु, विच्छिन्न, उदार यह चारों नहीं छोड़ते—(सत्यमेवैतत्) यह सत्य ही है, (किंतु विशिष्टानामेवैतेषां विच्छिन्नादित्वम्) तो पुनः इन विशेषरूप हुओं का विच्छिन्नादित्व क्या है ? (यथैव प्रतिपक्षभावनातो निवृत्तस्तथैव स्वव्यञ्जकाञ्जनेनाभिव्यक्त इति) जैसे प्रतिपक्ष भावना करते हुए इन की निवृत्ति होती है, वैसे ही अपने प्रकाशक संस्कार और विषय के द्वारा प्रकाशित होकर प्रकटता होती है । (सर्व एवामी क्लेशा अविद्याभेदाः) यह सब क्लेश अविद्या के भेद हैं । (कस्मात्) क्योंकि, (सर्वेष्वविद्यैवाभिप्लवते) सब में अविद्या ही प्रकाशित होती है । (यदविद्यया वस्त्वाकार्यते तदेवानुशेरते क्लेशाः) जो अविद्या से वस्तु के स्वरूप को धारण किया जाता है, तब क्लेश चित्त में सोये हुए (विपर्यासप्रत्ययकाल उपलभ्यन्ते) अविद्या वृत्ति काल में उपलब्ध हो जाते हैं (क्षीयमाणां चाविद्यामनु क्षीयन्त इति) और अविद्या के नाश होने पर नाश हो जाते हैं ॥४॥

(तत्राविद्यास्वरूपमुच्यते) उन में अविद्या का स्वरूप अगले सूत्र में वर्णन करते हैं—

भो० वृत्ति

अविद्या मोहः, अनात्मन्यात्माभिमान इति यावत् । सा क्षेत्रं प्रसवभूमिरुत्तरेषामस्मितादीनां प्रत्येकं प्रसुप्ततन्वादिभेदेन चतुर्विधानाम् । अतो यत्राविद्या विपर्ययज्ञानरूपा शिथिली भवति तत्र क्लेशानामस्मितादीनां नोद्भवो दृश्यते । विपर्ययज्ञानसद्भावे च तेषामुद्भवदर्शनात्स्थितमेव मूलत्वमविद्यायाः । प्रसुप्ततनुविच्छिन्नोदाराणामिति । तत्र ये क्लेशाश्चित्तभूमौ स्थिताः प्रबोधकाभावे स्वकार्यं नाऽऽरभन्ते ते प्रसुप्ता इत्युच्यन्ते । यथा बालावस्थायां, बालस्य हि वासनारूपेण स्थिता अपि क्लेशाः प्रबोधकसहकार्यभावे नाभिव्यज्यन्ते । ते तनवो ये स्वस्वप्रतिपक्षभावनया शिथिलीकृतकार्यसंपादनशक्तयो वासनावशेषतया चेतस्यवस्थिताः प्रभूतां सामग्रीमन्तरेण स्वकार्यमारब्धुमक्षमाः । यथाऽभ्यासवतो योगिनः । ते विच्छिन्ना ये केनचिद्बलवता क्लेशेनाभिभूतशक्तयस्तिष्ठन्ति यथा द्वेषावस्थायां रागः, रागावस्थायां वा द्वेषः, न ह्यनयोः परस्परविरुद्धयोर्युगपत्संभवोऽस्ति । त उदारा ये प्राप्तसहकारिसंनिधयः स्वं स्वं कार्यमभिनिर्वर्तयन्ति यथा सदैव योगपरिपन्थिनो व्युत्थानदशायाम् । एषां प्रत्येकं चतुर्विधानामपि मूलभूतत्वेन स्थिताऽप्यविद्याऽन्वयित्वेन प्रतीयते । न हि क्वचिदपि क्लेशानां विपर्यायान्वयनिरपेक्षाणां स्वरूपमुपलभ्यते । तस्यां च मिथ्यारूपायामविद्यायां सम्यग्ज्ञानेन निवर्तितायां दग्धबीजकल्पानामेषां न क्वचित्प्ररोहोऽस्ति अतोऽविद्यानिमित्तत्वमविद्यान्वयश्चैतेषां निश्चियते । अतः सर्वेऽपि अविद्याव्यपदेशभाजः । सर्वेषां च क्लेशानां चित्तविक्षेपकारित्वाद्योगिना प्रथममेव तदुच्छेदे यत्नः कार्य इति ॥ ४ ॥

अविद्याया लक्षणमाह—

भो० वृ० पदार्थ

(अविद्या मोहः) अविद्या अज्ञान का नाम है । (अनात्मन्यात्माभिमानः) अनात्मा में आत्मा का अभिमान अर्थात् जड़ में चेतनता की बुद्धि (इति यावत्) यह ज्ञान जब तक है । (सा क्षेत्रं प्रसवभूमिरुत्त-

रेषामस्मितादीनां) वह क्षेत्र उत्पत्ति स्थान है उत्तर कहे अस्मितादि क्लेशों (प्रत्येकं प्रसुप्ततन्वादिभेदेन चतुर्विधानाम्) प्रत्येक प्रसुप्त, तनु आदि भेद से चार अवस्था वालों की। (अतः) इस कारण (यत्राविद्या) जिस काल में अविद्या (विपर्ययज्ञानरूपा शिथिली भवति) विरुद्ध-ज्ञानरूप निर्बल होती है (तत्र क्लेशानामस्मितादीनां नोद्भवो दृश्यते) उस काल में अस्मितादि क्लेशों की उत्पत्ति नहीं देखी जाती। (विपर्यय-ज्ञानसद्भावे च तेषामुद्भवदर्शनात्स्थितमेव मूलत्वमविद्यायाः। प्रसुप्ततनु-विच्छिन्नोदाराणामिति) उन प्रसुप्त, तनु, विच्छिन्न, उदारों का विपर्ययज्ञान के होते हुए उत्पत्ति देखने से अविद्या का ही मूलत्व सिद्ध होता है। (तत्र ये क्लेशाश्चित्तभूमौ स्थिताः प्रबोधकाभावे स्वकार्यं नाऽऽरभन्ते ते प्रसुप्ता इत्युच्यन्ते) चित्त भूमि में स्थित जो क्लेश अपनी जागृति कराने वाले विषयादि के अभाव काल में अपने कार्य को आरम्भ नहीं कर सके वह "प्रसुप्त" कहलाते हैं। उस विषय में यह दृष्टान्त है, (यथा बाला-वस्थायां) जैसे बाल्यावस्था में, (बालस्य हि वासनारूपेण स्थिता अपि क्लेशाः प्रबोधकसहकार्यभावे नाभिव्यज्यन्ते) बालक के क्लेश वासनारूप से रहते हुए भी अपने जागृति कराने वाले सहायक के अभाव होने से नहीं प्रकट होते। (ते तनवो ये स्वस्वप्रतिपक्षभावनया शिथिलीकृतकार्यसंपा-दनशक्तयो वासनावशेषतया) तनु क्लेश वह हैं जो कि अपने २ प्रतिपक्ष के भावना द्वारा निर्बल किये हुए वासना विशेषरूप कार्य को सम्पादन करने वाली शक्ति से (चेतस्यवस्थिताः) चित्त में रहते हुए (यथाऽ-भ्यासवतो योगिनः) जिस प्रकार योगी के अभ्यास करते हुए (प्रभूतां सामग्रीमन्तरेण स्वकार्यमारब्धुमक्षमाः) अन्य सामग्री द्वारा समर्थ हुए भी अपने कार्य को प्रारम्भ करने से शान्त रहते हैं। (ते विच्छिन्ना ये केनचिद्बलवता क्लेशेनाभिभूतशक्तयस्तिष्ठन्ति) विच्छिन्न क्लेश वह हैं जो कि किसी बलवान क्लेश से दबे हुए शक्ति रूप से रहते हैं। (यथा द्वेषा-वस्थायां रागः) जैसे द्वेषावस्था में छिपा हुआ राग रहता है, (रागा-वस्थायां वा द्वेषः) अथवा रागावस्था में द्वेष छिपा रहता है, (न ह्यनयोः

परस्परविरुद्धयोर्युगपत्संभवोऽस्ति) इन दोनों परस्पर विरोधियों की एक साथ उत्पत्ति नहीं हो सक्ती । (त उदारा ये प्राप्तसहकारिसंनिधयः स्वं स्वं कार्यमभिनिर्वर्तयन्ति) उदार क्लेश वह हैं जो कि अपनी समीपता में सहकारी साधन को पाकर अपने कार्य में प्रवर्त रहते हैं । (यथा सदैव योगपरिपन्थिनो व्युत्थानदशायाम्) जैसे सदैव योग के शत्रुओं की व्युत्थान दशा में (एषां प्रत्येकं चतुर्विधानामपि मूलभूतत्वेन स्थिताऽप्यविद्याऽन्वयित्वेन प्रतीयते) इन चार अवस्था वाले प्रत्येक क्लेश की मूलरूप से रहते हुए भी सदैव अविद्या ही कारण रूप से जानी जाती है । (न हि क्वचिदपि क्लेशानां विपर्ययान्वयनिपेक्षाणां स्वरूपमुपलभ्यते) क्योंकि कारण की अपेक्षा से रहित अविद्यादि क्लेशों का स्वरूप कहीं भी नहीं पाया जाता । (तस्यां च मिथ्यारूपायामविद्यायां सम्यग्ज्ञानेन निवर्तितायां दग्धबीजकल्पानामेषां न क्वचित्प्ररोहोऽस्ति) दग्धबीज के समान यथार्थ ज्ञान द्वारा उस मिथ्याज्ञानरूप अविद्या की निवृत्ति होने पर इन अस्मितादि क्लेशों की कभी भी उत्पत्ति नहीं होती । (अतोऽविद्यानिमित्तत्वमविद्यान्वयश्चैतेषां निश्चियते) इस कारण अविद्या का निमितत्व और अन्वयिकारणत्व इन अस्मितादि की उत्पत्ति में निश्चय किया जाता है । (अतः सर्वेऽपि अविद्याव्यपदेशभाजः) इस कारण सब ही अविद्या नाम से कहे जाते हैं । (सर्वेषां च क्लेशानां चित्तविक्षेपकारित्वाद्योगिना प्रथममेव तदुच्छेदे यत्नः कार्य इति) सब क्लेश चित्त विक्षेपकारी होने के कारण प्रथम योगी को उनके निर्मूल करने में ही यत्न करना योग्य है ॥ ४ ॥

(अविद्याया लक्षणमाह) अविद्या का लक्षण अगले सूत्र में वर्णन करते हैं—

अनित्याशुचिदुःखानात्मसु नित्यशुचिसुखात्मख्यातिरविद्या ॥ ५ ॥

सू०—अनित्य, अपवित्र, दुःखरूप, अनात्म अर्थात् जड़ पदार्थों को क्रम से नित्य, पवित्र, सुखरूप, आत्मा अर्थात् चेतन

जानना अविद्या है, वस्तु के यथार्थ स्वरूप को न जानना ही अविद्या है॥ ५ ॥

व्या० भाष्यम्

अनित्ये कार्ये नित्यख्यातिः। तद्यथा—ध्रुवा पृथिवी, ध्रुवा सचन्द्रतारका द्यौः। अमृता दिवौकस इति। तथाऽशुचौ परमबीभत्से काये—

स्थानाद्बीजादुपष्टम्भान्निः स्यन्दान्निधनादपि।
कायमाधेयशौचत्वात्पण्डिता ह्यशुचिं विदुः॥

इति अशुचौ शरीरे शुचिख्यातिर्दृश्यते। नवेव शशाङ्कलेखा कमनीयेयं कन्या मध्वमृतावयवनिर्मितेव चन्द्रं भित्त्वा निःसृतेव ज्ञायते, नीलोत्पलपत्रायताक्षी हावगर्भाभ्यां लोचनाभ्यां जीवलोकमाश्वासयन्तीवेति कस्य केनाभिसंबन्धः। भवति चैवमशुचौ शुचिविपर्यासप्रत्यय इति। एतेनापुण्ये पुण्यप्रत्ययस्तथैवानर्थे चार्थप्रत्ययो व्याख्यातः।

तथा दुःखे सुखख्यातिं वक्ष्यति—"परिणामतापसंस्कारदुःखैर्गुणवृत्तिविरोधाच्च दुःखमेव सर्वं विवेकिनः" (यो० सू० २। १५) इति। तत्र सुखख्यातिरविद्या। तथाऽनात्मन्यात्मख्यातिर्बाह्योपकरणेषु चेतनाचेतनेषु भोगाधिष्ठाने वा शरीरे पुरुषोपकरणे वा मनस्यनात्मन्यात्मख्यातिरिति। तथैतदत्रोक्तम्—"व्यक्तमव्यक्तं वा सत्त्वमात्मत्वेनाभिप्रतीत्य तस्य संपदमनु नन्दत्यात्मसंपदं मन्वानस्तस्य व्यापदमनु शोचत्यात्मव्यापदं मन्वानः स सर्वोऽप्रतिबुद्धः" इति। एषा चतुष्पदा भवत्यविद्या मूलमस्य क्लेशसंतानस्य कर्माशयस्य च सविपाकस्येति।

तस्याश्चामित्रागोष्पदवद्वस्तुसतत्त्वं विज्ञेयम्। यथा नामित्रो मित्राभावो न मित्रमात्रं किं तु तद्विरुद्धः सपत्नः। यथा वाऽगोष्पदं न गोष्पदाभावो न गोष्पदमात्रं किंतु देश एव ताभ्यामन्यद्वस्त्वन्त-

रम्, एवमविद्या न प्रमाणं न प्रमाणाभावः किंतु विद्याविपरीतं ज्ञानान्तरमविद्येति ॥ ५ ॥

व्या० भा० पदार्थ

(अनित्ये कार्ये नित्यख्यातिः) अनित्य कार्यरूप पदार्थों में नित्यता का ज्ञान, परमात्मा, जीवात्मा और प्रकृति, मूल उपादान कारण से भिन्न समस्त पदार्थ कार्यरूप हैं उन में नित्यता का ज्ञान अविद्या है। (तद्यथा) उस विषय में जैसे—(ध्रुवा पृथिवी) पृथ्वी सदैव रहनेवाली नित्य है, (ध्रुवा सचन्द्रतारका द्यौः) द्युलोक, सूर्य, चन्द्र, तारागण सहित नित्य है। (अमृता दिवौकस इति) देवता अमर हैं, इस प्रकार अनित्य में नित्यता का ज्ञान अविद्या है।

(तथाऽशुचौ परमबीभत्से काये) उसी प्रकार अपवित्र परम त्याज्य शरीर में—

(स्थानाद्बीजादुपष्टम्भान्निः स्यन्दान्निधनादपि ।
कायमाधेयशौचत्वात्पण्डिता ह्यशुचिं विदुः ॥)

स्थान, बीज, उपष्टम्भ, निस्यन्द और निधन आदि के कारण शौच दृष्टि से शरीर का विचार करके पण्डित लोगों ने इस को अपवित्र जाना है। स्थान=का अर्थ मात्रोदर मूत्रादि से पूरित, बीज=पित्र लोहित वीर्यादि, उपष्टम्भ=खान पानादि का रस, निस्यन्द=पसीना, निधन=नाश, (इति अशुचौ शरीरे शुचिख्यातिर्दृश्यते) इस प्रकार यह अपवित्र शरीर में पवित्रता का ज्ञान देखा जाता है। (नवेव शशाङ्कलेखा) यह चन्द्रकला नवीन है (कमनीयेयं कन्या) यह कन्या कामना करने योग्य है (मध्वमृतावयवनिर्मितेव) प्रिय अमृतरूप अङ्गनिर्माण किये हैं (चन्द्रं भित्त्वा निःसृतेव ज्ञायते) मानो चन्द्रमा को तोड़कर उस के टुकड़े से बनाये हैं ऐसा जाना जाता है, (नीलोत्पलपत्रायताक्षी) कमल के समान नेत्र (हावगर्भाभ्यां लोचनाभ्यां) हाव भाव भरे नेत्रों

से (जीवलोकमाश्वासयन्तिवा) जीवों को आश्वासन करती हैं (इति कस्य केनाभिसंबन्धः) यह किस का किस से संबन्ध है। (भवति चैवमशुचौ शुचिविपर्यासप्रत्यय इति) जिसको अपवित्र में पवित्रता का उल्टा ज्ञान होता है, उस का सम्बंध है। (एतेनापुण्ये पुण्यप्रत्ययस्तथैवानर्थे चार्थप्रत्ययो व्याख्यातः) इस से ही अपुण्य में पुण्य का ज्ञान वैसे ही अनर्थ में अर्थ का ज्ञान कहा गया जानो।

(तथा दुःखे सुखख्यातिं वक्ष्यति) उसी प्रकार दुःख में सुख का ज्ञान कहा जाता है—(परिणामतापसंस्कारदुःखैर्गुणवृत्तिविरोधाच्च दुःखमेव सर्वं विवेकिनः, (यो० सू० । २ । १५ इति) परिणाम, ताप, संस्कार और दुःख तथा गुण वृत्ति विरोध से ज्ञानी पुरुष को सर्व दुखःरूप ही है, इस की विशेष व्याख्या इसी पाद के १५ वें सूत्र में आने वाली है वहां देखो। (तत्र सुखख्यातिरविद्या) उन में सुख का ज्ञान अविद्या है। (तथाऽनात्मन्यात्मख्यातिर्बाह्योपकरणेषु चेतनाचेतनेषु भोगाधिष्ठाने वा शरीरे) उसी प्रकार अनात्म पदार्थों में आत्म ज्ञान, बाह्य उपकरण, चेतन, अचेतन में अथवा भोग के आश्रय शरीर में (पुरुषोपकरणे वा मनस्यनात्मन्यात्मख्यातिरिति) अथवा पुरुष के उपकरण जड़ मन को आत्मा जानना अविद्या है। (तथैतदत्रोक्तम्) वैसा ही यह वाक्य इस में कहा है—(व्यक्तमव्यक्तं वा सत्त्वमात्मत्वेनाभिप्रतीत्य) स्थूल सूक्ष्म वा बुद्धि को आत्मारूप से जानकर (तस्य संपदमनुनन्दत्यात्मसंपदं मन्वानः) उस बुद्धि की सम्पत्ति को आत्म सम्पत्ति मानता हुआ आनन्दित होता है (तस्य व्यापदमनु शोचत्यात्मव्यापदं मन्वानः) उस की विपत्ति को आत्म विपत्ति मानता हुआ शोक करता है (स सर्वोऽप्रतिबुद्ध इति) वह सब उल्टा ज्ञान अविद्या है। (एषा चतुष्पदा भवत्यविद्या) यह चार पादों वाली अविद्या ही (मूलमस्य क्लेशसंतानस्य कर्माशयस्य च सविपाकस्येति) फल के सहित कर्म और बासनाओं क्लेश सन्तानों की मूल होती है।

यहां तक महर्षि व्यास देव का भाष्य समाप्त हो चुका और सूत्र का अर्थ भी पूर्ण आचुका आगे किसी आधुनिक ने वृथा प्रलाप किया है, जो कुछ लाभकारी नहीं इस लिये उस का अर्थ नहीं किया जाता ।

(एवमविद्या न प्रमाणं न प्रमाणाभावः किंतु विद्याविपरीतं ज्ञानान्तरमविद्येति) इस प्रकार अविद्या न प्रामाणिक है न प्रमाण का उस में सर्वथा अभाव ही है, किन्तु यथार्थ ज्ञान के विपरीत ज्ञान का नाम अविद्या है ॥ ५ ॥

भो० वृत्ति

अतस्मिंस्तदिति प्रतिभासोऽविद्येत्यविद्यायाः सामान्यलक्षणम् । तस्या एव भेदप्रतिपादनम्—अनित्येषु घटादिषु नित्यत्वाभिमानोऽविद्येत्युच्यते । एवमशुचिषु कायादिषु शुचित्वाभिमानः, दुःखेषु च विषयेषु सुखत्वाभिमानः, अनात्मनि शरीर आत्मत्वाभिमानः । एतेनापुण्ये पुण्यभ्रमोऽनर्थे चार्थभ्रमो व्याख्यातः ॥ ५ ॥

अस्मितां लक्षयितुमाह—

भो० वृ० पदार्थ

(अतस्मिंस्तदिति प्रतिभासोऽविद्या) नहीं है जिस में जो धर्म उस का भान होना अविद्या कहलाती है (इत्यविद्यायाः सामान्यलक्षणम्) यह अविद्या का सामान्य लक्षण है । (तस्या एव भेदप्रतिपादनम्) उस का ही भेद इस प्रकार प्रतिपादन किया है—(अनित्येषु घटादिषु नित्यत्वाभिमानोऽविद्येत्युच्यते) अनित्य घटादि में नित्यत्व का अभिमान अविद्या कहलाती है । (एवमशुचिषु कायादिषु शुचित्वाभिमानः) इसी प्रकार अपवित्र शरीरादि में पवित्रता का अभिमान, (दुःखेषु च विषयेषु सुखत्वाभिमानः) दुःखरूप सांसारिक विषयों में सुखरूपता का अभिमान, (अनात्मनि शरीर आत्मत्वाभिमानः) जड़ शरीर में चेतनता

अर्थात् आत्म स्वरूप का अभिमान, (एतेनापुण्ये पुण्यभ्रमः) इस से ही अपुण्य में पुण्य की भ्रान्ति (अनर्थे चार्थभ्रमो व्याख्यातः) अनर्थ में अर्थ का भ्रम कहा गया जानो ॥ ५ ॥

(अस्मितां लक्षयितुमाह) अस्मिता का लक्षण अगले सूत्र में वर्णन करते हैं—

दृग्दर्शनशक्त्योरेकात्मतेवास्मिता ॥ ६ ॥

सू०—द्रष्टा=पुरुष और दर्शनशक्ति बुद्धि इन दोनों का एक रूप से भान होना अस्मिता क्लेश कहलाता है।

व्या० भाष्यम्

पुरुषो दृक्शक्तिर्बुद्धिर्दर्शनशक्तिरित्येतयोरेकस्वरूपापत्तिरिवास्मिता क्लेश उच्यते। भोक्तृभोग्यशक्त्योरत्यन्तविभक्तयोरत्यन्तसंकीर्णयोरविभागप्राप्ताविव सत्यां भोगः कल्पते। स्वरूपप्रतिलम्भे तु तयोः कैवल्यमेव भवति कुतो भोग इति। तथा चोक्तम्—'बुद्धितः परं पुरुषमाकारशीलविद्यादिभिर्विभक्तमपश्यन्कुर्यात्तत्राऽऽत्मबुद्धिं मोहेन' इति ॥ ६ ॥

व्या० भा० पदार्थ

(पुरुषो दृक्शक्तिर्बुद्धिर्दर्शनशक्तिरित्येतयोरेकस्वरूपापत्तिरिवास्मिता क्लेश उच्यते) पुरुष देखने वाली शक्ति है, बुद्धि दिखाने वाली शक्ति है, इस प्रकार भिन्न होने पर इन दोनों का स्वरूप एक पदार्थ के समान भान होना "अस्मिता क्लेश" कहा जाता है। (भोक्तृभोग्यशक्त्योरत्यन्तविभक्तयोरत्यन्तसंकीर्णयोरविभागप्राप्ताविव सत्यां भोगः कल्पते) भोगने वाली और भोगने योग्य अत्यन्त विभक्त अत्यन्त बे मेल इन दोनों शक्तियों का अविभाग प्राप्ति के समान होते हुए भोग कल्पना करते हैं। (स्वरूपप्रति-

लम्भे तु तयोः कैवल्यमेव भवति) और इन दोनों के स्वरूप लब्ध होने पर कैवल्य मुक्ति होती है (कुतो भोग इति) किस प्रकार भोग होता है । (तथा चोक्तम्) इस विषय में ऐसा कहा है—(बुद्धितः परं पुरुषमाकारशीलविद्यादिभिर्विभक्तमपश्यन्कुर्यात्तत्राऽऽत्मबुद्धिं मोहेन इति) बुद्धि से सूक्ष्म पुरुष स्वरूप को विद्यादि के द्वारा भिन्न न देखना और उस बुद्धि को अज्ञान से आत्मा जानना भोग का स्वरूप है ॥ ६ ॥

भो० वृत्ति

दृक्शक्तिः पुरुषः, दर्शनशक्ती रजस्तमोभ्यामनभिभूतः सात्त्विकः परिणामोऽन्तः करणरूपः, अनयोर्भोग्यभोक्तृत्वेन जडाजडत्वेनात्यन्तभिन्नरूपयोरेकताभिमानोऽस्मितेति उच्यते । यथा प्रकृतिवता कर्तृत्वभोक्तृत्वरहितेनाऽपि कर्त्र्यहं भोक्त्र्यहमित्यभिमन्यते । सोऽयमस्मिताख्यो विपर्यासः क्लेशः ॥ ६ ॥

रागस्य लक्षणमाह—

भो० वृ० पदार्थ

(दृक्शक्तिः पुरुषः) देखने वाली शक्ति जीवात्मा है, (दर्शनशक्ती रजस्तमोभ्यामनभिभूतः सात्त्विकः परिणामोऽन्तः करणरूपः) दिखलाने वाली शक्ति रज तम दोनों से न तिरस्कृत हुआ बुद्धि का सात्त्विक परिणाम अन्तःकरण है, (अनयोर्भोग्यभोक्तृत्वेन जडाजडत्वेनात्यन्तभिन्नरूपयोरेकताभिमानोऽस्मितेति उच्यते) भोगने योग्य और भोगने वाला जड़ और चेतन अत्यन्त भिन्न रूप इन दोनों में एकता का अभिमान होना अस्मिता क्लेश कहा जाता है । (यथा प्रकृतिवता कर्तृत्वभोक्तृत्वरहितेनाऽपि कर्त्र्यहं भोक्त्र्यहमित्यभिमन्यते) जिस प्रकार अन्तःकरण की वृत्ति से सम्बन्धवाला पुरुष कर्तृत्व भोक्तृत्व अभिमान से रहित होने पर भी मैं कर्ता हूँ, मैं

भोक्ता हूँ, इस प्रकार मानता है। (सोऽयमस्मितारूपो विपर्यासः क्लेशः) वैसी ही यह "अस्मिता" नाम वाली अविद्या भी क्लेश है ॥ ६ ॥

(रागस्य लक्षणमाह) राग का लक्षण आगे कहते हैं—

सुखानुशयी रागः ॥ ७ ॥

सू०—सुख भोगने के पश्चात् जो चित्त में उस के भोगने की इच्छा रहती है वही "राग" है ॥ ७ ॥

व्या० भाष्यम्

सुखाभिज्ञस्य सुखानुस्मृतिपूर्वः सुखे तत्साधने वा यो गर्धस्तृष्णा लोभः स राग इति ॥ ७ ॥

व्या० भा० पदार्थ

(सुखाभिज्ञस्य) सुख के जानने वाले को (सुखानुस्मृतिपूर्वः) सुख अनुस्मरण पूर्वक (सुखे तत्साधने वा) सुख में अथवा उस के साधन में (यो गर्धस्तृष्णा लोभः स राग इति) जो प्राप्त करने की इच्छारूप तृष्णा अर्थात् लोभ वही "राग" है ॥ ७ ॥

भो० वृत्ति

सुखमनुशेत इति सुखानुशयी सुखज्ञस्य सुखानुस्मृतिपूर्वकः सुखसाधनेषु तृष्णारूपो गर्धो रागसंज्ञकः क्लेशः ॥ ७ ॥

द्वेषस्य लक्षणमाह—

भो० वृ० पदार्थ

(सुखमनुशेत इति सुखानुशयी) सुख अनुभव के पश्चात् जो भोक्ता के चित्त में सुख की वासना शयन करती है यह सुखानुशयी का अर्थ है (सुखज्ञस्य) सुख के जानने वाले को (सुखानुस्मृतिपूर्वकः) सुख अनु-

स्मरण पूर्वक (सुखसाधनेषु तृष्णारूपो गर्धो रागसंज्ञकः क्लेशः) सुख साधनों में लोभरूप जो प्राप्ति की इच्छा वह राग संज्ञा वाला क्लेश है ॥७॥

(द्वेषस्य लक्षणमाह) द्वेष का लक्षण आगे कहते हैं—

दुःखानुशयी द्वेषः ॥ ८ ॥

सू०—दुःख अनुभव के पश्चात् जो द्वेषरूपी वासना चित्त में शयन करती है, वह "द्वेष" रूपी क्लेश कहलाता है ॥ ८ ॥

व्या० भाष्यम्

(दुःखाभिज्ञस्य दुःखानुस्मृतिपूर्वो दुःखे तत्साधने वा यः प्रतिघो-मन्युर्जिघांसा क्रोधः स द्वेषः ॥ ८ ॥)

व्या० भा० पदार्थ

(दुःखाभिज्ञस्य) दुःख के जानने वाले को (दुःखानुस्मृति-पूर्वः) दुःख अनुस्मरण पूर्वक (दुःखे तत्साधने वा) दुःख में अथवा उसके साधन में (यः प्रतिघो मन्युर्जिघांसा क्रोधः स द्वेषः) जो विरोधी क्रोध अर्थात् नष्ट करने की इच्छा वह "द्वेष" कह-लाता है ॥ ८ ॥

भो० वृत्ति

दुःखमुक्तलक्षणं, तदभिज्ञस्य तदनुस्मृतिपूर्वकं तत्साधनेषु अनभिलषतो योऽयं निन्दात्मकः क्रोधः स द्वेषलक्षणः क्लेशः ॥ ८ ॥

अभिनिवेशस्य लक्षणमाह—

भो० वृ० पदार्थ

(दुःखमुक्तलक्षणं) दुःख का लक्षण पूर्व कह चुके, क्लेशों को दुःख कहते हैं, (तदभिज्ञस्य) उस दुःख के जानने वाले को (तदनुस्मृतिपूर्वकं) दुःखानुस्मरण पूर्वक (तत्साधनेषु अनभिलषतः) उस के साधनों में

अभिलाषा न करते हुए (योऽयं निन्दात्मकः क्रोधः स द्वेषलक्षणः क्लेशः) जो यह निन्दारूप क्रोध वह द्वेष लक्षण वाला क्लेश है ॥ ८ ॥

(अभिनिवेशस्य लक्षणमाह) अभिनिवेश का लक्षण आगे कहते हैं—

स्वरसवाही विदुषोऽपि तथा रूढोऽभिनिवेशः॥६॥

सू०—जिस मरण भय में स्वभाव से ही विद्वान् भी उसी प्रकार आरूढ़ होता है जैसे मूर्ख वह अभिनिवेश क्लेश है, सारांश यह है कि पूर्व जन्मानुभूत मरण दुःख के कारण वासना बल से यह मरण भय अत्यन्त मूढ़ के समान ही ज्ञानी को भी होता है, इस मरण भय को ही "अभिनिवेश" क्लेश कहते हैं ॥ ९ ॥

व्या० भाष्यम्

सर्वस्य प्राणिन इयमात्माशीर्नित्या भवति मा न भूवं भूयासमिति। न चाननुभूतमरणधर्मकस्यैषा भवत्यात्माशीः। एतया च पूर्वजन्मानुभवः प्रतीयते। स चायमभिनिवेशः क्लेशः स्वरसवाही कृमेरपि जातमात्रस्य प्रत्यक्षानुमानागमैरसंभावितो मरणत्रास उच्छेददृष्ट्यात्मकः पूर्वजन्मानुभूतं मरणदुःखमनुमापयति।

यथा चायमत्यन्तमूढेषु दृश्यते क्लेशस्तथा विदुषोऽपि विज्ञातपूर्वापरान्तस्य रूढः। कस्मात्। समाना हि तयोः कुशलाकुशलयोर्मरणदुःखानुभवादियं वासनेति ॥ ९ ॥

व्या० भा० पदार्थ

(सर्वस्य प्राणिन इयमात्माशीर्नित्या भवति) सर्व प्राणियों को यह अपने लिये इच्छा नित्य होती है कि (मा न भूवं भूयासमिति) मत यह हो कि मैं न होऊँ किन्तु मैं होऊँ अर्थात् जीवित रहूँ। (न चाननुभूतमरणधर्मकस्यैषा भवत्यात्माशीः) मरण दुःख को अनुभव किये बिना यह अपने लिये आत्महित चिन्ता नहीं हो सक्ती।

(एतया च पूर्वजन्मानुभवः प्रतीयते) इस वासना से ही पूर्व जन्म का अनुभव जाना जाता है। (स चायमभिनिवेशः क्लेशः) वह यह अभिनिवेशक्लेश (स्वरसवाही कृमेरपि जातमात्रस्य) तत्काल उत्पन्न हुए कृमि आदि को भी (प्रत्यक्षानुमानागमैरसंभावितः) प्रत्यक्ष, अनुमान और आगम प्रमाणों को न जानते हुए (मरणत्रास उच्छेददृष्ट्यात्मकः) मौत का भय उच्छेद देखे हुए के समान स्वभाव से ही होना (पूर्वजन्मानुभूतं मरणदुःखमनुमापयति) पूर्व जन्म में अनुभव किये हुए मौत के दुःख को अनुमान कराता है।

(यथा चायमत्यन्तमूढेषु दृश्यते क्लेशः) जैसा यह क्लेश अत्यन्त अज्ञानियों में देखा जाता है (तथा विदुषोऽपि विज्ञातपूर्वापरान्तस्य रूढः) वैसा ही पूर्वापर के अन्त को जानने वाले विद्वानों में भी देखा जाता है (कस्मात् । समाना हि तयो कुशलाकुशलयोर्मरण दुःखानुभवदियं वासनेति) क्योंकि, उन ज्ञानी और अज्ञानी दोनों में मरणदुःख अनुभव वाली यह वासना समान ही होती है ॥ ९ ॥

भो० वृत्ति

पूर्वजन्मानुभूतमरणदुःखानुभववासनाबलाद्भयरूपः समुपजायमानः शरीरविषयादिभिः मम वियोगो मा भूदिति अन्वहमनुबन्धरूपः सर्वस्यैवाऽऽकृमेर्ब्रह्मपर्यन्तं निमित्तमन्तरेण प्रवर्तमानोऽभिनिवेशाख्यः क्लेशः ॥ ९ ॥

तदेवं व्युत्थानस्य क्लेशात्मकत्वादेकाग्रताभ्यासकामेन प्रथमं क्लेशाः परिहर्तव्याः । न चाज्ञातानां तेषां परिहारः कर्तुं शक्य इति तज्ज्ञानाय तेषामुपदेशं क्षेत्रं विभागं लक्षणं चाभिधाय स्थूलसूक्ष्मभेदभिन्नानां तेषां प्रहाणोपायविभागमाह—

भो० वृ० पदार्थ

(पूर्वजन्मानुभूतमरणदुःख) पूर्वजन्म में अनुभव किया हुआ मौत का दुःख (अनुभववासनाबलाद्भयरूपः समुपजायमानः शरीरविषयादिभिः)

अनुभव की हुई वासना के बल से भयरूप उत्पन्न हुआ शरीर विषयादि से (मम वियोगो मा भूदिति) मेरा वियोग न हो ऐसा (अन्वहमनुबन्धरूपः सर्वस्यैवाऽऽकृमेर्ब्रह्मपर्यन्तं निमित्तमन्तरेण प्रवर्तमानोऽभिनिवेशाख्यः क्लेशः) अनुबन्धरूप सब प्राणियों को कृमि से लेकर ब्रह्मा पर्यन्त अन्य निमित्त के बिना वर्तमान हुआ अभिनिवेश नाम वाला क्लेश है ॥ ९ ॥

(तदेवं व्युत्थानस्य क्लेशात्मकत्वादेकाग्रताभ्यासकामेन प्रथमं क्लेशाः परिहर्तव्याः) इस प्रकार व्युत्थान भी क्लेशरूप होने के कारण एकाग्रता के अभ्यास की इच्छा से प्रथम क्लेशों को नष्ट करना चाहिये (न चाज्ञातानां तेषां परिहारः कर्तुं शक्य) और उन क्लेशों का ज्ञान न होते हुए उन का परिहार नहीं कर सक्ते (इति तज्ज्ञानाय तेषामुपदेशं) इस कारण उन के ज्ञान के लिये उन का उपदेश (क्षेत्रं विभागं लक्षणं चाभिधाय) अविद्यारूपी क्षेत्र और उन की भिन्नता और लक्षण कथन करके (स्थूलसूक्ष्मभेदभिन्नानां तेषां प्रहाणोपायविभागमाह) उन स्थूल, सूक्ष्म भिन्न २ भेद वालों का त्याग और उपाय और विभाग आगे कहते हैं—

ते प्रतिप्रसवहेयाः सूक्ष्माः ॥ १० ॥

सू०—वह सूक्ष्म क्लेश लौटकर अपने कारण में लीन हो जायें ऐसे रूप से त्यागने योग्य हैं ॥ १० ॥

व्या० भाष्यम्

ते पञ्च क्लेशा दग्धबीजकल्पा योगिनश्चरिताधिकारे चेतसि प्रलीने सह तेनैवास्तं गच्छन्ति ॥ १० ॥

स्थितानां तु बीजभावोपगतानाम्—

व्या० भा० पदार्थ

(ते पञ्च क्लेशा योगिनः) योगी के वह पांचों क्लेश (दग्धबीजकल्पा चरिताधिकारे) दग्धबीज के समान हुए २ भोग सम्पादन

में अधिकार समाप्त हो जाने पर (चेतसि प्रलीने सह तेनैवास्तं गच्छन्ति) चित्त के लीन होने पर उस के साथ ही लय हो जाते हैं ॥१०॥

(स्थितानां तु बीजभावोपगतानाम्) बीज भाव से रहते हुओं के नाश करने का उपाय अगले सूत्र से वर्णन करते हैं—

भो० वृत्ति

ते सूक्ष्माः क्लेशा ये वासनारूपेणैव स्थिता न वृत्तिरूपं परिणाममारभन्ते, ते प्रतिप्रसवेन प्रतिलोमपरिणामेन हेयास्त्यक्तव्याः । स्वकारणास्मितायां कृतार्थं सवासनं चित्तं यदा प्रविष्टं भवति तदा कुतस्तेषां निर्मूलानां संभवः ॥ १० ॥

स्थूलानां हानोपायमाह—

भो० वृ० पदार्थ

(ते सूक्ष्माः क्लेशाः) वह सूक्ष्म क्लेश (ये वासनारूपेणैव स्थिता) जो वासनारूप से रहते हुए (न वृत्तिरूपं परिणाममारभन्ते) वृत्तिरूप परिणाम को आरम्भ नहीं करते, (ते प्रतिप्रसवेन प्रतिलोमपरिणामेन हेयास्त्यक्तव्याः) वह प्रतिप्रसव अर्थात् प्रतिलोम परिणाम द्वारा त्याज्य हैं । (स्वकारणास्मितायां कृतार्थं सवासनं चित्तं यदा प्रविष्टं भवति) वासना सहित कृत प्रयोजन हुआ चित्त अपने कारण अस्मिता में जब प्रविष्ट होता है (तदा कुतस्तेषां निर्मूलानां संभवः) तब पुनः कहां से उन निर्मूल क्लेशों की उत्पत्ति हो ॥ १० ॥

(स्थूलानां हानोपायमाह) स्थूल क्लेशों के त्यागने का उपाय आगे कहते हैं—

ध्यानहेयास्तद्वृत्तयः ॥ ११ ॥

सू०—वह वृत्तियें ध्यान से त्यागने योग्य हैं ॥ ११ ॥

व्या० भाष्यम्

क्लेशानां या वृत्तयः स्थूलास्ताः क्रियायोगेन तनूकृताः सत्यः प्रसं-

ख्यानेन ध्यानेन हातव्या यावत्सूक्ष्मीकृता यावद्दग्धबीजकल्पा इति। यथा वस्त्राणां स्थूलो मलः पूर्वं निर्धूयते पश्चात्सूक्ष्मो यत्नेनोपायेन वाऽपनीयते तथा स्वल्पप्रतिपक्षाः स्थूला वृत्तयः क्लेशानां, सूक्ष्मास्तु महाप्रतिपक्षा इति ॥ ११ ॥

व्या० भा० पदार्थ

(क्लेशानां या वृत्तयः स्थूलाः) क्लेशों की जो स्थूल वृत्ति हैं (ताः क्रियायोगेन तनूकृताः) वह क्रियायोग से निर्बल की हुई (सत्यः) रहती हुई (प्रसंख्यानेन ध्यानेन हातव्याः) प्रसंख्यान ज्ञान के बल से ध्यान द्वारा त्यागने योग्य हैं (यावत्सूक्ष्मीकृता यावद्दग्धबीज-कल्पा इति) वहां तक सूक्ष्म की हुई जहां तक दग्धबीज के समान हों, यह अभिप्राय है। (यथा वस्त्राणां स्थूलो मलः पूर्वं निर्धूयते) जिस प्रकार वस्त्रों का स्थूल मल प्रथम प्रक्षालन द्वारा दूर किया जाता है (पश्चात्सूक्ष्मो यत्नेनोपायेन वाऽपनीयते) पश्चात् सूक्ष्म मल यत्न उपाय से नष्ट किया जाता है (तथा स्वल्पप्रतिपक्षाः स्थूला वृत्तयः क्लेशानां) उस ही प्रकार क्लेशों की स्थूलवृत्ति किञ्चित् विरोधी हैं, परन्तु (सुक्ष्मास्तु महाप्रतिपक्षा इति) सूक्ष्मवृत्ति तो महान् विरोधी हैं ॥ ११ ॥

भो० वृत्ति

तेषां क्लेशानामारब्धकार्याणां याः सुखदुःखमोहात्मिका वृत्तयस्ता ध्यानेनैव चित्तैकाग्रतालक्षणेन हेया हातव्या इत्यर्थः। चित्तपरिकर्माभ्यासमात्रेणैव स्थूलत्वात्तासां निवृत्तिर्भवति। यथा वस्त्रादौ स्थूलो मलः प्रक्षालनमात्रेणैव निवर्तते, यस्तु तत्र सूक्ष्मः स तैस्तैरुपायैरुत्तापनप्रभृतिभिरेव निवर्तयितुं शक्यते ॥ ११ ॥

एवं क्लेशानां तत्त्वमभिधाय कर्माशयस्याभिधातुमाह—

भो० वृ० पदार्थ

(तेषां क्लेशानामारब्धकार्याणां याः सुखदुःखमोहात्मिका वृत्तयः)

उन कार्य आरम्भ किये हुए क्लेशों की जो सुख, दुःख, मोह रूप वृत्तियें हैं (ता ध्यानेनैव चित्तैकाग्रतालक्षणेन हेया हातव्या इत्यर्थः) वह चित्त की एकाग्रतारूप से ध्यान द्वारा हेया अर्थात् त्यागने योग्य हैं, यह अर्थ है । (चित्तपरिकर्माभ्यासमात्रेणैव स्थूलत्वात्तासां निवृत्तिर्भवति) चित्त परिकर्म के अभ्यास मात्र से ही स्थूल होने के कारण उन की निवृत्ति हो जाती है । (यथा वस्त्रादौ स्थूलो मलः प्रक्षालनमात्रेणैव निवर्त्तते) जैसे वस्त्रों का स्थूल मल आदि में धोने मात्र से ही छूट जाता है । (यस्तु तत्र सूक्ष्मः स तैस्तैरुपायैरुत्तापनप्रभृतिभिरेव निवर्तयितुं शक्यते) जो उन में सूक्ष्म मल है वह उन २ उपायों तपाना आदि क्रियाओं से निवर्त कर सक्ते हैं ॥ ११ ॥

(एवं क्लेशानां तत्त्वमभिधाय कर्माशयस्याभिधातुमाह) इस प्रकार क्लेशों का तत्त्व निर्णय करके कर्म और वासनाओं का तत्त्व निर्णय करने को आगे कहते हैं—

क्लेशमूलः कर्माशयो दृष्टादृष्टजन्मवेदनीयः ॥१२॥

सू०—वर्तमान जन्म और भावी जन्म में अनुभव करने योग्य कर्म और वासनाओं का मूल क्लेश हैं ॥ १२ ॥

व्या० भाष्यम्

तत्र पुण्यापुण्यकर्माशयः कामलोभमोहक्रोधप्रभवः । स दृष्ट-जन्मवेदनीयश्चादृष्टजन्मवेदनीयश्च । तत्र(तीव्रसंवेगेन मन्त्रतपः समाधिभिर्निर्वर्तित ईश्वरदेवतामहर्षिमहानुभावानामाराधनाद्वा यः परि-निष्पन्नः स सद्यः परिपच्यते पुण्यकर्माशय इति)। (तथा तीव्रक्लेशेन भीतव्याधितकृपणेषु विश्वासोपगतेषु वा महानुभावेषु वा तपस्विषु कृतः पुनः पुनरपकारः स चापि पापकर्माशयः सद्य एव परिपच्यते ।) यथा नन्दीश्वरः कुमारो मनुष्यपरिणामं हित्वा देवत्वेन परिणतः । तथा नहुषोऽपि देवानामिन्द्रः स्वकं परिणामं हित्वा तिर्यक्त्वेन परि-

णत इति । तत्र नारकाणां नास्ति दृष्टजन्मवेदनीयः कर्माशयः । क्षीणक्लेशानामपि नास्त्यदृष्टजन्मवेदनीयः कर्माशय इति ॥ १२ ॥

व्या० भा० पदार्थ

(तत्र पुण्यापुण्यकर्माशयः) उन में पुण्य पापरूप कर्म और वासनायें हैं (कामलोभमोहक्रोधप्रभवः) वह काम, लोभ, मोह और क्रोध से उत्पन्न होती हैं । (स दृष्टजन्मवेदनीयश्चादृष्टजन्मवेदनीयश्च) वह वर्तमान जन्म में अनुभव करने योग्य और भावी जन्मों में अनुभव करने योग्य हैं । (तत्र तीव्रसंवेगेन) उन में तीव्रसंवेग वाले उपाय द्वारा (मन्त्रतपः समाधिभिर्निर्वर्तितः) मन्त्र, तप तथा समाधि से अनुष्ठान करते हुए (ईश्वरदेवतामहर्षिमहानुभावानामाराधनाद्वा) और ईश्वर, देवता, महर्षि, महानुभावी पुरुषों के पूजन और सत्कार से (यः परिनिष्पन्नः) जो परम पवित्रता से किया गया (स सद्यः परिच्यते पुण्यकर्माशय इति) वह शीघ्र ही परिपक्व हो जाता है अर्थात् फल देने को समर्थ हो जाता है यह पुण्य कर्म और वासना हैं । (तथा तीव्रक्लेशेन) उसी प्रकार तीव्र क्लेश द्वारा (भीतव्याधितकृपणेषु विश्वासोपगतेषु वा महानुभावेषु वा तपस्विषु कृतः पुनः पुनरपकारः स चापि पापकर्माशयः सद्य एव परिपच्यते) भयमान व्याधिग्रसित और गुण हीन पुरुषों में वा विश्वास को प्राप्त हुओं में वा महानुभावी पुरुषों में वा तपस्वी लोगों के सम्बन्ध में किया हुआ बारम्बार अपकार वह ही पापकर्म और वासनायें शीघ्र ही परिपक्व हो जाते अर्थात् फल देने को समर्थ हो जाते हैं । (यथा नन्दीश्वरः कुमारो मनुष्यपरिणामं हित्वा देवत्वेन परिणतः) जैसे नन्दीश्वर कुमार मनुष्यभाव को त्याग कर देव भाव में परिणत हो गया । (तथा नहुषोऽपि देवानामिन्द्रः स्वकं परिणामं हित्वा तिर्यक्त्वेन परिणत इति) वैसे ही नहुष भी अपने देवराज भाव को त्यागकर तिर्यक् भाव में परिणत हो गया । (तत्र नारकाणां नास्ति

दृष्टजन्मवेदनीयः कर्माशयः) उन में नरक के भागियों को वर्तमान जन्म में ही कर्म और वासनायें भोगने योग्य नहीं हैं, किन्तु भावी जन्मों में भी भोगनी होंगी । (क्षीणक्लेशानामपि नास्त्यदृष्टजन्म-वेदनीयः कर्माशय इति) नष्ट हो गये हैं क्लेश जिनके ऐसे योगियों को भविष्य जन्म में कर्म और वासवायें भोग्य नहीं हैं ॥ १२ ॥

भो० वृत्ति

कर्माशय इत्यनेन तस्य स्वरूपमभिहितम् । यतो वासनारूपाण्येव कर्माणि क्लेशमूल इत्यनेन कारणमभिहितम् । यतः कर्मणां शुभाशुभानां क्लेशा एव निमित्तम् । दृष्टादृष्टजन्मवेदनीय इत्यनेन फलमुक्तम् । अस्मिन्नेव जन्मनि अनुभवनीयो दृष्टजन्मवेदनीयः । जन्मान्तरानुभवनीयोऽदृष्टजन्मवेदनीयः । तथा हि कानिचित्पुण्यानि कर्माणि देवताराधनादीनि तीव्रसंवेगेन कृतानी-हैव जन्मनि जात्यायुर्भोगलक्षणं फलं प्रयच्छन्ति—यथा नन्दीश्वरस्य भगवन्महे-श्वराराधनबलादिहैव जन्मनि जात्यादयो विशिष्टाः प्रादुर्भूताः । एवमन्येषां विश्वामित्रादीनां तपः प्रभावाज्जात्यायुषी । केषांचिज्जातिरेव—यथा तीव्रसं-वेगेन दुष्टकर्मकृतां नहुषादीनां जात्यन्तरादिपरिणामः । उर्वश्याश्च कार्तिके-यवने लतारूपतया । एवं व्यस्तसमस्तरूपत्वेन यथायोगं योज्यम् ॥ १२ ॥

इदानीं कर्माशयस्य स्वभेदभिन्नस्य फलमाह—

भो० वृ० पदार्थ

(कर्माशय इत्यनेन तस्य स्वरूपमभिहितम्) कर्म वासना इस शब्द से कर्म का स्वरूप प्रकाशित किया गया । (यतो वासनारूपाण्येव कर्माणि) क्योंकि कर्म वासनारूप ही हैं (क्लेशमूल इत्यनेन कारणमभिहितम्) और क्लेशमूल इस शब्द से कारण को प्रकाशित किया । (यतः कर्मणां शुभाशुभानां क्लेशा एव निमित्तम्) क्योंकि पुण्यपापरूप कर्मों के क्लेश ही कारण हैं । (दृष्टादृष्टजन्मवेदनीयः इत्यनेन फलमुक्तम्) दृष्ट अदृष्ट जन्मों में अनुभव करने योग्य हैं इस शब्द से फल को कहा है ।

(अस्मिन्नेवजन्मनि अनुभवनीयो दृष्टजन्मवेदनीयः) जो इस ही जन्म में अनुभव करने योग्य हैं वह दृष्टजन्मवेदनीय कहलाते हैं। (जन्मान्तरानुभवनीयोऽदृष्टजन्मवेदनीयः) भविष्य जन्मों में अनुभव करने योग्य जो हैं वह अदृष्टजन्मवेदनीय कहलाते हैं । (तथा हि—कानिचित्पुण्यानि कर्माणि देवताराधनादीनि तीव्रसंवेगेन कृतानिहैव जन्मनि जात्यायुर्भोगलक्षणं फलं प्रयच्छन्ति) उसी प्रकार कोई एक पुण्यकर्म देवता पूजनादि तीव्रसंवेग से किये हुए इस ही जन्म में जाति, आयु और भोग रूप फल देते हैं । (यथा नन्दीश्वरस्य भगवन्महेश्वराराधनबलादिहैव जन्मनि जात्यादयो विशिष्टाः प्रादुर्भूताः) जैसे नन्दीश्वर को भगवान् परमात्म पूजन के बल से इस ही जन्म में श्रेष्ठ जाति आदि का प्रादुर्भाव हुआ । (एवमन्येषां विश्वामित्रादीनां तपः प्रभावाज्जात्यायुषी) इसी प्रकार अन्य विश्वामित्रादिकों को तप के प्रभाव से श्रेष्ठ जाति, आयु, भोग प्राप्त हुए थे । (केषांचिज्जातिरेव) किन्हीं एक जातियों का—(यथा तीव्रसंवेगेन दुष्टकर्मकृतां नहुषादीनां जात्यन्तरादिपरिणामः) जैसे तीव्रसंवेग से पाप कर्म करते हुए नहुषादि को अन्य जाति आदि परिणाम प्राप्त हुआ । (उर्वश्याश्च कार्तिकेयवने लतारूपतया । एवं व्यस्तसमस्तरूपत्वेन यथायोगं योज्यम्) उर्वश्य के दृष्टान्त से यह आधुनिक मतों का मिलाया हुआ प्रतीत होता है ॥ १२ ॥

(इदानीं कर्माशयस्य स्वभेदभिन्नस्य फलमाह) अब कर्म और वासनाओं का जो स्वरूप से भिन्न है, अगले सूत्र में फल कहते हैं—

सति मूले तद्विपाको जात्यायुर्भोगाः ॥ १३ ॥

सू०—क्लेश रूप मूल के रहते हुए उनका फल जाति, आयु और भोग अवश्य ही होते हैं ॥ १३ ॥

व्या० भाष्यम्

सत्सु क्लेशेषु कर्माशयो विपाकारम्भी भवति । नोच्छिन्नक्लेश-

मूलः । यथा तुषावनद्धाः शालितण्डुला अदग्धबीजभावाः प्ररोहसमर्था भवन्ति नापनीततुषा दग्धबीजभावा वा, तथा क्लेशावनद्धः कर्माशयो विपाकप्ररोही भवति नापनीतक्लेशो न प्रसंख्यानदग्धक्लेशबीजभावो वेति । स च विपाकस्त्रिविधो जातिरायुर्भोग इति ।

तत्रेदं विचार्यते—किमेकं कर्मैकस्य जन्मनः कारणमथैकं कर्मानेकं जन्माऽऽक्षिपतीति । द्वितिया विचारणा—किमनेकं कर्मानेकं जन्म निर्वर्तयति अथानेकं कर्मैकं जन्म निर्वर्तयतीति । न तावदेकं कर्मैकस्य जन्मनः कारणम् । कस्मात्, अनादिकालप्रचितस्यासंख्येयस्यावशिष्टस्य कर्मणः सांप्रतिकस्य च फलक्रमानियमादनाश्वासो लोकस्य प्रसक्तः, स चानिष्ट इति । न चैकं कर्मानेकस्य जन्मनः कारणम् । कस्मात्, अनेकेषु कर्मसु एकैकमेव कर्मानेकस्यजन्मनः कारणमित्यवशिष्टस्य विपाककालाभावः प्रसक्तः, स चाप्यनिष्ट इति । न चानेकं कर्मानेकस्य जन्मनः कारणम् । कस्मात्, तदनेकं जन्म युगपन्न संभवतीति क्रमेणैव वाच्यम् । तथा च पूर्वदोषानुषङ्ग ।

तस्माज्जन्मप्रायणान्तरे कृतः पुण्यापुण्यकर्माशयप्रचयो विचित्रः प्रधानोपसर्जनभावेनावस्थितः प्रायेणाभिव्यक्त एकप्रघट्टकेन मरणं प्रसाध्य संमूर्छित एकमेव जन्म करोति । तच्च जन्म तेनैव कर्मणा लब्धायुष्कं भवति । तस्मिन्नायुषि तेनैव कर्मणा भोगः संपद्यत इति । असौ कर्माशयो जन्मायुर्भोगहेतुत्वात् त्रिविपाकोऽभिधीयत इति । अत एकभविकः कर्माशय उक्त इति ।

दृष्टजन्मवेदनीयस्त्वेकविपाकारम्भी भोगहेतुत्वाद्द्विविपाकारम्भी वाऽऽयुर्भोगहेतुत्वान्नन्दीश्वरवन्नहुषवद्वेति । क्लेशकर्मविपाकानुभवनिर्वर्तिताभिस्तु वासनाभिरनादिकालसंमूर्छितमिदं चित्तं विचित्रीकृतमिव सर्वतो मत्स्यजालं ग्रन्थिभिरिवाऽऽततमित्येता अनेकभवपूर्विका वासनाः । यस्त्वयं कर्माशय एष एवैकभविक उक्त इति । ये संस्काराः स्मृतिहेतवस्ता वासनास्ताश्चानादिकालीना इति ।

यस्त्वसावेकभविकः कर्माशयः स नियतविपाकश्चानियतविपा-

कश्च। तत्र दृष्टजन्मवेदनीयस्य नियतविपाकस्यैवायं नियमो न त्वदृष्टजन्मवेदनीयस्यानियतविपाकस्य। कस्मात्। यो ह्यदृष्टजन्मवेदनीयोऽनियतविपाकस्तस्य त्रयी गतिः—कृतस्याविपक्वस्य विनाशः प्रधानकर्मण्यावापगमनं वा, नियतविपाकप्रधानकर्मणाऽभिभूतस्य वा चिरमवस्थानमिति।

तत्र कृतस्याविपक्वस्य नाशो यथा शुक्लकर्मोदयादिहैव नाशः कृष्णस्य। यत्रेदमुक्तम्—"द्वे द्वे ह वै कर्मणी वेदितव्ये पापकस्यैको राशिः पुण्यकृतोऽपहन्ति तदिच्छस्व कर्माणि सुकृतानि कर्तुमिहैव ते कर्म कवयो वेदयन्ते" प्रधानकर्मण्यावापगमनम्। यत्रेदमुक्तं—"स्यात्स्वल्पः संकरः सपरिहारः सप्रत्यवमर्षः कुशलस्य नापकर्षायालम्। कस्मात्, कुशलं हि मे बह्वन्यदस्ति यत्रायमावापं गतः स्वर्गेऽप्यपकर्षमल्पं करिष्यति" इति।

नियतविपाकप्रधानकर्मणाऽभिभूतस्य वा चिरमवस्थानम्। कथमिति, अदृष्टजन्मवेदनीयस्यैव नियतविपाकस्य कर्मणः समानं मरणमभिव्यक्तिकारणमुक्तम्, न त्वदृष्टजन्मवेदनीयस्यानियतविपाकस्य। यत्त्वदृष्टजन्मवेदनीयं कर्मानियतविपाकं तन्नश्येदावापं वा गच्छेदभिभूतं वा चिरमप्युपासीत, यावत्समानं कर्माभिव्यञ्जकं निमित्तमस्य न विपाकाभिमुखं करोतीति। तद्विपाकस्यैव देशकालनिमित्तानवधारणादियं कर्मगतिश्चित्रा दुर्विज्ञाना चेति। न चोत्सर्गस्यापवादान्निवृत्तिरित्येकभविकः कर्माशयोऽनुज्ञायत इति॥ १३॥

व्या० भा० पदार्थ

(सत्सु क्लेशेषु कर्माशयो विपाकारम्भी भवति) क्लेशों की विद्यमानता में कर्म ~~और वासनायें~~ दोनों फल की आरम्भ करने वाली होती हैं (नोच्छिन्नक्लेशमूलः) जिन का क्लेशरूपी मूल नाश हो गया है वह फल को आरम्भ नहीं करती। (यथा तुषावनद्धाः शालितण्डुलाः) जैसे तुष से वेष्टित चावल (अदग्धबीज-

भावाः प्ररोहसमर्था भवन्ति) नहीं जला बीज भाव जिनका उप-जने को समर्थ होते हैं । (नापनीततुषा दग्धबीजभावा वा) जिन के तुष नष्ट हो गये वा बीज जिनका दग्ध हो गया वह पुनः नहीं उगते, (तथा क्लेशावनद्धः कर्माशयो विपाकप्ररोही भवति) उस ही प्रकार क्लेशों से मुंदी हुई कर्म्म और वासना फल की उत्पादक होती हैं (नापनीतक्लेशः) क्लेश नष्ट हो गये हैं जिन के वह नहीं होती (न प्रसंख्यानदग्धक्लेशबीजभावो वेति) और प्रसंख्यान ज्ञान के द्वारा दग्ध हो गया है जिन का क्लेशरूपी बीज वह नहीं होती । (स च विपाकस्त्रिविधो जातिरायुर्भोग इति) वह विपाक जाति, आयु और भोग इन तीन भेदों वाला है ।

(तत्रेदं विचार्यते) इस विषय में यह विचार किया जाता है कि—(किमेकं कर्मैकस्य जन्मनः कारणम्) क्या एक कर्म एक ही जन्म का कारण होता है (अथैकं कर्मानेकं जन्माऽऽक्षिपतीति) अथवा एक कर्म अनेक जन्म देता है ।

(द्वितिया विचारणा) द्वितिय विचारणीय विषय यह है कि—(किमनेकं कर्मानेकं जन्म निर्वर्तयति) क्या अनेक कर्म अनेक जन्मों में वर्तते हैं (अथानेकं कर्मैकं जन्म निर्वर्तयतीति) अथवा अनेक कर्म एक जन्म में वर्तते हैं । (न तावदेकं कर्मैकस्य जन्मनः कारणम्) एक कर्म एक जन्म का कारण है, यह भी सिद्धान्त नहीं है । (कस्मात्) क्योंकि, (सांप्रतिकस्य च फलक्रमानियमादनाश्वासो लोकस्य प्रसक्तः) कर्मों के फल भोगने में क्रम का नियम नहीं है, अर्थात् प्रथम किया हुआ प्रथम और उस से पश्चात् किया हुआ उस से पश्चात् और उस के भी पश्चात् किया हुआ उस के पश्चात् इस प्रकार भोगें, क्योंकि इस विचार से कि न जाने कब फल आवेगा वर्तमान काल में मनुष्यों को विश्वास न होने से उत्तम कर्म करने का उत्साह भी न हो और यह अनिष्ट है । (अनादिकालप्रचितस्यासंख्येयस्यावशिष्टस्य कर्मणः) और पुनः

अनादिकाल से सञ्चित् हुए असंख्येय कर्म अवशिष्ट रहे हुओं का कब भोग होवे (स चानिष्ट इति) अतः यह भी इष्ट नहीं, इस हेतु एक कर्म एक जन्म का कारण नहीं हो सक्ता। (न चैकं कर्मानेकस्य जन्मनः कारणम्) और यह भी नहीं है कि एक कर्म अनेक जन्मों का कारण हो। (कस्मात्) क्योंकि, (अनेकेषु कर्मसु एकैकमेव कर्मानेकस्य जन्मनः कारणमित्यवशिष्टस्य विपाककालाभावः प्रसक्तः) अनेक कर्मों में से एक ही कर्म अनेक जन्मों का कारण हो तो शेष रहे हुओं का फल भोगने के लिये काल कहां से आवेगा अर्थात् उसका अभाव ही होगा, (स चाप्यनिष्ट इति) वह भी अनिष्ट है॥

(न चानेकं कर्मानेकस्य जन्मनः कारणम्) और यह भी नहीं है कि अनेक कर्म अनेक जन्मों के कारण हों। (कस्मात्) क्योंकि, (तदनेकं जन्म युगपन्न संभवतीति क्रमेणैव वाच्यम्) अनेक जन्म एक साथ नहीं हो सक्ते, क्रम से ही कहो तो। (तथा च पूर्वदोषानुषङ्गः) उसी प्रकार पूर्वोक्त दोष का प्रसङ्ग आता है॥

अब आगे महर्षि सिद्धान्त बतलाते हैं—

(तस्माज्जन्मप्रायणान्तरे कृतः पुण्यापुण्यकर्माशयप्रचयो विचित्रः) इस कारण जन्म से लेकर मरणपर्यन्त बीच में किये पुण्य पापरूप कर्म और उनकी वासना की उत्पत्ति में विचित्रता (प्रधानोपसर्जनभावेनावस्थितः प्रायणाभिव्यक्तः) कर्म प्रधान और उपसर्जनरूप इन दो भेदों से रहते हैं, मरने पर उन प्रकटता होती है। "**प्रधानकर्म**" वह कहलाते हैं जिन के संस्क ऐसे बलवान् हों कि मरने के पश्चात् सब से प्रथम उन्हीं के फलवाल योनि प्राप्त हो, और जो मरने के पश्चात् तत्काल फल देने समर्थ न हों वह "**उपसर्जन**" कहलाते हैं। (एकप्रघट्टकेन म प्रसाध्य संमूर्छित एकमेव जन्म करोति) मृत्यु पाकर एक श

के द्वारा मूर्छित से हुए एक ही जन्म करते हैं। (तच्च जन्म तेनैव कर्मणा लब्धायुष्कं भवति) वह जन्म उन्हीं कर्मों से आयु को लाभ कराने वाला होता है। (तस्मिन्नायुषि तेनैव कर्मणा भोगः संपद्यत इति) उस आयु में उन्हीं कर्मों के द्वारा भोग प्राप्त होता है। (असौ कर्माशयो जन्मायुर्भोगहेतुत्वात् त्रिविपाकोऽभिधीयत इति) इसलिये वह कर्माशय जन्म, आयु और भोग का हेतु होने से त्रिविपाक = तीन फलवाले कहे जाते हैं। (अत एकभविकः कर्माशय उक्त इति) अतएव यह एक जन्म का कर्माशय कहा गया।

(दृष्टजन्मवेदनीयस्त्वेकविपाकारम्भी भोगहेतुत्वाद्द्विविपाकारम्भी वाऽऽयुर्भोगहेतुत्वान्नन्दीश्वरवन्नहुषवद्वेति) वर्तमान जन्म में अनुभव करने योग्य एक मोक्ष फल का आरम्भी, भोग हेतु होने से दो फल का आरम्भी, अथवा भोग आयु हेतु वाला होने से नन्दीश्वर के समान और नहुष के समान। (क्लेशकर्मविपाकानुभवनिर्वर्तिताभिस्तु) क्लेश और कर्म फल के अनुभवरूप से वर्तती हुई (वासनाभिरनादिकालसंमूर्छितमिदं चित्तं) वासनाओं से अनादि काल से मूर्च्छित हुआ यह चित्त (विचित्रीकृतमिव सर्वतो मत्स्यजालं ग्रन्थिभिरिवाऽऽततमिति) चित्रित हुए के समान सब ओर से फैले हुए जाल में मछली के समान जकड़ा हुआ (एता अनेकभवपूर्विका वासनाः) इस कारण यह अनेक जन्मों के कर्मानुसार वासनायें। (यस्त्वयं कर्माशय एष एवैकभविक उक्त इति) इस प्रकार जो यह कर्म और वासनायें यही एक जन्म का कहा गया। (ये संस्काराः स्मृतिहेतवस्ता वासनास्ताश्चानादिकाला इति) जो संस्कार स्मृतियों के हेतु हैं, वही वासना हैं वह अनादि काल की हैं।

(यस्त्वसावेकभविकः कर्माशयः) जो वह एक जन्म के कर्म-वासनायें हैं (स नियतविपाकश्चानियतविपाकश्च) नियत हो गया

है फल जिनका इस रूप वाली अर्थात् जिनके अनुसार देह प्राप्त हो गया वह "नियतविपाक" कहलाती है, और नहीं नियत हुआ है फल जिनका वह "अनियतविपाक" कहलाती है, इस प्रकार दो भेद हैं। (तत्र दृष्टजन्मवेदनीयस्य नियतविपाकस्यैवायं नियमो न त्वदृष्टजन्मवेदनीयस्यानियतविपाकस्य) उन में वर्तमान जन्म में अनुभव करने योग्य नियत विपाक का यह नियम है, भावी जन्मों में अनुभव करने योग्य अनियत फलवाले का यह नियम नहीं है। (कस्मात्) क्योंकि, (यो ह्यदृष्टजन्मवेदनीयोऽनियतविपाकस्तस्य त्रयो गतिः) जो भविष्य जन्मों में अनुभव करने योग्य अनियत फलवाले कर्माशय हैं उनकी तीन प्रकार की गति हैं—(कृतस्याविपक्वस्य विनाशः) एक तो किये हुए कर्म के फल का नाश, (प्रधानकर्मण्यावापगमनं वा) दूसरी—प्रधान कर्म में मिलकर भोगना, (नियतविपाकप्रधानकर्मणाऽभिभूतस्य वा चिरमवस्थानमिति) तीसरी—नियत हो गया है फल जिस का ऐसे प्रधान कर्म से दबी हुई देर तक पड़ी रहे, यह अभिप्राय है।

(तत्र कृतस्याविपक्वस्य नाशः) उन में किये हुए कर्म के फल का नाश इस प्रकार है (यथा शुक्लकर्मोदयादिहैव नाशः कृष्णस्य) जैसे पुण्य कर्म के उदय होने से इस ही जन्म में पाप कर्म का नाश हो जाता है। (यत्रेदमुक्तम्) जिस विषय में यह कहा है—(द्वे द्वे ह वै कर्मणी वेदितव्ये) निश्चय कर्म में दो दो भेद जानने योग्य हैं (पापकस्यैको राशिः पुण्यकृतोऽपहन्ति) एक पाप समूह को दूसरा पुण्य समूह नाश करता है (तदिच्छस्व कर्माणि सुकृतानि कर्तुम्) इस कारण सुकर्म करने की इच्छा तुम करो (इहैव ते कर्म कवयो वेदयन्ते) इस संसार में ही ज्ञानी लोग उन कर्मों को अनुभव करते हैं।

(प्रधानकर्मण्यावापगमनम्) अथवा प्रधान कर्म में मिलकर

भोगना। (यत्रेदमुक्तम्) जिस में यह कहा है—(स्यात्स्वल्पः संकरः) उस प्रधान कर्म में अल्प मिलाव होता है (सपरिहारः) उस का प्रायश्चित्त से नाश हो सक्ता है (सप्रत्यवमर्षः) उस का यह विचार है (कुशलस्य नापकर्षायालम्) ज्ञानी पुरुष को पुण्य अधिक होने से वह थोड़ा सा पाप कर्म मिला हुआ हानि पहुंचाने को पर्याप्त नहीं है । (कस्मात्) क्योंकि, (कुशलं हि मे बह्वन्यदस्ति) ज्ञानी पुरुष ऐसा विचारता है कि मेरा वह दूसरा पुण्य कर्म ही पाप कर्म से अधिक है (यत्रायमावापं गतः) जिस में यह मिला हुआ है (स्वर्गेऽप्यपकर्षमल्पं करिष्यति इति) सुख भोग में भी अल्प ही हानि करेगा ।

(नियतविपाकप्रधानकर्मणाऽभिभूतस्य वा) अथवा नियत हो गया है फल जिस का ऐसे प्रधान कर्म से दबा हुआ (चिरमवस्थानम्) चिरकाल तक फल देने से रुका रहना । (कथमिति) किस प्रकार कि, (अदृष्टजन्मवेदनीयस्यैव) अदृष्टजन्म वेदनीय का यह कथन हुआ (नियतविपाकस्य कर्मणः समानं मरणमभिव्यक्तिकारणमुक्तम्) नियत विपाक का कर्म के समान मृत्यु द्वारा उस की प्रकटता का कारण प्रथम कहा गया, (न त्वदृष्टजन्मवेदनीयस्यानियतविपाकस्य) न कि भविष्य जन्मों में भोगने योग्य जिन का की फल अभी नियत ही नहीं हुआ उनका । (यत्त्वदृष्टजन्मवेदनीयं कर्मानियतविपाकं तन्नश्येदावापं वा गच्छेदभिभूतं वा चिरमप्युपासीत) क्योंकि जो कर्म जिस का अभी फल नियत नहीं हुआ भविष्य जन्मों में भोगने योग्य है, वह या तो नष्ट हो जावें वा प्रधान कर्म में मिल कर भोग जावें, वा प्रधान कर्म से अभिभूत हुआ बहुत समय तक पड़ा रहे । (यावत्समानं कर्माभिव्यञ्जकं निमित्तमस्य न विपाकभिमुखं करोतीति) जब तक इस का प्रकाशक समान कर्म कारण रूप कर्म को फल के सन्मुख नहीं करता तब तक पड़ा रहता है । (तद्विपाकस्यैव देशकालनिमित्तानवधार-

णादियं) उस फल के ही देश काल निमित्त धारणादि से फल के सन्मुख करता है (कर्मगतिश्चित्रा दुर्विज्ञाना चेति) इस कारण कर्म की गति बड़ी विचित्र है और कठिनता से जानी जाती है। (न चोत्सर्गस्यापवादान्निवृत्तिः) न कि ज्ञानानुसार अनुष्ठान किये विना उत्सर्ग अपवाद रूप वाक्यों से निवृत्ति * (इत्येकभविकः कर्माशयोऽज्ञायत इति) इस प्रकार एक जन्म के कर्म और वासनायें जानी जाती हैं ॥ १३ ॥

भो० वृत्ति

मूलमुक्तलक्षणाः क्लेशाः । तेष्वनभिभूतेषु सत्सु कर्मणां कुशलाकुशलरूपाणां विपाकः फलं जात्यायुर्भोगा भवन्ति । जातिर्मनुष्यत्वादिः । आयुश्चिरकालमेकशरीरसंबन्धः । भोगा विषया इन्द्रियाणि सुखसंविद्ः खसंविच्च कर्मकरणभावसाधनव्युत्पत्त्या भोगशब्दस्य । इदमत्र तात्पर्यम्—चित्तभूमावनादिकालसंचिताः कर्मवासना यथा यथा पाकमुपयान्ति तथा तथा गुणप्रधानभावेन स्थिता जात्यायुर्भोगलक्षणं स्वकार्यमारभन्ते ॥ १३ ॥

उक्तानां कर्मफलत्वेन जात्यादीनां स्वकारणकर्मानुसारिणां कार्यकर्तृत्वमाह—

भो० वृ० पदार्थ

(मूलमुक्तलक्षणाः क्लेशाः) जाति, आयु, भोग के मूल क्लेश हैं, जिन के लक्षण ऊपर कहे गये । (तेष्वनभिभूतेषु सत्सु कर्मणां कुशलाकुशलरूपाणां विपाकः फलं जात्यायुर्भोगा भवन्ति) उन क्लेशों के रहते हुए पुण्य पापरूप कर्मों के विपाक अर्थात् फल, जाति, आयु भोग होते हैं । (जातिर्मनुष्यत्वादिः) जाति = मनुष्यत्वादि, (आयुश्चिरकालमेकशरीरसंबन्धः) आयु = चिरकाल तक जीव का एक शरीर के साथ सम्बन्ध रहना, (भोगा

* किसी सूत्र वा श्लोक का अधिक विषय लेकर जो कुछ कहा जाय वह उत्सर्ग कहलाता है । थोड़ा विषय लेकर कहा जाय तो अपवाद कहलाता है ।

विषया इन्द्रियाणि सुखसंविद्दुःखसंविच्च) भोग विषय हैं जो इन्द्रियों में सुख का ज्ञान और दुःख का ज्ञान होता है (कर्मकरणभावसाधनव्युत्पत्त्या) कर्म वह हैं जो इन्द्रियरूप साधन से उत्पन्न होते हैं (भोगशब्दस्य इदमत्र तात्पर्यम्) भोग शब्द का यहां यह तात्पर्य है कि, (चित्तभूमावनादिकालसंचिताः कर्मवासना) चित्त भूमि में अनादि काल से सञ्चित कर्म और वासनायें (यथा यथा पाकमुपयान्ति) जैसे जैसे परिपक्व होती जाती हैं (तथा तथा गुणप्रधानभावेन स्थिता) वैसे वैसे प्रकृति के सत्त्व, रज, तम आदि गुणों की प्रधानता से रहती हुई (जात्यायुर्भोगलक्षणं स्वकार्यमारभन्ते) जाति, आयु और भोगरूप अपने अपने कार्यों को प्रारम्भ करती हैं ॥ १३ ॥

(उक्तानां कर्मफलत्वेन जात्यादीनां स्वकारणकर्मानुसारिणां कार्यकर्तृत्वमाह) अपने कारणरूप कर्म के अनुसार कर्म फल रूप से ऊपर कही जाति आदियों के कार्य करने को अगले सूत्र में कहते हैं—

ते ह्लादपरितापफलाः पुण्यापुण्यहेतुत्वात् ॥ १४ ॥

सू०—वह जाति, आयु, भोग, पुण्य, पाप रूपकारण द्वारा उत्पन्न होने से सुख तथा दुःख फल वाले हैं ॥ १४ ॥

व्या० भाष्यम्

ते जन्मायुर्भोगाः पुण्यहेतुकाः सुखफला अपुण्यहेतुका दुःखफला इति । यथा चेदं दुःखं प्रतिकूलात्मकमेवं विषयसुखकालेऽपि दुःखमस्त्येव प्रतिकूलात्मकं योगिनः ॥ १४ ॥

कथं, तदुपपद्यते—

व्या० भा० पदार्थ

(ते जन्मायुर्भोगाः) वह जाति, आयु और भोग (पुण्यहेतुका सुखफलाः) पुण्य है कारण जिनका वह सुख फलवाली और (अपुण्यहेतुका दुःखफला इति) पाप है कारण जिन का वह दुःख

फल वाली हैं। (यथा चेदं दुःखं प्रतिकूलात्मकम्) जिस प्रकार यह दुःख आत्मा को विरोधी रूप प्रतीत होता है (एवं विषयसुखकालेऽपि दुःखमस्त्येव प्रतिकूलात्मकं योगिनः) वैसे ही विषय सुख काल में भी योगी को तो प्रतिकूलरूप दुःख ही प्रतीत होता है ॥१४॥

(कथं तदुपपद्यते) वह सुख भी दुःख क्यों कर है, इस का प्रतिपादन अगले सूत्र में करते हैं—

भो० वृत्ति

ह्लादः सुखं, परितापो दुःखं, ह्लादपरितापौ फलं येषां ते तथोक्ताः। पुण्यं कुशलं कर्म। तद्विपरीतमपुण्यं, ते पुण्यापुण्ये कारणं येषां ते तेषां भावस्तस्मात्। एतदुक्तं भवति—पुण्यकर्मारब्धा जात्यायुर्भोगा ह्लादफला अपुण्यकर्मारब्धास्तु परितापफलाः। एतच्च प्राणिमात्रापेक्षया द्वैविध्यम् ॥ १४॥

योगिनस्तु सर्वं दुःखमित्याह—

भो० वृ० पदार्थ

(ह्लादः सुखं) ह्लाद का अर्थ सुख है, (परितापो दुःखं) परिताप का अर्थ दुःख है, (ह्लादपरितापौ फलं येषां ते तथोक्ताः) वह सुख और दुःख दोनों फल हैं जिन के वह पूर्व कहे हुए पुण्य-पापरूप कर्म हैं। (पुण्यं कुशलं कर्म) ज्ञान पूर्वक किया हुआ कर्म 'पुण्य' कहलाता है। (तद्विपरीतमपुण्यं) और उस से विपरीत अज्ञान से किया हुआ कर्म 'पाप' कहलाता है. (ते पुण्यापुण्ये कारणं येषां) वह पुण्य पापरूप कर्म कारण हैं जिन सुख दुःख के (ते तेषां भावः) वह २ उन का रूप है (तस्मात्, एतदुक्तं भवति) इस कारण यह कहा जाता है—(पुण्यकर्मारब्धा जात्यायुर्भोगा ह्लादफलाः) पुण्य कर्म से आरम्भ किये हुए जाति, आयु, भोग सुख फलवाले हैं (अपुण्यकर्मारब्धास्तु परितापफलाः) पाप कर्म से आरम्भ किये हुए दुःख फलवाले हैं। (एतच्च प्राणिमात्रापेक्षया द्वैविध्यम्) यह सब प्राणियों की अपेक्षा से दो प्रकार के हैं ॥ १४ ॥

(योगिनस्तु सर्वं दुःखमित्याह) योगी को तो सर्वं दुःख ही है, यह अगले सूत्र में प्रतिपादन करते हैं—

परिणाम तापसंस्कार दुःखैर्गुणवृत्तिविरोधाच्च दुःखमेव सर्वं विवेकिनः ॥ १५ ॥

सू०—परिणाम–ताप–संस्कार रूपी दुःखों के विचार से और गुणों की वृत्तियों में परस्पर विरोध होने से ज्ञानी पुरुष को तो सर्व संसार दुःख रूप ही प्रतीत होता है ॥ १५ ॥

व्या० भाष्यम्

सर्वस्यायं रागानुविद्धश्चेतनाचेतनसाधनाधीनः सुखानुभव इति तत्रास्ति रागजः कर्माशयः । तथा च द्वेष्टि दुःखसाधनानि मुह्यति चेति द्वेषमोहकृतोऽप्यस्ति कर्माशयः । तथा चोक्तम्—"नानुपहत्य भूतान्युपभोगः संभवतीति हिंसाकृतोऽप्यस्ति शारीरः कर्माशयः" इति । विषयसुखं चाविद्येत्युक्तम् ।

या भोगेष्विन्द्रियाणां तृप्तेरुपशान्तिस्तत्सुखम् । या लौल्यादनुपशान्तिस्तद्दुःखम् । न चेन्द्रियाणां भोगाभ्यासेन वैतृष्ण्यं कर्तुं शक्यम् । कस्मात्, यतो भोगाभ्यासमनु विवर्धन्ते रागाः कौशलानि चेन्द्रियाणामिति । तस्मादनुपायः सुखस्य भोगाभ्यास इति । स खल्वयं वृश्चिकविषभीत इवाऽऽशीविषेण दष्टो यःसुखार्थी विषयानुवासितो महति दुःखपङ्के निमग्न इति । एषा परिणामदुःखता नाम प्रतिकूला सुखावस्थायामपि योगिनमेव क्लिश्नाति ।

अथ का तापदुःखता सर्वस्य द्वेषानुविद्धश्चेतनाचेतनसाधनाधीनस्तापानुभव इति तत्रास्ति द्वेषजः कर्माशयः । सुखसाधनानि च प्रार्थयमानः कायेन वाचा मनसा च परिस्पन्दते ततः परमनुगृह्णात्युपहन्ति चेति परानुग्रहपीडाभ्याम् धर्माधर्मावुपचिनोति । स कर्माशयो लोभान्मोहाच्च भवतीत्येषा तापदुःखतोच्यते । का पुनःसंस्कार-

दुःखता, सुखानुभवात्सुखसंस्काराशयो दुःखानुभवादपि दुःखसंस्काराशय इति। एवं कर्मभ्यो विपाकेऽनुभूयमाने सुखे दुःखे वा पुनः कर्माशयप्रचय इति।

एवमिदमनादि दुःखस्रोतो विप्रसृतं योगिनमेव प्रतिकूलात्मकत्वादुद्वेजयति। कस्मात्, अक्षिपात्रकल्पो हि विद्वानिति। यथोर्णातन्तुरक्षिपात्रे न्यस्तः स्पर्शेन दुःखयति न चान्येषु गात्रावयवेषु, एवमेतानि दुःखान्यक्षिपात्रकल्पं योगिनमेव क्लिश्नन्ति नेतरं प्रतिपत्तारम्। इतरं तु स्वकर्मोपहृतं दुःखमुपात्तमुपात्तं त्यजन्तं त्यक्तं त्यक्तमुपाददानमनादिवासनाविचित्रतया चित्तवृत्त्या समन्ततोऽनुविद्धमिवाविद्यया हातव्य एवाहंकारममकारानुपातिनं जातं जातं बाह्याध्यात्मिकोभयनिमित्तास्त्रिपर्वाणस्तापा अनुप्लवन्ते। तदेवमनादिना दुःखस्रोतसा व्युह्यमानमात्मानं भूतग्रामं च दृष्ट्वा योगी सर्वदुःखक्षयकारणं सम्यग्दर्शनं शरणं प्रपद्यत इति।

गुणवृत्तिविरोधाच्च दुःखमेव सर्वं विवेकिनः। प्रख्याप्रवृत्तिस्थितिरूपा बुद्धिगुणाः परस्परानुग्रहतन्त्री भूत्वा शान्तं घोरं मूढं वा प्रत्ययं त्रिगुणमेवाऽऽरभन्ते। चलं च गुणवृत्तमिति क्षिप्रपरिणामि चित्तमुक्तम्। (रूपातिशया वृत्त्यतिशयाश्च परस्परेण विरुध्यन्ते, सामान्यानि त्वतिशयैः सह प्रवर्तन्ते) एवमेते गुणा इतरेतराश्रयेणोपार्जितसुखदुःखमोहप्रत्ययाः सर्वे सर्वरूपा भवन्तीति, गुणप्रधानभावकृतस्त्वेषां विशेष इति। तस्माद्दुःखमेव सर्वं विवेकिन इति।

तदस्य महतो दुःखसमुदायस्य प्रभवबीजमविद्या। तस्याश्च सम्यग्दर्शनमभावहेतुः। यथा चिकित्साशास्त्रं चतुर्व्यूहम्—रोगो रोगहेतुरारोग्यं भैषज्यमिति, एवमिदमपि शास्त्रं चतुर्व्यूहमेव। तद्यथा—संसारः संसारहेतुर्मोक्षो मोक्षोपाय इति। तत्र दुःखबहुलः संसारो हेयः। प्रधानपुरुषयोः संयोगो हेयहेतुः। संयोगस्याऽऽत्यन्तिकी निवृत्तिर्हानम्। हानोपायः सम्यग्दर्शनम्। तत्र हातुः स्वरूपमुपादेयं वा हेयं वा न भवितुमर्हतीति हाने तस्योच्छेदवादप्रसङ्ग उपा-

दाने च हेतुवादः । उभयप्रत्याख्याने शाश्वतवाद इत्येतत्सम्यग्दर्शनम् तदेतच्छास्त्रं चतुर्व्यूहमित्यभिधीयते ॥ १५ ॥

व्या० भा० पदार्थ—

(सर्वस्यायं रागानुविद्धश्चेतनाचेतनसाधनाधीनः सुखानुभव इति) सब किसी को यह राग में बंधे हुए जड़, चेतन साधनों के आधीन सुख का अनुभव होता है (तत्रास्ति रागजः कर्माशयः) उस में राग से उत्पन्न हुई वासना, कर्म ही कारण है। (तथा च द्वेष्टि दुःखसाधनानि) वैसे ही सुख के विरोधी दुःख साधनों में द्वेष करता है (मुह्यति च) और फिर उन के परिहार में असमर्थ होने पर मोहित अर्थात् कर्तव्याकर्तव्य के विचार से रहित हो जाता है और पुनः विचार रहित हुआ अधर्म करके भावी जन्मों में दुःखों को भोगता है, यह सुख भोग का परिणाम दुःख होगया इसलिये इस को "परिणामदुःख" कहते हैं। (इति द्वेषमोहकृतोऽप्यस्ति कर्माशयः) इस प्रकार कर्म और वासनायें द्वेष और मोह के कारण उत्पन्न होती हैं (तथा चोक्तम्) वैसा ही कहा है— ("नानुपहत्य भूतान्युपभोगः संभवतीति) विना प्राणियों के हनन किये भोग नहीं हो सक्ता (हिंसाकृतोऽप्यस्ति शारीरः कर्माशयः" इति) शरीर के कर्म और वासनायें हिंसा कृत भी हैं (विषयसुखं चाविद्येत्युक्तम्) विषय सुख अविद्या कृत हैं यह कहा गया।

(या भोगेष्विन्द्रियाणां तृप्तेरुपशान्तिस्तत्सुखम्) जो भोगों में इन्द्रियों की तृप्ति शान्ति है उसी का नाम सुख है। (या लौल्यादनुपशान्तिस्तद्दुःखम्) जो लोभ से अनुपशान्ति है उस का नाम दुःख है। (न चेन्द्रियाणां भोगाभ्यासेन वैतृष्ण्यं कर्तुं शक्यम्) भोग के अभ्यास से इन्द्रियों की तृप्ति नहीं कर सक्ते (कस्मात्, यतो भोगाभ्यासमनु विवर्धन्ते रागाः) क्योंकि, भोग अभ्यास के पश्चात् राग बढ़ते हैं (कौशलानि चेन्द्रियाणामिति) और इन्द्रियें

भोगने में चतुर हो जाती हैं (तस्मादनुपायः सुखस्य भोगाभ्यास इति) इस कारण भोगों का अभ्यास सुख का उपाय नहीं है (स खल्वयं वृश्चिकविषभीत इवाऽऽशीविषेण दष्टो यःसुखार्थी विषयानुवासितो) निश्चय यह ऐसा दृष्टान्त है जैसे कोई पुरुष बिच्छू के विष से डरा हुआ सर्प के विष से डसा गया जो सुख का चाहने वाला विषयानुभव के पश्चात् उन की वासना रखता है (महति दुःखपङ्के निमग्न इति) यह महान् दुःख की कीचड़ में डूबा हुआ है। (एषा परिणामदुःखता नाम प्रतिकूला सुखावस्थायामपि योगिनमेव क्लिश्नाति) यह परिणामदुःखता प्रतिकूला सुखावस्था में भी योगी को दुःख ही देती है।

(अथ का तापदुःखता) अब यह बतलाते हैं कि तापदुःख कौन से हैं, (सर्वस्य द्वेषानुविद्धश्चेतनाचेतनसाधनाधीनस्तापानुभव इति) सब को द्वेष में बंधे हुए जड़, चेतन रूप साधनों के आधीन दुःख का अनुभव होता है (तत्रास्ति द्वेषजः कर्माशय) उस में द्वेष से उत्पन्न हुए कर्म और वासनायें ही कारण हैं। (सुखसाधनानि च प्रार्थयमानः कायेन वाचा मनसा च परिस्पन्दते) दुःख भोग काल में सुख साधनों की इच्छा करता हुआ मन, वाणी और शरीर से चेष्टा करता है (ततः परमनुगृह्णात्युपहन्ति च) उस से दूसरों पर अनुग्रह करता वा उनकी हानि करता है (इति परानुग्रहपीड़ाभ्यां धर्माधर्मावुपचिनोति) इस प्रकार दूसरों पर अनुग्रह और पीड़ा द्वारा धर्म, अधर्म को फिर संग्रह कर लेता। (स कर्माशयो लोभान्मोहाच्च भवतीत्येषा तापदुःखतोच्यते) वह कर्म और वासनायें लोभ और मोह से होती हैं इस विचार से वह "तापदुःख" कहा जाता है। (का पुनः संस्कारदुःखता) फिर संस्कार दुःख कौन हैं, यह बतलाते हैं (सुखानुभवात्सुखसंस्काराशयो दुःखानुभवादपि दुःखसंस्काराशय इति) सुख के अनुभव से सुख के संस्कार और वासनायें दुःख के अनुभव से दुःख के संस्कार तथा वासनायें होती

हैं (एवं कर्मभ्यो विपाकेऽनुभूयमाने सुखे दुःखे वा पुनः कर्माशय-प्रचय इति) इस प्रकार कर्मों द्वारा फल अनुभव करते हुए सुख अथवा दुःख में राग, द्वेष होते हैं, फिर कर्म और वासनायें उत्पन्न होती हैं।

(एवमिदमनादि दुःखस्रोतो विप्रसृतं योगिनमेव प्रतिकूला-त्मकत्वादुद्वेजयति) इस प्रकार यह अनादि काल से दुःखों का प्रवाह चलता हुआ योगी को ही प्रतिकूल रूप होने से व्याकुल करता है। (कस्मात्, अक्षिपात्रकल्पो हि विद्वानिति) किस कारण कि, चक्षु गोलक के समान ही विद्वान् का हृदय कोमल है (यथोर्णातन्तुरक्षिपात्रे न्यस्तः स्पर्शेन दुःखयति न चान्येषु गात्रावयवेषु) जैसे मकड़ी का जाला चक्षु में डाला हुआ छूने से ही दुःख देता है परन्तु शरीर के किसी दूसरे अङ्ग में दुःख नहीं देता, (एव-मेतानि दुःखान्यक्षिपात्रकल्पं योगिनमेव क्लिश्नन्ति नेतरं प्रतिपत्ता-रम्) इस प्रकार यह दुःख नेत्र के समान कोमल हृदय होने से योगी को ही दुःख देते हैं अन्यों को नहीं। जो उन दुःखों को इष्ट बुद्धि से प्राप्त कर रहे हैं (इतरं तु स्वकर्मोपहृतं दुःखमुपात्त-मुपात्तं त्यजन्तं त्यक्तं त्यक्तमुपाददानमनादिवासनाविचित्रतया चित्त-वृत्त्या) दूसरे पुरुष तो अपने कर्मों से प्राप्त किये दुःखों को पा पा कर त्याग २ कर फिर प्राप्त करते २ अनादि काल से वासना द्वारा चित्रीत हुई चित्त वृत्ति से (समन्ततोऽनुविद्धमिवाविद्यया हातव्य एवाहंकारममकारानुपातिनं जातं जातं बाह्याध्यात्मिकोभयनिमित्ता-स्त्रिपर्वाणस्तापा अनुप्लवन्ते) यहां तक कि अविद्या से बन्धे हुए ममता रूप अहङ्कार वृत्ति से प्राप्त किये त्यागने योग्य इन्द्रिय, शरीर, पुत्र, स्त्री आदि बाह्य, आन्तरीक दोनों निमित्तों से उत्पन्न कर २ के तीन भेद रूप तापों को उद्भूत करते हैं जो आध्यात्मिक, आधि-भौतिक, आधिदैविक कहलाते हैं। (तदेवमनादिना दुःखस्रोतसा व्युह्य-मानमात्मानं भूतग्रामं च दृष्ट्वा योगी सर्वदुःखक्षयकारणं सम्यग्दर्शनं

शरणं प्रपद्यत इति) वह इस प्रकार अनादि दुःखों के स्रोत से आत्म हनन देखकर और भूत समुदाय का भी विचार करके योगी सर्व दुःख नाश के कारण यथार्थ दर्शन की ही शरण को प्राप्त होता है, अर्थात् ब्रह्म साक्षात्कार में ही लगता है।

(गुणवृत्तिविरोधाच्च दुःखमेव सर्वं विवेकिनः) और गुण वृत्तियों के विरोध से भी विचारशील योगी की दृष्टी में सांसारिक सर्व भोग दुःख रूप ही हैं। (प्रख्याप्रवृत्तिस्थितिरूपा बुद्धिगुणाः) ज्ञान, प्रवृत्ति, स्थिति रूप, बुद्धि के गुण हैं (परस्परानुग्रहतन्त्री भूत्वा) परस्पर एक दूसरे के सहायक हो कर (शान्तं घोरं मूढं वा प्रत्ययं त्रिगुणमेवाऽऽरभन्ते) शान्त, घोर, मूढ़ वृत्तियों को तीन गुण ही आरम्भ करते हैं। (चलं च गुणवृत्तम्) गुण वृत्ति अति चञ्चल है (इति क्षिप्रपरिणामि चित्तमुक्तम्) इसलिये शीघ्र परिणाम को प्राप्त होने वाला चित्त कहा है। (रूपातिशया वृत्त्यतिशयाश्च परस्परेण विरुध्यन्ते) रूप की अधिकता और वृत्ति की अधिकता से एक दूसरे के साथ विरोध करते हैं, (सामान्यानि त्वतिशयैः सह प्रवर्तन्ते) सामान्य वृत्ति वाले अधिक वृत्ति वाले के साथ वर्तते हैं। (एवमेते गुणा इतरेतराश्रयेणोपार्जितसुखदुःखमोहप्रत्ययाः सर्वे सर्वरूपा भवन्ति) इस प्रकार यह गुण एक दूसरे के आश्रय से सुख, दुःख और मोह रूप वृत्तियों को उत्पन्न करके सर्व सर्वरूप होते हैं, (इति गुणप्रधानभावकृतस्त्वेषां विशेष इति) इस प्रकार गुण की प्रधानता से उत्पन्न इनकी विशेषता होती है। (तस्माद्दुःखमेव सर्वं विवेकिन इति) इस कारण ज्ञानी की दृष्टी में सर्व संसार दुःख रूप ही है।

(तदस्य महतो दुःखसमुदायस्य प्रभवबीजमविद्या) इस बड़े भारी दुःख समूह की उत्पत्ति का बीज अविद्या है। (तस्याश्च सम्यग्दर्शनमभावहेतुः) उस के अभाव का कारण परमात्मा के स्वरूप का दर्शन ही है। (यथा चिकित्साशास्त्रं चतुर्व्यूहम्) जैसे

आयुर्वेद चार भेदों वाला है (रोगो रोगहेतुरारोग्यं भेषज्यमिति) रोग और रोग का कारण और आरोग्यता और औषधि, (एवमिदपि शास्त्रं चतुर्व्यूहमेव) इस प्रकार यह शास्त्र भी चार भेदों वाला है । (तद्यथा—संसारः संसारहेतुर्मोक्षो मोक्षोपाय इति) वह इस प्रकार कि संसार और संसार का कारण और मोक्ष और मोक्ष के उपाय । (तत्र दुःखबहुलः संसारो हेयः) उनमें अति दुःख रूप संसार त्याज्य है । (प्रधानपुरुषयोः संयोगो हेयहेतुः) प्रकृति और जीवात्मा का संयोग त्यागने योग्य संसार का कारण है । (संयोगस्याऽऽत्यन्तिकी निवृत्तिर्हानम्) संयोग की अत्यन्त निवृत्ति ही त्याग है । (हानोपायः सम्यग्दर्शनं) त्यागने का उपाय परमात्मा-जीवात्मा और बुद्धि-प्रकृति का साक्षात् दर्शन है । (तत्र हातुः स्वरूपमुपादेयं वा हेयं वा न भवितुमर्हतीति) उन में त्यागने वाले जीवात्मा का स्वरूप न ग्रहण करने योग्य न त्यागने योग्य हो सक्ता है (हाने तस्योच्छेदवादप्रसङ्गः) क्योंकि त्यागने में उस जीवात्मा का सर्वथा सदा के लिये नाश का प्रसङ्ग आता है, मुक्ति तो कहां (उपादाने च हेतुवादः) और उस का स्वरूप ग्रहण करने में मुक्ति का कारण मानना पड़ेगा और मुक्ति का कारण परमात्मस्वरूप दर्शन है । (उभयप्रत्याख्याने शाश्वतवादः) इन दोनों व्याख्यानों में सनातन वेदवाद ही प्रमाण है । जैसा की यजुर्वेद की यह श्रुति कहती है—

वेदाहमेतं पुरुषं महान्तमादित्यवर्णं तमसः परस्तात् ।
तमेव विदित्वातिमृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय ॥
य० ३१ । १८ ॥

अर्थ—मैं इस परमप्रकाशस्वरूप महान् पुरुष परमात्मा को जानता हूं, इसको ही जानकर मृत्यु को उल्लङ्घन कर सक्ते हैं, उस के ज्ञान के बिना मोक्ष प्राप्ति के लिये अन्य कोई मार्ग नहीं है

(इत्येतत्सम्यग्दर्शनम्) इस वेद प्रमाण से यह परमात्म दर्शन ही सम्यग्दर्शन का अर्थ है ।

(तदेतच्छास्त्रं चतुर्व्यूहमित्यभिधीयते) इस कारण यह शास्त्र चार भेदों वाला कहलाता है ।। १५ ।।

भो० वृत्ति

विवेकिनः परिज्ञातक्लेशादिविवेकस्य दृश्यमात्रं सकलमेव भोगसाधनं सविषं स्वाद्वन्नमिव दुःखमेव प्रतिकूलवेदनीयमेवेत्यर्थः। यस्मादत्यान्ताभिजातो योगी दुःखलेशेनाप्युद्विजते । यथाऽक्षिपात्रमूर्णातन्तुस्पर्शमात्रेणैव महतीं पीड़ामनुभवति नेतरदङ्गं, तथा विवेकी स्वल्पदुःखानुबन्धेनापि उद्विजते । कथमित्याह—परिणामतापसंस्कारदुःखैः । विषयाणामुपभुज्यमानानां यथायथं गर्धाभिवृद्धेस्तदप्राप्तिकृतस्य दुःखस्यापरिहार्यतया दुःखान्तरसाधनात्वाच्चास्त्येव दुःखरूपतेति परिणामदुःखत्वम् । उपभुज्यमानेषु सुखसाधनेषु तत्प्रतिपन्थिनं प्रति द्वेषस्य सर्वदैवावस्थितत्वात्सुखानुभवकालेऽपि तापदुःखं दुष्परिहरमिति तापदुःखता । संस्कारदुःखत्वं च स्वाभिमतानभिमतविषयसंनिधाने सुखसंविद्दुःखसंविच्चोपजायमाना तथाविधमेव स्वक्षेत्रे संस्कारमारभते । संस्काराच्च पुनस्तथाविधसंविदनुभव इत्यपरिमितसंस्कारोत्पत्तिद्वारेण संसारानुच्छेदात्सर्वस्यैव दुःखत्वम् । गुणवृत्तिविरोधाच्चेति । गुणानां सत्त्वरजस्तमसां या वृत्तयः सुखदुःखमोहरूपाः परस्परमभिभाव्याभिभावकत्वेन विरुद्धा जायन्ते तासां सर्वत्रैव दुःखानुवेधाद्दुःखत्वम् । एतदुक्तं भवति—ऐकान्तिकीमात्यन्तिकीं च दुःखनिवृत्तिमिच्छतो विवेकिन उक्तरूपकारणचतुष्टयं यावत्सर्वे विषया दुःखरूपतया प्रतिभान्ति तस्मात्सर्वकर्मविपाको दुःखरूप एवेत्युक्तं भवति ॥ १५ ॥

तदेवमुक्तस्य क्लेशकर्माशयविपाकराशेरविद्याप्रभवत्वादविद्यायाश्च मिथ्याज्ञानरूपतया सम्यग्ज्ञानोच्छेद्यत्वात्सम्यग्ज्ञानस्य च साधनहेयोपादेयावधारणरूपत्वात्तदभिधानायाऽऽह—

भो० वृ० पदार्थ

(विवेकिनः परिज्ञातक्लेशादिविवेकस्य) ज्ञात है क्लेशादि विवेक जिस को ऐसे विवेकी को (दृश्यमात्रं सकलमेव भोगसाधनं सविषं स्वाद्वन्नमिव दुःखमेव प्रतिकूलवेदनीयमेवेत्यर्थः) जैसे विष सहित स्वादिष्ट अन्न त्याज्य होता है वैसे ही सम्पूर्ण दृश्य पदार्थ और भोग साधन प्रतिकूल होने से दुःख दाई ही जान पड़ते हैं यह अर्थ है । (यस्मादत्यन्ताभिजातो योगी दुःखलेशेनाप्युद्विजते) जिस कारण के अत्यन्त शुद्ध हुआ योगी दुःख के लेश से भी व्याकुल होता है (यथाऽक्षिपात्रमूर्णातन्तुस्पर्शमात्रेणैव महतीं पीड़ामनुभवति नेतरदङ्गं) जैसे मकड़ी का जाला आंख की पुतली में स्पर्श मात्र से ही अत्यन्त दुःख देता है और दूसरे अङ्गों में नहीं, (तथा विवेकी स्वल्पदुःखानुबन्धेनापि उद्विजते) उसी प्रकार विचारवान् योगी थोड़े से दुःख के सम्बन्ध से भी व्याकुल होता है । (कथमित्याह) किस प्रकार यह आगे कहते हैं—(परिणामतापसंस्कारदुःखैः) परिणाम, ताप, संस्काररूपी दुःखों से । (विषयाणामुपभुज्यमानानां यथायथं गर्धाभिवृद्धेस्तदप्राप्तिकृतस्य दुःखस्यापरिहार्यतया दुःखान्तरसाधनात्वाच्चास्त्येव दुःखरूपता) भोगे हुए विषयों की जैसे २ तृष्णा बढ़ती है, उस के अप्राप्ति रूप दुःख के न मिटना रूप दूसरे दुःख साधन होने से सर्व दुःख रूपता ही है (इति परिणामदुःखत्वम्) यह परिणाम दुःखता है । (उपभुज्यमानेषु सुखसाधनेषु) भोगने योग्य सुख साधनों में (तत्प्रतिपन्थिनं प्रति द्वेषस्य सर्वदैवावस्थितत्वात्सुखानुभवकाऽलेऽपि तापदुःखं दुष्परिहरमिति तापदुःखता) उस के विरोधी में द्वेष सदा रहने वाला होने से सुख अनुभव काल में भी तापदुःख होता है, दुःख से हरण हो जिस का वह "तापदुःखता" है । (संस्कारदुःखत्वं च स्वाभिमतानभिमतविषयसंनिधाने सुखसंविद्दुःखसंविच्चोपजायमाना तथाविधमेव स्वक्षेत्रे संस्कारमारभते) संस्कारदुःखता को कहते हैं अपने इष्ट और अनिष्ट विषय समीप होने पर सुख ज्ञान और दुःख ज्ञान उत्पन्न हुआ वैसे ही संस्कार को उत्पन्न करता है । (संस्काराच्च पुनस्तथा-

विधसंविदनुभव) संस्कारों से पुनः वैसे ही ज्ञान और भोग (इत्यपरिमितसंस्कारोत्पत्तिद्वारेण संसारानुच्छेदात्सर्वस्यैव दुःखत्वम्) इस प्रकार अनन्त संस्कारों की उत्पत्ति द्वारा संसार का कभी भी उच्छेद नहीं होने से सब की दुःखरूपता है। (गुणवृत्तिविरोधाच्चेति) और गुणों की वृत्तियों के विरोध से भी दुःख होता है, इस का यह अभिप्राय है। (गुणानां सत्त्वरजस्तमसां या वृत्तयः सुखदुःखमोहरूपाः परस्परमभिभाव्याभिभावकत्वेन विरुद्धा जायन्ते) गुणों की जो सात्त्विक, राजस, तामस, वृत्तियें हैं सुख, दुःख, मोह रूप वह परस्पर दबने योग्य और दबाने योग्य विरुद्ध रूपों से उत्पन्न होती हैं (तासां सर्वत्रैव दुःखानुवेधाद्दुःखत्वम्) उन का सर्वत्र ही दुःख रूप से बांधने वाली होने से दुःखपन है। (एतदुक्तं भवति) यह कहा है—(ऐकान्तिकीमात्यन्तिकीं च दुःखनिवृत्तिमिच्छतो, विवेकिन उक्तरूपकारणचतुष्टयं, यावत्सर्वे विषया दुःखरूपतया प्रतिभान्ति तस्मात्सर्वकर्मविपाको दुःखरूप एवेत्युक्तं भवति) बीज सहित अत्यन्त दुःख निवृत्ति की इच्छा करते हुए, ज्ञानी को ऊपर कहे कारण चतुष्टय से, जहां तक सर्व विषय हैं दुःख रूप से ही भासित होते हैं, इस कारण सर्व कर्म फल दुःख रूप ही हैं यह कहा है॥ १५॥

(तदेवमुक्तस्य क्लेशकर्माशयविपाकराशेरविद्याप्रभवत्वादविद्यायाश्च मिथ्याज्ञानरूपतया सम्यग्ज्ञानोच्छेद्यत्वात्सम्यग्ज्ञानस्य च साधनहेयोपादेयावधारणरूपत्वात्तदभिधानायाऽऽह)

इस प्रकार ऊपर कहे क्लेश कर्म वासना और फल समूह अविद्या से उत्पन्न होने के कारण अविद्या जो मिथ्याज्ञान रूप है वह यथार्थ ज्ञान से नष्ट होने के कारण यथार्थ ज्ञान के साधन त्यागने योग्य और ग्रहण करने योग्य का धारण रूप होने से उस के अनुष्ठान के लिये आगे कहते हैं—

हेयं दुःखमनागतम्॥ १६॥

सू०—अनागत दुःख त्यागने योग्य हैं॥ १६॥

व्या० भाष्यम्

दुःखमतीतमुपभोगेनातिवाहितं न हेयपक्षे वर्तते । वर्तमान च स्वक्षणे भोगारूढमिति न तत्क्षणान्तरे हेयतामापद्यते । तस्माद्य-देवानागतं दुःखं तदेवाक्षिपात्रकल्पं योगिनं क्लिश्नाति नेतरं प्रतिपत्तारम् । तदेवहेयतामापद्यते ॥ १६ ॥

तस्माद्यदेव हेयमित्युच्यते तस्यैव कारणं प्रतिनिर्दिश्यते—

व्या० भा० पदार्थ

(दुःखमतीतमुपभोगेनातिवाहितं न हेयपक्षे वर्तते) भूत काल का दुःख भोग से बीत गया वह त्यागने योग्य नहीं है । (वर्तमानं च स्वक्षणे भोगारूढमिति न तत्क्षणान्तरे हेयतामापद्यते) और वर्तमान दुःख अपने क्षण में भोगारूढ़ है इस कारण दूसरे क्षण में त्यागने योग्य नहीं । (तस्माद्यदेवानागतं दुःखं तदेवाक्षिपात्रकल्पं योगिनं क्लिश्नाति) इस कारण जो आने वाला दुःख है वह ही नेत्र में मकड़ी जाले के समान योगी को दुःख देता है (नेतरं प्रतिपत्तारम्) दूसरे प्रवृत्ति वालों को नहीं । (तदेवहेयतामापद्यते) इस लिये वही त्यागने योग्य है ॥ १६ ॥

(तस्माद्यदेव हेयमित्युच्यते तस्यैव कारणं प्रतिनिर्दिश्यते) इस कारण जो दुःख त्यागने योग्य कहा जाता है उस के ही कारण का निर्देश आगे किया जाता है—

भो० वृत्ति

भूतस्यातिक्रान्तत्वादनुभूयमानस्य च त्यक्तुमशक्यत्वादनागतमेव संसार-दुःखं हातव्यमित्युक्तं भवति ॥ १६ ॥

हेयहेतुमाह—

भो० वृ० पदार्थ

(भूतस्यातिक्रान्तत्वादनुभूयमानस्य च त्यक्तुमशक्यत्वादनागतमेव संसा-

रदुःखं हातव्यमित्युक्तं भवति) भूत काल का दुःख निवृत्त हो जाने के कारण और अनुभव होते हुए का त्याग नहीं हो सक्ता इसलिये अनागत ही संसार दुःख त्यागने योग्य कहा गया है ॥ १६ ॥

(हेयहेतुमाह) त्यागने योग्य दुःखों का कारण आगे कहते हैं—

द्रष्टृदृश्ययोः संयोगो हेयहेतुः ॥ १७ ॥

सू०—देखने वाला जीवात्मा और देखने योग्य बुद्धि इन दोनों का संयोग ही त्यागने योग्य दुःखों का कारण है ॥ १७ ॥

व्या० भाष्यम्

द्रष्टा बुद्धेः प्रतिसंवेदी पुरुषः । दृश्या बुद्धिसत्त्वोपारूढाः सर्वे धर्माः । तदेतद्दृश्यमयस्कान्तमणिकल्पं संनिधिमात्रोपकारिदृश्यत्वेन स्वं भवति पुरुषस्य दृशिरूपस्य स्वामिनः, अनुभवकर्मविषयतामापन्नं यतः । अन्यस्वरूपेण प्रतिपन्नमन्यस्वरूपेण प्रतिलब्धात्मकं स्वतन्त्रमपि परार्थत्वात्परतन्त्रम् ।

तयोर्दृग्दर्शनशक्त्योरनादिरर्थकृतः संयोगो हेयहेतुर्दुःखस्य कारणमित्यर्थः ।

"तथा चोक्तम्—तत्संयोगहेतुविवर्जनात्स्यादयमात्यन्तिको दुःखप्रतीकारः । कस्मात्, दुःखहेतोः परिहार्यस्य प्रतीकारदर्शनात् । तद्यथा—पादतलस्य भेद्यता, कण्टकस्य भेत्तृत्वं, परिहारः कण्टकस्य पादाऽनधिष्ठानं पादत्राणव्यवहितेन वाऽधिष्ठानम्, एतत्त्रयं यो वेद लोके स तत्र प्रतीकारमारभमाणो भेदजं दुःखं नाऽऽप्नोति । कस्मात्, त्रित्वोपलब्धिसामर्थ्यादिति । अत्रापि तापकस्य रजसः सत्त्वमेव तप्यम् । कस्मात्, तपिक्रियायाः कर्मस्थत्वात्, सत्त्वे कर्मणि तपिक्रिया नापरिणामिनि निष्क्रिये क्षेत्रज्ञे, दर्शितविषयत्वात् । सत्त्वे तु तप्यमाने तदाकारानुरोधी पुरुषोऽप्यनुतप्यत इति" ॥ १७ ॥

दृश्यस्वरूपमुच्यते—

व्या० भा० पदार्थ

(द्रष्टा बुद्धेः प्रतिसंवेदी पुरुषः) देखने वाला जीवात्मा पुरुष बुद्धि को जानने वाला है। (दृश्या बुद्धिसत्त्वोपारूढः सर्वे धर्माः) देखने योग्य बुद्धि सत्त्व में स्थिर हुई सर्व धर्मों वाली है। (तदेतद् दृश्यमयस्कान्तमणिकल्पं संनिधिमात्रोपकारि) वह यह दृश्य बुद्धि स्फटिकमणि के समान हुई २ समीपतामात्र से उपकार करने वाली (दृश्यत्वेन स्वं भवति पुरुषस्य दृशिरूपस्य स्वामिनः) दृश्य पन से अपने स्वामी पुरुष की धन=मिल्कीयत होती है (अनुभवकर्मविषयतामापन्नं) ज्ञान और कर्म और विषयता को प्राप्त है (यतः अन्यस्वरूपेण प्रतिपन्नमन्यस्वरूपेण प्रतिलब्धात्मकं स्वतन्त्रमपि परार्थत्वात्परतन्त्रम्) जिस कारण कि अन्य स्वरूप को प्राप्त हुई उस के स्वरूप से ही लब्ध होती है इस कारण स्वतन्त्र होती हुई भी स्वामी पुरुष की प्रयोजन सिद्धि के लिये होने से परतन्त्र है।

(तयोर्दृग्दर्शनशक्त्योरनादिरर्थकृतः संयोगो हेयहेतुर्दुःखस्य कारणमित्यर्थः) उन द्रष्टा और दृश्य शक्ति दोनों का अनादि प्रयोजन सहित संयोग है वही हेयहेतु अर्थात् त्यागने योग्य दुःख का कारण है। यहां तक सूत्रार्थ पूर्ण हो चुका आगे किसी आधुनिक ने सूत्र के अभिप्राय से असम्बद्ध प्रलाप किया है ऐसा मालूम होता है कि जिस के मत का शुद्ध रूप से इस सूत्र ने खण्डन किया है वही अपनी रक्षा के कारण सिद्धान्त को भूलाने के लिये परिश्रम करता है, इस लिये पाठकों के सामने मूल भाष्य रख दिया गया अर्थ की कोई आवश्यकता नहीं क्योंकि यदि अर्थ किया जाय तो उस पर तर्क और प्रमाण सहित अच्छे प्रकार मीमांसा करने की आवश्यक्ता होगी और ऐसा करने में ग्रन्थ अति बढ़ जायगा ॥ १७ ॥

(दृश्यस्वरूपमुच्यते) दृश्य का स्वरूप आगे कहते हैं—

भो० वृत्ति

द्रष्टा चिद्रूपः पुरुषः, दृश्यं बुद्धिसत्त्वं, तयोरविवेकख्यातिपूर्वको योऽसौ संयोगो भोग्यभोक्तृत्वेन संनिधानं स हेयस्य दुःखस्य गुणपरिणामरूपस्य संसारस्य हेतुः कारणं तन्निवृत्त्या संसारनिवृत्तिर्भवतीत्यर्थः ॥ १७ ॥

द्रष्टृदृश्ययोः संयोग इत्युक्तं, तत्र दृश्य स्वरूपं कार्यं प्रयोजनं चाऽऽह—

भो० वृ० पदार्थ

(द्रष्टा चिद्रूपः पुरुषः, दृश्यं बुद्धिसत्त्वं,) देखने वाला चेतन स्वरूप पुरुष जीवात्मा है, देखने योग्य बुद्धि है, (तयोरविवेकख्यातिपूर्वको योऽसौ संयोगो भोग्यभोक्तृत्वेन संनिधानं स हेयस्य दुःखस्य गुणपरिणामरूपस्य संसारस्य हेतुः कारणं) उन दोनों का विवेकज्ञान न होना रूप जो यह संयोग अर्थात् भोगने योग्य और भोक्तापन रूप से मेल वह त्यागने योग्य दुःख अर्थात् गुणों के परिणाम रूप संसार का हेतु = कारण है (तन्निवृत्त्या संसारनिवृत्तिर्भवतीत्यर्थः) उस संयोग की निवृत्ति होने से संसार की निवृत्ति होती है अर्थात् जन्म मरण की निवृत्ति होती है ॥ १७ ॥

(द्रष्टृदृश्ययोः संयोग इत्युक्तं तत्र दृश्य स्वरूपं कार्यं प्रयोजनं चाऽऽह) द्रष्टा, दृश्य का संयोग इस सूत्र से कहा गया उन दोनों में दृश्य का स्वरूप और कार्य और प्रयोजन आगे कहते हैं—

प्रकाशक्रियास्थितिशीलं भूतेन्द्रियात्मकं भोगापवर्गार्थं दृश्यम् ॥ १८ ॥

सू०—प्रकाश, क्रिया, स्थिति स्वभाव वाले तीनों गुण रूप भूत और इन्द्रिय रूप भोग और मोक्ष प्रयोजन वाले जो हैं वह "दृश्य" कहलाते हैं ॥ १८ ॥

व्या० भाष्यम्

प्रकाशशीलं सत्त्वम् । क्रिया शीलं रजः । स्थितिशीलं तमः

इति । एते गुणाः परस्परोपरक्तप्रविभागाः परिणामिनः संयोगवियोगधर्माण इतरेतरोपाश्रयेणोपार्जितमूर्तयः परस्पराङ्गाङ्गित्वेऽप्यसंभिन्नशक्तिप्रविभागास्तुल्यजातीयातुल्यजातीयशक्तिभेदानुपातिनः प्रधानवेलायामुपदर्शितसंनिधाना गुणत्वेऽपि च व्यापारमात्रेण प्रधानान्तर्णीतानुमितास्तिताः पुरुषार्थकर्तव्यतया प्रयुक्तसामर्थ्याः संनिधिमात्रोपकारिणोऽयस्कान्तमणिकल्पाः प्रत्ययमन्तरेणैकतमस्य वृत्तिमनु वर्तमाना प्रधानशब्दवाच्या भवन्ति । एतद्दृश्यमित्युच्यते ।

तदेतद्भूतेन्द्रियात्मकं भूतभावेन पृथिव्यादिना सूक्ष्मस्थूलेन परिणमते । तथेन्द्रियभावेन श्रोत्रादिना सूक्ष्मस्थूलेन परिणमत इति । तत्तु नाप्रयोजनमपि तु प्रयोजनमुररीकृत्य प्रवर्तत इति भोगापवर्गार्थं हि तद्दृश्यं पुरुषस्येति । तत्रेष्टानिष्टगुणस्वरूपावधारणमविभागापन्नं भोगो भोक्तुः स्वरूपावधारणमपवर्ग इति । द्वयोरतिरिक्तमन्यद्दर्शनं नास्ति । तथा चोक्तम्—अयं तु खलु त्रिषु गुणेषु कर्तृष्वकर्तरि च पुरुषे तुल्यातुल्यजातीये चतुर्थे तत्क्रियासाक्षिण्युपनीयमानान्सर्वभावानुपपन्नाननुपश्यन्नदर्शनमन्यच्छङ्कत इति ।

तावेतौ भोगापवर्गौ बुद्धिकृतौ बुद्धावेव वर्तमानौ कथं पुरुषे व्यपदिश्येते इति । यथा विजयः पराजयो वा योद्धृषु वर्तमानः स्वामिनि व्यपदिश्यते, स हि तत्फलस्य भोक्तेति, एवं बन्धमोक्षौ बुद्धावेव वर्तमानौ पुरुषे व्यपदिश्येते, स हि तत्फलस्य भोक्तेति । बुद्धेरेव पुरुषार्थापरिसमाप्तिर्बन्धस्तदर्थावसायो मोक्ष इति । एतेन ग्रहणधारणोहापोहतत्त्वज्ञानाभिनिवेशा बुद्धौ वर्तमानाः पुरुषेऽध्यारोपितसद्भावाः । स हि तत्फलस्य भोक्तेति ॥ १८ ॥

दृश्यानां गुणानां स्वरूपभेदावधारणार्थमिदमारभ्यते—

व्या० भा० पदार्थ

(प्रकाशशीलं सत्त्वम् । क्रियाशीलं रजः । स्थितिशीलं तम इति) प्रकाश अर्थात् ज्ञान स्वभाव वाला सत्त्वगुण है. और क्रिया

स्वभाव वाला रजोगुण है और स्थिति स्वभाव वाला तमोगुण है। (एते गुणाः परस्परोपरक्तप्रविभागाः परिणामिनः) यह तीनों गुण परस्पर उपराग को प्राप्त हुए स्वरूप से भिन्न परिणाम स्वरूप (संयोगवियोगधर्माणः) संयोग वियोग धर्मों वाले हैं. (इतरेतरोपाश्रयेणोपार्जितमूर्तयः परस्पराङ्गाङ्गित्वेऽप्यसंभिन्नशक्तिप्रविभागास्तुल्यजातीयातुल्यजातीयशक्तिभेदानुपातिनः) एक दूसरे के आश्रय से स्थूल स्वरूप को प्राप्त होकर परस्पर अङ्ग, अङ्गि भाव से मिले परन्तु शक्ति भेद जिन के बने रहते हैं समान जातीय और असमान जातीय कार्य में भी। भाव इसका यह है कि जब सत्वगुण प्रधान होता है वह अङ्गि कहलाता है और रज, तम उस के अङ्ग होते हैं और जब रज बढ़ता है तब वह अङ्गि कहलाता है और सत्व, तम उसके अङ्ग होते हैं और जब तम बढ़ता है वह अङ्गि कहलाता है और रज, सत्त्व उस के अङ्ग कहलाते हैं। इस समय में शक्ति भेद उन के ज्यों के त्यों बने रहते हैं और समान जातीय कार्य और असमान जातीय कार्य में भी शक्ति और भेद बने रहते हैं। (प्रधानवेलायामुपदर्शितसंनिधाना गुणत्वेऽपि च व्यापारमात्रेण प्रधानान्तर्णीतानुमितास्ति) किसी एक गुण के प्रधान होने काल में उपदर्शक प्रधान के साथ मिले हुए गुण रूप से रहते हुए भी व्यापार मात्र में सहायक रूप से प्रधान के अन्तर ही उन का सद्भाव अनुमान किया गया है (ताः पुरुषार्थकर्तव्यतया प्रयुक्तसामर्थ्याः संनिधिमात्रोपकारिणोऽयस्कान्तमणिकल्पाः) वह पुरुष प्रयोजन की कर्तव्यता रूप से युक्त सामर्थ्य द्वारा समीपता मात्र से उपकारी स्फटिकमणि के समान (प्रत्ययमन्तरेणैकतमस्य वृत्तिमनु वर्तमानाः प्रधानशब्दवाच्याभवन्ति) अन्य गुणों की वृत्तियों के विना एक प्रधान गुण की वृत्ति के अनुकूल वर्तते हुए प्रधान शब्द से कहे जाते हैं। (एतद्दृश्यमित्युच्यते) यह दृश्य कहलाता है।

(तदेतद्भूतेन्द्रियात्मकं) वह यह तीनों गुण भूत और इन्द्रिय

रूप हैं (भूतभावेन पृथिव्यादिना सूक्ष्मस्थूलेन परिणमते) उन में भूत रूप से पृथ्वी आदि सूक्ष्म स्थूल रूप से परिणाम होते हैं। (तथेन्द्रियभावेन श्रोत्रादिना सूक्ष्मस्थूलेन परिणमत इति) वैसे ही इन्द्रिय रूप से श्रोत्रादि सूक्ष्म स्थूल रूप से परिणाम को प्राप्त होते हैं। (तत्तु नाप्रयोजनमपि तु प्रयोजनमुररीकृत्य प्रवर्तत इति) वह बिना प्रयोजन नहीं है किन्तु प्रयोजन के उद्देश्य से ही प्रवृत होते हैं (भोगापवर्गार्थं हि तद्दृश्यं पुरुषस्येति) वह पुरुष का दृश्य भूत इन्द्रिय रूप उस पुरुष के ही भोग मोक्षार्थ है। (तत्रेष्टानिष्टगुणस्वरूपावधारणमविभागापन्नं भोगः) उन में इष्ट अनिष्ट गुण स्वरूप का धारण और द्रष्टा दृश्य के स्वरूप विभाग से रहित भोग कहलाता है (भोक्तुः स्वरूपावधारणमपवर्ग इति) भोक्ता के स्वरूप का धारण करना अर्थात् साक्षात् ज्ञान होना मोक्ष है। (द्वयोरतिरिक्तमन्यद्दर्शनं नास्ति) इन दोनों के स्वरूप से भिन्न अन्य दर्शन नहीं है (तथा चोक्तम्) वैसा ही कहा है—(अयं तु खलु त्रिषु गुणेषु कर्तृष्वकर्तरि च पुरुषे तुल्यातुल्यजातीये चतुर्थे तत्क्रियासाक्षिण्युपनीयमानान्सर्वभावानुपपन्नाननुपश्यन्नदर्शनमन्यच्छङ्कत इति) निश्चय इन कार्य कर्ता तीनों गुणों में और अकर्ता पुरुष में तुल्यजातीय तीनों गुणों और अतुल्य जातीय चौथे चेतन पुरुष को उस क्रिया के साक्षी द्वारा नियम बद्ध होने से सर्व भावों को प्राप्त होते देखकर अन्य दर्शन की शङ्का नहीं करता।

(तावेतौ भोगापवर्गौ बुद्धिकृतौ बुद्धावेव वर्तमानौ कथं पुरुषे व्यपदिश्येते इति) वह दोनों भोग–मोक्ष बुद्धि के सम्पादन किये हुए बुद्धि में दोनों वर्तमान हुए पुरुष में किस प्रकार कहे जाते हैं ? इस का यह उत्तर है। (यथा विजयः पराजयो वा योद्धृषु वर्तमानः स्वामिनि व्यपदिश्यते, स हि तत्फलस्य भोक्तेति,) जैसे जय वा पराजय योद्धाओं में वर्तमान हुई उन के स्वामी राजा में कही जाती है क्योंकि वही उस के फल का भोक्ता है। (एवं बन्धमोक्षौ

बुद्धावेव वर्तमानौ पुरुषे व्यपदिश्येते, स हि तत्फलस्य भोक्तेति) इसी प्रकार बन्ध और मोक्ष दोनों बुद्धि में वर्तमान हुए पुरुष में कहे जाते हैं क्योंकि वही उस के फल का भोक्ता है। (बुद्धेरेव पुरुषार्थापरिसमाप्तिर्बन्धस्तदर्थावसायो मोक्ष इति) पुरुष के प्रयोजन की समाप्ति न होने तक बुद्धि में ही बन्धन है और उस के प्रयोजन सिद्धि की समाप्ति ही मोक्ष है। (एतेन ग्रहणधारणोहापोहतत्त्वज्ञानाभिनिवेशा बुद्धौ वर्तमानाः पुरुषेऽध्यारोपितसद्भावाः। सहितत्फलस्य भोक्तेति) इस से ग्रहण, धारण, तर्क-वितर्क और तत्त्वज्ञान, अभिनिवेशादि क्लेश बुद्धि में वर्तमान हुए पुरुष में अध्यारोप से माने जाते हैं क्योंकि वही उस के फल का भोक्ता है। दूसरे के धर्मों का अविद्या से अपने में अभिमान करना अध्यारोप कहलाता है॥ १८॥

(दृश्यानां गुणानां स्वरूपभेदावधारणार्थमिदमारभ्यते) दृश्य गुणों के स्वरूप भेद धारण करने को आगे कहते हैं—

भो० वृत्ति

प्रकाशः सत्त्वस्य धर्मः, क्रिया प्रवृत्तिरूपा रजसः, स्थितिर्नियमरूपा तमसः, ताः प्रकाशक्रियास्थितयः शीलं स्वाभाविकं रूपं यस्य तत्तथाविधमिति स्वरूपमस्य निर्दिष्टम्। भूतेन्द्रियात्मकमिति। भूतानि स्थूलसूक्ष्मभेदेन द्विविधानि पृथिव्यादीनि गन्धतन्मात्रादीनि च। इन्द्रियाणि बुद्धीन्द्रियकर्मेन्द्रियान्तःकरणभेदेन त्रिविधानि। उभयमेतद्ग्राह्यग्रहणरूपात्मा स्वरूपाभिन्नाः परिणामो यस्य तत्तथाविधमित्यनेनास्य कार्यमुक्तम्। भोगः कथितलक्षणः, अपवर्गो विवेकख्यातिपूर्विका संसारनिवृत्तिः, तौ भोगापवर्गावर्थः प्रयोजनं यस्य तत्तथाविधं दृश्यमित्यर्थः॥ १८॥

तस्य च दृश्यस्य नानावस्थारूपपरिणामात्मकस्य हेयत्वेन ज्ञातव्यत्वात्तदवस्थाः कथयितुमाह—

भो० वृ० पदार्थ

(प्रकाशः सत्त्वस्य धर्मः) प्रकाश सत्त्वगुण का धर्म है। (क्रिया प्रवृत्तिरूपा रजसः) प्रवृत्ति रूप क्रिया रजोगुण का धर्म है। (स्थिति-नियमरूपा तमसः) नियम रूप ठहराव तमोगुण का धर्म है। (ताः प्रकाशक्रियास्थितयः शीलं स्वाभाविकं रूपं यस्य तत्तथाविधम्) वह प्रकाश, क्रिया, स्थिति शील अर्थात् स्वाभाविक रूप हैं जिस के वह प्रकाश, क्रिया, स्थिति शील का अर्थ गुण हैं (इति स्वरूपमस्य निर्दिष्टम्) इस वाक्य से इस का स्वरूप बतलाया गया। (भूतेन्द्रियात्मकमिति) भूत, इन्द्रिय रूप इस को कहते हैं। (भूतानि स्थूलसूक्ष्मभेदेन द्विविधानि) भूत स्थूल, सूक्ष्म भेद से दो प्रकार के हैं (पृथिव्यादीनि गन्धतन्मात्रादीनि च) पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश स्थूल भूत, गन्ध, रस, रूप, स्पर्श और शब्द सूक्ष्म भूत (इन्द्रियाणि बुद्धीन्द्रियकर्मेन्द्रियान्तःकरणभेदेन त्रिविधानि) इन्द्रियें ज्ञानेन्द्रिय—कर्मेन्द्रिय और अन्तः करण भेद से तीन प्रकार के हैं। (उभयमेतद्ग्राह्यग्रहणरूपात्मा स्वरूपाभिन्नाः परिणामो यस्य) यह दोनों भूत और इन्द्रिय ग्राह्य-ग्रहण रूप अर्थात् स्वरूप से अभिन्न परिणाम हैं जिस के (तत्तथाविधम्) वह तीन गुण हैं (इत्यनेनास्य कार्यमुक्तम्) इस के द्वारा इन गुणों का कार्य कहा गया। (भोगः कथितलक्षणः) भोग ऊपर कहे रूप से जानो, (अपवर्गो विवेकख्यातिपूर्विका संसारनिवृत्तिः) विवेकज्ञान पूर्वक संसार की निवृत्ति का नाम मोक्ष है। (तौ भोगापव-र्गावर्थः प्रयोजनं यस्य तत्तथाविधं दृश्यमित्यर्थः) उन दोनों भोग और मोक्ष का सम्पादन कराना प्रयोजन है जिसका वह दृश्य कहलाता है यह अर्थ है ॥ १८ ॥

(तस्य च दृश्यस्य नानावस्थारूपपरिणामात्मकस्य हेयत्वेन ज्ञातव्यत्वा-त्तदवस्थाः कथयितुमाह) नाना अवस्था रूप परिणाम है जिस का उसको त्याज्य रूप से जानने योग्य होने के कारण उस दृश्य की अवस्था कथन करने को आगे कहते हैं—

विशेषाविशेषलिङ्गमात्रालिङ्गानि गुणपर्वाणि ॥१९॥

सू०—विशेष, अविशेष, लिङ्गमात्र और अलिङ्ग यह गुणों के परिणाम हैं ॥ १९ ॥

व्या० भाष्यम्

तत्राऽऽकाशवाय्वग्न्युदकभूमयो भूतानि शब्दस्पर्शरूपरसगन्धतन्मात्राणामविशेषाणां विशेषाः। तथा श्रोत्रत्वक्चक्षुर्जिह्वाघ्राणानि बुद्धीन्द्रियाणि, वाक्पाणिपादपायूपस्थानि कर्मेन्द्रियाणि, एकादशं मनः सर्वार्थम्, इत्येतान्यस्मितालक्षणस्याविशेषस्य विशेषाः। गुणानामेष षोडशको विशेषपरिणामः।

षडविशेषाः। तद्यथा—शब्दतन्मात्रं स्पर्शतन्मात्रं रूपतन्मात्रं रसतन्मात्रं गन्धतन्मात्रं चेति एकद्वित्रिचतुष्पञ्चलक्षणाः शब्दादयः पञ्चाविशेषाः, षष्ठश्चाविशेषोऽस्मितामात्र इति। एते सत्तामात्रस्याऽऽत्मनो महतः षडविशेषपरिणामाः। यत्तत्परमविशेषेभ्यो लिङ्गमात्रं महत्तत्त्वं तस्मिन्नेते सत्तामात्रे महत्यात्मन्यवस्थाय विवृद्धिकाष्ठामनुभवन्ति।

प्रतिसंसृज्यमानाश्च तस्मिन्नेव सत्तामात्रे महत्यात्मन्यवस्थाय यत्तन्निःसत्तासत्तं निःसदसन्निरसदव्यक्तमलिङ्गं प्रधानं तत्प्रतियन्ति। एष तेषां लिङ्गमात्रः परिणामो निःसत्तासत्तं चालिङ्गपरिणाम इति।

अलिङ्गावस्थायां न पुरुषार्थो हेतुर्नालिङ्गावस्थायामादौ पुरुषार्थता कारणं भवतीति। न तस्याः पुरुषार्थता कारणं भवतीति। नासौ पुरुषार्थकृतेति नित्याऽऽख्यायते। त्रयाणां त्ववस्थाविशेषाणामादौ पुरुषार्थता कारणं भवति। स चार्थो हेतुर्निमित्तं कारणं भवतीत्यनित्याऽऽख्यायते गुणास्तु सर्वधर्मानुपातिनो न प्रत्यस्तमयन्ते नोपजायन्ते। व्यक्तिभिरेवातीतानागतव्ययागमवतीभिर्गुणान्वयिनीभिरुपजननापायधर्मका इव प्रत्यवभासन्ते। यथा देवदत्तो दरिद्राति।

कस्मात् । यतोऽस्य म्रियन्ते गाव इति, गवामेव मरणात्तस्य दरिद्रता न स्वरूपहानादिति समः समाधिः ।

लिङ्गमात्रमलिङ्गस्य प्रत्यासन्नं, तत्र तत्संसृष्टं विविच्यते क्रमानतिवृत्तेः । तथा षडविशेषा लिङ्गमात्रे संसृष्टा विविच्यन्ते परिणामक्रमनियमात् । तथा तेष्वविशेषेषु भूतेन्द्रियाणि संसृष्टानि विविच्यन्ते । तथा चोक्तं पुरस्तात् । न विशेषेभ्यः परं तत्त्वान्तरमस्तीति विशेषाणां नास्ति तत्त्वान्तरपरिणामः । तेषां तु धर्मलक्षणावस्थापरिणामा व्याख्यायिष्यन्ते ॥ १९ ॥

व्याख्यातं दृश्यमथ द्रष्टुः स्वरूपावधारणार्थमिदमारभ्यते—

व्या० भा० पदार्थ

(तत्राऽकाशवाय्वग्न्युदकभूमयो भूतानि) उनमें आकाश, वायु, अग्नि, जल और भूमि भूत कहलाते हैं वह (शब्दस्पर्शरूपरसगन्धतन्मात्राणामविशेषाणां विशेषाः) शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध तन्मात्रा अविशेषों के विशेष रूप हैं अर्थात् स्थूलभूत—सूक्ष्मभूतों के कार्य हैं । (तथा श्रोत्रत्वक्चक्षुर्जिह्वाघ्राणानि बुद्धिन्द्रियाणि,) कर्ण, त्वचा, चक्षु, रसना और नासिका ज्ञानेन्द्रियें हैं, (वाक्पाणिपादपायूपस्थानि कर्मेन्द्रियाणि) वाणी, हस्त, पाद, पायु, उपस्थ कर्मेन्द्रिय हैं, (एकादशं मनः सर्वार्थम्) एकादश ११ वां मन ज्ञान, कर्म दोनों प्रयोजनों वाला है, (इत्येतान्यस्मितालक्षणस्याविशेषस्य विशेषाः) इस प्रकार यह सब अस्मितारूप अविशेष के विशेष कार्य हैं । (गुणानामेष षोडशको विशेषपरिणामः) यह षोडश १६ तीन गुणों के विशेष परिणाम हैं ।

(षडविशेषाः) षड् ६ अविसेष हैं (तद्यथा) वह जैसे कि (शब्दतन्मात्रं स्पर्शतन्मात्रं रूपतन्मात्रं रसतन्मात्रं गन्धतन्मात्रं चेति एकद्वित्रिचतुष्पञ्चलक्षणाः शब्दादयः पञ्चाविशेषाः) शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध तन्मात्रा एक, दो, तीन, चार, पांच रूपों

वाले शब्दादि पांच अविशेष हैं, (षष्ठश्चाविशेषोऽस्मितामात्र इति) षष्ठः ६ अविशेष अस्मितामात्र है उस को अहंकार भी कह सक्ते हैं। (एते सत्तामात्रस्याऽऽत्मनो महतः षडविशेषपरिणामाः) सत्ता-मात्र रूप महतत्त्व के यह षड् ६ अविशेष परिणाम हैं। (यत्त-त्परमविशेषेभ्यो लिङ्गमात्रं महतत्त्वं) जो इन अविशेषों से परे लिङ्गमात्र वह बुद्धि है (तस्मिन्नेते सत्तामात्रे महत्यात्मन्यवस्थाय विवृद्धिकाष्ठामनुभवन्ति) उस सत्तामात्र महतत्त्व रूप बुद्धि में यह ठहराव पाकर अपनी सीमा पर्यन्त वृद्धि को प्राप्त होते हैं।

(प्रतिसंसृज्यमानाश्च तस्मिन्नेव सत्तामात्रे महत्यात्मन्यवस्थाय) लय होते हुए उस ही सत्तामात्र बुद्धि में मिलकर (यत्तन्निः सत्ता-सत्तं निःसदसन्निरसदव्यक्तमलिङ्गं प्रधानं तत्प्रतियन्ति) जो वह विशेष अविशेष आदि से रहित सत् कारण अलिङ्ग प्रकृति है उस में लय हो जाते हैं। (एष तेषां लिङ्गमात्रः परिणामो निःसत्ता-सत्तं चालिङ्गपरिणाम इति) यह उन तीन गुणों अर्थात् प्रकृति का परिणाम लिङ्गमात्र है।

(अलिङ्गावस्थायां न पुरुषार्थो हेतुः) अलिङ्ग अवस्था में पुरुषार्थ कारण नहीं है। (नालिङ्गावस्थायामादौ पुरुषार्थता कारणं भवतीति) अलिङ्ग अवस्था के आदि में पुरुषार्थता कारण नहीं है। (न तस्याः पुरुषार्थता कारणं भवतीति) और उस अलिङ्ग अवस्था की भी पुरुषार्थता कारण नहीं होती। (नासौ पुरुषार्थकृत) और वह पुरुषार्थ कृत भी नहीं है (इति नित्याऽऽ-ख्यायते) इस कारण नित्य कही जाती। (त्रयाणां त्ववस्थाविशेषा-णामादौ पुरुषार्थता कारणं भवति) तीनों अवस्था विशेषों की आदि में पुरुषार्थता कारण होती है, लिङ्गमात्र, अविशेष और विशेष यह तीन अवस्था का अर्थ है। (स चार्थो हेतुर्निमित्तं कारणं भवतीत्यनित्याऽऽख्यायते) और वह अर्थ के हेतु निमित्त कारण

होती है इस लिये अनित्य कही जाती है । (गुणास्तुसर्वधर्मानुपातिनो) गुण तो सर्व धर्मों में परिणाम को प्राप्त होने वाले (न प्रत्यस्तमयन्ते नोपजायन्ते) न नष्ट होते हैं, न उत्पन्न होते हैं । (व्यक्तिभिरेवातीतानागतव्ययागमवतीभिर्गुणान्वयिनीभिरुपजननापायधर्मका इव प्रत्यवभासन्ते) कार्य रूप गुण अतीत, अनागत स्थूल रूप से ही उत्पत्ति और नाश रूप धर्म के समान भासित होते हैं, भाव इसका यह है कि गुण कभी नाश को प्राप्त नहीं होते अवस्थाओं से उन में परिणाम होता रहता है । (यथा देवदत्तो दरिद्राति) जैसे देवदत्त की दरिद्रता । (कस्मात् । यतोऽस्य म्रियन्ते गाव इति) क्योंकि, जिस कारण इसकी गौवें मर जाती हैं, (गवामेव मरणात्तस्य दरिद्रता) गौवों के मरने से ही उस की दरिद्रता है (न स्वरूपहानादिति समः समाधिः) न कि स्वरूप के हान होने से इस प्रकार ही गुणों का समाधान है अर्थात् कार्य की उत्पत्ति विनाश रूप परिणाम से गुणों के स्वरूप में परिणाम नहीं होता गुणत्व धर्म सर्वदा एकसा बना रहता है ।

(लिङ्गमात्रमलिङ्गस्य प्रत्यासन्नं, तत्र तत्संसृष्टं विविच्यते) लिङ्गमात्र बुद्धि, अलिङ्ग प्रकृति के समीप अर्थात् पहला कार्य है उस प्रकृति से वह उत्पन्न होकर विशेष नाम से बोला जाता है (क्रमानतिवृत्तेः) क्रम को न त्यागकर । (तथा षडविशेषा लिङ्गमात्रे संसृष्टा विविच्यन्ते) उसी प्रकार षड् ६ अविशेष लिङ्गमात्र अर्थात बुद्धि से उत्पन्न होकर विशेष नाम से कहे जाते हैं (परिणामक्रमनियमात्) परिणाम रूपी क्रम के नियम से । (तथा तेष्वविशेषेषु भूतेन्द्रियाणि संसृष्टानि विविच्यन्ते) उसी प्रकार उन अविशेषों में से भूत और इन्द्रिय उत्पन्न हुई विशेष नाम से कही जाती हैं । (तथा चोक्तम् पुरस्तात्) ऐसा ही पहले कहा गया है । (न विशेषेभ्यः परं तत्त्वान्तरमस्तीति) विशेषों अर्थात् इन्द्रियों,

स्थूल भूतों से परे तत्त्वान्तर अर्थात् उनका कोई कार्य नहीं है (विशेषाणां नास्ति तत्त्वान्तरपरिणामः) विशेषों का अन्य परिणाम और कोई नहीं है। (तेषां तु धर्मलक्षणावस्थापरिणामा व्याख्यायिष्यन्ते) उनके धर्म, लक्षण और अवस्था परिणाम अगले पाद में कहे जांयगे ॥ १९ ॥

(व्याख्यातं दृश्यमथ द्रष्टुः स्वरूपावधारणार्थमिदमारभ्यते) दृश्य का स्वरूप कहा गया, अब द्रष्टा पुरुष के स्वरूप धारणार्थ आगे कहते हैं—

भो० वृत्ति

गुणानां पर्वाण्यवस्थाविशेषाश्चत्वारो ज्ञातव्या इत्युपदिष्टं भवति। तत्र विशेषा महाभूतेन्द्रियाणि, अविशेषास्तन्मात्रान्तःकरणानि, लिङ्गमात्रं बुद्धिः, अलिङ्गमव्यक्तमित्युक्तम्। सर्वत्र त्रिगुणरूपस्याव्यक्तस्यान्वयित्वेन प्रत्यभिज्ञानादवश्यं ज्ञातव्यतेन योगकाले चत्वारि पर्वाणि निर्दिष्टानि ॥ १९ ॥

एवं हेयत्वेन दृश्यस्य प्रथमं ज्ञातव्यात्वात्तदवस्थासहितं व्याख्यायोपादेयं द्रष्टारं व्याकर्तुमाह—

भो० वृ० पदार्थ

(गुणानां पर्वाण्यवस्थाविशेषाश्चत्वारो ज्ञातव्या) गुणों के परिणाम की चार अवस्था विशेष जानने योग्य हैं (इत्युपदिष्टं भवति) यह उपदेश किया जाता है। (तत्र विशेषा महाभूतेन्द्रियाणि,) उन में विशेष पांच स्थूल भूत और इन्द्रियें हैं, (अविशेषास्तन्मात्रान्तः करणानि,) तन्मात्रा और अन्तः करण अविशेष हैं, (लिङ्गमात्रं बुद्धि,) लिङ्गमात्र बुद्धि का नाम है, (अलिङ्गमव्यक्तमित्युक्तम्) अलिङ्ग प्रकृति है यह पूर्व कहा गया। (सर्वत्र त्रिगुणरूपस्याव्यक्तस्यान्वयित्वेन प्रत्यभिज्ञानादवश्यं ज्ञातव्यतेन योगकाले चत्वारि पर्वाणि निर्दिष्टानि) सर्वत्र त्रिगुण रूप अव्यक्त के अन्वयित्व से प्रत्यभिज्ञा होने के कारण योग काल में अवश्य जानने योग्य रूप से चार परिणामों को बतलाया गया ॥ १९ ॥

(एवं हेयत्वेन दृश्यस्य प्रथमं ज्ञातव्यत्वात्तदवस्थासहितं व्याख्यायोपादेयं द्रष्टारं व्याकर्तुमाह) इस प्रकार त्यागने योग्य रूप से दृश्य प्रथम जानने योग्य होने के कारण अवस्था सहित उसका वर्णन करके प्राप्त करने योग्य द्रष्टा पुरुष के स्वरूप का निराकरण आगे करते हैं—

द्रष्टा दृशिमात्रः शुद्धोऽपि प्रत्ययानुपश्यः ॥ २० ॥

सू०—द्रष्टा केवल ज्ञानमात्र शुद्ध अर्थात् ज्ञान-अज्ञान सुख-दुःखादि सम्पूर्ण धर्मों का अनाश्रय होने पर भी बुद्धि के सम्बन्ध से उन धर्मों का आश्रय, बुद्धि वृत्ति के अनुसार देखने वाला "पुरुष" है ॥ २० ॥

व्या० भाष्यम्

दृशिमात्र इति दृक्शक्तिरेव विशेषणापरामृष्टेत्यर्थः । स पुरुषो बुद्धेः प्रतिसंवेदी । स बुद्धेर्न सरूपो नात्यन्तं विरूप इति । न तावत्सरूपः । कस्मात् । ज्ञाताज्ञातविषयत्वात्परिणामिनि हि बुद्धिः । तस्याश्च विषयो गवादिर्घटादिर्वा ज्ञातश्चाज्ञातश्चेति परिणामित्वं दर्शयति ।

सदाज्ञातविषयत्वं तु पुरुषस्यापरिणामित्वं परिदीपयति । कस्मात् । नहि बुद्धिश्च नाम पुरुषविषयश्च स्यादगृहीता चेति सिद्धं पुरुषस्य सदाज्ञातविषयत्वं ततश्चापरिणामित्वमिति । किं च परार्था बुद्धिः संहत्यकारित्वात्, स्वार्थः पुरुष इति । तथा सर्वार्थाध्यवसायकत्वात्त्रिगुणा बुद्धिस्त्रिगुणत्वादचेतनेति । गुणानां तूपद्रष्टा पुरुष इत्यतो न सरूपः ।

अस्तु तर्हि विरूप इति । नात्यन्तं विरूपः । कस्मात्, शुद्धोऽप्यसौ प्रत्ययानुपश्यो यतः । प्रत्ययं बौद्धमनुपश्यति, तमनुपश्यन्नतदात्माऽपि तदात्मक इव प्रत्यवभासते । तथा चोक्तम्—अपरिणामिनी हि भोक्तृशक्तिरप्रतिसंक्रमा च परिणामिन्यर्थे प्रतिसंक्रान्तेव तद्वृत्ति-

मनु पतति, तस्याश्च प्राप्तचैतन्योपग्रहरूपाया बुद्धिवृत्तेरनुकारमात्रतया बुद्धिवृत्त्यविशिष्टा हि ज्ञानवृत्तिरित्याख्यायते ॥ २० ॥

व्या० भा० पदार्थ

(दृशिमात्र इति) दृशिमात्र इस शब्द का यह अभिप्राय है कि (दृक्शक्तिरेव विशेषणापरामृष्टेत्यर्थः) देखने वाली शक्ति विशेषण रहित, यह अर्थ है अर्थात् केवल ज्ञानमात्र है। (स पुरुषः) वह पुरुष जीवात्मा (बुद्धेः प्रतिसंवेदी) बुद्धि की वृत्तियों के अनुसार जानने वाला (स बुद्धेर्न सरूपो नात्यन्तं विरूप इति) वह बुद्धि के न समान रूप है न अत्यन्त विरुद्ध रूप है। (न तावत्सरूपः) इस कारण स्वरूप भी नहीं (कस्मात्) क्योंकि (ज्ञाताज्ञातविषयत्वात्परिणामिनी हि बुद्धिः) ज्ञात अज्ञात विषय होने से बुद्धि परिणामिनी है। (तस्याश्च विषयो गवादिर्घटादिर्वा ज्ञातश्चाज्ञातश्च) उस के विषय गवादि और घटादि हैं वह ज्ञात और अज्ञात हैं (इति परिणामित्वं दर्शयति) यह परिणामित्व को दिखलाता है।

(सदाज्ञातविषयत्वं तु पुरुषस्यापरिणामित्वं परिदीपयति) सदा ज्ञातविषयत्वता तो पुरुष के अपरिणामित्व को प्रकाशित करती है। (कस्मात्) क्योंकि। (नहि बुद्धिश्च नाम पुरुषविषयश्च स्याद्‌गृहीता च) निश्चय बुद्धि का विषय गृहीता पुरुष नहीं है (इति सिद्धं) यह सिद्ध हुआ कि (पुरुषस्य सदाज्ञातविषयत्वं ततश्चापरिणामित्वमिति) पुरुष का सदा ज्ञात विषय वाला होना और उसका अपरिणामित्व होना (किं च परार्था बुद्धिः संहत्यकारित्वात् स्वार्थः पुरुष इति) और यह भी सिद्ध हुआ कि संहात के साथ मिलकर काम करने वाली होने से बुद्धि परार्थ है और पुरुष जीवात्मा का अपना अर्थ है। (तथा सर्वार्थाध्यवसायकत्वात् त्रिगुणा बुद्धिस्त्रिगुणत्वादचेतनेति) उसी प्रकार यह भी सिद्ध हुआ कि सर्व अर्थों का निश्चय करना धर्म होने से बुद्धि तीन गुण रूप

है और त्रिगुणा होने के कारण अचेतन है। (गुणानां तूपद्रष्टा पुरुष इति) गुणों का जानने वाला पुरुष है (अतः न सरूपः) इस कारण बुद्धि के समान रूप नहीं।

(अस्तु तर्हि विरूप इति) तो क्या फिर विरुद्ध रूप है? इस का उत्तर देते हैं। (नात्यन्त विरूपः) अत्यन्त विरुद्ध रूप भी नहीं। (कस्मात्) क्योंकि, (शुद्धोऽप्यसौ) वह शुद्ध रूप अर्थात् सब विकारों परिणामों से रहित होने पर भी (प्रत्ययानुपश्यः) बुद्धि की वृत्तियों के अनुसार देखने वाला है (यतः । प्रत्ययं बौद्धमनुपश्यति,) जिस कारण कि बुद्धि की वृत्तियों के अनुसार देखता है, (तमनुपश्यन्नतदात्माऽपि तदात्मक इव प्रत्यवभासते) उन वृत्तियों के पीछे देखता हुआ आत्मा भी तब वृत्तियों के तद्रूप हुआ ही भासित होता है। (तथा चोक्तम्) वैसा ही कहा है—(अपरिणामिनी हि भोक्तृशक्तिरप्रतिसंक्रमा च) भोगने वाली शक्ति अपरिणामि और पदार्थ के स्वरूप में न परिणत होने वाली है (परिणामिन्यर्थे प्रतिसंक्रान्तेव तद्वृत्तिमनु पतति,) पदार्थ के स्वरूप में परिणाम को प्राप्त होने वाली बुद्धि पदार्थाकार होने पर उस के रूपाकार वृत्ति को प्राप्त हो जाता है, (तस्याश्च प्राप्तचैतन्योपग्रहरूपाया बुद्धिवृत्तेरनुकारमात्रतया बुद्धिवृत्त्यविशिष्टा हि ज्ञानवृत्तिरित्याख्यायते) उपराग द्वारा चेतन स्वरूप को प्राप्त हुई उस बुद्धि की वृत्ति उस के अनुकार मात्रता से बुद्धि वृत्ति के अनुकूल ही ज्ञान होता है यह कहा जाता है॥ २०॥

भो० वृत्ति

द्रष्टा पुरुषो दृशिमात्रश्चेतनामात्रः। मात्रग्रहणं धर्मधर्मिनिरासार्थम्। केचिद्धि चेतनामात्मनो धर्ममिच्छन्ति। स शुद्धोऽपि परिणामित्वाद्यभावेन स्वप्रतिष्ठोऽपि प्रत्ययानुपश्यः, प्रत्यया विषयोपरक्तानि ज्ञानानि तानि अनु

अव्यवधानेन प्रतिसंक्रमाद्यभावेन पश्यति । एतदुक्तं भवति—जातविषयोपरागायामेव बुद्धौ संनिधिमात्रेणैव पुरुषस्य द्रष्टृत्वमिति ॥ २० ॥

स एव भोक्तेत्याह—

भो० वृ० पदार्थ

(द्रष्टा पुरुषः) द्रष्टा पुरुष जीवात्मा है (दृशिमात्रश्चेतनामात्रः) दृशिमात्र इस का अर्थ ज्ञानमात्र है । (मात्रग्रहणं धर्मधर्मिनिरासार्थम्) मात्र शब्द के ग्रहण से धर्म, धर्मी दोनों का भिन्न ग्रहण न होने का अभिप्राय है । अर्थात् केवल धर्मी का ग्रहण करना । (केचिद्धि चेतनामात्मनो धर्ममिच्छन्ति) कोई एक चेतनता आत्मा का धर्म मानते हैं । (स शुद्धोऽपि परिणामित्वाद्यभावेन स्वप्रतिष्ठोऽपि प्रत्ययानुपश्यः,) वह स्वरूप से शुद्ध होता हुआ परिणाम आदि से रहित होने पर भी स्वरूप से सर्वदा एकसा रहता हुआ बुद्धि की वृत्तियों के अनुसार देखने वाला है, (प्रत्यया विषयोपरक्तानि ज्ञानानि तानि अनु अव्यवधानेन प्रतिसंक्रमाद्यभावेन पश्यति) बुद्धि की समीपता के कारण उस की विषयों से उपरक्त हुई वृत्ति ज्ञान के अनुसार प्रति संक्रम के बिना ही देखता है । (एतदुक्तं भवति) यह सारांश है कि (जातविषयोपरागायामेव बुद्धौ संनिधिमात्रेणैव पुरुषस्य द्रष्टृत्वमिति) बुद्धि में विषयों के उपराग की उत्पत्ति होने पर समीपतामात्र से पुरुष में द्रष्टापन है ॥ २० ॥

(स एव भोक्तेत्याह) वह पुरुष ही भोक्ता है, यह आगे कहा है—

तदर्थ एव दृश्यस्याऽऽत्मा ॥ २१ ॥

सू०—उस द्रष्टा पुरुष के लिये ही दृश्य का स्वरूप है ॥२१॥

व्या० भाष्यम्

दृशिरूपस्य पुरुषस्य कर्मविषयतामापन्नं दृश्यमिति तदर्थ एव दृश्यस्याऽऽत्मा भवति । स्वरूपं भवतीत्यर्थः । तत्स्वरूपं तु पररूपेण

प्रतिलब्धात्मकं भोगापवर्गार्थतायां कृतायां पुरुषेण न दृश्यत इति । स्वरूपहानादस्य नाशः प्राप्तो न तु विनश्यति ॥ २१ ॥

कस्मात्—

व्या० भा० पदार्थ

(दृशिरूपस्य पुरुषस्य कर्मविषयतामापन्नं दृश्यमिति) देखने वाले पुरुष के कर्म और फल भोगार्थ दृश्य है (तदर्थ एव दृश्यस्याऽऽत्मा भवति । स्वरूपं भवतीत्यर्थः) उस की प्रयोजन सिद्धि के लिये ही दृश्य का आत्मा होता है। अर्थात् स्वरूप होता है यह अर्थ है। (तत्स्वरूपं तु पररूपेण प्रतिलब्धात्मकं) वह जड़ बुद्धि का स्वरूप पर अर्थात् चेतन स्वरूप लब्ध होता है (भोगापवर्गार्थतायां कृतायां पुरुषेण न दृश्यत इति) इसलिये भोग, मोक्ष प्रयोजनार्थ हुई पुरुष से नहीं देखी जाती । (स्वरूपहानादस्य नाशः प्राप्तो न तु विनश्यति) अब प्रश्न होता है। क्या स्वरूप के हान से इस दृश्य का नाश हो जाता है ? उत्तर, नहीं नाश होता ॥ २१ ॥

(कस्मात्) क्योंकि—

भो० वृत्ति

दृश्यस्य प्रागुक्तलक्षणस्याऽऽत्मा यत्स्वरूपं स तदर्थस्तस्य पुरुषस्य भोक्तृत्वसंपादनं नाम स्वार्थपरिहारेण प्रयोजनम् । न हि प्रधानं प्रवर्तमानमात्मनः किंचित्प्रयोजनमपेक्ष्य प्रवर्तते किंतु पुरुषस्य भोक्तृत्वं संपादयितुमिति ॥ २१ ॥

यद्येवं पुरुषस्य भोगसंपादनमेव प्रयोजनं तदा संपादिते तस्मिंस्तन्निष्प्रयोजनं विरतव्यापारं स्यात्, तस्मिंश्च परिणामशून्ये शुद्धत्वात्सर्वे द्रष्टारो बन्धरहिताः स्युः, ततश्च संसारोच्छेद इत्याशङ्कयाऽऽह—

भो० वृ० पदार्थ

(दृश्यस्य प्रागुक्तलक्षणस्याऽऽत्मा यत्स्वरूपं) पूर्व कहे हुए लक्षण अनुसार दृश्य का जो स्वरूप है (स तदर्थस्तस्य पुरुषस्य भोक्तृत्वसंपादनं नाम स्वार्थपरिहारेण प्रयोजनम्) वह उस पुरुष के प्रयोजनार्थ है अर्थात् बुद्धि अपने प्रयोजन को त्यागकर भोक्ता पुरुष के भोक्तृत्व सम्पादनार्थ है। (न हि प्रधानं प्रवर्तमानमात्मनः किंचित्प्रयोजनमपेक्ष्य प्रवर्तते) क्योंकि प्रकृति अपने किसी भी प्रयोजन की अपेक्षा से प्रवृत नहीं होती (किंतु पुरुषस्य भोक्तृत्वं संपादयितुमिति) किन्तु पुरुष के भोक्तृत्व संपादन के लिये प्रवृत होती है ॥ २१ ॥

(यद्येवं पुरुषस्य भोगसंपादनमेव प्रयोजनं) जब इस प्रकार पुरुष का भोग सम्पादन करना ही प्रयोजन है (तदा संपादिते तस्मिंस्तन्निष्प्रयोजनं विरतव्यापारं स्यात्,) तो फिर उस के सम्पादन करने पर वह निष्प्रयोजन हुई व्यापार रहित होगी (तस्मिंश्च परिणामशून्ये शुद्धत्वात्सर्वे द्रष्टारो बन्धरहिताः स्युः,) उस परिणाम शून्य काल में पुरुष स्वरूप से शुद्ध के कारण सर्व द्रष्टा पुरुष बन्ध रहित हों (ततश्च संसारोच्छेदः) और इस कारण फिर संसार का उच्छेद हो जावे (इत्याशङ्क्याऽऽह) इस शङ्का केनिवारणार्थ आगे कहते हैं—

कृतार्थं प्रति नष्टमप्यनष्टं तदन्यसाधारणत्वात् ॥ २२ ॥

सू०—सम्पादन किया है प्रयोजन जिस पुरुष का उस के लिये नष्ट होने पर भी अन्य पुरुषों के साधारण होने से वह दृश्य नष्ट नहीं होता ॥ २२॥

व्या० भाष्यम्

कृतार्थमेकं पुरुषं प्रति दृश्यं नष्टमपि नाशं प्राप्तमप्यनष्टं तदन्यपुरुषसाधारणत्वात्। कुशलं पुरुषं प्रति नाशं प्राप्तमप्यकुशलान्पुरु-

षान्प्रति न कृतार्थमिति तेषां दृशेः कर्मविषयतामापन्नं लभत एव पुरुषेणाऽऽत्मरूपमिति । अतश्च दृग्दर्शनशक्त्योर्नित्यत्वादनादिः संयोगो व्याख्यात इति । तथा चोक्तम्—धर्मिणामनादिसंयोगाद्धर्ममात्रणामप्यनादिः संयोग इति ॥ २२ ॥

संयोगस्वरूपाभिधित्सयेदं सूत्रं प्रवर्तते—

व्या० भा० पदार्थ

(कृतार्थमेकं पुरुषं प्रति दृश्यं नष्टमपि नाशं प्राप्तमप्यनष्टं तदन्यपुरुषसाधारणत्वात) कृतार्थ एक पुरुप के प्रति वह दृश्य नष्ट अर्थात् नाश को प्राप्त हुआ भी अन्य पुरुषों के साधारण होने से नहीं नाश को प्राप्त होता। (कुशलं पुरुषं प्रति नाशं प्राप्तमप्यकुशलान्पुरुषान्प्रति न कृतार्थम्) ज्ञानी पुरुष के प्रति नाश को प्राप्त हुआ भी वह दृश्य अन्य अज्ञानी पुरुषो के प्रति कृत प्रयोजन नहीं हुआ है (इति तेषां दृशेः कर्मविषयतामापन्नं लभत एव पुरुषेणाऽऽत्मरूमिति) इस कारण उन की दृष्टी में कर्म विपयता को प्राप्त हुआ प्रकृति का स्वरूपपुरुष को आत्मरूप से ही लब्ध होता है। (अतश्च दृग्दर्शनशक्त्योर्नित्यत्वादनादिः संयोगो व्याख्यात इति) इस कारण द्रष्टा और दर्शन शक्ति दोनों नित्य होने से इन का अनादि संयोग कहा गया। (तथा चोक्तम्—धर्मिणामनादिसंयोगाद्धर्ममात्रणामप्यनादिः संयोग इति) ऐसा ही कहा है—धर्मियों का अनादि संयोग होने से धर्मों का भी अनादि संयोग है ॥ २२ ॥

(संयोगस्वरूपाभिधित्सयेदं सूत्रं प्रवर्तते) संयोग के स्वरूप को प्रकाशित करने की इच्छा से यह अगला सूत्र प्रवृत होता है—

भो० वृत्ति

यद्यपि विवेकख्यातिपर्यन्ताद्भोगसंपादनात्कमपि कृतार्थं पुरुषं प्रति नष्टं विरतव्यापारं तथाऽपि सर्वपुरुषसाधारणत्वादन्यान्प्रत्यनष्टव्यापार-

मवतिष्ठते। अतःप्रधानस्य सकलभोक्तृसाधारणत्वान्न कृतार्थता, न कदाचिदपि विनाशः। एकस्य मुक्तौ वा न सर्वमुक्तिप्रसङ्ग इत्युक्तं भवति॥२२॥

दृश्यद्रष्टारौ व्याख्याय संयोगं व्याख्यातुमाह—

भो० वृ० पदार्थ

(यद्यपि विवेकख्यातिपर्यन्ताद्भोगसंपदनात्कमपि कृतार्थं पुरुषं प्रति तन्नष्टं विरतव्यापारं) यद्यपि विवेकख्याति पर्यन्त भोग सम्पादन करना धर्म होने से भी वह दृश्य कृतार्थ पुरुष के प्रति नष्ट अर्थात् व्यापार त्याग देता है (तथाऽपि सर्वपुरुषसाधारणत्वादन्यान्प्रत्यनष्टव्यापारमवतिष्ठते) तो भी सर्व पुरुषों के साधारण होने से अन्यों के प्रति अनष्ट व्यापार रूप से रहता है। (अतः प्रधानस्य सकलभोक्तृसाधारणत्वान्न कृतार्थता, न कदाचिदपि विनाशः) इस कारण सम्पूर्ण भोक्ताओं के साधारण होने से प्रकृति की कृतप्रयोजनता नहीं होती, न कभी उसका नाश होता। (एकस्य मुक्तौ वा न सर्वमुक्तिप्रसङ्ग इत्युक्तं भवति) एक के मुक्त होने पर सब मुक्त नहीं हो जाते, ऐसा शास्त्र का सिद्धान्त है॥ २२॥

(दृश्यद्रष्टारौ व्याख्याय संयोगं व्याख्यातुमाह) दृश्य और द्रष्टा का वर्णन करके संयोग का वर्णन आगे करते हैं—

स्वस्वामिशक्त्योः स्वरूपोपलब्धिहेतुः संयोगः॥ २३॥

सू०—स्व = बुद्धि स्वामी = पुरुष जीवात्मा इन दोनों शक्तियों के स्वरूप की जो उपलब्धि है, वह ही संयोग का कारण है॥ २३॥

व्या० भाष्यम्

पुरुषः स्वामी दृश्येन स्वेन दर्शनार्थं संयुक्तः। तस्मात्संयोगाद्दृश्यस्योपलब्धिर्या स भोगः। या तु द्रष्टुः स्वरूपोपलब्धिः सोऽप-

वर्गः । दर्शनकार्यावसानः संयोग इति दर्शनं वियोगस्य कारण-मुक्तम् । दर्शनमदर्शनस्य प्रतिद्वंद्वीत्यदर्शनं संयोगनिमित्तमुक्तम् । नात्र दर्शनं मोक्षकारणमदर्शनाभावादेव बन्धाभावः स मोक्ष इति । दर्शनस्य भावे बन्धकारणस्यादर्शनस्य नाश इत्यतो दर्शनं ज्ञानं कैवल्यकारणमुक्तम् ।

किंचेदमदर्शनं नाम, किं गुणानामधिकार आहोस्विद् दृशिरूपस्य स्वामिनो दर्शितविषयस्य प्रधानचित्तस्यानुत्पादः । स्वस्मिन्दृश्ये विद्यमाने यो दर्शनाभावः ।

किमर्थवत्ता गुणानाम् । अथाविद्या स्वचित्तेन सह निरुद्धा स्वचित्तस्योत्पत्तिबीजम् । किं स्थितिसंस्कारक्षये गतिसंस्काराभिव्यक्तिः । यत्रेदमुक्तं प्रधानं स्थित्यैव वर्तमानं विकाराकरणादप्रधानं स्यात् ।

तथा गत्यैव वर्तमानं विकारनित्यत्वादप्रधानं स्यात् । उभयथा चास्य वृत्तिः प्रधानव्यवहारं लभते नान्यथा । करणान्तरेष्वपि कल्पितेष्वेव समानश्चर्चः । दर्शनशक्तिरेवादर्शनमित्येके, "प्रधानस्याऽऽत्मख्यापनार्था प्रवृत्तिः" इतिश्रुतेः ।

सर्वबोध्यबोधसमर्थः प्राक्प्रवृत्तेः पुरुषो न पश्यति सर्वकार्यकारणसमर्थं दृश्यं तदा न दृश्यत इति । उभयस्याप्यदर्शनं धर्म इत्येके ।

तत्रेदं दृश्यस्य स्वात्मभूतमपि पुरुषप्रत्ययापेक्षं दर्शनं दृश्यधर्मत्वेन भवति । तथा पुरुषस्यानात्मभूतमपि दृश्यप्रत्ययापेक्षं पुरुषधर्मत्वेनेवादर्शनमवभासते । दर्शनं ज्ञानमेवादर्शनमिति केचिदभिदधति । इत्येते शास्त्रगता विकल्पाः । तत्र विकल्पबहुत्वमेतत्सर्वपुरुषाणां गुणानां संयोगे साधारणविषयम् ॥ २३ ॥

यस्तु प्रत्यक्चेतनस्य स्वबुद्धिसंयोगः—

व्या० भा० पदार्थ

(पुरुषः स्वामी दृश्येन स्वेन दर्शनार्थं संयुक्तः) पुरुष जो स्वामी है, वह अपने दृश्य के दर्शनार्थ संयुक्त है अर्थात् दृश्य से

सम्बन्ध रखता है। (तस्मात्संयोगाद्दृश्यस्योपलब्धिर्या स भोगः) उस संयोग द्वारा दृश्य के स्वरूप की जो उपलब्धि वह भोग कहलाता है। (या तु द्रष्टुः स्वरूपोपलब्धिः सोऽपवर्गः) जो द्रष्टा के स्वरूप की उपलब्धि वह मोक्ष है। (दर्शनकार्यावसानः संयोग इति) पुरुष दर्शन कार्य पर्यन्त संयोग है (दर्शनं वियोगस्य कारणमुक्तम्) पुरुष दर्शन वियोग का कारण कहा है। (दर्शनमदर्शनस्य प्रतिद्वंद्वीत्यदर्शनं संयोगनिमित्तमुक्तम्) दर्शन अदर्शन का विरोधी कारण है इस कारण अदर्शन संयोग का निमित्त कहा-गया है। (नात्र दर्शनं मोक्षकारणम्) सांसारिक विषयों का दर्शन मोक्ष का कारण नहीं है (अदर्शनाभावादेव बन्धाभावः स मोक्ष इति) अदर्शन का अभाव ही बन्धन का अभाव है अर्थात् दर्शन का होना ही बन्धन का अभाव है वही मोक्ष कहलाती है। (दर्शनस्य भावे बन्धकारणस्यादर्शनस्य नाशः) दर्शन के होने पर बन्धन के कारण अदर्शन का नाश हो जाता है (इत्यतो दर्शनं ज्ञानं कैवल्यकारणमुक्तम्) इस कारण परमात्म दर्शन यथार्थ ज्ञान कैवल्य का कारण कहा गया है।

यहां से किसी आधुनिक मतावलम्बी ने वृथा प्रलाप किया है। इस में पुनरुक्ति दोष भी है, क्योंकि दर्शन अदर्शन दोनों का निर्णय ऊपर कर चुके हैं। और देखो किंगुणानामधिकारः, यह कहकर आगे इस का उत्तर कुछ नहीं किया ऐसा वृथा प्रलाप अज्ञानी का काम है, यह महर्षि व्यास का भाष्य नहीं न इसकी कोई आवश्यकता है। क्योंकि इस सूत्र का अभिप्राय द्रष्टा-दृश्य के संयोग का कारण निर्णय करना था सो ऊपर हो चुका फिर ऐसे ही प्रश्नोत्तर उठाकर किसी का उत्तर देता है। किसी का नहीं देता सर्व सूत्र से असम्बद्ध प्रलाप किया है। इस लिये इसका अर्थ करने की आवश्यकता नहीं है, मूलमात्र लिखा जाता है॥ २३॥

(यस्तु प्रत्यक्चेतनस्य स्वबुद्धिसंयोगः) जो प्रत्यक्चेतन का अपनी बुद्धि से संयोग है—

भो० वृत्ति

कार्यद्वारेणास्य लक्षणं करोति, स्वशक्तिर्दृश्यस्य स्वभावः, स्वामिशक्ति-र्द्रष्टुः स्वरूपं, तयोर्द्वयोरपि संवेद्यसंवेदकत्वेन व्यवस्थितयोर्या स्वरूपोपलब्धिस्तस्याः कारणं यः स संयोगः । स च सहजभोग्यभोक्तृभावस्वरूपान्नान्यः । न हि तयोर्नित्ययोर्व्यापकयोश्च स्वरूपादतिरिक्तः कश्चित् संयोगः । यदेव भोग्यस्य भोग्यत्वं भोक्तुश्च भोक्तृत्वमनादिसिद्धं स एव संयोगः ॥२३॥

तस्यापि कारणमाह—

भो० वृ० पदार्थ

(कार्यद्वारेणास्य लक्षणं करोति,) कार्य के द्वारा इस संयोग के कारण का लक्षण करते हैं, (स्वशक्तिर्दृश्यस्य स्वभावः,) स्वशक्ति देखने योग्य स्वरूप वाली है, (स्वामिशक्तिर्द्रष्टुः स्वरूपं,) स्वामिशक्ति द्रष्टृत्व स्वरूप वाली है, (तयोर्द्वयोरपि संवेद्यसंवेदकत्वेन व्यवस्थितयोर्या स्वरूपोपलब्धिः) उन दोनों के ही जानने योग्य और जानने वाला रूप से रहते हुओं की जो स्वरूप उपलब्धि है (तस्याःकारणं यः स संयोगः) उसका जो कारण है वह संयोग कहलाता है । (स च सहजभोग्यभोक्तृभाव-स्वरूपान्नान्यः) उस का समझना सहज है कि भोगने योग्य और भोगने वाला इन दोनों भावों से भिन्न और कुछ नहीं है । (न हि तयोर्नित्य-योर्व्यापकयोश्च स्वरूपादतिरिक्तः कश्चित् संयोगः) उन दोनों नित्य व्यापक हुओं के स्वरूप से भिन्न संयोग और कोई वस्तु नहीं है । (यदेव भोग्यस्य भोग्यत्वं भोक्तुश्च भोक्तृत्वमनादिसिद्धं स एव संयोगः) जो ही भोग्य की भोगने योग्यता और भोक्ता का भोक्तापन अनादि सिद्ध है वही संयोग है ॥२३॥

(तस्यापि कारणमाह) उसका भी कारण कहते हैं—

तस्य हेतुरविद्या ॥ २४ ॥

सू०—उन दोनों 'स्व' 'स्वामी' के स्वरूप की उपलब्धि का कारण अविद्या है ॥ २४ ॥

व्या० भाष्यम्

विपर्ययज्ञानवासनेत्यर्थः । विपर्ययज्ञानवासनावासिता च न कार्यनिष्ठां पुरुषख्यातिं बुद्धिः प्राप्नोति साधिकारा पुनरावर्तते । सा तु पुरुषख्यातिपर्यवसानां कार्यनिष्ठां प्राप्नोति, चरिताधिकारा निवृत्तादर्शना बन्धकारणाभावान्न पुनरावर्तते ।

अत्र कश्चित्षण्डकोपाख्यानेनोद्घाटयति—मुग्धया भार्ययाऽभिधीयते—षण्डकाऽऽर्यपुत्र, अपत्यवती मे भगिनी किमर्थं नाहमिति, स तामाह—मृतस्तेऽहमपत्यमुत्पादयिष्यामीति । तथेदं विद्यमानं ज्ञानं चित्तनिवृत्तिं न करोति, विनष्टं करिष्यतीति का प्रत्याशा । तत्राऽऽचार्यदेशीयो वक्ति—ननु बुद्धिनिवृत्तिरेव मोक्षोऽदर्शनकारणाभावाद्बुद्धिनिवृत्तिः । तच्चादर्शनं बन्धकारणं दर्शनान्निवर्तते । तत्र चित्तनिवृत्तिरेव मोक्षः, किमर्थमस्थान एवास्य मतिविभ्रमः ॥२४॥

हेयं दुःखमुक्तम् हेय कारणं च संयोगाख्यं सनिमित्तमुक्तमतः परं हानं वक्तव्यम्—

व्या० भा० पदार्थ

(विपर्यज्ञानवासनेत्यर्थः) उलटा ज्ञान और वासना यह अविद्या का अर्थ है । (विपर्यज्ञानवासनावासिता च न कार्यनिष्ठां पुरुषख्यातिं बुद्धिः प्राप्नोति) विपर्य्यज्ञान वासना से वासित हुई बुद्धि सांसारिक कामों में अति श्रद्धा करती हुई पुरुष स्वरूप ज्ञान को नहीं प्राप्त होती है (साधिकारा पुनरावर्तते) कार्य करने की सामर्थ वाली हुई लौट आती है । (सा तु पुरुषख्यातिपर्यवसानां

कार्य्यनिष्ठां प्राप्नोति,) पुरुष ज्ञान पर्यन्त उसके जाने की अवधि है परन्तु कार्य निष्ठा को प्राप्त हो जाती है, (चरिताधिकारा निवृत्तादर्शना बन्धकारणाभावान्न पुनरावर्तते) भोग सम्पादन रूप अधिकार समाप्त होगये जिस के ऐसी वह बुद्धि, विषयों का दर्शन जिससे छूट गया बन्धः कारण के अभाव होने से नहीं फिर लौटती है ।

(अत्र कश्चित्षण्डकोपाख्यानेनोद्घाटयति) इस विषय में कोई नपुंसक का दृष्टान्त देता है—(मुग्धया भार्ययाऽभिधीयते) अबोधा स्त्री कहती है—(षण्डकाऽऽर्यपुत्रः) हे आर्य पुत्र ! (अपत्यवती मे भगिनी) मेरी बहन तो पुत्रवती है (किमर्थं नाहमिति,) मैं क्यों नहीं हूँ, (स तामाह) वह उस को उत्तर देता है–(मृतस्तेऽहमपत्यमुत्पादयिष्यामीति) मरकर मैं तेरे पुत्र उत्पन्न कर दूँगा । (तथेदं विद्यमानं ज्ञानं चित्तनिवृत्तिं न करोति,) उसी प्रकार यह विद्यमान ज्ञान चित्त निवृत्ति नहीं करता है, (विनष्टं करिष्यतीति का प्रत्याशा) विनष्ट करेगा इस कारण फिर क्या आशा करनी चाहिये । (तत्राऽऽचार्यदेशीयो वक्ति) उस में कोई आचार्य्य कहता है—(ननु बुद्धिनिवृत्तिरेव मोक्षः) बुद्धि की सांसारिक कार्यों से निवृत्ति ही मोक्ष है (अदर्शकारणाभावाद्बुद्धिनिवृत्तिः) अदर्शन के कारण का अभाव होने से बुद्धि की निवृत्ति होती है । (तच्चादर्शनं बन्धकारणं) और वह अदर्शन ही बन्धन का जो कारण है (दर्शनान्निवर्तते) दर्शन से निवृत हो जाता है (तत्र चित्तनिवृत्तिरेव मोक्षः,) इस विषय सागर संसार में चित्त निवृत्ति ही मोक्ष है, (किमर्थमस्थान एवास्य मतिविभ्रमः) फिर क्यों इस की मति में भ्रम रहता है ॥ २४ ॥

(हेयं दुःखमुक्तम्) त्यागने योग्य दुःखों को कहा गया (हेयकारणं च संयोगाख्यं सनिमित्तमुक्तम्) त्यागने योग्य दुःखों का

कारण भी संयोग नाम वाला निमित्त सहित कहा गया (अतः परं हानं वक्तव्यम्) अब इससे आगे त्याग कथन करने योग्य है—

भो० वृत्ति

या पूर्वं विपर्यासात्मिका मोहरूपाऽविद्या व्याख्याता सा तस्याविवेकख्यातिरूपस्य संयोगस्य कारणम् ॥ २४ ॥

हेयं हानक्रियाकर्मोच्यते, किं पुनस्तद्धानमित्यत आह—

भो० वृ० पदार्थ

(या पूर्वं विपर्यासात्मिका मोहरूपाऽविद्या व्याख्याताः) जो प्रथम विपर्यय ज्ञानरूप मोहरूप अविद्या कही गई (सा तस्याविवेकख्यातिरूपस्य संयोगस्य कारणम्) वह अविवेकख्याति रूप संयोग का कारण है ॥२४॥

(हेयं हानक्रियाकर्मोच्यते,) त्यागने योग्य, त्याग क्रिया के कर्म को कहते हैं, (किं पुनस्तद्धानमित्यत आह) फिर हान क्या है ? यह आगे कहते हैं—

तदभावात्संयोगाभावो हानं तद्दृशेः कैवल्यम् ॥ २५ ॥

सू०—उस अदर्शन के अभाव से संयोग का अभाव ही त्याग है, वह ही द्रष्टा जीव की कैवल्य मुक्ति है ॥ २५ ॥

व्या० भाष्यम्

तस्यादर्शनस्याभावाद्बुद्धिपुरुषसंयोगाभाव आत्यन्तिको बन्धनोपरम इत्यर्थः । एतद्धानम् । तद्दृशेः कैवल्यं पुरुषस्यामिश्रीभावः पुनरसंयोगो गुणैरित्यर्थः । दुःखकारणनिवृत्तौ दुःखोपरमो हानम् । तदा स्वरूपप्रतिष्ठः पुरुष इत्युक्तम् ॥ २५ ॥

अथ हानस्य कः प्राप्त्युपाय इति—

व्या० भा० पदार्थ

(तस्यादर्शनस्याभावाद्बुद्धिपुरुषसंयोगाभाव आत्यन्तिको बन्धोपरम इत्यर्थः) उस अदर्शन के अभाव से बुद्धि और पुरुष के संयोग का अभाव ही अत्यन्त बन्धन की निवृत्ति होती है यह अर्थ है। (एतद्धानम्) यह त्याग कहलाता है (तद्दृशेः कैवल्यम्) वह ही द्रष्टा जीव की मुक्ति है (पुरुषस्यामिश्रीभावः पुनरसंयोगो गुणैरित्यर्थः) पुरुष का अमिश्रीभाव अर्थात् फिर कदापि गुणों से संयोग न होना यह अर्थ है। (दुःखकारणनिवृत्तौ दुःखोपरमो हानम्) दुःख के कारण की निवृत्ति होने पर दुःख की निवृत्ति ही हान है। (तदा स्वरूपप्रतिष्ठः पुरुष इत्युक्तम्) तब पुरुष स्वरूप में स्थिर ऐसा कहा जाता है ॥ २५ ॥

(अथ हानस्य कः प्राप्त्युपाय इति) अब हान की प्राप्ति का उपाय क्या है ? यह आगे कहते हैं—

भो० वृत्ति

तस्या अविद्यायाः स्वरूपविरुद्धेन सम्यग्ज्ञानेनोन्मूलिताया योऽयमभावस्तस्मिन्सति तत्कार्यस्य संयोगस्याप्यभावस्तद्धानमित्युच्यते। अयमर्थः—नैतस्य मूर्त्तद्रव्यवत्परित्यागो युज्यते किंतु जातायां विवेकख्यातावविवेकनिमित्तः संयोगः स्वयमेव निवर्तत इति तस्य हानम्। यदेव च संयोगस्य हानं तदेव नित्यं केवलस्यापि पुरुषस्य कैवल्यं व्यपदिश्यते ॥ २५ ॥

तदेवं संयोगस्य स्वरूपं कारणं कार्यं चाभिहितम्। अथ हानोपायकथनद्वारेणोपादेयकारणमाह—

भो० वृ० पदार्थ

(तस्या अविद्यायाः स्वरूपविरुद्धेन सम्यग्ज्ञानेनोन्मूलिताया योऽयमभावस्तस्मिन्सति) उस अविद्या का उसके विरोधी यथार्थ ज्ञान से

निर्मूल रूपता से जो यह अभाव होता है उस अवस्था में (तत्कार्यस्य संयोगस्याप्यभावस्तद्धानमित्युच्यते अयमर्थः) उस के कार्य संयोग का भी जो अभाव होना वही हान है, ऐसा कहा जाता है, यह अर्थ है—(नैतस्य मूर्त्तद्रव्यवत्परित्यागो युज्यते) इसका मूर्तद्रव्य के समान परित्याग नहीं होता (किंतु जातायां विवेकख्यातावविवेकनिमित्तः संयोगः स्वयमेव निवर्तत) किन्तु विवेकख्याति के उत्पन्न होने पर अविवेक निमित्त संयोग स्वयं ही निवृत्त हो जाता है (इति तस्य हानम्) यही उसका त्याग है। (यदेव च संयोगस्य हानं) जो संयोग का नाश है (तदेव नित्यं केवलस्यापि पुरुषस्य कैवल्यं व्यपदिश्यते) वह ही स्वरूप से नित्य शुद्ध पुरुष की मोक्ष कही जाती है ॥ २५ ॥

(तदेवं संयोगस्य स्वरूपं कारणं कार्यं चाभिहितम्) वह इस प्रकार संयोग का स्वरूप और कारण और कार्य कहे गये (अथ हानोपायकथनद्वारेणोपादेयकारणमाह) अब हान के उपाय कथन द्वारा प्राप्त करने योग्य कारण को कहते हैं—

विवेकख्यातिरविप्लवा हानोपायः ॥ २६ ॥

सू०—शुद्ध विवेकख्याति ही त्याग का उपाय है ॥ २६ ॥

व्या० भाष्यम्

सत्त्वपुरुषान्यताप्रत्ययो विवेकख्यातिः। सा त्वनिवृत्तमिथ्याज्ञाना प्लवते। यदा मिथ्याज्ञानं दग्धबीजभावं वन्ध्यप्रसवं संपद्यते तदा विधूतक्लेशरजसः सत्त्वस्य परे वैशारद्ये परस्यां वशीकारसंज्ञायां वर्तमानस्य विवेकप्रत्ययप्रवाहो निर्मलो भवति। सा विवेकख्यातिरविप्लवा हानोपायः। ततो मिथ्याज्ञानस्य दग्धबीजभावोपगमः पुनश्चाप्रसव इत्येष मोक्षस्य मार्गो हानस्योपाय इति ॥ २६ ॥

व्या० भा० पदार्थ

(सत्त्वपुरुषान्यताप्रत्ययो विवेकख्यातिः) बुद्धि और पुरुष इन

दोनों की भिन्नता का ज्ञान विवेकख्याति कहलाती है। (सा त्वनिवृत्तमिथ्याज्ञाना प्लवते) और वह निवृत्त हो गया है मिथ्याज्ञान जिस से ऐसी विवेकख्याति शुद्ध निर्मल कहलाती है। (यदा मिथ्या ज्ञानं दग्धबीजभावं बन्ध्यप्रसवं संपद्यते) जब मिथ्याज्ञान दग्धबीज के समान बन्धन की अनुत्पत्ति के योग्य होता है (तदा विधूतक्लेशरजसः सत्त्वस्य परे वैशारद्ये) तब रजोगुण निमित्तक क्लेश दूर हो जाने पर सत्त्व के परमप्रकाश में (परस्यां वशीकारसंज्ञायां वर्तमानस्य) परम वशीकार संज्ञा में वर्तमान हुए योगी के (विवेकप्रत्ययप्रवाहो निर्मलो भवति) विवेकज्ञान का प्रवाह निर्मल = शुद्ध होता है। (सा विवेकख्यातिरविप्लवा हानोपायः) वह निर्मल विवेकख्याति हान का उपाय है। (ततो मिथ्याज्ञानस्य दग्धबीजभावोपगमः पुनश्चाप्रसवः) उससे मिथ्याज्ञान दग्धबीज भाव को प्राप्त हुआ फिर अनुत्पत्ति के योग्य होना (इत्येष मोक्षस्य मार्गो हानस्योपाय इति) इस प्रकार यही मोक्ष का मार्ग है, यही त्याग का उपाय है॥ २६॥

भो० वृत्ति

अन्ये गुणा अन्यः पुरुष इत्येवंविधस्य विवेकस्य या ख्यातिः प्रख्या साऽस्य हानस्य दृश्यदुःख परित्यागस्योपायः कारणम्। कीदृशी? अविप्लवा न विद्यते विप्लवो विच्छेदोऽन्तराऽन्तरा व्युत्थानरूपो यस्याः साऽविप्लवा। इदमत्र तात्पर्यम्—प्रतिपक्षभावनाबलादविद्याप्रविलये विनिवृत्तज्ञातृत्वकर्तृत्वाभिमानायाः रजस्तमोमलानभिभूताया बुद्धेरन्तर्मुखा या चिच्छायासंक्रान्तिः सा विवेकख्यातिरुच्यते। तस्यां च संततत्वेन प्रवृत्तायां सत्यां दृश्यस्याधिकारनिवृत्तेर्भवत्येव कैवल्यम्॥ २६॥

उत्पन्नविवेकख्यातेः पुरुषस्य यादृशी प्रज्ञा भवति तां कथयन्विवेकख्यातेरेव स्वरूपमाह—

भो० वृ० पदार्थ

(अन्ये गुणा अन्यः पुरुष इत्येवंविधस्य विवेकस्य) गुणों का स्वरूप भिन्न है, पुरुष का स्वरूप भिन्न है, इस प्रकार के विवेक की (या ख्यातिः प्रख्या साऽस्य हानस्य दृश्यदुःख परित्यागस्योपायः कारणम्) जो ख्याति अर्थात् ज्ञान वह इस हान दृश्य दुःख के त्याग का उपाय कारण है। (कीदृशी) कैसा कि ? (अविप्लवा न विद्यते विप्लवो विच्छेदोऽन्तराऽन्तरा व्युत्थानरूपो यस्याः साऽविप्लवा) नहीं हैं विप्लव अर्थात् व्युत्थान रूपी विच्छेद विघ्न जिसके अन्दर वह 'अविप्लव' कहलाती है। (इदमत्र तात्पर्यम्) यह इसका अभिप्राय है—(प्रतिपक्षभावनाबलादविद्याप्रविलये विनिवृत्तज्ञातृत्वकर्तृत्वाभिमानायाः) प्रतिपक्ष भावना द्वारा अविद्या के लय होने पर निवृत्त हो गया है ज्ञातापन और कर्तापन रूपी अभिमान जिसका (रजस्तमोमलानभिभूताया बुद्धेरन्तर्मुखाः) रज और तम रूपी मल से नहीं दबी हुई बुद्धि अन्तर्मुख वाली में (या चिच्छायासंक्रान्ति) जो चेतन की छाया पड़ने से पुरुष स्वरूपाकार में उसका परिणाम (सा विवेकख्यातिरुच्यते) वह विवेकख्याति कही जाती है। (तस्यां च संततत्वेन प्रवृत्तायां सत्यां दृश्यस्याधिकारनिवृत्तेर्भवत्येव कैवल्यम्) उस विवेकख्याति काल में यथार्थ रूप से प्रवृत्त रहते हुए, दृश्य के रहते हुए भी उस के अधिकार की निवृत्ति ही पुरुष की कैवल्य है ॥ २६ ॥

(उत्पन्नविवेकख्यातेः पुरुषस्य यादृशी प्रज्ञा भवति) विवेकख्याति उत्पन्न होने पर पुरुष की जैसी बुद्धि होती है (तां कथयन्विवेकख्यातेरेव स्वरूपमाह) उसको कहते हुए विवेकख्याति के स्वरूप को कहते हैं—

तस्य सप्तधा प्रान्तभूमिः प्रज्ञा ॥ २७ ॥

सू०—उस विवेकख्याति वाले योगी की सात प्रकार की उत्कर्ष अवस्था वाली बुद्धि होती है ॥ २७ ॥

व्या० भाष्यम्

तस्येति प्रत्युदितख्यातेः प्रत्याम्नायः । सप्तधेति अशुद्ध्यावरणमलापगमाच्चित्तस्य प्रत्ययान्तरानुत्पादे सति सप्तप्रकारैव प्रज्ञा विवेकिनो भवति ।

तद्यथा—१–परिज्ञातं हेयं नास्य पुनः परिज्ञेयमस्ति । २–क्षीणा हेय हेतवो न पुनरेतेषां क्षेतव्यमस्ति । ३–साक्षात्कृतं निरोधसमाधिना हानम् । ४–भावितो विवेकख्यातिरूपो हानोपाय इति । एषा चतुष्टयी कार्या विमुक्तिः प्रज्ञायाः । चित्तविमुक्तिस्तु त्रयी । ५–चरिताधिकारा बुद्धिः । ६–गुणा गिरिशिखरतटच्युता इव ग्रावाणो निरवस्थानाः स्वकारणे प्रलयाभिमुखाः सह तेनास्तं गच्छन्ति । न चैषां प्रविलीनानां पुनरस्त्युत्पादः प्रयोजनाभावादिति । ७–एतस्यामवस्थायां गुणसम्बन्धातीतः स्वरूपमात्रज्योतिरमलः केवली पुरुष इति । एतां सप्तविधां प्रान्तभूमिप्रज्ञामनुपश्यन्पुरुषः कुशल इत्याख्यायते । प्रतिप्रसवेऽपि चित्तस्य मुक्तः कुशल इत्येव भवति गुणातीतत्वादिति ॥ २७ ॥

सिद्धा भवति विवेकख्यातिर्हानोपाय इति । न च सिद्धिरन्तरेण साधनमित्येतदारभ्यते—

व्या० भा० पदार्थ

(तस्येति प्रत्युदितख्यातेः प्रत्याम्नायः । सप्तधेति) उस योगी को विवेकख्याति उत्पन्न होने पर 'ज्ञान' सात प्रकार का होता है । (अशुद्ध्यावरणमलापगमाच्चित्तस्य प्रत्ययान्तरानुत्पादे सति) चित्त के अशुद्धिरूप आवरणमल नष्ट होने से दूसरे ज्ञानों के उत्पन्न न होते हुए (सप्तप्रकारैव प्रज्ञा विवेकिनो भवति) सात भेदों वाली बुद्धि विचारवान् योगी को होती है ।

(तद्यथा—१–परिज्ञातं हेयं नास्य पुनः परिज्ञेयमस्ति) त्यागने

योग्य दुःखों को कारण सहित मैंने जाना अब पुनः जानने योग्य कुछ नहीं है। १। (२—क्षीणाहेयहेतवः) दुःखों के कारण अविद्यादि क्लेश नष्ट हो गये (न पुनरेतेषां क्षेतव्यमस्ति) अब फिर इन में से किसी का नाश करना शेष नहीं है। २। (३—साक्षात्कृतं निरोधसमाधिना हानम्) निरोध समाधि के द्वारा हान को निश्चित किया अब कुछ निश्चय करने योग्य नहीं है। ३। (४—भावितो विवेकख्यातिरूपो हानोपायः) हान का उपाय विवेकख्याति रूप मैंने सम्पादन किया, अब कुछ सम्पादनीय नहीं है। ४। (इति। एषा चतुष्टयी कार्या विमुक्तिः प्रज्ञायाः) इस प्रकार यह चार, कार्यविमुक्ति वाली बुद्धि हैं, कार्य करके निवृत्ति हो जिस की वह 'कार्यविमुक्ति' कहलाती है। (चित्तविमुक्तिस्तु त्रयी) चित्तविमुक्ति तीन प्रकार की है। (५—चरिताधिकारा बुद्धिः) चित्त रूप आश्रय के न रहने से कृतार्थवाली बुद्धि 'चरिताधिकार' कहलाती है अर्थात् जो अपने कार्य भोग मोक्ष को सम्पादन कर चुकी।५। (६—गुणा गिरिशिखरतटच्युता इव ग्रावाणो निरवस्थानाः स्वकारणे प्रलयाभिमुखाः सह तेनास्तं गच्छन्ति) तीनों गुण बुद्धि रूप आश्रय के बिना अपने कारण रूप प्रकृति में बुद्धि के सहित इस प्रकार लय हो जाते हैं जैसे पर्वत की चोटी के किनारे से गिरे हुए पत्थर बीच में न ठहरते हुए पृथ्वी पर आकर चूर २ हो जाते हैं। ६। (न चैषां प्रविलीनानां पुनरस्त्युत्पादः प्रयोजनाभावादिति) प्रयोजन के न रहने से लय हुए इन तीनों गुणों की फिर उत्पत्ति न होगी। (७—एतस्यामवस्थायां गुणसंबन्धातीतः स्वरूपमात्रज्योतिरमलः केवली पुरुष इति) इस अवस्था में पुरुष गुणों के सम्बन्ध से रहित हुआ ज्ञानस्वरूपमात्र शुद्ध मुक्त होता है। ७। (एतां सप्तविधां प्रान्तभूमिप्रज्ञामनुपश्यन्पुरुषः कुशल इत्याख्यायते) इस सात प्रकार की उत्कर्ष अवस्था वाली बुद्धि को देखता हुआ पुरुष ज्ञानी कहलाता है। (प्रतिप्रसवेऽपि चित्तस्य मुक्तः कुशल इत्येव

भवति गुणातीतत्वादिति) चित्त के प्रकृति में लीन होने पर गुणातीत होने से मुक्त और ज्ञानी होता है ॥ २७ ॥

(सिद्धा भवति विवेकख्यातिर्हानोपाय इति । न च सिद्धिरन्तरेण साधनमित्येतदारभ्यते) योगाङ्ग अनुष्ठान द्वारा ही हान का उपाय विवेकख्याति सिद्ध होती है किसी दूसरे साधन से सिद्धि नहीं होती, यह आरम्भ किया जाता है—

भो० वृत्ति

तस्योत्पन्नविवेकज्ञानस्य ज्ञातव्यविवेकरूपा प्रज्ञा प्रान्तभूमौ सकलसालम्बनसमाधिभूमिपर्यन्ते सप्तप्रकारा भवति । तत्र कार्यविमुक्तिरूपा चतुष्प्रकारा—ज्ञातं मया ज्ञेयं न ज्ञातव्यं किंचिदस्ति । क्षीणा मे क्लेशा न किंचित्क्षेतव्यमस्ति । अधिगतं मया ज्ञानं, प्राप्ता मया विवेकख्यातिरिति । प्रत्ययान्तरपरिहारेण तस्यामवस्थायामीदृश्येव प्रज्ञा जायते । ईदृशी प्रज्ञा कार्यविषयं निर्मलं ज्ञानं कार्यविमुक्तिरित्युच्यते । चित्तविमुक्तिस्त्रिधा—चरितार्था मे बुद्धिर्गुणा हृताधिकारा गिरिशिखरनिपतिता इव ग्रावाणो न पुनः स्थितिं यास्यन्ति, स्वकारणे प्रविलयाभिमुखानां गुणानां मोहभिधानमूलकारणाभावान्निष्प्रयोजनत्वाच्चामीषां कुतः प्ररोहो भवेत्, सात्मीभूतश्च मे समाधिस्तस्मिन्सति स्वरूपप्रतिष्ठोऽहमिति । ईदृशी त्रिप्रकारा चित्तविमुक्तिः । तदेवमीदृश्यां सप्तविधप्रान्तभूमिप्रज्ञायामुपजातायां पुरुषः कुशलः इत्युच्यते ॥ २७ ॥

विवेकख्यातिः संयोगाभावहेतुरित्युक्तं, तस्यास्तूत्पत्तौ किं निमित्तमित्यत आह—

भो० वृ० पदार्थ

(तस्योत्पन्नविवेकज्ञानस्य ज्ञातव्यविवेकरूपा प्रज्ञा) उत्पन्न हुआ है विवेकज्ञान जिस योगी को उसकी जानने योग्य विवेकरूपी बुद्धि (प्रान्तभूमौ) उत्कर्ष अवस्था वाली (सकलसालम्बनसमाधिभूमिपर्यन्ते सप्तप्रकारा भवति) समस्त आलम्बन वाली समाधि भूमि पर्यन्त सात भेदों

वाली होती है। (तत्र कार्यविमुक्तिरूपा चतुष्प्रकाराः) उनमें कार्य करके जो मुक्त होती वह चार प्रकार की है—(१–ज्ञातं मयाज्ञेयं न ज्ञातव्यं किंचिदस्ति) १—जानने योग्य को मैंने जाना अब कुछ जानने योग्य नहीं है। (२–क्षीणा मे क्लेशा न किंचित्क्षेतव्यमस्ति) २–मेरे क्लेश दूर हो गये अब कुछ नष्ट करने योग्य नहीं है। (३–अधिगतं मया ज्ञानं) ३–मुझे ज्ञान प्राप्त हो गया, (४–प्राप्ता मया विवेकख्यातिरिति) ४–मैंने विवेकख्याति को प्राप्त किया। (प्रत्ययान्तरपरिहारेण तस्यामवस्थायामीदृश्येव प्रज्ञा जायते) उस अवस्था में दूसरे ज्ञानों के न रहने से ऐसी बुद्धि उत्पन्न होती है। (ईदृशी प्रज्ञा कार्यविषयं निर्मलं ज्ञानं कार्यविमुक्तिरित्युच्यते) इस प्रकार की बुद्धि अर्थात् कार्य विषयक निर्मल ज्ञान 'कार्यविमुक्ति' कहलाती है। (चित्तविमुक्तिस्त्रिधा) चित्तविमुक्ति तीन प्रकार की है (५–चरितार्था मे बुद्धिर्गुणा हताधिकाराः) ५–मेरी बुद्धि के गुण कृतप्रयोजन हो गये विषयों का अधिकार नष्ट हो गया (गिरिशिखरनिपतिता इव ग्रावाणो न पुनः स्थितिं यास्यन्ति,) जैसे पर्वत की चोटी से गिरे हुए पत्थर फिर नहीं ठहरसकेगें, (६–स्वकारणे प्रविलयाभिमुखानां गुणानां मोहाभिधानमूलकारणाभावान्निष्प्रयोजनत्वाच्चामीषां कुतः प्ररोहो भवेत्) ६–गुण अपने कारण में लय होने को सम्मुख हुए, मोहरूप आवरण मूल कारण के अभाव से निष्प्रयोजन होने के कारण इन की फिर कहां से उत्पत्ति होवे, (७–सात्मीभूतश्च मे समाधिस्तस्मिन्सति स्वरूपप्रतिष्ठोऽहमिति) ७–परमात्मास्वरूप सहित जो मेरी समाधि उसमें रहते हुए मैं स्वरूप में स्थिर हूँ। (ईदृशी त्रिप्रकारा चित्तविमुक्तिः) इस समान तीन प्रकार की चित्तविमुक्ति है। (तदेवमीदृश्यां सप्तविधप्रान्तभूमिप्रज्ञायामुपजातायां पुरुषः कुशलः इत्युच्यते) इस प्रकार ऐसी सात प्रकार की अन्त अवस्था वाली बुद्धि उत्पन्न होने पर पुरुष ज्ञानी कहलाता है ॥ २७ ॥

(विवेकख्यातिः संयोगाभावहेतुरित्युक्तं, तस्यास्तूत्पत्तौ किं निमित्तमित्यत आह) विवेकख्याति संयोग के अभाव का हेतु है यह कहा गया

उस की उत्पत्ति में कौन कारण है? इस प्रयोजन से अगला सूत्र कहते हैं—

योगाङ्गानुष्ठानादशुद्धिक्षये ज्ञानदीप्तिरा विवेकख्यातेः ॥ २८ ॥

सू०—योग के अङ्गों का अनुष्ठान करने से क्लेशरूपी अशुद्धि के नाश होने पर विवेकख्याति पर्यन्त ज्ञान का प्रकाश होता है॥२८॥

व्या० भाष्यम्

योगाङ्गान्यष्टावभिधायिष्यमाणानि । तेषामनुष्ठानात्पञ्चपर्वणो विपर्ययस्याशुद्धिरूपस्य क्षयो नाशः । तत्क्षये सम्यग्ज्ञानस्याभिव्यक्तिः । यथा यथा च साधनान्यनुष्ठीयन्ते तथा तथा तनुत्वमशुद्धिरापद्यते । यथा यथा च क्षीयते तथा तथा क्षयक्रमानुरोधिनी ज्ञानस्यापि दीप्तिर्विवर्धते । सा खल्वेषा विवृद्धिः प्रकर्षमनुभवत्या विवेकख्यातेः, आ गुणपुरुषस्वरूपविज्ञानादित्यर्थः । योगाङ्गानुष्ठानमशुद्धेर्वियोगकारणम् ।

यथा परशुश्छेद्यस्य । विवेकख्यातेस्तु प्राप्तिकारणं यथा धर्मः सुखस्य नान्यथा कारणम् । कति चैतानि कारणानि शास्त्रे भवन्ति । नवैवेत्याह । तद्यथा—

"उत्पत्तिस्थित्यभिव्यक्तिविकारप्रत्ययाप्तयः ।
वियोगान्यत्वधृतयः कारणं नवधा स्मृतम्" इति ॥

तत्रोत्पत्तिकारणं मनो भवति विज्ञानस्य, स्थितिकारणं मनसः पुरुषार्थता, शरीरस्येवाऽऽहार इति । अभिव्यक्तिकारणं यथा रूपस्याऽऽलोकस्तथा रूपज्ञानं, विकारकारणं मनसो विषयान्तरम् । यथाऽग्निः पाक्यस्य । प्रत्ययकारणं धूमज्ञानमग्निज्ञानस्य । प्राप्तिकारणं योगाङ्गानुष्ठानं विवेकख्यातेः ।

वियोगकारणं तदेवाशुद्धेः । अन्यत्वकारणं यथा सुवर्णस्य सुवर्णकारः । एवमेकस्य स्त्रीप्रत्ययस्याविद्या मूढत्वे द्वेषो दुःखत्वे

रागः सुखत्वे तत्त्वज्ञानं माध्यस्थ्ये। धृतिकारणं शरीरमिन्द्रियाणाम्। तानि च तस्य। महाभूतानि शरीराणां, तानि च परस्परं सर्वेषां तैर्यग्यौनमानुषदैवतानि च परस्परार्थत्वादित्येवं नव कारणानि। तानि च यथासंभवं पदार्थान्तरेष्वपि योज्यानि। योगाङ्गानुष्ठानं तु द्विधैव कारणत्वं लभत इति॥ २८॥

तत्र योगाङ्गान्यवधार्यन्ते—

व्या० भा० पदार्थ

(योगाङ्गन्यष्टावभिधायिष्यमाणानि) योग के आठ अङ्ग हैं जो आगे कहे जायेंगे। (तेषामनुष्ठानात्पञ्चपर्वणो विपर्ययस्याशुद्धि रूपस्य क्षयो नाशः) उनके अनुष्ठान करने से अशुद्धि रूप पांच भेदों वाली अविद्या का क्षय अर्थात् नाश होता है। (तत्क्षये सम्यग्ज्ञानस्याभिव्यक्तिः) उस के नाश होने पर यथार्थ ज्ञान की प्राप्ति होती है। (यथा यथा च साधनान्यनुष्ठीयन्ते) जैसे २ योग के अङ्गों का अनुष्ठान किया जाता है (तथा तथा तनुत्वमशुद्धिरापद्यते) वैसे २ अविद्यारूपी अशुद्धि न्यून होती जाती है। (यथा यथा च क्षीयते) जैसे २ अशुद्धि नाश को प्राप्त होती है (तथा तथा क्षयक्रमानुरोधिनी ज्ञानस्यापि दीप्तिर्विवर्धते) वैसे २ क्षय क्रमानुसार ज्ञान का प्रकाश भी बढ़ता है। (सा खल्वेषा विवृद्धिः) निश्चय यह वृद्धि (प्रकर्षमनुभवत्या विवेकख्यातेः) विवेकख्याति पर्यन्त उत्कर्ष अवस्था को प्राप्त होती है, (आ गुणपुरुषस्वरूपविज्ञानादित्यर्थः) गुणों से लेकर पुरुष स्वरूप ज्ञान तक प्रकाश होता है यह अर्थ है।

योगाङ्गानुष्ठानामशुद्धेर्वियोगकारणम्—देखो! यह फिर किसी अज्ञानी आनुनिक ने मन घड़त पुनरूक्ति उठाई क्योंकि योगाङ्ग अनुष्ठान से अशुद्धि का नाश इसी सूत्र के भाष्य में ऊपर कह चुके और इससे आगे अनावश्यक अज्ञानियों के समान प्रलाप

किया है इस कारण त्याज्य है और सूत्र का भाष्य सम्पूर्ण रीति से ऊपर हो चुका है। त्याज्य होने से मूलमात्र लिखदिया जाता है अर्थ करने की आवश्यकता नहीं ॥ २८ ॥

(तत्र योगाङ्गान्यवधार्यन्ते) उस विषय में योग के अङ्गों को बतलाते हैं—

भो० वृत्ति

योगाङ्गानि वक्ष्यमाणानि तेषामनुष्ठानाज्ज्ञानपूर्वकादभ्यासादा विवेकख्यातेरशुद्धिक्षये चित्तसत्त्वस्य प्रकाशावरणलक्षणक्लेशरूपाशुद्धिक्षये या ज्ञानदीप्तिस्तारतम्येन सत्त्विकः परिणामो विवेकख्यातिपर्यन्तः स तेस्याः ख्यातेर्हेतुरित्यर्थः ॥ २८ ॥

योगाङ्गानुष्ठानादशुद्धिक्षय इत्युक्तं, कानि पुनस्तानि योगाङ्गानीति तेषामुद्देशमाह—

भो० वृ० पदार्थ

(योगाङ्गानि वक्ष्यमाणानि) योग के अङ्ग अगले सूत्र में कहे जांयगे (तेषामनुष्ठानाज्ज्ञानपूर्वकादभ्यासादा विवेकख्यातेरशुद्धिक्षये) ज्ञानपूर्वक अभ्यास द्वारा उनका अनुष्ठान करने से अशुद्धि के नाश होने पर विवेकख्याति पर्यन्त (चित्तसत्त्वस्य प्रकाश) चित्त का प्रकाश (आवरणलक्षणक्लेशरूपाशुद्धिक्षये) आवरण, क्लेशरूप अशुद्धि के नाश होने पर (या ज्ञानदीप्तिस्तारतम्येन सात्त्विकः परिणामो विवेकख्यातिपर्यन्तः) जो ज्ञान की दीप्ति क्रम से सात्त्विक परिणाम विवेकख्याति पर्यन्त (स तस्याः ख्यातेर्हेतुरित्यर्थः) वह उस ख्याति का कारण है यह अर्थ है ॥२८॥

(योगाङ्गानुष्ठानादशुद्धिक्षय इत्युक्तं,) योगाङ्ग अनुष्ठान से अशुद्धि का नाश होता है यह कहा गया, (कानि पुनस्तानि योगाङ्गानीति तेषामुद्देसमाह) फिर वह योग के अङ्ग कौन से हैं ? इस कारण उन का उपदेश करते हैं—

यमनियमासनप्राणायामप्रत्याहारधारणा-ध्यानसमाधयोऽष्टावङ्गानि ॥ २९ ॥

सू०---यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि यह योग के आठ अङ्ग हैं ॥ २९ ॥

व्या० भाष्यम्

यथाक्रममेषामनुष्ठानं स्वरूपं च वक्ष्यामः ॥ २९ ॥

तत्र—

व्या० भा० पदार्थ

(यथाक्रममेषामनुष्ठानं स्वरूपं च वक्ष्यामः) इनका अनुष्ठान और स्वरूप यथा क्रम अगले सूत्रों में कहेंगे ॥ २९ ॥

(तत्र) उन में—

भो० वृत्ति

इह कानिचित्समाधेः साक्षादुपकारकत्वेनान्तरङ्गाणि, यथा धारणादीनि। कानिचित्प्रतिपक्षभूतहिंसादिवितर्कोन्मूलनद्वारेण समाधिमुपकुर्वन्ति । यथा यमनियमादीनि । तत्राऽऽसनादिनामुत्तरोत्तरमुपकारकत्वम् । तद्यथा—सत्यासनजये प्राणायामस्थैर्यम् । एवमुत्तरत्रापि योज्यम् ॥ २९ ॥

क्रमेणैषां स्वरूपमाह—

भो० वृ० पदार्थ

(इह कानिचित्समाधेः साक्षादुपारकत्वेनान्तरङ्गाणि) इन में कोई एक समाधि के साक्षात् सहायक होने से योग के 'अन्तरङ्ग' साधन कहलाते हैं, (यथा धारणादीनि) जैसे धारणा, ध्यान, समाधि । (कानिचित्प्रतिपक्ष-भूतहिंसादिवितर्कोन्मूलनद्वारेण समाधिमुपकुर्वन्ति) कोई एक विरोधी हुए हिंसादि वितर्कों को निर्मूलता करने के कारण समाधि को सिद्ध करते

हैं । (यथा यमनियमादीनि) जैसे यम, नियमादि । (तत्राऽऽसनादीना-मुत्तरोत्तरमुपकारकत्वम्) उन में आसनादि का उत्तरोत्तर उपकारकपन है । (तद्यथा) जैसे—(सत्यासनजये प्राणायामस्थैर्यम्) आसनजय होने पर प्राणायाम की स्थिरता होती है । (एवमुत्तरत्रापि योज्यम्) इसी प्रकार अगलों में भी युक्त करना चाहिये ॥ २९ ॥

(क्रमेणैषां स्वरूपमाह) इन का स्वरूप क्रम से आगे कहते हैं—

अहिंसासत्यास्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहा यमाः ॥३०॥

सू०—उनमें अहिंसा, सत्य, अस्तेय अर्थात् चोरी का त्याग, ब्रह्मचर्य अर्थात् अष्टविध मैथुन त्याग, अपरिग्रह अर्थात् लोभ रहितता यह 'यम' कहलाते हैं ॥ ३० ॥

व्या० भाष्यम्

तत्राहिंसा सर्वथा सर्वदा सर्वभूतानामनभिद्रोहः । उत्तरे च यमनियमास्तन्मूलास्तत्सिद्धिपरतयैव तत्प्रतिपादनाय प्रतिपाद्यन्ते । तदवदातरूपकरणायैवोपादीयन्ते । तथा चोक्तम्—स खल्वयं ब्राह्मणो यथा यथा व्रतानि बहूनि समादित्सते तथा तथा प्रमाद-कृतेभ्यो हिंसानिदानेभ्यो निवर्तमानस्तामेवावदातरूपामहिंसां करोति ।

सत्यं यथार्थे वाङ्मनसे । यथा दृष्टं यथाऽनुमितं यथा श्रुतं तथा वाङ्मनश्चेति । परत्र स्वबोधसंक्रान्तये वागुक्ता, सा यदि न वञ्चिता भ्रान्ता वा प्रतिपत्तिवन्ध्या वा भवेदिति । एषा सर्वभूतो-पकारार्थं प्रवृत्ता न भूतोपघाताय । यदि चैवमप्यभिधीयमाना भूतोपघातपरैव स्यान्न सत्यं भवेत्पापमेव भवेत्तेन पुण्याभासेन पुण्यप्रतिरूपकेण कष्टं तमः प्राप्नुयात् । तस्मात्परीक्ष्य सर्वभूतहितं सत्यं ब्रूयात् ।

स्तेयमशास्त्रपूर्वकं द्रव्याणां परतः स्वीकरणं, तत्प्रतिषेधः पुन-रस्पृहारूपमस्तेयमिति । ब्रह्मचर्यं गुप्तेन्द्रियस्योपस्थस्य संयमः । विष-

ययाणामर्जनरक्षणक्षयसङ्गहिंसादोषदर्शनादस्वीकरणमपरिग्रह इत्येते यमाः ॥ ३० ॥

ते तु—

व्या० भा० पदार्थ

(तत्राहिंसा) उनमें अहिंसा का वर्णन करते हैं कि (सर्वथा सर्वदा सर्वभूतानामनभिद्रोहः) सर्वप्रकार से सर्वकाल में सर्व प्राणियों का चित्त में भी द्रोह न करना अहिंसा कहलाती है। (उत्तरे च यमनियमास्तन्मूलाः) अगले यम और नियम उस अहिंसा के मूल हैं (तत्सिद्धिपरतयैव तत्प्रतिपादनाय प्रतिपाद्यन्ते) उसकी सिद्धि के कारण उसके प्रतिपादन करने के लिये कहे जाते हैं। (तदवदातरूपकरणायैवोपादीयन्ते) उस अहिंसा को निर्मल रूप बनाने के लिये ग्रहण किये जाते हैं। (तथा चोक्तम्) वैसा ही उपदेश है (स खल्वयं ब्राह्मणो यथा यथा व्रतानि बहुनि समादित्सते) निश्चय यह ब्राह्मण जैसे २ बहुत से व्रतों को धारण करने की इच्छा करता है (तथा तथा प्रमादकृतेभ्यो हिंसानिदानेभ्यो निवर्तमानः) वैसे २ प्रमाद से किये हुए हिंसादि के कारण रूप पापों से निवर्त हुआ (तामेवावदातरूपामहिंसां करोति) उसी "अहिंसा" को निर्मल करता है।

(सत्यं) सत्य का लक्षण करते हैं (यथार्थे वाङ्मनसे) अर्थानुकूल वाणी और मन का व्यवहार होना। (यथा दृष्टं यथाऽनुमितं) जैसा देखा हो, जैसा अनुमान किया हो, (यथाश्रुतं) जैसा सुना हो, (तथा वाङ्मनश्चेति) वैसा वाणी से कथन करना और मन में धारण करना। (परत्रस्वबोधसंक्रान्तये) दूसरे पुरुष में अपने बोध के अनुसार ज्ञान कराने में (वागुक्ता) कही हुई वाणी, (सा यदि न वञ्चिता भ्रान्ता वा प्रतिपत्तिवन्ध्या वा भवेदिति) वह यदि धोका देने वाली, भ्रान्ति करने वाली, या उलटी

बन्धन करने वाली न हो तो "सत्य" है। (एषा सर्वभूतोपकारार्थं प्रवृत्ता) यह सब भूतों के उपकार के लिये प्रवृत्त हुई होतो सत्य है (न भूतोपघाताय) न कि भूतों के नाश करने के लिये जो वाणी कही गई हो वह सत्य है, अर्थात् वह कदापि सत्य नहीं है। (यदि चैवमप्यभिधीयमाना भूतोपघातपरैव स्यान्न सत्यं भवेत्) यदि इस प्रकार भी विचारी हुई वाणी प्राणियों की नाश करने वाली ही हो वह सत्य नहीं है (पापमेव भवेत्) पापयुक्त ही है (तेन पुण्याभासेन पुण्यप्रतिरूपकेण कष्टं तमः प्राप्नुयात्) उस पुण्याभास पुण्य के प्रतिरूप अर्थात् पाप से बड़े दुःख को प्राप्त होता है। (तस्मात्परीक्ष्य सर्वभूतहितं सत्यं ब्रूयात्) इस कारण अच्छे प्रकार परीक्षा अर्थात् शास्त्र से तत्त्व निर्णय करके सर्वभूतों के हितार्थ सत्यरूप से ज्ञान प्रदान करे उपदेश करे।

भाव इसका यह है कि जैसे आजकल-पक्षपाती लोग लोभादि के कारण सत्य शास्त्रों अर्थात् वेदानुकूल शास्त्रों को छोड़कर विना उनसे तत्त्व निर्णय किये स्वार्थ के कारण वञ्चित और भ्रान्ति कारक ज्ञानों की कथा और उपदेश करके मनुष्यों को नर्क में पहुँचाने का उपाय करते और स्वार्थ पालन करते हैं और सन्मार्ग के ढकने में अनेक यत्नोपाय यहां तक की युद्ध भी करते हैं। उनको अपने कल्याण के लिये इस महर्षि के भाष्य से शिक्षा लेनी चाहिये।

(स्तेयमशास्त्रपूर्वकं द्रव्याणां परतः स्वीकरणं, तत्प्रतिषेधः) शास्त्र आज्ञा विरुद्ध धनादि का दूसरों से लेना, जिस का शास्त्र में निषेध है वह चोरी कहलाती है (पुनरस्पृहारूपमस्तेयमिति) फिर सर्वथा लोभ रूप ही चोरी है। (ब्रह्मचर्यं) ब्रह्मचर्य का अर्थ करते हैं (गुप्तेन्द्रियस्योपस्थस्य संयमः) उपस्थ इन्द्रिय का रोकना इसके यह आठ भेद हैं। १—दर्शन, २—स्पर्शन, ३—स्मरण, ४—क्रिड़न,

५—कीर्तन, ६—एकान्तवास, ७—गुह्यभाषण, ८—क्रियानिवृत्ति। (विषयाणामर्जनरक्षणक्षयसङ्गहिंसादोषदर्शनादस्वीकरणमपरिग्रहः) विषयों का प्राप्त करना, फिर उनकी रक्षा करने की चिन्ता, फिर उन के नाश का चित्त में क्षोभ फिर उनका सङ्ग और उनमें हिंसा के विचार से उनका स्वीकार न करना 'अपरिग्रह' कहलाता है (इत्येते यमाः) इस प्रकार यह पांच यम कहलाते हैं ॥ ३० ॥

(ते तु) वह तो—

भो० वृत्ति

तत्र प्राणवियोगप्रयोजनव्यापारो हिंसा। सा च सर्वानर्थहेतुः। तदभावोऽहिंसा। हिंसायाः सर्वकालं परिहार्यत्वात्प्रथमं तदभावरूपाया अहिंसाया निर्देशः। सत्यं वाङ्मनसयोर्यथार्थत्वम्। स्तेयं परस्वापहरणं तदभावोऽस्तेयम्। ब्रह्मचर्यमुपस्थसंयमः। अपरिग्रहो भोगसाधनानामनङ्गीकारः। त एतेऽहिंसादयः पञ्च यमशब्दवाच्या योगाङ्गत्वेन निर्दिष्टाः ॥ ३० ॥

एषां विशेषमाह—

भो० वृ० पदार्थ

(तत्र प्राणवियोगप्रयोजनव्यापारो हिंसा) उन में प्राणों का शरीर से वियोग करने के लिये जो काम किया जाता है वह हिंसा कहलाती है। (सा च सर्वानर्थहेतुः) वह हिंसा सर्व रूपों वाली अनर्थ का कारण है। (तदभावोऽहिंसा) उस का अभाव अहिंसा है। (हिंसायाः सर्वकालं परिहार्यत्वात्) हिंसा का सर्व काल में त्यागने योग्य होने से (प्रथमं तदभावरूपाया अहिंसाया निर्देशः) प्रथम उस के अभाव रूप अहिंसा का निर्देश किया है। (सत्यं वाङ्मनसयोर्यथार्थत्वम्) सत्य यह है कि वाणी और मन दोनों की यथार्थता अर्थात् जैसा अर्थ है उस के अनुसार ही कहना और मन में धारण करना। (स्तेयं परस्वापहरणं) दूसरे के धन का हरण करना (तदभावोऽस्तेयम्) उस का अभाव चोरी का त्याग

कहलाता है । (ब्रह्मचर्यमुपस्थसंयमः) उपस्थेन्द्रिय के रोकने को ब्रह्मचर्य कहते हैं । (अपरिग्रहो भोगसाधनानामनङ्गीकारः) भोग साधनों का स्वीकार न करना अपरिग्रह कहलाता है । (त एतेऽहिंसादयः पञ्च यमशब्दवाच्या) वह यह अहिंसादि पांचों जो यम शब्द से कहने योग्य हैं (योगाङ्गत्वेन निर्दिष्टाः) योगाङ्ग रूप से उपदेश किये गये ॥ ३० ॥

(एषां विशेषमाह) इन की विशेषता कहते हैं—

जातिदेशकालसमयानवच्छिन्नाः सार्वभौमा महाव्रतम् ॥ ३१ ॥

सू०—और वह अहिंसा आदि जाति देश काल की सीमा से रहित समयादि निमित्त के विना पालन की हुई सार्वभौम अर्थात् सर्व चित्त की भूमि और अवस्थाओं में धारण की हुई महाव्रत रूप होती है अर्थात् न जाति के निमित्त से उसका बाध होने पावे और न देश काल निमित्त वा प्रयोजनादि से, वह ही "महाव्रत" रूप है ॥ ३१ ॥

व्या० भाष्यम्

तत्राहिंसा जात्यवच्छिन्ना मत्स्यवधकस्य मत्स्येष्वेव नान्यत्र हिंसा । सैव देशावच्छिन्ना न तीर्थे हनिष्यामीति । सैव कालावच्छिन्ना न चतुर्दश्यां न पुण्येऽहनि हनिष्यामीति । सैव त्रिभिरुपरतस्य समयावच्छिन्ना देवब्राह्मणार्थे नान्यथा हनिष्यामीति । यथा च क्षत्रियाणां युद्ध एव हिंसा नान्यत्रेति । एभिर्जातिदेशकालसमयैरनवच्छिन्ना अहिंसादयः सर्वथैव परिपालनीयाः । सर्वभूमिषु सर्वविषयेषु सर्वथैवाविदितव्यभिचाराः सार्वभौमामहाव्रतमित्युच्यन्ते ॥ ३१ ॥

व्या० भा० पदार्थ

(तत्राहिंसा जात्यवच्छिन्नाः) उन में जाति से बाध हुई

अहिंसा का रूप यह है कि (मत्स्यवधकस्य मत्स्येष्वेव नान्यत्र हिंसा) मछली के मारने वाले को मछली के मारने में हिंसा है अन्यत्र नहीं इसमें एक मछली जाति की हिंसा का त्याग हुआ अन्य जाति के प्राणियों की हिंसा का त्याग न हुआ यह जाति से कटी हुई अहिंसा कहलाती है। (सैव देशावच्छिन्नाः) और वह देश से कटी हुई अहिंसा इस प्रकार है कि (न तीर्थे हनिष्यामीति) तीर्थ स्थान गुरुकुलादि में हिंसा न करूँगा यह एक देश विशेष में अहिंसा का पालन हुआ सर्व देश में नहीं हुआ। (सैव कालावच्छिन्नाः) वैसे ही वह काल से कटी हुई (न चतुर्दश्यां न पुण्येऽहनि हनिष्यामीति) न चतुर्दशी में न किसी पुण्यदिन में हिंसा करूँगा यह काल से कट गई। (सैव त्रिभिरुपरतस्य) और वही अहिंसा तीनों प्रकार से उपराम को प्राप्त हुए कि (समयावच्छिन्नाः) समय से कटी हुई (देवब्राह्मणार्थे नान्यथा हनिष्यामिति) देव ब्राह्मण की प्रयोजन सिद्धि के लिये हिंसा करूँगा अन्य प्रयोजन से नहीं करूँगा यह भी अहिंसा निमित्त से कट गई। (यथा च क्षत्रियाणां युद्ध एव हिंसा नान्यत्रेति) और जैसे कि क्षत्रियों को युद्ध में हिंसा होती है अन्यत्र नहीं। (एभिर्जातिदेशकालसमयैरनवच्छिन्नाः) इन जाति देश काल समयों से न कटी हुई (अहिंसादयः सर्वथैव परिपालनीयाः) अहिंसादि सर्व प्रकार से पालने योग्य हैं। (सर्वभूमिषु सर्वविषयेषु सर्वथैवाविदितव्यभिचाराः सार्वभौमा महाव्रतमित्युच्यन्ते) सर्वभूमियों में, सर्वविषयों में, सर्व प्रकार से व्यभिचार रहित सार्वभौम वाली महाव्रता कहलाती है ॥ ३१ ॥

भो० वृत्ति

जातिर्ब्राह्मणत्वादिः। देशस्तीर्थादिः। कालश्चतुर्दश्यादिः। समयो ब्राह्मणप्रयोजनादिः। एतैश्चतुर्भिरनवच्छिन्नाः पूर्वोक्ता अहिंसादयो यमाः

सर्वासु क्षिप्तादिषु चित्तभूमिषु भवा महाव्रतमित्युच्यन्ते । तद्यथा—ब्राह्मणं न हनिष्यामि तीर्थे न कंचन हनिष्यामि चतुर्दश्यां न हनिष्यामि देवब्राह्मणप्रयोजनव्यतिरेकेण कमपि न हनिष्यामीति । एवं चतुर्विधावच्छेदव्यतिरेकेण किंचित्क्वचित्कदाचित्कस्मिंश्चिदर्थे न हनिष्यामीत्यनवच्छिन्नाः । एवं सत्यादिषु यथायोगं योज्यम् । इत्थमनियतीकृताः सामान्येनैव प्रवृत्ता महाव्रतमित्युच्यते न पुनः परिच्छिन्नावधारणम् ॥ ३१ ॥

नियमानाह—

भो० वृ० पदार्थ

(जातिब्राह्मणत्वादिः) जाति ब्राह्मणत्व आदि हैं। (देशस्तीर्थादिः) गुरुकुलादि स्थान देश हैं । (कालश्चतुर्दश्यादिः) चतुर्दश्यादि काल हैं । (समयो ब्राह्मणप्रयोजनादिः) ब्राह्मण प्रयोजनादि को समय कहते हैं । (एतैश्चतुर्भिरनवच्छिन्नाः) इन चारों प्रकारों से न कटे हुए (पूर्वोक्ता अहिंसादयो यमाः) पूर्व कहे हुए अहिंसादि यम (सर्वासु क्षिप्तादिषु चित्तभूमिषु भवा महाव्रतमित्युच्यन्ते) सर्व क्षिप्तादि चित्त भूमियों में धारण की हुई महाव्रत कहलाती हैं । (तद्यथा—ब्राह्मणं न हनिष्यामि) उस विषय में जैसे कि ब्राह्मण को नही मारूँगा (तीर्थे न कंचन हनिष्यामि) तीर्थ में न कुछ हिंसा करूँगा (चतुर्दश्यां न हनिष्यामि) चतुर्दशी में नहीं मारूँगा (देवब्राह्मणप्रयोजनव्यतिरेकेण कमपि न हनिष्यामिति) देव ब्राह्मण के प्रयोजन से भिन्न कोई भी हिंसा न करूँगा । (एवं चतुर्विधावच्छेदव्यतिरेकेण) इस प्रकार चारों प्रकार के बाध से बिना (किंचित्क्वचित्कदाचित्कस्मिंश्चिदर्थे न हनिष्यामीत्यनवच्छिन्नाः) कुछ भी, कहीं भी, कभी भी, किसी प्रयोजन से भी, नहीं हिंसा करूँगा इस प्रकार न बाध होती हुई अहिंसा सार्वभौम महाव्रत कहलाती है । (एवं सत्यादिषु यथायोगं योज्यम्) इस प्रकार सत्यादि में भी यथायोग युक्त करना चाहिये । (इत्थमनियतीकृताः सामान्येनैव प्रवृत्ताः) इस प्रकार नियत न की हुई सामान्य रूप से प्रवृत्त हुई (महाव्रतमित्युच्यते)

महाव्रत रूप यह कही जाती है (न पुनः परिच्छिन्नावधारणम्) फिर सीमा वाली न धारण करना ॥ ३१ ॥

(नियमानाह) आगे नियमों को कहते हैं—

शौचसंतोषतपः स्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि नियमाः ॥ ३२ ॥

सू०—शौच, संतोष, तप, स्वाध्याय, ईश्वरप्रणिधान यह पांच नियम कहलाते हैं ॥ ३२ ॥

व्या० भाष्यम्

तत्र शौचं मृज्जलादिजनितं मेध्याभ्यवहरणादि च बाह्यम् । आभ्यन्तरं चित्तमलानामाक्षालनम् । संतोषः संनिहितसाधनादधिकस्यानुपादित्सा । तपो द्वंद्वसहनम् । द्वंद्वं च जिघत्सापिपासे शीतोष्णे स्थानासने काष्ठमौनाकारमौने च । व्रतानि चैषां यथायोगं कृच्छ्रचान्द्रायणसांतपनादीनि । स्वाध्यायो मोक्षशास्त्राणामध्ययनं प्रणवजपो वा । ईश्वरप्रणिधामं तस्मिन्परमगुरौ सर्वकर्मार्पणम् ।

शय्यासनस्थोऽथ पथि व्रजन्वा
स्वस्थः परिक्षीणवितर्कजालः ।
संसारबीजक्षयमीक्षमाणः
स्यान्नित्ययुक्तोऽमृतभोगभागी ॥

यत्रेदमुक्तं ततः प्रत्यक्चेतनाधिगमोऽप्यन्तरायाभावश्चेति ॥३२॥

एतेषां यमनियमानाम्—

व्या० भा० पदार्थ

(तत्र शौचं मृज्जलादिजनितं) उन में शौच यह है कि मृत्तिका जलादि से शरीर (मेध्याभ्यवहरणादि च बाह्यम्) और पवित्रप रिमिति आहारादि द्वारा उदर प्रक्षालन बाह्य शौच कह-

लाता है । (आभ्यन्तरं) अन्दर की पवित्रता यह है कि (चित्त-मलानामाक्षालनम्) चित्त के मलों का धोना अर्थात् राग द्वेषादि से रहित होना । (संतोषः) संतोष को कहते हैं (संनिहितसाधना-दधिकस्यानुपादित्सा) समीपस्थ साधनों के होते हुए भी अधिक प्राप्ति की इच्छा न होना । (तपो द्वंद्वसहनम्) तप द्वंद्व सहन को कहते हैं । (द्वंद्वं च जिघत्सापिपासे शीतोष्णे स्थानासने) और द्वंद्व क्षुधा, तृषा, जाड़ा, गरमी, स्थान और आसन में (काष्ठमौनाकार-मौने च) और मौन में मौन रूप काष्ठ समान अर्थात् किञ्चित् चेष्टा न करना । (व्रतानि चैषां यथायोगं कृच्छ्रचान्द्रायणसांतपनादीनि) व्रत यह हैं कि कृच्छ्रचान्द्रायण, सांतपनादि व्रतों का यथा शक्ति करना । (स्वाध्यायो मोक्षशास्त्राणामध्ययनं) मोक्ष विषयक शास्त्रों का पढ़ना स्वाध्याय कहलाता है (प्रणवजपो वा) और ओंकारादि जप भी । (ईश्वरप्रणिधानं) अब ईश्वरप्रणिधान का अर्थ करते हैं (तस्मिन्परमगुरौ सर्वकर्मार्पणम्) उस परमगुरु परमात्मा में सर्व कर्मों का अर्पण करना ।

(शय्यासनस्थोऽथ पथि व्रजन्वा स्वस्थः) शय्या अथवा आसन पर बैठा हुआ वा मार्ग में चलता हुआ अपने स्वरूप में स्थिर (परिक्षीणवितर्कजालः) वितर्करूप जाल को नष्ट किये हुए (संसारबीजक्षयमीक्षमाणः स्यात्) संसार बीज के नाश को विचार करता हुआ (नित्ययुक्तोऽमृतभोगभागी) नित्य परमात्मा में युक्त हुआ अमृत भोग का भागी होता है अर्थात् मोक्ष को प्राप्त होता है ।

(यत्रेदमुक्तं) जिस विषय में यह कहा है (ततः प्रत्यक्चेत-नाधिगमोऽप्यन्तरायाभावश्च (यो० सू० १–२९) इति) उस से अन्तर्यामी परमात्मा की प्राप्ति और विघ्नों का नाश भी होता है॥३२॥

(एतेषां यमनियमानाम्) इन यम नियमों के—

भो० वृत्ति

शौचं द्विविधं—बाह्यमाभ्यन्तरं च। बाह्यं मृज्जलादिभिः कायादिप्रक्षालनम्। आभ्यन्तरं मैत्र्यादिभिश्चित्तमलानां प्रक्षालनम्। संतोषस्तुष्टिः। शेषाः प्रागेव कृतव्याख्यानाः। एते शौचादयो नियमशब्दवाच्याः ॥३२॥

कथमेषां योगाङ्गत्वमित्यत आह—

भो० वृ० पदार्थ

(शौचं द्विविधं) शौच दो प्रकार का है—(बाह्यमाभ्यन्तरं च) बाहर और आन्तरिक। (बाह्यं मृज्जलादिभीः कायादिप्रक्षालनम्) मट्टी जलादि से कायादि का धोना बाह्य शौच कहलाता है। (आभ्यन्तरं मैत्र्यादिभिश्चित्तमलानां प्रक्षालनम्) मैत्र्यादि के द्वारा चित्त मलों का धोना अन्दर का शौच कहलाता है। (संतोषस्तुष्टिः) तृप्ति को संतोष कहते हैं। (शेषाः प्रागेव कृतव्याख्यानाः) शेष तप, स्वाध्याय, ईश्वर-प्रणिधान इन तीनों का द्वितीयः पाद के प्रथम सूत्र में वर्णन कर आये हैं। (एते शौचादयो नियमशब्दवाच्याः) यह शौचादि पांचों नियम शब्द से कहने योग्य हैं ॥ ३२ ॥

(कथमेषां योगाङ्गत्वमित्यत आह) इन का योगाङ्गत्व किस प्रकार है, इस कारण आगे कहते हैं—

वितर्कबाधने प्रतिपक्षभावनम् ॥ ३३ ॥

सू०—वितर्कों द्वारा इन यम-नियमों का बाध होने पर प्रतिपक्ष का चिन्तन करे अर्थात् अपनी हानी का विचार करे कि यदि इन यम-निममों का पालन न करूंगा तो अमुक २ हानि होगी जैसा की आगे भाष्य में कहा जायगा ॥ ३२ ॥

व्या० भाष्यम्

यदाऽस्य ब्राह्मणस्य हिंसादयो वितर्का जायेरन्हनिष्याम्यहम-

पकारिणमनृतमपि वक्ष्यामि द्रव्यमप्यस्य स्वी करिष्यामि दारेषु चास्य व्यवायी भविष्यामि परिग्रहेषु चास्य स्वामी भविष्यामीति । एवमुन्मार्गप्रवणवितर्कज्वरेणातिदीप्तेन बाध्यमानस्तत्प्रतिपक्षान्भावयेत् । घोरेषु संसाराङ्गारेषु पच्यमानेन मया शरणमुपागतः सर्वभूताभयप्रदानेन योगधर्मः । स खल्वहं त्यक्त्वा वितर्कान्पुनस्तानाददानस्तुल्यः श्ववृत्तेनेति भावयेत् । यथा श्वा वान्तावलेही तथा त्यक्तस्य पुनराददान इति । एवमादि सूत्रान्तरेष्वपि योज्यम् ॥३३॥

व्या० भा० पदार्थ

(यदाऽस्य ब्राह्मणस्य हिंसादयो वितर्का जायेरन्) जब इस ब्राह्मण के चित्त में धर्म विरोधी तर्क उत्पन्न होवें कि (हनिष्याम्यहमपकारिणम्) इस अपकारी का मैं हनन करूँगा (अनृतमपि वक्ष्यामि) असत्य भी बोलूंगा (द्रव्यमप्यस्य स्वीकरिष्यामि) इस का धन भी हरन करूंगा (दारेषु चास्यव्यवायी भविष्यामि) पर स्त्री गामी भी होऊंगा (परिग्रहेषु चास्य स्वामी भविष्यामीति) दूसरे की वस्तुओं का स्वामी भी बनूंगा । (एवमुन्मार्गप्रवणवितर्कज्वरेणातिदीप्तेन बाध्यमानः) इस प्रकार दुर्मार्ग वाली अति बाधक वितर्क ज्वर से जलती हुई अग्नि के समान बाध होते हुए (तत्प्रतिपक्षान्भावयेत्) उस के विरुद्ध पक्षों का विचार करे कि (घोरेषु संसाराङ्गारेषु पच्यमानेन मया) इस महान् भयङ्कर संसार अग्नि में पकते हुए मैंने (शरणमुपागत: सर्वभूताभयप्रदानेन योगधर्मः) सर्व भूतों के अभय दान द्वारा योग धर्म की शरण को प्राप्त किया । (स खल्वहं त्यक्त्वा) निश्चय अब मैं उस को त्याग कर (वितर्कान्पुनस्तानाददानस्तुल्यः श्ववृत्तेनेति भावयेत्) फिर उनको वितर्कों द्वारा ग्रहण करना कुत्ते के व्यवहार समान है ऐसा विचार करे । (यथा श्वा वान्तावलेही तथा त्यक्तस्य पुनराददान इति) जैसे कुत्ता अपनी वमन को खाता वैसा ही

त्यागे हुए को फिर ग्रहण करना है। (एवमादि सूत्रान्तरेष्वपि योज्यम्) इस प्रकार प्रथम सूत्र यमादि और द्वितीय सूत्र नियमादि दोनों में लगाना चाहिये ॥ ३३ ॥

भो० वृत्ति

वितर्क्यन्त इति वितर्का योगपरिपन्थिनो हिंसादयस्तेषां प्रतिपक्षभावने सति यदा बाधा भवति तदा योगः सुकरो भवतीति भवत्येव यमनियमानां योगाङ्गत्वम् ॥ ३३ ॥

इदानीं वितर्काणां स्वरूपं भेदप्रकारं कारणं फलं च क्रमेणाऽऽह—

भो० वृ० पदार्थ

(वितर्क्यन्त इति वितर्का) विरुद्ध तर्क की जाती हैं जो उन को वितर्क कहते हैं (योगपरिपन्थिनो) वह योग के विरोधी (हिंसादयः) हिंसादि हैं (तेषां प्रतिपक्षभावने सति यदा बाधा भवति) उनका प्रतिपक्ष भावना करते हुए जब बाध होता है (तदा योगः सुकरो भवति) तब योग सुगम होता है (इति भवत्येव यमनियमानां योगाङ्गत्वम्) इस कारण यम नियमों का योगाङ्गत्व सिद्ध होता है ॥ ३३ ॥

(इदानीं वितर्काणां स्वरूपं भेदप्रकारं कारणं फलं च क्रमेणाऽऽह) अब वितर्कों का स्वरूप, भेद, प्रकार, कारण और फल क्रम से कहते हैं—

वितर्का हिंसादयः कृतकारितानुमोदिता लोभक्रोधमोहपूर्वका मृदुमध्याधिमात्रा दुःखाज्ञानानन्तफला इति प्रतिपक्षभावनम् ॥ ३४ ॥

सू०—हिंसादि वितर्क (कृत) स्वयं की हुई (कारिता) दूसरे से प्रेरणा करके कराई हुई (अनुमोदिताः) करने वाले की प्रसंशा की इन तीनों रूप से हिंसा होती है। (लोभक्रोधमोहपूर्वकाः) लोभ, क्रोध और मोह पूर्व में हैं जिनके अर्थात् इन

तीनों कारणों से हिंसादि होती हैं । (मृदुमध्याधिमात्राः) मन्द, मध्य और तीव्र तीन भेदो वाली हैं । (दुःखाज्ञानानन्तफलाः) अनन्त दुःख और अज्ञान फल वाली हैं । (इति प्रतिपक्षभावनम्) इस प्रकार प्रतिपक्ष का चिन्तन करे ॥ ३४ ॥

व्या० भाष्यम्

तत्र हिंसा तावत्—कृता कारिताऽनुमोदितेति त्रिधा । एकैका पुनस्त्रिधा लोभेन मांसचमार्थेन, क्रोधेनापकृतमनेनेति, मोहेन धर्मो मे भविष्यतीति । लोभक्रोधमोहाः पुनस्त्रिविधा मृदुमध्याधिमात्रा इति । एवं सप्तविंशतिर्भेदा भवन्ति हिंसायाः । मृदुमध्याधिमात्राः पुनस्त्रिविधाः—मृदुमृदुर्मध्यमृदुस्तीव्रमृदुरिति । तथा मृदुमध्यो मध्यमध्यस्तीव्रमध्य इति । तथा मृदुतीव्रो मध्यतीव्रोऽधिमात्रतीव्र इति । एवमेकाशीतिभेदा हिंसा भवति । सा पुनर्नियमविकल्पसमुच्चयभेदादसंख्येया, प्राणभृद्भेदस्यापरिसंख्येयत्वादिति । एवमनृतादिष्वपि योज्यम् ।

ते खल्वमी वितर्का दुःखाज्ञानानन्तफला इति प्रतिपक्षभावनम् । दुःखमज्ञानं चानन्तं फलं येषामिति प्रतिपक्षभावनम् । तथा च हिंसकस्तावत्प्रथमं वध्यस्य वीर्यमाक्षिपति । ततश्च शस्त्रादिनिपातेन दुःखयति । ततो जीवितादपि मोचयति । ततो वीर्याक्षेपदस्य चेतनाचेतनमुपकरणं क्षीणवीर्यं भवति । दुःखोत्पादान्नरकतिर्यक्मनुष्यादिषु दुःखमनुभवति । जीवितव्यपरोपणात्प्रतिक्षणं च जीवितात्यये वर्तमानो मरणमिच्छन्नपि दुःखविपाकस्य नियतविपाकवेदनीयत्वात्कथंचिदेवोच्छ्वसिति । यदि च कथंचित्पुण्यावापगता हिंसा भवेत्तत्र सुखप्राप्तौ भवेदल्पायुरिति । एवमनृतादिष्वपि योज्यं यथासंभवम् । एवं वितर्काणां चामुमेवानुगतं विपाकमनिष्टं भावयन्न वितर्केषु मनः प्रणिदधीत ॥ ३४ ॥

प्रतिपक्षभावनाहेतोर्हेया वितर्का यदास्य स्युरप्रसवधर्माणस्तदा तत्कृतमैश्वर्यं योगिनः सिद्धिसूचकं भवति । तद्यथा—

व्या० भा० पदार्थ

(तत्र हिंसा तावत्) हिंसा यहां तक है कि (कृता) स्वयं की हुई, (कारिता) दूसरे से प्रेरणा करके कराई हुई, (अनुमोदिता) अर्थात् करने वाले की प्रसंशा करना, (इति त्रिधा) इन तीन भेदो वाली हैं । (एकैका पुनस्त्रिधा) फिर एक २ के तीन २ प्रकार है (लोभेन मांसचर्मार्थेन) लोभ से की हुई मांस और चर्म के प्रयोजन से, (क्रोधेन) क्रोध से की हुई, (अपकृतमनेनेति) इसने मेरा अपकार किया है, मैं भी इसको मारूँगा, (मोहेन) मोह से की हुई, (धर्मो मे भविष्यतीति) इसको मारने से मेरा धर्म कर्म होगा क्योंकि यह पापी है इस प्रकार । (लोभक्रोधमोहाः पुनस्त्रिविधा) लोभ, क्रोध, मोह भी तीन प्रकार के हैं (मृदुमध्याधिमात्रा इति) मन्द, मध्य और तीव्र (एवं सप्तविंशतिर्भेदा भवन्ति) इस प्रकार २७ सत्ताइस भेद होते हैं (हिंसायाः मृदुमध्याधिमात्राः पुनस्त्रिविधाः) हिंसाओं के मन्द, मध्य, तीव्र फिर तीन भेद हैं—(मृदुमृदुर्मध्यमृदुस्तीव्रमृदुरिति) अल्पमन्द, मध्यमन्द और तीव्रमन्द । (तथा मृदुमध्य मध्यमध्यस्तीव्रमध्य इति) वैसे ही मन्दमध्य, मध्यमध्य और तीव्रमध्य । (तथा मृदुतीव्रो मध्यतीव्रोऽधिमात्रतीव्र इति) वैसे ही मन्दतीव्र, मध्यतीव्र और तीव्रतीव्र । (एवमेकाशीतिभेदा हिंसा भवति) इस प्रकार ८१ इक्यासी भेदों वाली हिंसा होती है । (सा पुनर्नियमविकल्पसमुच्चयभेदादसंख्येया) और वह फिर नियम, विकल्प और समुच्चय भेद से असंख्येय हैं । अर्थात् "नियम" कुछ काल तक स्थिर रहना "विकल्प" अर्थात् जैसे किसी काम में धर्म पहले करते हैं फिर अधर्म करना पड़ता है या पहले अधर्म करके पीछे धर्म करना

पड़ता है यह विकल्प का रूप है । "समुच्चय" का रूप यह है कि धर्माधर्म साथ २ मिले हुए जिस कर्म में होते हैं । (प्राणभृद्भेदस्यापरिसंख्येयत्वादिति) क्योंकि प्राणधारीयों के भेद असंख्यात हैं, इस कारण इसका अभिप्राय यह है कि प्रत्येक योनि की हिंसा समान नहीं होती उन में अधिक न्यूनता है इस प्रकार अनन्त भेद हो जाते हैं । जैसे ब्रह्म हत्या सब से अधिक होती है उससे न्यून क्षत्रिय, वैश्य की उस से न्यून शूद्र की पशु पक्षी आदि में भी इसी प्रकार जानो, देखो धर्मशास्त्र । (एवमनृतादिष्वपि योज्यम्) इस प्रकार असत्यभाषणादि में भी विचारना चाहिये ।

(ते खल्वमी वितर्का दुःखाज्ञानानन्तफला) निश्चय वह वितर्क अनन्तदुःख और अज्ञान फल वाली हैं (इति प्रतिपक्षभावनम्) इस प्रकार प्रतिपक्ष का विचार करना । (दुःखमज्ञानं चानन्तं फलं येषाम्) दुःख और अज्ञान अनन्त फल हैं जिनके (इति प्रतिपक्षभावनम्) यही प्रतिपक्ष का विचार है । (तथा च हिंसकस्तावत्प्रथमं वध्यस्य वीर्यमाक्षिपति) उसी प्रकार हिंसक प्रथम वध्य के बल को तोड़ता है । (ततश्च शस्त्रादिनिपातेन दुःखयति) फिर शस्त्रादि से मारकर दुःख देता है । (ततो जीवितादपि मोचयति) पश्चात् जीवन से भी छुड़ा देता है । (ततो वीर्याक्षेपादस्य चेतनाचेतनमुपकरणं क्षीणवीर्यं भवति) उससे वध्य के बल को नष्ट करने के कारण इस हत्यारे के चेतन अचेतन इन्द्रिय शरीरादि उपकरणों का भी बल नष्ट हो जाता है । (दुःखोत्पादात्) दुःख उत्पन्न करने से (नरकतिर्यक्मनुष्यादिषु दुःखमनुभवति) नर्क तिर्यक् मनुष्यादि योनियों में दुःख को भोगता है । (जीवितव्यपरोपणात्प्रतिक्षणं च जीवितात्यये वर्तमानः) वध्य के जीवित्व नष्ट करने से एक २ क्षण जीवता हुआ (मरणमिच्छन्नपि दुःखविपाकस्य नियतविपाकवेदनीयत्वात्) मृत्यु काल में मरने की

इच्छा करता हुआ भी दुःख फल अवश्य भोग्य होने से (कथंचिदेवोच्छ्वसिति) बड़े कष्ट से ऊँचे २ स्वांस लेकर जीता है। (यदि च कथंचित्पुण्यावापगता हिंसा भवेत्) यदि किसी कारण से पुण्य मिली हुई हिंसा होवे तो (तत्र सुखप्राप्तौ भवेदल्पायुरिति) उस जन्म में सुख प्राप्ति होवे परन्तु अल्पायु होवे। (एवमनृतादिष्वपि योज्यं यथासंभवम्) इसी प्रकार यथा संभव असत्यभाषणादि में भी जान लेना चाहिये। (एवं वितर्काणां चामुमेवानुगतं विपाकमनिष्टं भावयत्) इस प्रकार वितर्कों में कि अमुक फल उन में मिला हुआ है अनिष्ट का विचार करता हुआ (न वितर्केषु मनः प्रणिदधीत) वितर्कों में मन न लगावे ॥ ३४ ॥

(प्रतिपक्षभावनाहेतोर्हेया वितर्का) प्रतिपक्ष भावना के कारण त्यागने योग्य वितर्क (यदास्य स्युरप्रसवधर्माणः) जब इस योगी की पुनः अनुत्पत्ति धर्म वाली हो जावें (तदा तत्कृतमैश्वर्यं योगिनः सिद्धिसूचकं भवति) तब योगी को उससे उत्पन्न हुआ ऐश्वर्य सिद्धि का दाता होता है। (तद्यथा) उस विषय में जैसे—

भो० वृत्ति

एते पूर्वोक्ताः वितर्काः हिंसादयः प्रथमं त्रिधा भिद्यन्ते कृतकारितानुमोदिता भेदेन। तत्र स्वयं निष्पादिताः कृताः। कुरु कुर्विति प्रयोजकव्यापारेण समुत्पादिताः कारिताः। अन्येन क्रियमाणाः साध्वित्यङ्गीकृता अनुमोदिताः। एतच्च त्रैविध्यं परस्परव्यामोहनिवारणायोच्यते। अन्यथा मन्दमतिरेवं मन्येत न मया स्वयं हिंसा कृतेति नास्ति मे दोष इति। एतेषां कारणप्रतिपादनाय लोभक्रोधमोहपूर्वका इति। यद्यपि लोभक्रोधौ प्रथमं निर्दिष्टौ तथाऽपि सर्वक्लेशानां मोहस्यानात्मनि आत्माभिमानलक्षणस्य निदानत्वात्तस्मिन्सति स्वपरविभागपूर्वकत्वेन लोभक्रोधादीनामुद्भवान्मूलत्वमवसेयम्। मोहपूर्विका सर्वा दोषजातिरित्यर्थः। लोभस्तृष्णा। क्रोधः कृत्याकृत्यविवेकोन्मूलकः प्रज्वलनात्मकश्चित्तधर्मः। प्रत्येकं कृतादिभेदेन

त्रिप्रकारा अपि हिंसादयो मोहादिकारणत्वेन त्रिधा भिद्यन्ते । एषामेव पुनरवस्थाभेदेन त्रैविध्यमाह—मृदुमध्याधिमात्राः । मृदवो मन्दा न तीव्रा नापि मध्याः । मध्या नापि मन्दा नापि तीव्राः । अधिमात्रास्तीव्राः । पाश्चात्त्या नव भेदाः । इत्थं त्रैविध्ये सति सप्तविंशतिर्भवति । मृद्वादीनामपि प्रत्येकं मृदुमध्याधिमात्रभेदात्त्रैविध्यं संभवति । तद्यथायोगं योज्यम् । तद्यथा—मृदुमृदुर्मृदुमध्यो मृदुतीव्र इति । एषां फलमाह—दुःखाज्ञानानन्तफलाः । दुःखं प्रतिकूलतयाऽवभासमानो राजसश्चित्तधर्मः । अज्ञानं मिथ्याज्ञानं संशयविपर्ययरूपं, ते दुःखज्ञाने अनन्तमपरिच्छिन्नं फलं येषां ते तथोक्ताः । इत्थं तेषां स्वरूपकारणादिभेदेन ज्ञातानां प्रतिपक्षभावनया योगिना परिहारः कर्तव्य इत्युपदिष्टं भवति ॥ ३४ ॥

एषामभ्यासवशात्प्रकर्षमागच्छतामनुनिष्पादिन्यः सिद्धयो यथा भवन्ति तथा क्रमेण प्रतिपादयितुमाह—

भो० वृ० पदार्थ

(एते पूर्वोक्ताः वितर्काः हिंसादयः) यह पूर्व कही हुई हिंसादि वितर्क (प्रथमं त्रिधा भिद्यन्ते) प्रथम तीन प्रकार से भेद की जाती हैं (कृतकारितानुमोदिता भेदेन) स्वयं की हुई—कराई हुई—अनुमोदित भेद से । (तत्र स्वयं निष्पादिताः कृताः) उन में अपने आप की हुई "कृताः" कहलाती है । (कुरु कुर्विति प्रयोजकव्यापारेण समुत्पादिताः कारिताः) करने वाले को तूँ कर, इस प्रेरक व्यापार द्वारा सम्पादन की हुई "कारिताः" कहलाती है । (अन्येन क्रियमाणाः साध्वित्यङ्गीकृता अनुमोदिताः) दूसरे से की हुई बहुत अच्छा किया इस प्रकार प्रकट करके हिंसक का उत्साह बढ़ाना "अनुमोदिताः" कहलाती है । (एतच्च त्रैविध्यं परस्परव्यामोहनिवारणायोच्यते) इन तीन प्रकार वालियों में परस्पर जो भ्रम उसके निवार्णार्थ कहा जाता है । (अन्यथा मन्दमतिरेवं मन्येत) कोई मन्दमति ऐसा माने कि (न मया स्वयं हिंसा कृतेति) मैंने स्वयं तो हिंसा नहीं करी (नास्ति मे दोष इति) इस कारण मुझे

दोष नहीं लगेगा। (एतेषां कारणप्रतिपादनाय) इन का कारण दिखलाने के लिये (लोभक्रोधमोहपूर्वका इति) लोभ, क्रोध, मोह, का कथन किया गया। (यद्यपि लोभक्रोधौ प्रथमं निर्दिष्टौ) यद्यपि लोभ, क्रोध दोनों का प्रथम निर्देश किया है (तथाऽपि सर्वक्लेशानां मोहस्यानात्मनि आत्माभिमानलक्षणस्य निदानत्वात्) तो भी सर्व क्लेशों का जो कि अनात्म में आत्म अभिमान रूप मोह हैं वह कारण होने से (तस्मिन्सति स्वपरविभागपूर्वकत्वेन) उन में कारण रूप से रहते हुए अपने और दूसरों के विभाग पूर्वक (लोभक्रोधादीनामुद्भवान्मूलत्वमवसेयम्) लोभ, क्रोध की उत्पत्ति होने से कारणता निश्चय करने योग्य है। (मोहपूर्विका सर्वा दोषजातिरित्यर्थः) मोह के पूर्व होने पर सर्व दोषों की जाति होती है यह अर्थ है। (लोभस्तृष्णा) लोभ तृष्णा को कहते हैं। (क्रोधः कृत्याकृत्यविवेकोन्मूलकः) क्रोध कर्तव्य अकर्तव्य के विचार का नाशक है (प्रज्वलनात्मकश्चित्तधर्मः) चित्त का दाह रूप धर्म है। (प्रत्येकं कृतादिभेदेन त्रिप्रकारा अपि हिंसादयः) इन में से प्रत्येक कृतादि भेद से तीन प्रकार वाली भी हिंसादि (मोहादिकारणत्वेन) मोहादि कारण से (त्रिधा भिद्यन्ते) तीन प्रकार के भेदों वाली होती हैं। (एषामेव पुनरवस्थाभेदेन त्रैविध्यमाह) इन की ही फिर अवस्था भेद से तीन २ प्रकारता कही जाती हैं—(मृदुमध्याधिमात्राः) मन्द, मध्य और तीव्र। (मृदवो मन्दा न तीव्रा नापि मध्याः) मृदु = मन्द वह हैं जो न तीव्र हैं न मध्य हैं। (मध्या नापि मन्दा नापि तीव्राः) मध्य वह हैं जो न मन्द हैं न तीव्र हैं। (अधिमात्रास्तीव्राः) अधिमात्र = तीव्र हैं। (पाश्चात्या नव भेदाः) पिछलियों के ९ नव भेद हैं। (इत्थं त्रैविध्ये सति) ऐसी ही तीन प्रकार की होते हुये (सप्तविंशतिर्भवति) २७ सत्ताईस प्रकार की होती हैं। (मृद्वादिनामपि प्रत्येकं) मृदु आदि का भी प्रत्येक का (मृदुमध्याधिमात्रभेदात्त्रैविध्यं संभवति) मृदु, मध्य, अधिमात्र भेद होने से तीन २ भेद होते हैं। (तद्यथायोगं योज्यम्) वह यथायोग युक्त करनी चाहियें। (तद्यथा—मृदुमृदुर्मृदुमध्यो मृदुतीव्र इति) जैसे—

मृदुमन्द, मृदुमध्य और मृदुतीव्र । (एषां फलमाह) इन का फल कहते हैं—(दुःखज्ञानानन्तफलाः) अनन्तदुःख और अज्ञान फलवाली हैं । (दुःखं प्रतिकूलतयाऽवभासमानो राजसश्चित्तधर्मः) दुःख प्रतिकूलता से भासित होने वाला चित्त का राजस धर्म है, (अज्ञानं मिथ्याज्ञानं संशय-विपर्ययरूपं) अज्ञान मिथ्याज्ञान संशय विपर्य्य रूप है, (ते दुःखाज्ञाने अनन्तमपरिच्छिन्नं फलं येषां ते तथोक्ताः) वह दुःख और अज्ञान दोनों अनन्त अर्थात् असीम फल है जिनका वह ऊपर कहे गये । (इत्थं तेषां स्वरूपकारणादिभेदेन ज्ञातानां) इस प्रकार उन का स्वरूप कारणादि भेद से जानने वाले (प्रतिपक्षभावनया योगिना परिहारः कर्तव्यः) योगी को प्रतिपक्ष भावना द्वारा उन का त्याग करना योग्य है (इत्युपदिष्टं भवति) यह कहा गया है ॥ ३४ ॥

(एषामभ्यासवशात्प्रकर्षमागच्छतामनुनिष्पादिन्यः सिद्धयो यथा भवन्ति) वृद्धि को प्राप्त होती हुई यह वितर्क अभ्यास वश से निवर्त करने के पश्चात् जिस प्रकार सिद्धि होती हैं (तथा क्रमेण प्रतिपादयि-तुमाह) वैसा ही क्रम से प्रतिपादन करने को आगे कहते हैं—

अहिंसाप्रतिष्ठायां तत्सन्निधौ वैरत्यागः ॥ ३५ ॥

सू०—अहिंसा की पूर्ण स्थिति होने पर उसके समीपवर्ती प्राणियों में भी वैर का त्याग हो जाता है ॥ ३५ ॥

व्या० भाष्यम्

सर्वप्राणिनां भवति ॥ ३५ ॥

व्या० भा० पदार्थ

(सर्वप्राणिनां भवति) समीपस्थ सर्व प्राणियों का वैर त्याग हो जाता है ॥ ३५ ॥

भावार्थ

जब योगी महाव्रतरूप अहिंसा धर्म को धारण करता है और उसकी पूर्ण दृढ़ता हो जाती है तब उसके समीपवर्ती प्राणियों का भी वैर उसके प्रभाव से निवृत हो जाता है। जैसा की नकुल और सर्प में स्वाभाविक वैर है वह भी उसके प्रभाव से निवृत्त हो जाता है ॥ ३५ ॥

भो० वृत्ति

तस्याहिंसां भावयतः संनिधौ सहज विरोधिनामप्यहिनकुलादीनां वैरत्यागो निर्मत्सरतयाऽवस्थानं भवति। हिंस्रा अपि हिंस्रत्वं परित्यजन्तीत्यर्थः ॥ ३५ ॥

सत्याभ्यासवतः किं भवतीत्याह—

भो० वृ० पदार्थ

(तस्याहिंसां भावयतः संनिधौ सहजविरोधिनामप्यहिनकुलादीनां वैरत्यागः) उस अहिंसा को पालन करते हुए समीपवर्ती सर्प और नकुलादि का भी जिन में स्वभाव से ही विरोध है वैर त्याग हो जाता है (निर्मत्सरतयाऽवस्थानं भवति) ईर्ष्या रहित रहते हैं। (हिंस्रा अपि हिंस्रत्वं परित्यजन्तीत्यर्थः) हिंसक स्वभाव वाले भी हिंसत्व भाव को त्याग देते हैं यह अर्थ है ॥ ३५ ॥

(सत्याभ्यासवतः किं भवतीत्याह) सत्य का अभ्यास करने वाले को क्या फल होता है यह आगे कहते हैं—

सत्यप्रतिष्ठायां क्रियाफलाश्रयत्वम् ॥ ३६ ॥

सू०—सत्य की दृढ़ स्थिति होने पर योगी की वाणीद्वारा जो क्रिया होती है उस में फल का आश्रयत्व होता है अर्थात् उस की वाणी अमोघ होती है भाव इसका यह जानना चाहिये कि अनधिकारी पुरुष को योगी आशीर्वाद नहीं देता ॥ ३६ ॥

व्या० भाष्यम्

धार्मिको भूया इति भवति धार्मिकः । स्वर्गंप्राप्नुहीति स्वर्गं प्राप्नोति । अमोघाऽस्य वाग्भवति ॥ ३६ ॥

व्या० भा० पदार्थ

(धार्मिको भूया इति भवति धार्मिकः) तूँ धार्मिक होजा योगी के इस वचन से धार्मिक हो जाता है । (स्वर्गंप्राप्नुहीति स्वर्ग प्राप्नोति) स्वर्ग को प्राप्त हो इसके वचन से स्वर्ग को प्राप्त हो जाता है । (अमोघाऽस्य वाग्भवति) इस की वाणी व्यर्थ नहीं होती ॥ ३६ ॥

भो० वृत्ति

क्रियमाणा हि क्रिया यागादिकाः फलं स्वर्गादिकं प्रयच्छन्ति तस्य तु सत्याभ्यासवतो योगिनस्तथा सत्यं प्रकृष्यते यथा क्रियायामकृतायामपि योगी फलमाप्नोति । तद्वचनाद्यस्य कस्यचित्क्रियामकुर्वतोऽपि क्रियाफलं भवतीत्यर्थः ॥ ३६ ॥

अस्तेयाभ्यासवतः फलमाह—

भो० वृ० पदार्थ

(क्रियमाणा हि क्रिया यागादिकाः) यज्ञादि क्रिया की हुई (फलं स्वर्गादिकं प्रयच्छन्ति) स्वर्गादि फल को देती हैं (तस्य तु सत्यांभ्यासवतः योगिनः) उस सत्य के अभ्यास करने वाले योगी को तो (तथा सत्यं प्रकृष्यते) ऐसा सत्य बढ़ जाता है (यथा क्रियायामकृतायामपि योगी फलमाप्नोति) जैसे कोई यज्ञादि कर्म करके फल को प्राप्त होता है योगी सत्य की प्रबलता से उस फलको प्राप्त हो जाता है । (तद्वचनाद्यस्य कस्यचित्क्रियामकुर्वतोऽपि क्रियाफलं भवतीत्यर्थः) जैसे किसी को क्रिया करते

हुए क्रिया का फल होता है इस योगी के वचन से ही वह फल हो जाता है यह अर्थ है ॥ ३६ ॥

(अस्तेयाभ्यासवतः फलमाह) चोरी के त्याग का अभ्यास करने वाले को फल आगे कहते हैं—

अस्तेयप्रतिष्ठायां सर्वरत्नोपस्थानम् ॥ ३७ ॥

सू०—चोरी के त्याग में स्थिर हुए योगी को सर्व रत्नो की प्राप्ति होती है ॥ ३७ ॥

व्या० भाष्यम्

सर्वदिक्स्थान्यस्योपतिष्ठन्ते रत्नानि ॥ ३७ ॥

व्या० भा० पदार्थ

(सर्वदिक्स्थान्यस्योपतिष्ठन्ते रत्नानि) सब दिशाओं में होने वाले रत्न समीपस्थ प्राप्त होते हैं ॥ ३७ ॥

भावार्थ

इस से यह न समझना चाहिये कि सर्व दिशाओं के रत्न योगी के पास इकट्ठे हो जाते हैं। किन्तु यह जानना चाहिये योगी को आवश्यक्तानुसार ईश्वर कृपा से सर्व वस्तु प्राप्त हो जाती हैं। अर्थात् उसकी जरूरत नहीं रुकती ॥ ३७ ॥

भो० वृत्ति

अस्तेयं यदाऽभ्यस्यति तदाऽस्य तत्प्रकर्षान्निरभिलाषस्यापि सर्वतो दिव्यानि रत्नानि उपतिष्ठन्ते ॥ ३७ ॥

ब्रह्मचर्याभ्यासस्य फलमाह—

भो० वृ० पदार्थ

(अस्तेयं यदाऽभ्यस्यति तदाऽस्य तत्प्रकर्षान्निरभिलाषस्यापि सर्वतः

दिव्यानि रत्नानि उपतिष्ठन्ते) चोरी त्याग का जब योगी अभ्यास करता है तब इस के अभ्यास बढ़ने से वासना रहित हुए को सर्वत्र दिव्य रत्न प्राप्त हो जाते हैं । अर्थात् सर्व वस्तु इस को प्राप्त हो जाती हैं ॥ ३७ ॥

(ब्रह्मचर्याभ्यासस्य फलमाह) ब्रह्मचर्य अभ्यास का फल आगे कहते हैं—

ब्रह्मचर्यप्रतिष्ठायां वीर्यलाभः ॥ ३८ ॥

सू०----ब्रह्मचर्य की सिद्धि होने पर बल का लाभ होता है ॥३८॥

व्या० भाष्यम्

यस्य लाभादप्रतिघान्गुणानुत्कर्षयति । सिद्धश्च विनेयेषु ज्ञानमाधातुं समर्थो भवतीति ॥ ३८ ॥

व्या० भा० पदार्थ

(यस्य लाभादप्रतिघान्गुणानुत्कर्षयति) जिस के लाभ से गुणों से अप्रतिघात होना रूप शक्ति बढ़ती है अर्थात् तीन गुण योगी को बाधा न कर सके ऐसी शक्ति बढ़ती है । (सिद्धश्च विनेयेषु ज्ञानमाधातुं समर्थो भवतीति) विनय करने वाले जिज्ञासुओं में ज्ञान प्रदान करने को समर्थ होता है यह सिद्धि होती है ॥३८॥

भो० वृत्ति

यः किल ब्रह्मचर्यमभ्यस्यति तस्य तत्प्रकर्षान्निरतिशयं वीर्यं सामर्थ्यमाविर्भवति । वीर्यनिरोधो हि ब्रह्मचर्यं तस्य प्रकर्षाच्छरीरेन्द्रियमनः सु वीर्यं प्रकर्षमागच्छति ॥ ३८ ॥

अपरिग्रहाभ्यासस्य फलमाह—

भो० वृ० पदार्थ

(यः किल ब्रह्मचर्यमभ्यस्यति) निश्चय जो योगी ब्रह्मचर्य का अभ्यास

करता है (तस्य तत्प्रकर्षान्निरतिशयं वीर्यं सामर्थ्यमाविर्भवति) उस को उस अभ्यास के बढ़ने से निरतिशय बल अर्थात् सामर्थ्य का आविर्भाव होता है। (वीर्यनिरोधो हि ब्रह्मचर्यं) वीर्य का रोकना ही ब्रह्मचर्य है (तस्य प्रकर्षाच्छरीरेन्द्रियमनः सु वीर्यं प्रकर्षमागच्छति) उस योगी के वीर्य बढ़ने से शरीर इन्द्रिय और मन अधिक बल को प्राप्त हो जाते हैं। अर्थात् उस का शारीरिकबल और इन्द्रियबल तो बढ़ता ही है, परन्तु उस की विचार शक्ति भी जिस के विना योगी का किञ्चित् भी कार्य सिद्ध नहीं हो सक्ता अर्थात् योगमार्ग में कुछ भी नहीं करसक्ता, वह भी शक्ति बढ़जाती है, इसलिये योगी को अपनी सफलता के लिये इस की अति रक्षा करनी चाहिये ॥ ३८ ॥

(अपरिग्रहाभ्यासस्य फलमाह) अपरिग्रह के अभ्यास का फल आगे कहते हैं—

अपरिग्रहस्थैर्ये जन्मकथंतासंबोधः ॥ ३९ ॥

सू०—अपरिग्रह की दृढ़ स्थिति होने पर जन्म किस प्रकार का है यह बोध हो जाता है ॥ ३९ ॥

व्या० भाष्यम्

अस्य भवति। कोहमासं कथमहमासं किंस्विदिदं कथं स्विदिदं के वा भविष्यामः कथं वा भविष्याम इत्येवमस्य पूर्वान्तपरान्तमध्ये-ष्वात्मभावजिज्ञासा स्वरूपेणोपावर्तते। एता यमस्थैर्ये सिद्धयः ॥३९॥

नियमेषु वक्ष्यामः—

व्या० भा० पदार्थ

(अस्य भवति) यह इस योगी को बोध होता है। (कोऽ-हमासं) मैं कौन हूँ, ?, (कथमहमासं) किस प्रकार मैं हूँ, ? (किंस्विदिदं) यह जन्म क्या है, ? (कथं स्विदिदं) किस प्रकार

यह हुआ है, ? (के वा भविष्यामः) क्या आगे होंगे, ? (कथं वा भविष्यामः) अथवा किस प्रकार के होंगे, ? (इत्येवमस्य पूर्वान्तपरान्तमध्येष्वात्मभावजिज्ञासा स्वरूपेणोपावर्तते) इस प्रकार इसके चित्त में भूत, भविष्यत्, वर्तमान तीनों काल सम्बन्धी आत्म स्वरूप की जिज्ञासा स्वभाव से ही वर्तती है सो निवर्त हो जाती है (एता यमस्थैर्ये सिद्धयः) यह यमों के दृढ़ होने पर सिद्धियें होती हैं ॥ ३९ ॥

(नियमेषु वक्ष्यामः) नियमों में आगे कहते हैं—

भो० वृत्ति

कथमित्यस्यभावः कथंता जन्मनः कथंता जन्मकथंता तस्याः संबोधः सम्यग्ज्ञानं जन्मान्तरे कोऽहमासं कीदृशः किंकार्यकारीति जिज्ञासायां सर्वमेव सम्यग्जानातीत्यर्थः । न केवलं भोगसाधनपरिग्रह एव परिग्रहो यावदात्मनः शरीरपरिग्रहोऽपि परिग्रहः, भोगसाधनत्वाच्छरीरस्य । तस्मिन्सति रागानुबन्धाद्बहिर्मुखायामेव प्रवृत्तौ न तात्त्विकज्ञानप्रादुर्भावः । यदा पुनः शरीरादिपरिग्रहनैरपेक्ष्येण माध्यस्थ्यमवलम्बते तदा मध्यस्थस्य रागादित्यागात्सम्यग्ज्ञानहेतुर्भवत्येव पूर्वापरजन्मसंबोधः ॥ ३९ ॥

उक्ता यमानां सिद्धयः । अथ नियमानामाह—

भो० वृ० पदार्थ

(कथमित्यस्य भावः) कथम् इस शब्द का यह अर्थ है (कथंता जन्मनः कथन्ता जन्म) प्रकरता जन्म की कथंता जन्म का अर्थ है (कथन्ता तस्याः सम्बोधः) किस प्रकार उस का ज्ञान हो (सम्यग्ज्ञानं जन्मान्तरे) जन्मान्तरों में यथार्थ ज्ञान (कोऽहमासं) मैं कौन हूँ ? (कीदृशः) किस समान, ? (किं कार्यकारि) क्या कार्य करने वाला (इति जिज्ञासायां) इस जिज्ञासा में (सर्वमेव सम्यग्जानातीत्यर्थः) सब को यथार्थ जानता है यह अर्थ है । (न केवलं भोगसाधनपरिग्रहः

एव परिग्रहः) केवल भोग साधन रूप लोभ ही लोभ नहीं है (यावदात्मनः शरीरपरिग्रहोऽपि परिग्रहः) जब तक अपने शरीर का लोभ है वह भी लोभ ही है, (भोगसाधनत्वाच्छरीरस्य । तस्मिन्सति) शरीर भोग साधन होने से उस में रहते हुए (रागानुबन्धाद्बहिर्मुखायामेव प्रवृत्तौ) राग में बंधा हुआ होने से बहिर्मुखरूपता से प्रवृत्त हुए में (न तात्त्विकज्ञानप्रादुर्भावः) यथार्थ ज्ञान की उत्पत्ति नहीं होती । (यदा पुनः शरीरादिपरिग्रहनैरपेक्ष्येण माध्यस्थ्यमवलम्बते) जब फिर शरीरादि लोभ की अपेक्षा रहितता से अधर लटकी हुई वस्तु के समान मध्य में लटकता है अर्थात् शरीर की किञ्चित् भी परवाह न रखता हुआ ईश्वराश्रयपर इस के पालन की चिन्ता छोड़ देता है, इस समान कि चाहे अभी नष्ट हो जावे या युगन्तरों विद्यमान रहे वा कितने ही दुःखों का सामना हो वा सर्व सुख हो यह सर्वभाव जब छोड़ देता है, (तदा मध्यस्थस्य रागादित्यागात्) तब ऐसे मध्यस्थ पुरुष को रागादि के त्याग से (सम्यग्ज्ञानहेतुर्भवत्येव पूर्वापरजन्मसंबोधः) यथार्थज्ञान का कारण, पूर्वापर जन्मों का ज्ञान होता है ॥ ३९ ॥

(उक्ता यमानां सिद्धयः) यमों की सिद्धि कही गई। (अथ नियमानामाह) अब नियमों को कहते हैं—

शौचात्स्वाङ्गजुगुप्सा परैरसंसर्गः ॥ ४० ॥

सू०—शौच के सिद्ध होने से अपने अङ्गों की निन्दा और दूसरों से असंसर्ग होता है ॥ ४० ॥

व्या० भाष्यम्

स्वाङ्गे जुगुप्सायां शौचमारभमाणः कायावद्यदर्शी कायानभिष्वङ्गी यतिर्भवति । किं च परैरसंसर्गः कायस्वभावावलोकी स्वमपि कायं जिहासुर्मृज्जलादिभिराक्षालयन्नपि कायशुद्धिमपश्यन्कथं परकायैरत्यन्तमेवाप्रयतैः संसृज्येत ॥ ४० ॥

किं च—

व्या० भा० पदार्थ

(स्वाङ्गे जुगुप्सायां) अपने अङ्गो में घृणा होने पर (शौच-मारभमाणः) शौच को आरम्भ करता हुआ (कायावद्यदर्शी) शरीर को त्याज्य देखने वाला (कायानभिष्वङ्गी यतिर्भवति) शरीर में ममता न रखने वाला योगी होता है । (किं च परैर-संसर्गः) और यह भी कि दूसरों से संसर्ग नहीं करता (काय-स्वभावावलोकी) काया के स्वभाव को जानने वाला (स्वमपि कायं जिहासुः) अपनी काया के त्याग की भी इच्छा करने वाला (मृज्जलादिभिराक्षालयन्नपि) मिट्टि जलादि से धोता हुआ भी (कायशुद्धिमपश्यन्) शरीर की शुद्धि को न देखता हुआ (कथं परकायैरत्यन्तमेवाप्रयतैः संसृज्येत) शुद्धि के लिये जो यत्न न करते हों, ऐसे दूसरों के शरीरों से किस प्रकार संसर्ग करे ॥४०॥

(किं च) और क्या—

भो० वृत्ति

यः शौचं भावयति तस्य स्वाङ्गेष्वपि कारणस्वरूपपर्यालोचनद्वारेण जुगुप्सा घृणा समुपजायतेऽशुचिरयं कायो नात्राऽऽग्रहः कार्य इति अमुनैव हेतुना परैरन्यैश्च कायवद्भिरसंसर्गः संसर्गाभावः संसर्गपरिवर्जनमित्यर्थः । यः किल स्वमेव कायं जुगुप्सते तत्तदवद्यदर्शनात्स कथं परकीयैस्तथाभूतैः कायैः संसर्गमनुभवति ॥ ४० ॥

शौचस्यैव फलान्तरमाह—

भो० वृ० पदार्थ

(यः शौचं भावयति) जो पुरुष शौच को पालन करता है (तस्य स्वाङ्गेष्वपि) उसका अपने अङ्गों में भी (कारणस्वरूपपर्यालोचनद्वारेण) कारण स्वरूप में दृष्टी करने से (जुगुप्सा घृणा समुपजायते) निन्दा अर्थात् घृणा उत्पन्न होती है (अशुचिरयं कायो नात्राऽऽग्रहः कार्य इति)

यह शरीर अपवित्र है इस में आग्रह नहीं करना चाहिये । (अमुनैव हेतुना परैरन्यैश्च कायवद्भिरसंसर्गः) इस कारण से दूसरों के साथ अपने शरीर के समान असंसर्ग करता है (संसर्गाभावः संसर्गपरिवर्जनमित्यर्थः) संसर्ग का अभाव संसर्ग का त्याग करना यह अर्थ है । (यः किल स्वमेव कायं जुगुप्सते) निश्चय जो अपने ही शरीर की निन्दा करता है (तत्तदवद्यदर्शनात्स कथं परकीयैस्तथाभूतैः कायैः संसर्गमनुभवति) वह उस के त्याज्य देखने से किस प्रकार दूसरों के वैसे ही शरीरों से संसर्ग करता है, अर्थात् नहीं करता है ॥ ४० ॥

(शौचस्यैव फलान्तरमाह) शौच का ही दूसरा फल कहते हैं—

सत्त्वशुद्धिसौमनस्यैकाग्र्येन्द्रियजयात्म-दर्शनयोग्यत्वानि च ॥ ४१ ॥

सू०—और बुद्धि की शुद्धि, मन की प्रसन्नता, एकाग्रता, इन्द्रियों का जय और आत्मदर्शन की योग्यता होती है ॥ ४१ ॥

व्या० भाष्यम्

भवन्तीति वाक्यशेषः । शुचेः सत्त्वशुद्धिस्ततः सौमनस्यं तत ऐकाग्र्यं तत इन्द्रियजयस्ततश्चाऽऽत्मदर्शनयोग्यत्वं बुद्धिसत्त्वस्य भवतीत्येतच्छौचस्थैर्यादधिगम्यत इति ॥ ४१ ॥

व्या० भा० पदार्थ

(भवन्तीति वाक्यशेषः) होती हैं यह वाक्य शेष है । (शुचेः सत्त्वशुद्धिः) शौच के होने पर बुद्धि की शुद्धि होती है (ततः सौमनस्यं) उससे मनकी प्रसन्नता (तत ऐकाग्र्यं) उससे एकाग्रता (तत इन्द्रियजयः) उससे इन्द्रियों का जय होना (ततश्चात्मदर्शनयोग्यत्वं) उससे आत्मदर्शन की योग्यता (बुद्धिसत्त्वस्य भवतीति) बुद्धि में होती है (एतत् शौचस्थैर्यादधिगम्यत इति) यह सब फल इस शौच की स्थिरता से प्राप्त होता है ॥ ४१ ॥

भो० वृत्ति

भवन्तीति वाक्यशेषः । सत्त्वं प्रकाशसुखाद्यात्मकं तस्य शुद्धी रजस्तमोभ्यामनभिभवः । सौमनस्यं खेदाननुभवेन मानसी प्रीतिः । एकाग्रता नियतेन्द्रियविषये चेतसः स्थैर्यम् । इन्द्रियजयो विषयपराङ्मुखाणामिन्द्रियाणामात्मनि अवस्थानम् । आत्मदर्शने विकेकख्यातिरूपे चित्तस्य योग्यत्वं-समर्थत्वम् । शौचाभ्यासवत एते सत्त्वशुद्ध्यादयः क्रमेण प्रादुर्भवन्ति । तथा हि—सत्त्वशुद्धेः सौमनस्यं सौमनस्यादैकाग्र्यमैकाग्र्यादिन्द्रियजय इन्द्रियजयादात्मदर्शनयोग्यतेति ॥ ४१ ॥

संतोषाभ्यासवतः फलमाह—

भो० वृ० पदार्थ

(भवन्तीति वाक्यशेषः) होती हैं यह वाक्य शेष है । (सत्त्वं प्रकाशसुखाद्यात्मकं) बुद्धि प्रकाश सुखादि रूप (तस्य शुद्धि रजस्तमोभ्यामनभिभवः) रजोगुण और तमोगुण से उस का तिरस्कृत न होना उस की शुद्धि है । (सौमनस्यं खेदाननुभवेन मानसी प्रीतिः) खेद रहित मन की प्रीति सौमनस्य कहलाती है । (एकाग्रता नियतेन्द्रियविषये चेतसः स्थैर्यम्) एक इन्द्रिय के विषय में चित्त का ठहराव एकाग्रता है । (इन्द्रियजयो विषयपराङ्मुखाणामिन्द्रियणामात्मनि अवस्थानम्) विषयों के सन्मुख हुई इन्द्रियों को आत्मा में ठहराना इन्द्रियजय कहलाता है । (आत्मदर्शने विवेकख्यातिरूपे चित्तस्य योग्यत्वं समर्थत्वम्) विवेकख्याति रूप आत्मदर्शन में चित्त की योग्यता समर्थता । (शौचाभ्यासवत एते सत्त्वशुद्ध्यादयः क्रमेण प्रादुर्भवन्ति) शौच का अभ्यास करने वाले को यह बुद्धि की शुद्धि आदि क्रम से उत्पन्न होती हैं । (तथा हि सत्त्वशुद्धेः सौमनस्यां) इस प्रकार कि बुद्धि को शुद्धि होने पर मन की प्रसन्नता (सौमनस्यादैकाग्र्यम्) मन की प्रसन्नता से एकाग्रता (ऐकाग्र्यादिन्द्रियजयः) एकाग्रता से इन्द्रियों का जय होना

(इन्द्रिजयादात्मदर्शनयोग्यतेति) इन्द्रियजय से आत्मदर्शन की योग्यता होती है ॥ ४१ ॥

(संतोषाभ्यासवतः फलमाह) संतोष के अभ्यास करने वाले का फल आगे कहते हैं—

संतोषादनुत्तमः सुखलाभः ॥ ४२ ॥

सू०—संतोष से अनुत्तम सुख का लाभ होता है ॥ ४२ ॥

व्या० भाष्यम्

तथा चोक्तम्—

यच्च कामसुखं लोके यच्च दिव्यं महत्सुखम् ।
तृष्णाक्षयसुखस्यैते नार्हत षोड़शीं कलाम् ॥ इति ॥४२॥

व्या० भा० पदार्थ

(तथा चोक्तम्) ऐसा ही कहा है—

(यच्च कामसुखं लोके यच्च दिव्यं महत्सुखं
तृष्णाक्षयसुखस्यैते नार्हतः षोड़शीं कलाम् । इति)

जो संसार में भोगों का सुख है और जो दिव्य महान् सुख है । तृष्णाओं के नाश होने पर जो सुख होता है उस के १६ सोलवें हिस्से के भी बराबर वह दोनों नहीं हैं ॥ ४२ ॥

भो० वृत्ति

संतोषप्रकर्षेण योगिनस्तथाविधमान्तरं सुखमाविर्भवति । यस्य बाह्यं सुखं लेशेनापि न समम् ॥ ४२ ॥

तपसः फलमाह—

भो० वृ० पदार्थ

(संतोषप्रकर्षेण योगिनस्तथाविधमान्तरं सुखमाविर्भवति) संतोष

के बढ़ने से योगी को ऐसा आन्तरीक सुख प्राप्त होता है। (यस्य बाह्यं सुखं कोशोनापि न समम्) बाह्य सुख जिस के एक अंश समान भी नहीं है ॥४२॥

(तपसः फलमाह) तप का फल कहते हैं—

कायेन्द्रियसिद्धिरशुद्धिक्षयात्तपसः ॥ ४३ ॥

सू०—तप के पूर्ण होने पर अशुद्धि के नाश होने से शरीर इन्द्रियों की सिद्धि होती है ॥ ४३ ॥

व्या० भाष्यम्

निर्वर्त्यमानमेव तपो हिनस्त्यशुद्ध्यावरणमलं तदावरणमलापगमात्कायसिद्धिरणिमाद्या । तथेन्द्रियसिद्धिर्दूराच्छ्रवणदर्शनाद्येति॥४३॥

व्या० भा० पदार्थ

(निर्वर्त्यमानमेव तपः) तप को पालन करते हुए (हिनस्त्यशुद्ध्यावरणमलं) अशुद्धि जो आवरणमल रूप है इस को नाश करता है (तदावरणमलापगमात्कायसिद्धिरणिमाद्या) उस आवरणमल के नष्ट होने से शरीर की सिद्धि = अणिमादि की प्राप्ति होती है। (तथेन्द्रियसिद्धिर्दूराच्छ्रवणदर्शनाद्येति) उसी प्रकार इन्द्रियों की सिद्धि दूर से सुनना और देखनादि होती हैं ॥ ४३ ॥

भो० वृत्ति

तपः समभ्यस्यमानं चेतसः क्लेशादिलक्षणाशुद्धिक्षयद्वारेण कायेन्द्रियाणां सिद्धिमुत्कर्षमादधाति । अयमर्थः—चान्द्रायणादिना चित्तक्लेशक्षयस्तत्क्षयादिन्द्रियाणां सूक्ष्मव्यवहितविप्रकृष्टदर्शनादिसामर्थ्यमाविर्भवति । कायस्य यथेच्छमणुत्वमहत्त्वादीनि ॥ ४३ ॥

स्वाध्यायस्य फलमाह—

भो० वृ० पदार्थ

(तपः समभ्यस्यमानं) तप के अभ्यास करते हुए (चेतसः क्लेशादि-लक्षणाशुद्धिक्षयद्वारेण) चित्त की क्लेशरूपी अशुद्धि के नाश द्वारा (कायेन्द्रियाणां सिद्धिमुत्कर्षमादधाति) शरीर और इन्द्रियें बड़ी सिद्धि को धारण करते हैं। (अयमर्थः) यह अर्थ है—(चान्द्रायणादिना चित्तक्लेशक्षयस्तत्क्षयादिन्द्रियाणां) चान्द्रायणादि के द्वारा चित्त के क्लेशों का नाश होता है उस के क्षय से इन्द्रियों का (सूक्ष्मव्यवहितविप्रकृष्टदर्शनादिसामर्थ्यमाविर्भवति) सूक्ष्म—आवृत और दूर दर्शनादि सामर्थ्यों का आविर्भाव होता है (कायस्य यथेच्छमणुत्वमहत्त्वादीनि) और शरीर का इच्छा पूर्वक सूक्ष्म—महानादि करलेना भी योगी को सिद्ध हो जाता है ॥४३॥

(स्वाध्यायस्य फलमाह) स्वाध्याय का फल कहते हैं—

स्वाध्यायादिष्टदेवतासंप्रयोगः ॥ ४४ ॥

सू०—स्वाध्याय के सिद्ध होने से इष्ट देव परमात्मा के साथ योग होता है ॥ ४४ ॥

व्या० भाष्यम्

देवा ऋषयः सिद्धाश्च स्वाध्यायशीलस्य दर्शनं गच्छन्ति, कार्ये चास्य वर्तन्त इति ॥ ४४ ॥

व्या० भा० पदार्थ

(देवा ऋषयः सिद्धाश्च स्वाध्यायशीलस्य दर्शनं गच्छन्ति) स्वाध्यायशील पुरुष को देवता ऋषियों के दर्शन प्राप्त होते हैं, (कार्ये चास्य वर्तन्त इति) और इस योगी के कार्य में प्रवृत्त होते हैं ॥ ४४ ॥

विशेष सूचना

यह भाष्य सूत्र के शब्दों से नहीं निकलता और वैदिक सिद्धान्त से भी विरुद्ध है और भोज वृत्ति भी इसके विरुद्ध है परन्तु वह यथार्थ है और वैदिक

सिद्धान्त के अनुकूल है । इससे मालूम होता है कि किसी पौराणिकमतावलम्बी पुरुष ने महाराजा भोज के पश्चात् इसको बदल दिया है जिज्ञासुओं को चाहिये कि भोज वृत्ति के अर्थ को स्वीकार करें वह फलदायक है ॥ ४४ ॥

भो० वृत्ति

अभिप्रेतमन्त्रजपादिलक्षणे स्वाध्याये प्रकृष्यमाणे योगिन इष्टयाऽभिप्रेतया देवतया संप्रयोगो भवति । सा देवता प्रत्यक्षीभवतीत्यर्थः ॥ ४४ ॥

ईश्वरप्रणिधानस्य फलमाह—

भो० वृ० पदार्थ

(अभिप्रेतमन्त्रजपादिलक्षणे स्वाध्याये प्रकृष्यमाणे योगिनः) इष्ट मन्त्र के जपरूप स्वाध्याय के पूर्ण होने पर योगी को (इष्टयाऽभिप्रेतया देवतया संप्रयोगो भवति) इष्ट देवता का योग होता है । (सा देवता प्रत्यक्षीभवतीत्यर्थः) अर्थात् वह देवता प्रत्यक्ष होता है, यह अर्थ है अर्थात् ओङ्कार पूर्वक गायत्री आदि मन्त्र के द्वारा इष्ट देवता परमात्मा का साक्षात् दर्शन होता है यह अर्थ है ॥ ४४ ॥

(ईश्वरप्रणिधानस्य फलमाह) ईश्वरप्रणिधान का फल आगे कहते हैं–

समाधिसिद्धिरीश्वरप्रणिधानात् ॥ ४५ ॥

सू०—ईश्वरप्राणिधान के पूर्ण होने पर समाधि की सिद्धि होती है ॥ ४५ ॥

व्या० भाष्यम्

ईश्वरार्पितसर्वभावस्य समाधिसिद्धिर्यया सर्वमीप्सितमवितथं जानाति देशान्तरे देहान्तरे कालान्तरे च । ततोऽस्य प्रज्ञा यथाभूतं प्रजानातीति ॥ ४५ ॥

उक्ताः सह सिद्धिभिर्यमनियमाः । आसनादीनि वक्ष्यामः । तत्र–

व्या० भा० पदार्थ

(ईश्वरार्पितसर्वभावस्य समाधिसिद्धिः) ईश्वर के अर्पण किये हैं सर्व भाव जिस ने उस योगी को समाधि की सिद्धि होती है (ययासर्वमीप्सितमवितथं जानाति) जिस से सब वस्तु को यथार्थ जानता है (देशान्तरे देहान्तरे कालान्तरे च) सर्व देशों में—सर्व देहों में—सर्व कालों में—(ततोऽस्य प्रज्ञा यथाभूतं प्रजानातीति) उस से इस की बुद्धि जैसा जो कुछ है सब को जानती है ॥ ४५ ॥

(उक्ताः सह सिद्धिभिर्यमनियमाः) यम नियमों को सिद्धि सहित कहा गया (आसनादीनि वक्ष्यामः) आसन आदि को आगे कहेगें (तत्र) उन में—

भो० वृत्ति

ईश्वरे यत्प्रणिधानं भक्तिविशेषस्तस्मात्समाधेरुक्तलक्षणस्याऽऽविर्भावो भवति । यस्मात्स भगवानीश्वरः प्रसन्नः सन्नन्तरायरूपान्क्लेशान्परिहृत्य समाधिं संबोधयति ॥ ४५ ॥

यमनियमानुक्त्वाऽऽसनमाह—

भो० वृ० पदार्थ

(ईश्वरे यत्प्रणिधानं भक्तिविशेषः) जो प्रणिधान कहलाता है उस का अर्थ ईश्वर में भक्ति विशेष अर्थात् प्रेम होने का है (तस्मात् समाधेरुक्तलक्षणस्याऽऽविर्भावो भवति) उस भक्ति विशेष के कारण ऊपर के सूत्र में कही हुई समाधि की प्रकटता होता है । (यस्मात् स भगवान् ईश्वरः प्रसन्नः सन्नन्तरायरूपान्क्लेशान्परिहृत्य समाधिं संबोधयति) क्योंकि उस से वह भगवान् ईश्वर प्रसन्न होकर विघ्नरूप क्लेशों को नष्ट करके, समाधि के विषय अपने स्वरूप को जनाता है ॥ ४५ ॥

(यमनियमानुक्त्वाऽऽसनमाह) यम नियमों को कहकर आगे आसन को कहते हैं— आस्यते अनेनइति आसनम्

स्थिरसुखमासनम् ॥ ४६ ॥

सू०—जिसमें स्थिरता हो और सुख हो वही आसन है ॥४६॥

व्या० भाष्यम्

तद्यथा पद्मासनं वीरासनं भद्रासनं स्वस्तिकं दण्डासनं सोपाश्रयं पर्यङ्कं क्रौञ्चनिषदनं हस्तिनिषदनमुष्ट्रनिषदनं समसंस्थानं स्थिरसुखं यथासुखं चेत्येवमादीनि ॥ ४६ ॥

व्या० भा० पदार्थ

(तद्यथा) उस विषय में जैसे (पद्मासनं वीरासनं भद्रासनमिति०) पद्मासन, वीरासन, भद्रासनादि जो जिस को इष्ट हो वही करे परन्तु जिस में शरीर कम्पादि न हो और सुख हो यह विचार रक्खे ॥ ४६ ॥

भो० वृत्ति

आस्यतेऽनेनेत्यासनं पद्मासनदण्डासनस्वस्तिकासनादि । तद्यदा स्थिरं निष्कम्पं सुखमनुद्वेजनीयं च भवति तदा योगाङ्गतां भजते ॥ ४६ ॥

तस्यैव स्थिरसुखत्वप्राप्त्यर्थमुपायमाह—

भो० वृ० पदार्थ

(आस्यतेऽनेनेत्यासनं) जिस के द्वारा बैठाजाय वह आसन कहलाता है (पद्मासनदण्डासनस्वस्तिकासनादि) वह पद्मासन, दण्डासन, स्वस्तिकासनादि हैं । (तद्यदा स्थिरं निष्कम्पं सुखमनुद्वेजनीयं च भवति) वह आसन जब स्थिर अर्थात् निष्कम्प सुखरूप और जो व्याकुलता करने

योग्य न हो, ऐसा होता है (तदा योगाङ्गतां भजते) तब योगाङ्गता को प्राप्त होता है ॥ ४६ ॥

(तस्यैव स्थिरसुखत्वप्राप्त्यर्थमुपायमाह) उस स्थिरता और सुख की प्राप्ति के लिये उपाय कहते हैं—

प्रयत्नशैथिल्यानन्तसमापत्तिभ्याम् ॥ ४७ ॥

सू०—प्रयत्न की शिथिलता और अनन्त समापत्तियों द्वारा आसन स्थिर और सुखकारक होता है। देह कम्पादि न होना प्रयत्न की शिथिलता का अर्थ है और अनन्तविध आसनों के स्वरूप को विचार कर यथा अवसर लाभकारी आसन को स्वीकार करना अनन्तसमापत्ति का अभिप्राय है ॥ ४७ ॥

व्या० भाष्यम्

भवतीति वाक्यशेषः। प्रयत्नोपरमात्सिध्यत्यासनं येन नाङ्गमेजयो भवति। अनन्ते वा समापन्नं चित्तमासनं निर्वर्तयतीति ॥४७॥

व्या० भा० पदार्थ

(भवतीति वाक्यशेषः) सूत्र में होता है यह वाक्यशेष है। (प्रयत्नोपरमात्सिध्यत्यासनं) प्रयत्न के उपराम होने से आसन सिद्ध होता है (येन नाङ्गमेजयो भवति) जिससे अङ्गकम्पना नहीं होती। (अनन्ते वा समापन्नं चित्तमासनं निर्वर्तयतीति) अनन्तविध आसनों में लगाया हुआ चित्त आसन को सिद्ध करता है ॥४७॥

भो० वृत्ति

तदासनं प्रयत्नशैथिल्येनाऽऽनन्त्यसमापत्त्या च स्थिरं सुखं भवतीति संबन्धः। यदा यदाऽऽसनं बध्नामीतीच्छां करोति प्रयत्नशैथिल्येऽपि अक्लेशेनैव तदा तदाऽऽसनं संपद्यते। यदा चाऽऽकाशादिगत आनन्त्ये चेतसः

समापत्तिः क्रियतेऽव्यवधानेन तादात्म्यमापद्यते तदा देहाहंकाराभावान्नाऽऽसनं दुःखजनकं भवति । अस्मिंश्चाऽऽसनजये सति समाध्यन्तरायभूता न प्रभवन्ति अङ्गमेजयत्वादयः ॥ ४७ ॥

तस्यैवानुनिष्पादितं फलमाह—

भा० वृ० पदार्थ

(तदासनं प्रयत्नशैथिल्येनाऽऽनन्त्यसमापत्त्या च स्थिरं सुखं भवतीति संबन्धः) वह आसन प्रयत्न की शिथिलता और अनन्तसमापत्तियों से स्थिर और सुखदाई होता है यह सम्बन्ध है । (यदा यदाऽऽसनं बध्नामीतीच्छां करोति) जब २ मैं आसन को बांधूं यह इच्छा करता है (प्रयत्नशैथिल्येऽपि) प्रयत्न की शिथिलता होने पर ही (अक्लेशेनैव तदा तदाऽऽसनं संपद्यते) क्लेश के बिना ही तब २ आसन सिद्ध होता है । (यदा चाऽऽकाशादिगत आनन्त्ये चेतसः समापत्तिः क्रियतेऽव्यवधानेन) और जब अनन्त आकाश में चित्त की व्यवधान रहित अर्थात् दूसरा ज्ञान बीच में नहीं आवे इस प्रकार समापत्ति की जाती है अर्थात् निराकार स्वरूप का ग्रहण किया जाता है (तादात्म्यमापद्यते) तद्रूपता को प्राप्त होता है (तदा देहाहंकाराभावान्नाऽऽसनं दुःखजनकं भवति) तब देह अभिमान का अभाव हो जाने से आसन दुःख का उत्पादक नहीं होता । (अस्मिंश्चाऽऽसनजये सति) इस आसन के जय होने पर (समाध्यन्तरायभूता न प्रभवन्ति अङ्गमेजयत्वादयः) देह कम्पादि समाधि के विघ्न भी नहीं उत्पन्न होते ॥ ४७ ॥

(तस्यैवानुनिष्पादितं फलमाह) उस से ही सम्पादन किया हुआ फल कहते हैं—

ततो द्वंद्वानभिघातः ॥ ४८ ॥

सू०—उस आसन सिद्धि से योगी को द्वंद्व शीतोष्णादि नहीं सताते ॥ ४८ ॥

व्या० भाष्यम्

शीतोष्णादिभिर्द्वन्द्वैरासनजयान्नाभिभूयते ॥ ४८ ॥

व्या० भा० पदार्थ

(शीतोष्णादिभिर्द्वन्द्वैरासनजयान्नाभिभूयते) आसनजय होने के कारण शीतोष्णादि द्वंद्वों से योगी बाधा को नहीं प्राप्त होता ॥४८॥

भो० वृत्ति

तस्मिन्नासनजये सति द्वंद्वैः शीतोष्णक्षुत्तृष्णादिभिर्योगी नाभिहन्यत इत्यर्थः ॥ ४८ ॥

आसनजयानन्तरं प्राणायाममाह—

भो० वृ० पदार्थ

(तस्मिन्नासनजये सति) उस आसनजय काल में (द्वंद्वैः शीतोष्ण-क्षुत्तृष्णादिभिर्योगी नाभिहन्यत इत्यर्थः) शीतोष्ण–क्षुधा–तृषादि द्वंद्वों से योगी बाधा को प्राप्त नहीं होता यह अर्थ है ॥ ४८ ॥

(आसनजयानन्तरं प्राणायाममाह) आसनजय के पश्चात् होनेवाले प्राणायाम को कहते हैं—

तस्मिन्सति श्वासप्रश्वासयोर्गतिविच्छेदः प्राणायामः ॥ ४९ ॥

सू०—आसन के होते हुए श्वास–प्रश्वास की गति का रोकना प्राणायाम कहलाता है ॥ ४९ ॥

व्या० भाष्यम्

सत्यासने बाह्यस्य वायोराचमनं श्वासः, कौष्ठ्यस्य वायोर्निःसारणं प्रश्वासः, तयोर्गतिविच्छेद उभयाभावः प्राणायामः ॥ ४९ ॥

स तु—

व्या० भा० पदार्थ

(सत्यासने बाह्यस्य वायोराचमनं श्वासः) आसन के होते हुए बाहर के वायु को अन्दर खींचना "श्वास" कहलाता है, (कौष्ठ्यस्य वायोर्निःसारणं प्रश्वासः) उदर के वायु का बाहर निकालना "प्रश्वास" कहलाता है, (तयोर्गतिविच्छेद उभयाभावः प्राणायामः) उन दोनों की गति को रोकना अर्थात् उन दोनों का अभाव "प्राणायाम" कहलाता है ॥ ४९ ॥

(स तु) वह तो—

भो० वृत्ति

आसनस्थैर्ये सति तन्निमित्तकः प्राणायामलक्षणो योगाङ्गविशेषोऽनुष्ठेयो भवति । कीदृशः ? श्वासप्रश्वासयोर्गतिविच्छेदलक्षणः । श्वासप्रश्वासौ निरुक्तौ । तयोस्त्रिधा रेचनस्तम्भनपूरणद्वारेण बाह्याभ्यन्तरेषु स्थानेषु गतेः प्रवाहस्य विच्छेदो धारणं प्राणायाम उच्यते ॥ ४९ ॥

तस्यैव सुखावगमाय विभज्य स्वरूपं कथयति—

भो० वृ० पदार्थ

(आसनस्थैर्ये सति तन्निमित्तकः प्राणायामलक्षणः) आसन के होते हुए उसके निमित्त से होनेवाले प्राणायामरूप (योगाङ्गविशेषोऽनुष्ठेयो भवति) योगाङ्ग विशेष अनुष्ठान करने योग्य होते हैं । (कीदृशः ?) किस समान कि ? (श्वासप्रश्वासयोर्गतिविच्छेदलक्षणः) श्वास-प्रश्वास की गति का रोक देना रूप । (श्वासप्रश्वासौ निरुक्तौ) श्वास-प्रश्वास दोनों ऊपर कहे हुए । (तयोस्त्रिधा रेचनस्तम्भनपूरणद्वारेण) उन दोनों का तीन प्रकार से रेचक, कुम्भक, पूरक, द्वारा (बाह्याभ्यन्तरेषु स्थानेषु गतेः प्रवाहस्य विच्छेदो धारणं) बाह्य-आभ्यन्तर दोनों स्थानों में गति का प्रवाह रोकना धारण करना (प्राणायाम उच्यते) प्राणायाम कहलाता है ॥ ४९ ॥

(तस्यैव सुखावगमाय विभज्य स्वरूपं कथयति) उसके ही सुख पूर्वक प्राप्ति के लिये विभाग करके स्वरूप कथन करते हैं—

बाह्याभ्यन्तरस्तम्भवृत्तिर्देशकालसंख्याभि परिदृष्टो दीर्घसूक्ष्मः ॥ ५० ॥

सू०—बाह्य अर्थात् प्रश्वास, इसको रेचक भी कहते हैं। आभ्यन्तर अर्थात् श्वास इसको पूरक भी कहते हैं और दोनों की गति का अभाव स्तम्भवृत्ति इसे कुम्भक भी कहते हैं। देश–काल–संख्या के सहित परीक्षा किया हुआ दीर्घ-सूक्ष्म कहलाता है॥५०॥

व्या० भाष्यम्

यत्र प्रश्वासपूर्वको गत्यभावः स बाह्यः। यत्र श्वासपूर्वको गत्यभावः स आभ्यन्तरः। तृतीयः स्तम्भवृत्तिर्यत्रोभयाभावः सकृत्प्रयत्नाद्भवति। यथा तप्ते न्यस्तमुपले जलं सर्वतः संकोचमापद्यते तथा द्वयोर्युगपद्गत्यभाव। इति त्रयोऽप्येते देशेन परिदृष्टा इयानस्य विषयो देश इति। कालेन परिदृष्टाः क्षणानामियत्तावधारणेनावच्छिन्ना इत्यर्थः। संख्याभिः परिदृष्टा एतावद्भिः श्वासप्रश्वासैः प्रथम उद्घातस्तद्वन्निगृहीतस्यैतावद्भिर्द्वितीय उद्घात एवं तृतीयः। एवं मृदुरेवं मध्य एवं तीव्र इति संख्यापरिदृष्टः। स खल्वयमेवमभ्यस्तो दीर्घसूक्ष्मः ॥ ५० ॥

व्या० भा० पदार्थ

(यत्र प्रश्वासपूर्वको गत्यभावः स बाह्यः) जिस में श्वास को बाहर निकालकर गति का अभाव किया जाता है वह "बाह्य" कहलाता है। (यत्र श्वासपूर्वको गत्यभाव. स आभ्यन्तरः) जिस में श्वास अन्दर खींचकर गति का अभाव होता है वह "आभ्यन्तर" कहलाता है। (तृतीयः स्तम्भवृत्तिर्यत्रोभयाभावः) तीसरा

"स्तम्भवृत्ति" जिसमें दोनों का अभाव होता है (सकृत्प्रयत्ना-द्भवति) वह एक साथ प्रयत्न से होता है । (यथा तप्ते न्यस्त-मुपले जलं सर्वतः संकोचमापद्यते) जैसे तप्त उपलेपर डाला हुआ जल एक साथ सूख जाता है (तथा द्वयोर्युगपद्गत्यभाव इति) उसी प्रकार श्वास-प्रश्वास दोनों की एकसाथ गति का अभाव होता है । (त्रयोऽप्येते देशेन परिदृष्टा इयानस्य विषयो देश इति) यह तीनों देश से भी देखे गये हैं इनने देश अर्थात् इतनी दूर तक का वायु खींचा गया । (कालेन परिदृष्टाः क्षणानामियत्तावधारणे-नावच्छिन्ना इत्यर्थः) क्षणों के द्वारा धारण करने से जो क्षणों के बीच में बाधित न हो अर्थात् इतने क्षणमात्र प्राणायाम रोका गया यह अर्थ है । (संख्याभिः परिदृष्टाः) गणना से भी देखा गया (एतावद्भिः श्वासप्रश्वासैः प्रथम उद्घातः) इतने श्वास प्रश्वास से पहला उद्घात किया (तद्वन्निगृहीतस्यैतावद्भिर्द्वितीयः) उसी समान ग्रहण किया हुआ दूसरा (उद्घातः) उद्घात किया (एवं तृतीयः) इसी प्रकार तीसरा । (एवं मृदुरेवं मध्य एवं तीव्रः) इसी प्रकार मन्द-मध्य-तीव्र (इति संख्यापरिदृष्टः) यह संख्या से देखा हुआ है । (स खल्वयमेवमभ्यस्तो दीर्घसूक्ष्मः) निश्चय इस प्रकार यह अभ्यास किया हुआ दीर्घ-सूक्ष्म कहलाता है ॥५०॥

भो० वृत्ति

बाह्यवृत्तिः श्वासो रेचकः । अन्तर्वृत्तिः प्रश्वासः पूरकः । अन्तस्तम्भ-वृत्तिः कुम्भकः । तस्मिञ्जलमिव कुम्भे निश्चलतया प्राणा अवस्थाप्यन्त इति कुम्भकः । त्रिविधोऽयं प्राणायामो देशेन कालेन संख्यया चोपलक्षितो दीर्घसूक्ष्मसंज्ञो भवति । देशेनोपलक्षितो यथा—नासाप्रदेशान्तादौ । कालेनोपलक्षितो यथा—षट्त्रिंशन्मात्रादिप्रमाणः । संख्ययोपलक्षितो यथा—इयतो वारान्कृत एतावद्भिः श्वासप्रश्वासैः प्रथम उद्घातोभवतीति । एतज्ज्ञा

नाय संख्याग्रहणमुपात्तम् । उद्घातो नाम नाभिमूलात्प्रेरितस्य वायोः शिरसि-अभिहननम् ॥ ५० ॥

त्रीन्प्राणायामानभिधाय चतुर्थमभिधातुमाह—

भो० वृ० पदार्थ

(बाह्यवृत्तिः श्वासो रेचकः) बाहर वर्तनेवाला श्वास "रेचक" कहलाता है। (अन्तर्वृत्तिः प्रश्वासः पूरकः) अन्दर वर्तनेवाला प्रश्वास "पूरक" कहलाता है। (अन्तस्तम्भवृत्तिः कुम्भकः) तीसरा स्तम्भवृत्ति "कुम्भक" कहलाता है (तस्मिन् जलमिव कुम्भे निश्चलतया प्राण अवस्थाप्यन्तः) उस में जल भरे घड़े के समान निश्चलता से प्राण ठहराये जाते हैं (इति कुम्भकः) इस कारण कुम्भक कहलाता है। (त्रिविधोऽयं प्राणायामः) यह प्राणायाम तीन भेदों वाला है (देशेन कालेन संख्या च) देश से—काल से—संख्या से (उपलक्षितो दीर्घसूक्ष्मसंज्ञो भवति) उपलक्षित हुआ दीर्घ—सूक्ष्म नामवाला होता है। (देशेनोपलक्षितो यथा) देश से उपलक्षित हुआ जैसे—(नासाग्रदेशान्तादौ) नासिका देशान्तादि में (कालेनोपलक्षितो) काल से उपलक्षित हुआ (यथा—षट्त्रिंशन्मात्रादिप्रमाणः) जैसे छः—तीन—क्षण मात्रादि प्रमाण अर्थात् क्षण और उन के समूह का नाम काल है। (संख्ययोपलक्षितः) गणना से भी उपलक्षित हुआ (यथा—इयतो वारान्कृतः) जैसे इतनी बार किया (एतावद्भिः श्वासप्रश्वासैः प्रथम उद्घातो भवतीति) इतने श्वास प्रश्वासो से पहला उद्घात होता है। (एतज्ज्ञानाय संख्याग्रहणमुपात्तम्) इस ज्ञान के लिये गणना बतलाई गई है। (उद्घातो नाम नाभिमूलात्प्रेरितस्य वायोः शिरसि अभिहननम्) उद्घात का अर्थ नाभि के मूल से प्रेरणा की हुई वायु का शिर में टक्कर खाना है ॥ ५० ॥

(त्रीन्प्राणायामानभिधाय चतुर्थमभिधातुमाह) तीन प्रणायामों को कहकर चौथे का आगे कथन करते हैं—

बाह्याभ्यन्तरविषयाक्षेपी चतुर्थः ॥ ५१ ॥

सू०—श्वास-प्रश्वास दोनों प्राणायाम करके प्राण वायु को रोकना चौथा कहलाता है ॥ ५१ ॥

व्या० भाष्यम्

देशकालसंख्याभिर्बाह्यविषयपरिदृष्ट आक्षिप्तः। तथाऽऽभ्यन्तरविषयपरिदृष्ट आक्षिप्तः। उभयथा दीर्घसूक्ष्मः। तत्पूर्वको भूमिजयात्क्रमेणोभयोर्गत्यभावश्चतुर्थः प्राणायामः। तृतीयस्तु विषयानालोचितो गत्यभावः सकृदारब्ध एव देशकालसंख्याभिः परिदृष्टो दीर्घसूक्ष्मः। चतुर्थस्तु श्वासप्रश्वासयोर्विषयावधारणात्क्रमेण भूमिजयादुभयाक्षेपपूर्वको गत्यभावश्चतुर्थः प्राणायाम इत्ययं विशेष इति ॥ ५१ ॥

व्या० भा० पदार्थ

(देशकालसंख्याभिर्बाह्यविषयपरिदृष्ट आक्षिप्तः) देश-काल-संख्या द्वारा रेचक प्राणायाम करके उसको त्यागना। (तथाऽऽभ्यन्तरविषयपरिदृष्ट आक्षिप्तः) उसी प्रकार पूरक प्राणायाम करके त्यागना। (उभयथा दीर्घसूक्ष्मः) दीर्घ-सूक्ष्म दोनों प्रकारों से। (तत्पूर्वको भूमिजयात्) उसको पूर्व में करके उस भूमि के जय से (क्रमेणोभयोर्गत्यभावश्चतुर्थः प्राणायामः) क्रम से दोनों की गति का अभाव चौथा प्राणायाम कहलाता है (तृतीयस्तु विषयानालोचितो गत्यभावः सकृदारब्ध एव) तीसरा प्राणायाम तो उस के विषयों को न जानकर गति का अभाव एकदम रोका हुआ (देशकालसंख्याभिः परिदृष्टो दीर्घसूक्ष्मः) देश-काल-संख्या द्वारा दीर्घ-सूक्ष्म कहलाता है। (चतुर्थस्तु श्वासप्रश्वासयोर्विषयावधारणात्) चौथा तो श्वास-प्रश्वास दोनों को करके (क्रमेण भूमि-

जयादुभयाक्षेपपूर्वकः) क्रम से भूमियों के जय होनेपर दोनों के त्यागपूर्वक (गत्यभावश्चतुर्थः प्राणायामः) जो गति का अभाव वह चौथा प्राणायाम है (इत्ययं विशेष इति) इतना यह तीसरे से विशेष है ॥ ५१ ॥

भो० वृत्ति

प्राणस्य बाह्यो विषयो नासाद्वादशान्तादिः। आभ्यन्तरो विषयो हृदयनाभिचक्रादिः। तौ द्वौ विषयावाक्षिप्य पर्यालोच्य यः स्तम्भरूपो गति-विच्छेदः स चतुर्थः प्राणायामः। तृतीयस्मात्कुम्भकाख्यादयमस्य विशेषः—स बाह्याभ्यन्तरविषयावपर्यालोच्यैव सहसा तप्तोपलनिपतितजलन्यायेन युगपत्स्तम्भवृत्त्या निष्पद्यते। अस्य तु विषय द्वयाक्षेपक निरोधः। अयमपि पूर्ववद्देशकालसंख्याभिरूपलक्षितो द्रष्टव्यः ॥ ५१ ॥

चतुर्विधस्यास्य फलमाह—

भो० वृ० पदार्थ

(प्राणस्य बाह्यो विषयो नासाद्वादशान्तादिः) प्राण का बाह्य विषय नासिका द्वार देशान्तादि। (आभ्यन्तरो विषयो हृदयनाभिचक्रादिः) अन्दर का विषय हृदय नाभिचक्रादि। (तौ द्वौ विषयावाक्षिप्य पर्यालोच्य यः) वह दोनों विषय अनुभव के पश्चात् त्याग कर (स्तम्भरूपो गतिविच्छेदः) स्तम्भ के समान गति का रोकना (स चतुर्थः प्राणायामः) वह चौथा प्राणायाम है। (तृतीयस्मात्कुम्भकाख्यादयमस्य विशेषः) तीसरे कुम्भक नाम वाले से यह इस की विशेषता है कि—(स बाह्याभ्यन्तरविषयावपर्यालोच्यैव सहसा तप्तोपलनिपतितजलन्यायेन युगपत्स्तम्भवृत्त्या निष्पद्यते) वह बाह्य—आभ्यन्तर दोनों विषयों को करके एक साथ जैसे तप्त उपले पर डाला हुआ जल सूख जाता है इस प्रकार एक साथ कुम्भक वृत्ति से किया जाता है। (अस्य तु विषय द्वयाक्षेपक निरोधः) इस चौथे का तो दोनों विषयों को करके निरोध होता है

(अयमपि पूर्ववद्देशकालसंख्याभिरुपलक्षितो द्रष्टव्यः) और यह चौथा भी पूर्व प्राणायामों के समान देश–काल–संख्या के सहित करने योग्य है ॥५१॥

(चतुर्विधस्यास्य फलमाह) इस चारभेदों वाले प्राणायाम के फल को आगे कहते हैं—

ततः क्षीयते प्रकाशावरणम् ॥ ५२ ॥

सू०—उस चतुर्विध प्राणायाम से ज्ञान के ऊपर जो आवरण वह नष्ट हो जाता है ॥ ५२ ॥

व्या० भाष्यम्

प्राणायामानभ्यस्यतोऽस्य योगिनः क्षीयते विवेकज्ञानावरणीयं कर्म । यत्तदाचक्षते—महामोहमयेनेन्द्रजालेन प्रकाशशीलं सत्त्वमावृत्य तदेवाकार्ये नियुङ्क्त इति । तदस्य प्रकाशावरणं कर्म संसारनिबन्धनं प्राणायामाभ्यासाद्दुर्बलं भवति प्रतिक्षणं च क्षीयते । तथा चोक्तम् –"तपो न परं प्राणायामात्ततो विशुद्धिर्मलानां दीप्तिश्च ज्ञानस्य" इति ॥ ५२ ॥

किञ्च—

व्या० भा० पदार्थ

(प्राणायामानभ्यस्यतोऽस्य योगिनः क्षीयते विवेकज्ञानावरणीयं कर्म यत) प्राणायामों का अभ्यास करते हुए योगी के विवेकज्ञान का आवरणरूप जो कर्म वह नष्ट हो जाता है । (तदाचक्षते) उस को ऐसा कहते हैं—(महामोहमयेनेन्द्रजालेन प्रकाशशीलं सत्त्वमावृत्य तदेवाकार्ये नियुङ्क्त इति) महामोहरूप इन्द्रजाल से प्रकाश स्वभाव बुद्धि को ढककर वह ही अकार्य में युक्त किये हुए है । (तदस्य प्रकाशावरणं कर्म संसारनिबन्धनं) इस योगी के ज्ञान पर आवरणरूप जो कर्म वही संसार बन्धन है (प्राणायामाभ्या-

साद्दुर्बलं भवति) प्राणायाम के अभ्यास से वह निर्बल होता है (प्रतिक्षणं च क्षीयते) क्षण २ नष्ट होता है। (तथा चोक्तम्) वैसा ही कहा है—(तपो न परं प्राणायामात्) प्राणायाम से अधिक कोई तप नहीं है (ततो विशुद्धिर्मलानां दीप्तिश्च ज्ञानस्य इति) उस से मलों का अभाव रूप शुद्धि और ज्ञान का प्रकाश होता है ॥ ५२ ॥

(किञ्च) और क्या ?—

भो० वृत्ति

ततस्तस्मात्प्राणायामात्प्रकाशस्य चित्तसत्त्वगतस्य यदावरणं क्लेशरूपं तत्क्षीयते विनश्यतीत्यर्थः ॥ ५२ ॥

फलान्तरमाह—

भो० वृ० पदार्थ

(ततस्तस्मात्प्राणायामात्प्रकाशस्य चित्तसत्त्वगतस्य यदावरण क्लेशरूपं तत्क्षीयते विनश्यतीत्यर्थः) इस कारण उस चतुर्विध प्राणायाम से सत्त्व-रूप चित्त के प्रकाशपर जो क्लेशरूपी आवरण वह नष्ट हो जाता है यह अर्थ है ॥ ५२ ॥

(फलान्तर माह) दूसरा फल कहते हैं—

धारणासु च योग्यता मनसः ॥ ५३ ॥

सू०—और प्राणायाम से धारणाओं में मन की योग्यता हो जाती है ॥ ५३ ॥

व्या० भाष्यम्

प्राणायामाभ्यासादेव । प्रच्छर्दनविधारणाभ्यां वा प्राणस्य । (१ । ३४) इति वचनात् ॥ ५३ ॥

अथ कः प्रत्याहारः—

व्या० भा० पदार्थ

(प्राणायामाभ्यासादेव । प्रच्छर्दनविधारणाभ्यां वा प्राणस्य । इति वचनात्) प्राणायाम के अभ्यास से ही धारणा में मन की योग्यता हो जाती है । प्राण के प्रच्छर्दन विधारणा द्वारा जैसा कि पाद १ । सू० ३४ । में कहा है ॥ ५३ ॥

(अथ कः प्रत्याहारः) अब प्रत्याहार कौन है ? यह बतलाते हैं—

भो० वृत्ति

धारणा वक्ष्यमाणलक्षणास्तासु प्राणायामैः क्षीणदोष मनो यत्र यत्र धार्यते तत्र तत्र स्थिरी भवति न विक्षेपं भजते ॥ ५३ ॥

प्रत्याहारस्य लक्षणमाह—

भो० वृ० पदार्थ

(धारणा वक्ष्यमाणलक्षणास्तासु प्राणायामैः क्षीणदोषः) धारणा जिस का लक्षण अगले पाद में कहा जायगा उस में प्राणायामों से दोषों के नष्ट होनेपर (मनो यत्र यत्र धार्यते) मन जिस २ विषय में लगाया जाता है (तत्र तत्र स्थिरी भवति) उस २ में एकाग्र होता है (न विक्षेपं भजते) विक्षेप को नहीं प्राप्त होता ॥ ५३ ॥

(प्रत्याहारस्य लक्षणमाह) प्रत्याहार का लक्षण आगे कहते हैं—

स्वविषयासंप्रयोगे चित्तस्वरूपानुकार इवेन्द्रियाणां प्रत्याहारः ॥ ५४ ॥

सू०—इन्द्रियों का अपने विषयों को त्याग करके चित्त स्वरूप के अनुकूल होना प्रत्याहार कहलाता है ॥ ५४ ॥

व्या० भाष्यम्

स्वविषयसंप्रयोगाभावे चित्तस्वरूपानुकार इवेति चित्तनिरोधे

चित्तवन्निरुद्धानीन्द्रियाणि नेतरेन्द्रियजयवदुपायान्तरमपेक्षन्ते । यथा मधुकरराजं मक्षिका उत्पतन्तमनूत्पतन्ति निविशमानमनुनिविशन्ते तथेन्द्रियाणि चित्तनिरोधे निरुद्धानीत्येष प्रत्याहारः ॥ ५४ ॥

व्या० भा० पदार्थ

(स्वविषयसंप्रयोगाभावे) अपने विषय के संयोग से रहित (चित्तस्वरूपानुकार इवेति) चित्त स्वरूप के अनुकूल ही होना इन्द्रियों का प्रत्याहार कहलाता है (चित्तनिरोधे चित्तवन्निरुद्धानीन्द्रियाणि) चित्त के रोकने पर चित्त के समान इन्द्रियों का भी रुकजाना (नेतरेन्द्रियजयवदुपायान्तरमपेक्षन्ते) इन्द्रियजय के समान अन्य उपायों की अपेक्षा नहीं करते अर्थात् आवश्यकता नहीं होती । (यथा मधुकरराजं मक्षिकाः) जैसे शहद की बनानेवाली राणी मक्खी के (उत्पतन्तमनूत्पतन्ति) उड़ते हुए उस के पीछे सब मक्खियें उड़ती हैं (निविशमानमनुनिविशन्ते) प्रवेश करती हुई के पीछे प्रवेश करती हैं (तथेन्द्रियाणि चित्तनिरोधे निरुद्धानीत्येष प्रत्याहारः) उसी प्रकार इन्द्रियें चित्त के निरोध होनेपर निरुद्ध हो जाती हैं इस का नाम "प्रत्याहार" है ॥ ५४ ॥

भो० वृत्ति

इन्द्रियाणि विषयेभ्यः प्रतिपमाह्रियन्तेऽस्मिन्निति प्रत्याहारः । स च कथं निष्पद्यत इत्याह—चक्षुरादीनामिन्द्रियाणां स्वविषयो रूपादिस्तेन संप्रयोगस्तदाभिमुख्येन वर्तनं तदभावस्तदाभिमुख्यं परित्यज्य स्वरूपमात्रेऽवस्थानं, तस्मिन्सति चित्तस्वरूपमात्रानुकारीणीन्द्रियाणि भवन्ति । यतश्चित्तमनु वर्तमानानि मधुकरराजमिव मधुमक्षिकाः सर्वाणीन्द्रियाणि प्रतीयन्तेऽतश्चित्तनिरोधे तानि प्रत्याहृतानि भवन्ति । तेषां तत्स्वरूपानुकारः प्रत्याहारः उक्तः ॥ ५४ ॥

प्रत्याहारफलमाह—

भो० वृ० पदार्थ

(इन्द्रियाणि विषयेभ्यः प्रतिपमाहृयन्तेऽस्मिन्निति प्रत्याहारः) इन्द्रियों को विषयों से उलटा हटाया जाता है जिस में वह प्रत्याहार है। (स च कथं निष्पद्यत इत्याह) वह किस प्रकार प्राप्त होता है यह कहते हैं कि—(चक्षुरादीनामिन्द्रियाणां स्वविषयो रूपादिस्तेन संप्रयोगस्तदाभिमुख्येन वर्तनं) चक्षु आदि इन्द्रियों का अपना विषय रूपादि हैं, उनसे जो संयोग अर्थात् सन्मुखता से वर्तना (तदभावस्तदाभिमुख्यं परित्यज्य स्वरूपमात्रेऽवस्थानं) उस का अभाव उस की सन्मुखता को त्यागकर स्वरूपमात्र में स्थिर होना, (तस्मिन्सति चित्तस्वरूपमात्रानुकारीणीन्द्रियाणि भवन्ति) उस के होते हुए चित्त स्वरूप के अनुसार इन्द्रियें होती हैं। (यतश्चित्तमनु वर्तमानानि मधुकरराजमिव मधुमक्षिकाः) जैसे मधु की बनाने वाली राणी मक्खी के उड़ते हुए सब मक्खी पीछे उड़ती हैं और बैठने पर बैठ जाती हैं इसी प्रकार चित्त के अनुकूल वर्तती हुई (सर्वाणीन्द्रियाणि प्रतीयन्ते) सर्व इन्द्रियें चलती हैं (अतश्चित्तनिरोधे तानि प्रत्याहृतानि भवन्ति) वैसे ही चित्त के निरुद्ध होनेपर वह सब रुक जाती हैं। (तेषां तत्स्वरूपानुकारः प्रत्याहार उक्तः) उन इन्द्रियों का उस चित्त के अनुरूप होना "प्रत्याहार" कहा जाता है ॥ ५४ ॥

(प्रत्याहारफलमाह) प्रत्याहार का फल कहते हैं—

ततः परमावश्यतेन्द्रियाणाम् ॥ ५५ ॥

सू०—प्रत्याहार के सिद्ध होने से इन्द्रियों की परमवश्यता हो जाती है अर्थात् इन्द्रियें योगी के वश हो जाती हैं ॥ ५५ ॥

व्या० भाष्यम्

शब्दादिष्वव्यसनमिन्द्रियजय इति केचित्। सक्तिर्व्यसनं व्यस्यत्येनं श्रेयस इति। अविरुद्धा प्रतिपत्तिर्न्याय्या। शब्दादिसंप्रयोगः स्वेच्छयेत्यन्ये। रागाद्वेषाभावे सुखदुःखशून्यं शब्दादिज्ञानमिन्द्रि-

यजय इति केचित् । चित्तैकाग्र्यादप्रतिपत्तिरेवेति जैगीषव्यः । ततश्च परमात्वियं वश्यता यच्चित्तनिरोधे निरुद्धानीन्द्रियाणि नेतरेन्द्रियजयवत्प्रयत्नकृतमुपायान्तरमपेक्षन्ते योगिन इति ॥ ५५ ॥

इति श्रीपातञ्जले सांख्यप्रवचने योगशास्त्रे श्रीमद्व्यास-
भाष्ये द्वितीयः साधनपादः ॥ २ ॥

व्या० भा० पदार्थ

(शब्दादिष्वव्यसनमिन्द्रियजय इति) शब्दादि विषयों में वासना रहित होना "इन्द्रियजय" कहलाता है (केचित्) कोई एक कहते हैं (सक्तिर्व्यसनं) विषयों में सक्त होना ही वासना है (व्यस्यत्येनं श्रेयस इति) निरसता ही कल्याण है (अविरुद्धाप्रतिपत्तिर्न्याय्या । शब्दादिसंप्रयोगः) कोई एक वेदानुकूल शब्दादि का संयोग न्यायपूर्वक है इस को इन्द्रियजय मानते हैं (स्वेच्छयेत्यन्ये) कोई एक विषयों में न फंसकर अपनी इच्छा से शब्दादि को प्राप्त होना इन्द्रियजय मानते हैं । (रागद्वेषाभावे सुखदुःखशून्यं शब्दादिज्ञानमिन्द्रियजय इति केचित्) राग-द्वेष के अभाव होनेपर सुख-दुःख से शून्य शब्दादि का ज्ञान इन्द्रियजय है ऐसा कोई एक कहते हैं । (चित्तैकाग्र्यादप्रतिपत्तिरेवेति जैगीषव्यः) चित्त की एकाग्रता के कारण इन्द्रियों की विषयों में प्रवृत्ति न होना यह जैगीषव्य का मत है । (ततश्च परमात्वियं वश्यता यच्चित्तनिरोधे निरुद्धानीन्द्रियाणि) उस एकाग्रता से यह परम वश्यता है जो चित्त के निरोध होने पर इन्द्रियें भी निरुद्ध हो जाती हैं (नेतरेन्द्रियजयवत्प्रयत्नकृतमुपायान्तरमपेक्षन्ते योगिन इति) योगी को दूसरे उपायों में इन्द्रियजय के समान प्रयत्न करने की आवश्यक्ता नहीं होती ॥ ५५ ॥

भो० वृत्ति

अभ्यस्यमाने हि प्रत्याहारे तथा वश्यानि आयत्तानीन्द्रियाणि संपद्यन्ते, यथा बाह्यविषयाभिमुखतां नीयमानान्यपि न यन्तीत्यर्थः ।

तदेवं प्रथमपादोक्त योगस्याङ्गभूतक्लेशतनूकरणफलं क्रियायोगमभिधाय क्लेशानामुद्देशं स्वरूपं कारणं क्षेत्रं फलं चोक्त्वा कर्मणामपि भेदं कारणं स्वरूपं फलं चाभिधाय विपाकस्य स्वरूपं कारणं चाभिहितम् । ततस्त्याज्यत्वात्क्लेशादीनां ज्ञानव्यतिरेकेण त्यागस्याशक्यत्वाज्ज्ञानस्य च शास्त्रायत्तत्वाच्छास्त्रस्य च हेयहानकारणोपादेयोपादानकारणबोधकत्वेन चतुर्व्यूहत्वाद्धेयस्य च हानव्यतिरेकेण स्वरूपानिष्पत्तेर्हानसहितं चतुर्व्यूहं स्वकारणसहितमभिधायोपादानकारणभूताया विवेकख्यातेः कारणभूतानामन्तरङ्गबहिरङ्गभावेन स्थितानां योगाङ्गानां यमादीनां स्वरूपं फलसहितं व्याकृत्याऽऽसनादीनां धारणापर्यन्तानां परस्परमुपकार्योपकारकभावेनावस्थितानामुद्देशमभिधाय प्रत्येकं लक्षणकारणपूर्वकं फलमभिहितम् । तदयं योगो यमनियमादिभिः प्राप्तबीजभाव आसनप्राणायामैरङ्कुरितः प्रत्याहारेण पुष्पितो ध्यानधारणासमाधिभिः फलीष्यतीति व्याख्यातः साधनपादः ॥ ५५ ॥

इति श्रीभोजदेवविरचितायां पातञ्जलयोगशास्त्रसूत्रवृत्तौ
द्वितीयः साधनपादः ॥ २ ॥

भो० वृ० पदार्थ

(अभ्यस्यमाने हि प्रत्याहारे तथा वश्यानि आयत्तानीन्द्रियाणि संपद्यन्ते) प्रत्याहार के अभ्यास करने पर इन्द्रियें यत्न की हुई ऐसी वश हो जाती हैं, (यथा बाह्यविषयाभिमुखतां नीयमानान्यपि न यान्तीत्यर्थः) जैसे बाह्य विषय की सन्मुखता से रोकी हुई भी विषयों पर नहीं चलती यह अर्थ है ।

(तदेवं प्रथमपादोक्त योगस्याङ्गभूतक्लेशतनूकरणफलं) वह इस

प्रकार पहले पाद में कहा हुआ योग का अङ्ग भूत क्लेश निर्बल करने का फल (क्रियायोगमभिधाय) और क्रियायोग को कह कर (क्लेशाना- मुद्देशं) क्लेशों का उद्देश्य (स्वरूपं कारणं क्षेत्र फलं चोक्त्वा) स्वरूप, कारण, क्षेत्र और फल कह कर (कर्मणामपि भेदं कारणं स्वरूपं फलं चाभि- धाय) कर्मों का भी भेद, कारण, स्वरूप फल कह कर (विपाकस्य स्वरूपं, कारणं चाभिहितम्) फल का स्वरूप और कारण प्रकाशित किया। (ततस्त्याज्यत्वात्क्लेशादीनां ज्ञानव्यतिरेकेण त्यागस्याशक्यत्वात्) और उसके पश्चात् क्लेशादि त्यागने योग्य होने से और ज्ञान के विना त्याग न हो सकने से (ज्ञानस्य च शास्त्रायत्तत्वाच्छास्त्रस्य च हेयहानकारणोपादेयो- पादानकारणबोधकत्वेन) ज्ञान का शास्त्र आश्रय होने से और त्याज्य, त्याग कारण का और ग्राह्य, ग्रहण कारण का शास्त्र बोधक होने से शास्त्र का (चतुर्व्यूहत्वात्) चार भेदों वाला होने से कथन किया गया (हेयस्य च हानव्यतिरेकेण स्वरूपनिष्पत्तेर्हानसहितं चतुर्व्यूहं) और त्याज्य का त्याग के विना स्वरूप निष्पत्ति न होना त्याग सहित चार भेद (स्व स्व कारणसहितम्) अपने २ कारण के सहित (अभिधाय) प्रकाशित करके (उपादानकारणभूताया विवेकख्यातेः) उपादान कारण रूप जो विवेकख्याति (कारणभूतानामन्तरङ्गबहिरङ्गभावेन स्थितानां योगाङ्गानां) और उस विवेकख्याति के कारण रूप अन्तरङ्ग—बहिरङ्ग रूप से स्थित योगाङ्गों (यमादीनां स्वरूपं फलसहितं व्याकृत्या) यमादि का स्वरूप फल सहित व्याकृत्य करके (आसनादीनां धारणापर्यन्तानां) धारणा पर्यन्त आसनादि का (परस्परमुपकार्योपकारकभावेनावस्थितानाम्) पर- स्पर उपकार्य उपकारक भाव से उपस्थित हुओं का (उद्देशमभिधाय) उद्देश कह कर (प्रत्येकं लक्षणकारणपूर्वकं फलमभिहितम्) प्रत्येक का लक्षण कारण पूर्वक फल भी बतलाया। (तदयं योगो यमनियमादिभिः प्राप्तबीजभावः) वह यह योग यम नियमादि के द्वारा बीज भाव को प्राप्त (आसनप्राणायामैरङ्कुरितः) आसन, प्राणायामों से अङ्कुरित हुआ

(प्रत्याहारेण पुष्पितः) प्रत्याहार से फूलों वाला (ध्यानधारणासमाधिभिः फलिष्यति) धारणा-ध्यान-समाधि से फल देता है (इति व्याख्यातः साधनपादः) यह साधनपाद में कहा गया ॥ ५५ ॥

समाप्तोऽयं द्वितीयः साधनपादः ॥ २ ॥

॥ ओ३म् ॥

पातंजलयोगदर्शनम्

अथ तृतीयो विभूतिपादः प्रारभ्यते

उक्तानि पञ्च बहिरङ्गानि साधनानि । धारणा वक्तव्या ।

अर्थ—(उक्तानि पञ्च बहिरङ्गानि साधनानि) योग के पांच बहिरङ्ग साधन पिछले पाद में कहे गये । (धारणा वक्तव्या) अब धारणा कहने योग्य है ।

देशबन्धश्चित्तस्य धारणा ॥ १ ॥

सू०—चित्त वृत्ति का देश विशेष में बांधना अर्थात् रोकना धारणा कहलाती है ॥ १ ॥

व्या० भाष्यम्

नाभिचक्रे हृदयपुण्डरीके मूर्ध्नि ज्योतिषि नासिकाग्रे जिह्वाग्र इत्येवमादिषु देशेषु बाह्ये वा विषये चित्तस्य वृत्तिमात्रेण बन्ध इति धारणा ॥ १ ॥

व्या० भा० पदार्थ

(नाभिचक्रे हृदयपुण्डरीके मूर्ध्नि ज्योतिषि नासिकाग्रे जिह्वाग्र इत्येवमादिषु देशेषु) नाभिचक्र-हृदयकमल—मूर्धाज्योति में नासिकाके अग्रभाग में अथवा जिह्वा के अग्रभागादि शरीर देशों में

(बाह्ये वा विषये चित्तस्य वृत्तिमात्रेण बन्ध इति धारणा) अथवा किसी बाह्य विषय में चित्त की वृत्तिमात्र का रोकना "धारणा" कहलाती है ॥ १ ॥

भो० वृत्ति

तदेवं पूर्वोद्दिष्टं धारणाद्यङ्गत्रयं निर्णेतुं संयमसंज्ञाविधानपूर्वकं बाह्याभ्यन्तरादिसिद्धिप्रतिपादनाय लक्षयितुमुपक्रमते। तत्र धारणायाः स्वरूपमाह—

भो० वृ० पदार्थ

(तदेवं पूर्वोद्दिष्टं धारणाद्यङ्गत्रयं निर्णेतुं संयमसंज्ञाविधानपूर्वकं) वह इस प्रकार पूर्व कहे हुए धारणादि तीनों अङ्ग निर्णय करने को "संयम" नाम के विधान पूर्वक (बाह्याभ्यन्तरादिसिद्धिप्रतिपादनाय) बाह्य–आभ्यन्तर सिद्धि प्रतिपादन के लिये (लक्षयितुमुपक्रमते) लक्ष्य कराने को आरम्भ करते हैं। (तत्र धारणायाः स्वरूपमाह) उस में धारणा का स्वरूप प्रथम कहते हैं—

देशे नाभिचक्रनासाग्रादौ चित्तस्य बन्धो विषयान्तरपरिहारेण यत्स्थिरीकरणं सा चित्तस्य धारणोच्यते। अयमर्थः—मैत्र्यादिचित्तपरिकर्मवासितान्तःकरणेन यमनियमवता जितासनेन परिहृतप्राणविक्षेपेण प्रत्याहृतेन्द्रियग्रामेण निर्बाधे प्रदेश ऋजुकायेन जितद्वंद्वेन योगिता नासाग्रादौ संप्रज्ञातस्य समाधेरभ्यासाय चित्तस्य स्थिरीकरणं कर्तव्यमिति ॥ १ ॥

धारणामभिधाय ध्यानमभिधातुमाह—

(देशे नाभिचक्रनासाग्रादौ चित्तस्य बन्धः) किसी देश विशेष नाभिचक्र–नासिका–अग्रभागादि में चित्त का बांधना (विषयान्तरपरिहारेण यत्स्थिरीकरणं सा चित्तस्य धारणोच्यते) अन्य विषयों के त्याग द्वारा जो चित्त का एकाग्र करना वह "धारणा" कहलाती है। (अयमर्थः) यह अर्थ है—(मैत्र्यादिचित्तपरिकर्मवासितान्तःकरणेन यमनियमवता जितासनेन परिहृतप्राणविक्षेपेण प्रत्याहृतेन्द्रियग्रामेण निर्बाधे

प्रदेश ऋजुकायेन जितद्वंद्वेन योगिनाः) मैत्री आदि के अभ्यास द्वारा मैत्री–मुदितादि भावों से पूरित अन्तःकरण से यम–नियम पालन वाले, जीता है आसनों को जिसने और प्राणों के विक्षेपों को हरण करने से से इन्द्रिय समूह को विषयों से हटाये हुए बाधना रहित देश में सीधा शरीर रखते हुए जीता है सुख–दुःखादि द्वंद्वों को जिस योगी ने (नासाग्रादौ संप्रज्ञातस्य समाधेरभ्यासाय चित्तस्य स्थिरीकरणं कर्तव्यमिति) ऐसे योगी को नासाग्रादि में संप्रज्ञात समाधि के अभ्यास के लिये चित्त का एकाग्र करना कर्तव्य है ॥ १ ॥

(धारणामभिधाय ध्यानमभिधातुमाह) धारणा को बतला कर ध्यान को आगे बतलाते हैं—

तत्र प्रत्ययैकतानता ध्यानम् ॥ २ ॥

सू०—(तत्र) उस प्रदेश में अर्थात् जिस विषय में धारणा की गई उसी ध्येय विषयक (प्रत्ययैकतानता) ज्ञान = वृत्तियों का समान प्रवाह (ध्यानम्) ध्यान कहलाता है । समान प्रवाह का यह अभिप्राय है कि दूसरा ज्ञान बीच में न हो ॥ २ ॥

व्या० भाष्यम्

तस्मिन्देशे ध्येयालम्बनस्य प्रत्ययस्यैकतानता सदृशः प्रवाहः प्रत्ययान्तरेणापरामृष्टो ध्यानम् ॥ २ ॥

व्या० भा० पदार्थ

(तस्मिन्देशे ध्येयालम्बनस्य प्रत्ययस्यैकतानता) उस देश में जिसमें धारणा की गई ध्येयस्वरूप आलम्बन वाले ज्ञान की एकतानता अर्थात् (सदृशः प्रवाहः) समान प्रवाह (प्रत्ययान्तरेणापरामृष्टो ध्यानम्) अन्य ज्ञानों से रहित ध्यान कहलाता है । सदृश प्रवाह का अभिप्राय यह है कि जिस ध्येय विषयक पहली वृत्ति हो उसी विषयक दूसरी और उसी विषयक तीसरी इस

प्रकार ध्येय से अन्य का ज्ञान बीच में न हो सो सदृश प्रवाह का अभिप्राय है ॥ २ ॥

भो० वृत्ति

तत्र तस्मिन्प्रदेशे यत्र चित्तं धृतं तत्र प्रत्ययस्य ज्ञानस्य यैकतानता विसदृशपरिणामपरिहारद्वारेण यदेव धारणायामालम्बनीकृतं तदालम्बनतयैव निरन्तरमुत्पत्तिः सा ध्यानमुच्यते ॥ २ ॥

चरमं योगाङ्गं समाधिमाह—

भो० वृ० पदार्थ

(तत्र तस्मिन्प्रदेशे यत्र चित्तं धृतं) उस प्रदेश में जिस में चित्त एकाग्र किया गया हो (तत्र प्रत्ययस्य ज्ञानस्य यैकतानताः) उस में प्रत्यय अर्थात् ज्ञान की जो एकतानता (विसदृशपरिणामपरिहारद्वारेण) विपरीत परिणाम के त्याग द्वारा (यदेव धारणायामालम्बनीकृतं) जो वह धारणा में आलम्बन किया है (तदालम्बनतयैव) उस आलम्बनता से ही (निरन्तरमुत्पत्तिः) सर्व ध्यान काल में ज्ञान उत्पत्ति (सा ध्यानमुच्यते) वह ध्यान कहलाती है ॥ २ ॥

(चरमं योगाङ्गं समाधिमाह) योग के पिछले अङ्ग समाधि को कहते हैं—

तदेवार्थमात्रनिर्भासं स्वरूपशून्यमिव समाधिः ॥ ३ ॥

सू०—(तदेव) वह ध्यान ही (अर्थमात्रनिर्भासं) अर्थमात्र भासित हो जिसमें अर्थात् ध्येय का स्वरूप ही भासित हो जिस में (स्वरूपशून्यमिव) योगी अपने स्वरूप से शून्य सा हुआ अर्थात् अपना स्मरण योगी को न रहे जिसमें इस समान गति को (समाधिः) समाधि कहते हैं ॥ ३ ॥

व्या० भाष्यम्

इदमत्रबोध्यम्—ध्यातृध्येयध्यानकलनावत् ध्यानं तद्रहितं समा-

धिरिति ध्यानसमाध्योर्विभागः । अस्य च समाधिरूपस्य ङ्गस्याङ्गि-संप्रज्ञातयोगादयं भेदो यदत्र चिन्तारूपतया निःशेषतो ध्येयस्य स्वरूपं न भासते । अङ्गिनि तु संप्रज्ञाते ज्ञातव्य साक्षात्कारोदये समाध्यविषया अपि विषया भासन्त इति । तथा च साक्षात्कार-युक्तैकाग्र्यकाले संप्रज्ञातयोगः । अन्यदा ते समाधिमात्रमिति. विभागः समाधिः ध्यानमेव ध्येयाकारनिर्भासं प्रत्ययात्मकेन स्वरू-पेण शून्यमिव यदा भवति ध्येयस्वभावावेशात्तदा समाधिरित्युच्यते॥३॥

व्या० भा० पदार्थ

(इदमत्रबोध्यम्) यह इस विषय में जानने योग्य है—(ध्यातृ-ध्येयध्यानकलनावत् ध्यानं) ध्याता–ध्येय–ध्यान इन तीनों के भेद पूर्वक ध्यान होता है (तद्रहितं समाधिः) उस भेद से रहित समाधि होती है (इति ध्यानसमाध्योर्विभागः) यह ध्यान और समाधि में अन्तर है । (अस्य च समाधिरूपस्याङ्गस्य) इस समाधि के अङ्ग ध्यान के (अङ्गिसम्प्रातयोगादयं भेदः) अङ्गि सम्प्रज्ञात योगादि में भेद है (यदत्र चिन्तारूपतया निःशेषतो ध्येयस्य स्वरूपं न भासते) जब इस ध्यान में चिन्तारूप होने के कारण सम्पू-र्णता से ध्येय का स्वरूप भासित नहीं होता । (अङ्गिनि तु संप्र-ज्ञाते) उस ध्यान के अङ्गि सम्प्रज्ञात योग में (ज्ञातव्य साक्षा-त्कारोदये) जानने योग्य जो ब्रह्मस्वरूप उसके साक्षात्कार होने पर (समाध्यविषया अपि विषया भासन्त इति) समाधि के अवि-षय अर्थात ब्रह्मस्वरूप से भिन्न अन्य सर्व पदार्थ भी विषयरूप से भासित होते हैं = जाने जाते हैं ।

ऐसा ही उपनिषदों में भी कहा है कि ब्रह्म स्वरूप साक्षात् होने पर सब विषय ज्ञात हो जाते हैं—

मैत्रेय्यात्मनो वा अरे दर्शनेन श्रवणेन मत्या
विज्ञानेनेदं सर्वं विदितम् । बृहदारण्यक । २ । ४ । ५ ।

अर्थ—हे मैत्रेयी परमात्मा के दर्शन–श्रवण–विचार–ज्ञान होने पर यह सब जाना जाता है। अन्यत्र भी

कस्मिन्नु भगवो विज्ञाते सर्वमिदं विज्ञातं
भवतीति। मुण्डक। १। १। ३॥

अर्थ—हे भगवन् किस एक के जानने पर यह सब जगत् जाना जाता है।

इन ही उपनिषद् वाक्यों के अभिप्राय से यहां भाष्यकार ने दिखलाया है कि परमात्मज्ञान होने पर योगी सर्वज्ञ हो जाता है। (तथा च साक्षात्कारयुक्तैकाग्र्यकाले संप्रज्ञातयोगः) ऊपर कहे अनुसार साक्षात्कार से युक्त एकाग्र काल में संप्रज्ञात योग कहलाता है। (अन्यदा ते समाधिमात्रमिति विभागः) सर्ववृत्ति निरोध काल में तो समाधिमात्र है ऐसा कहा जाता है यह सम्प्रज्ञात–असम्प्रज्ञात योग में विभाग है। (समाधिः) अब समाधि को कहते हैं (ध्यानमेव ध्येयाकारनिर्भासं) ध्यान ही जिस में ध्येय का आकार ही भासित हो (प्रत्ययात्मकेन स्वरूपेण शून्यमिव) योगी अपने आत्मा के स्वरूप से शून्य के समान अर्थात् जब योगी को अपने स्वरूप का स्मरण न रहे चित्त की अहम् वृत्ति का भी अभाव हो जावे (यदा भवति) इस समान जब होता है (ध्येयस्वभावावेशात्तदा समाधिरित्युच्यते) ध्येय का स्वरूप अपने ज्ञान में प्रवेश हो जाने के कारण तब समाधि है ऐसा कहा जाता है॥ ३॥

भावार्थ

सारांश यह है कि ध्यान काल में जब बुद्धि ब्रह्माकार को धारण करती है जीवात्मा को उस बुद्धि वृत्ति की अनुसारता से ब्रह्म स्वरूप का ज्ञान हो जाता है। उस काल में अहम् वृत्ति विद्यमान् रहने से योगी को यह बोध रहता है कि मैं इस ब्रह्म स्वरूप

का ध्यान करता हूँ परन्तु समाधि काल में सर्व वृत्ति निरोध होने से अहम् वृत्ति का भी निरोध होने के कारण योगी को अपने स्वरूप का स्मरण नहीं होता इस कारण भाष्य में यह शब्द आया है कि "प्रत्ययात्मकेन स्वरूपेण शून्यमिव"=अपने आत्मा के स्वरूप से शून्य के समान समाधि काल में हो जाता है। ऐसा ही बृहदारण्यक उपनिषद् में भी कहा है—

"यत्र वा अस्य सर्वमात्मैवाभूत्तत्केन कं विजानीयात्। येनेदं सर्वं विजानाति तं केन विजानीयाद्विज्ञातरमरे केन विजानीयात्"=जब इसका सर्व ज्ञान परमात्मरूप हो जावे तब किस से क्या जाने। जिस से इस सब को जानता है उस को किससे जाने, अरे! मैत्रेयी ज्ञाता को किससे जाने, क्योंकि उस काल में योगी ज्ञेय ब्रह्म को तो जानता है परन्तु अहं वृत्ति के विना अपने स्वरूप को जो कि ज्ञाता है किस प्रकार जाने क्योंकि चित्तवृत्ति तो सर्व निरोध हो गई। इसी भाव से महर्षियों ने इस सूत्र और भाष्य में कहा है कि योगी अपने आत्मा के स्वरूप से शून्य के समान हो जाता है क्योंकि उसके ज्ञान में उस समय ब्रह्म स्वरूप के प्रवेश हो जाने से एक मात्र ब्रह्म का ही ज्ञान रहता है। इससे यहां यह भी सिद्ध हो गया कि समाधि होने के पश्चात् योगी को जीव, ब्रह्म दोनों का भिन्न २ साक्षात् हो जाता है। इसी कारण अयोगी वाचकज्ञानी समाधि प्रज्ञा रहित पुरुष यह कहते फिरते हैं कि ब्रह्म ही अविद्या से जीव हो गया, ठीक है वह बेचारे जानें भी कैसे उन को तो शिक्षा ही ऐसी मिली है कि छः शास्त्र वाद मात्र हैं। इस लिये उन बेचारे मन्दभागियों को इन ब्रह्मज्ञानी महर्षियों के उपदेश का लाभ भी नहीं होता, और जिन्होंने समाधि द्वारा भले प्रकार ब्रह्मस्वरूप का साक्षात् किया और समाधि योग के तत्त्व उपायादि का निर्णय शास्त्रों में किया है

उनको यह तत्त्व ज्ञात है। इस कारण मुमुक्षु पुरुषों को चाहिये कि इस आस्तिक वैदिक शास्त्र के अनुसार इन ब्रह्म ज्ञानी महर्षि आप्त पुरुषों के वचन में श्रद्धा युक्त होकर आत्म कल्याण मोक्ष के लाभार्थ बड़े उत्साह के साथ यत्न करके अपना जन्म सफल करें। जिस मोक्ष पद के विषय में उपनिषद् की श्रुति इस प्रकार वर्णन करती हैं।

"सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म, यो वेद निहितं गुहायां परमे व्योमन् सोऽश्नुते सर्वान् कामान् सह ब्रह्मणा विपश्चितेति"=सत्यरूप-ज्ञानरूप-अनन्त ब्रह्म है इस को जो महाकाश रूपी गुहा में स्थित जानता है वह सब कामनाओं को ज्ञान स्वरूप ब्रह्म के साथ भोगता है। इन भावों को मिटाने के लिये नवीन वेद विरोधि मतमतान्तरावलम्बी मूल उपनिषदादि सच्छास्त्रों को छोड़ कर जगत् को हानि ही पहुंचा रहे हैं ॥ ३ ॥

भो० वृत्ति

तदेवोक्तलक्षणं ध्यानं यत्रार्थमात्रनिर्भासमर्थाकारसमावेशादुद्भूतार्थरूपंन्यग्भूतज्ञानस्वरूपत्वेन स्वरूपशून्यतामिवाऽऽपद्यते स समाधिरित्युच्यते। सम्यगाधीयत एकाग्री क्रियते विक्षेपान्परिहृत्य मनो यत्र स समाधिः॥३॥

उक्तलक्षणस्य योगाङ्गत्रयस्य व्यवहाराय स्वशास्त्रे तान्त्रिकीं संज्ञां कर्तुमाह—

भो० वृ० पदार्थ

(तदेवोक्तलक्षणं ध्यानं) ऊपर कहे अनुसार जो ध्यान है वह (यत्रार्थमात्रनिर्भासं) जिसमें अर्थमात्र का भान हो (अर्थाकारसमावेशात्) अर्थ के रूपाकार का अपने ज्ञान में प्रवेश होने से (उद्भूतार्थरूपंन्यग्भूतज्ञानस्वरूपत्वेन) अपना ज्ञान स्वरूप दब जाने से अर्थ का स्वरूप उद्भूत होने के कारण (स्वरूपशून्यतामिवाऽऽपद्यते) स्वरूप शून्य की

समानता को प्राप्त होता है (स समाधिरित्युच्यते) वह समाधि है ऐसा कहा जाता है (सम्यगाधीयत एकाग्री क्रियते) यथार्थता से धारण किया जाता अर्थात् एकाग्र किया जाता (विक्षेपान्परिहृत्य मनो यत्र) विक्षेपों को हटा कर मन जिसमें (स समाधिः) वह समाधि कही जाती है ॥ २ ॥

(उक्तलक्षणस्य योगाङ्गत्रयस्य व्यवहाराय) ऊपर कहे योग के धारणा-ध्यान-समाधि तीनों अङ्गों के व्यवहार के लिये (स्वशास्त्रे तान्त्रिकीं संज्ञां कर्तुमाह) अपने शास्त्र की भाषा में नाम बतलाते हैं—

त्रयमेकत्र संयमः ॥ ४ ॥

सू०—इन धारणा-ध्यान-समाधि का एक विषय में होना इस शास्त्र में "संयम" कहलाता है ॥ ४ ॥

व्या० भाष्यम्

तदेतद्धारणाध्यानसमाधित्रयमेकत्र संयमः । एकविषयाणि त्रीणि साधनानि संयम इत्युच्यते । तदस्य त्रयस्य तान्त्रिकी परिभाषा संयम इति ॥ ४ ॥

व्या० भा० पदार्थ

(तदेतद्धारणाध्यानसमाधित्रयमेकत्र संयमः) वह यह धारणा-ध्यान-समाधि तीनों एक विषय में जब हों संयम कहलाते हैं। (एकविषयाणि त्रीणि साधनानि संयम इत्युच्यते) एक विषय में तीनों साधन संयम नाम से कहे जाते हैं। (तदस्य त्रयस्य तान्त्रिकी परिभाषा संयम इति) इन तीनों का नाम इस शास्त्र की भाषा में संयम है ॥ ४ ॥

भो० वृत्ति

एकस्मिन्विषये धारणाध्यानसमाधित्रयं प्रवर्तमानं संयमसंज्ञया शास्त्रे व्यवह्रियते ॥ ४ ॥

तस्य फलमाह—

भो० वृ० पदार्थ

(एकस्मिन्विषये) एक विषय में (धारणाध्यानसमाधित्रयं) धारणा–ध्यान–समाधि तीनों (प्रवर्तमानं संयमसंज्ञया शास्त्रे व्यवह्रियते) वर्तमान हुए संयम नाम से इस शास्त्र में कहे जाते हैं ॥ ४ ॥

(तस्य फलमाह) उस का फल आगे कहते हैं—

तज्जयात्प्रज्ञालोकः ॥ ५ ॥

सू०—उस संयम के जय होने से "विवेकख्यातिरूप प्रज्ञा" की प्राप्ति होती है ॥ ५ ॥

व्या० भाष्यम्

तस्य संयमस्य जयात्समाधिप्रज्ञाया भवत्यालोको यथा यथा संयमः स्थिरपदो भवति तथा तथेश्वरप्रसादात्समाधिप्रज्ञा विशारदी भवति ॥ ५ ॥

व्या० भा० पदार्थ

(तस्य संयमस्य जयात्समाधिप्रज्ञाया भवत्यालोकः) उस संयम के जय होने से समाधि से उत्पन्न हुई बुद्धि का प्रकाश होता है (यथा यथा संयमः स्थिरपदो भवति) जैसे २ संयम स्थिरता को प्राप्त होता है (तथातथेश्वरप्रसादात्समाधिप्रज्ञा विशारदी भवति) वैसे २ ईश्वर कृपा से समाधिविषयिणी बुद्धि प्रकाश करनेवाली होती है ॥ ५ ॥

भो० वृत्ति

तस्य संयमस्य जयादभ्यासेन सात्म्योत्पादनात्प्रज्ञाया विवेकख्यातेरालोकः प्रसवो भवति । प्रज्ञा ज्ञेयं सम्यगवभासयतीत्यर्थः ॥ ५ ॥

तस्योपयोगमाह—

भो० वृ० पदार्थ

(तस्य संयमस्य जयादभ्यासेन) उस संयम के जय अर्थात् अभ्यास से (सात्म्योत्पादनात्प्रज्ञाया विवेकख्यातेरालोकः प्रसवो भवति) आत्म-ज्ञान सहित बुद्धि उत्पन्न करने से विवेकख्याति का साक्षात् होता है । (प्रज्ञा ज्ञेयं सम्यगवभासयतीत्यर्थः) प्रज्ञा जानने योग्य ध्येय को यथार्थ भासित करती है यह अर्थ है ॥ ५ ॥

(तस्योपयोगमाह) अब उस का उपयोग कहते हैं—

तस्य भूमिषु विनियोगः ॥ ६ ॥

सू०—(तस्य) उस का (भूमिषु) भूमियों में (विनियोगः) विशेष योग होता है ॥ ६ ॥

व्या० भाष्यम्

तस्य संयमस्य जितभूमेर्योऽनन्तरा भूमिस्तत्र विनियोगः । न ह्यजिताधरभूमिरनन्तरभूमिं विलङ्घ्य प्रान्तभूमिषु संयमं लभते । तदभावाच्च कुतस्तस्य प्रज्ञालोकः । ईश्वरप्रसादाज्जितोत्तरभूमिकस्य च नाधरभूमिषु परचित्तज्ञानादिषु संयमो युक्तः । कस्मात् तदर्थस्यान्यथैवावगतत्वात् । भूमेरस्या इयमनन्तरा भूमिरित्यत्र योग एवोपाध्यायः । कथम् । एवं ह्युक्तम्—

योगेन योगो ज्ञातव्यो योगो योगात्प्रवर्तते ।
योऽप्रमत्तस्तु योगेन स योगे रमते चिरम् ॥ इति ॥ ६ ॥

व्या० भा० पदार्थ

(तस्य संयमस्य जितभूमेर्योऽनन्तरा भूमिस्तत्र विनियोगः) उस संयम की भूमि जय होनेपर जो उस से पिछली मिली हुई भूमि है उस में विशेष योग होता है । (न ह्यजिताधरभूमिरनन्तर-भूमिं विलङ्घ्य प्रान्तभूमिषु संयमं लभते) क्योंकि बिना नीचे की

भूमि जय किये उस पिछली भूमि को लांघकर उस से और पिछली में संयम नहीं होता। (तदभावाच्च कुतस्तस्य प्रज्ञालोकः) उस के अभाव से किस प्रकार उस ज्ञान विषयिणि बुद्धि का प्रकाश हो। (ईश्वरप्रसादाज्जितोत्तरभूमिकस्य च) ईश्वर कृपा से जय किया है उत्तर भूमि को जिसने (नाधरभूमिषु परचित्त-ज्ञानादिषु संयमो युक्तः) उस को जय की हुई नीचे की भूमियों में संयम करना युक्त नहीं है। (कस्मात) क्योंकि (तदर्थस्यान्य-थैवावगतत्वात्) उस के अर्थ का अन्य प्रकार से ही प्राप्त हो जाने से संयम की आवश्यक्ता नहीं। (भूमेरस्या इयमनन्तरा भूमिरित्यत्र) इस भूमि के पश्चात् वाली यह भूमि है इस विषय में जानने के लिये (योग एवोपाध्यायः) योग ही गुरू है अर्थात् योग करने से ही अगली भूमि की पहचान होती है। किसी के बतलाने से बिना योग किये नहीं जान सक्ता। (कथम्) किस प्रकार कि? (एवं ह्युक्तम्) ऐसा ही कहा है—

(योगेन योगो ज्ञातव्यो योगो योगात्प्रवर्तते।
योऽप्रमत्तस्तु योगेन स योगे रमते चिरम्॥ इति॥)

योग करके योग जानने योग्य है योग से योग प्राप्त होता है। जो प्रमाद रहित हैं वह तो योग के द्वारा योग में चिरकाल तक रमण करते हैं॥ ६॥

भो० वृत्ति

तस्य संयमस्य भूमिषु स्थूलसूक्ष्मालम्बनभेदेन स्थितासु चित्तवृत्तिषु वि-नियोगः कर्तव्यः, अधरामधरां चित्तभूमिं जितां जितां ज्ञात्वोत्तरस्यां भूमौ संयमः कार्यः। न ह्यनात्मीकृताधरभूमिरुत्तरस्यां संयमंकुर्वाणः फल-भाग्भवति॥ ६॥

साधनपादे योगाङ्गान्यष्टावुद्दिश्य पञ्चानां लक्षणं विधाय त्रयाणां कथं न कृतमित्याशङ्कयाऽऽह—

भो० वृ० पदार्थ

(तस्य संयमस्य भूमिषु) उस संयम का भूमि अर्थात् (स्थूलसूक्ष्मालम्बनभेदेन स्थितासु) स्थूल-सूक्ष्म आलम्बन भेद से रहती हुई (चित्तवृत्तिषु) चित्त की वृत्तियों में (विनियोगः कर्त्तव्यः) विनियोग करना चाहिये, (अधरामधरां चित्तभूमिं जितां जितां) नीचे २ की चित्त भूमि को जीत २ कर (ज्ञात्वोत्तरस्यां भूमौ) अर्थात् जानकर उत्तर की भूमि में (संयमः कार्यः) संयम करना योग्य है । (न ह्यनात्मीकृताधरभूमिरुत्तरस्यां भूमौ संयमंकुर्वाणः) अधर भूमि के साक्षात् किये विना उस से उत्तर वाली भूमि में संयम करते हुए (फलभाग्भवति) फल का भागी नहीं होता ॥ ६ ॥

(साधनपादे योगाङ्गान्यष्टावुद्दिश्य) साधनपाद में योग के आठ अङ्गों का वर्णन करके (पञ्चानां लक्षणं विधाय) उन में से पांच का लक्षण कहकर (त्रयाणां कथं न कृतमित्याशङ्कयाऽऽह) तीन का लक्षण क्यों नहीं किया ? इस शङ्का के उत्तर में आगे कहते हैं—

त्रयमन्तरङ्गं पूर्वेभ्यः ॥ ७ ॥

सू०—उन पूर्व पादोक्त पांच बहिरङ्ग साधनों की अपेक्षा से यह तीनों धारणा–ध्यान–समाधि योग के "अन्तरङ्ग" साधन हैं ॥७॥

व्या० भाष्यम्

तदेतद्धारणाध्यानसमाधित्रयमन्तरङ्गं संप्रज्ञातस्य समाधेः पूर्वेभ्यो यमादिभ्यः पञ्चभ्यः साधनेभ्य इति ॥ ७ ॥

व्या० भा० पदार्थ

(तदेतद्धारणाध्यानसमाधित्रयमन्तरङ्गं संप्रज्ञातस्य समाधेः) यह धारणा–ध्यान–समाधि तीनों संप्रज्ञात योग के अन्तरङ्ग साधन हैं (पूर्वेभ्यो यमादिभ्यः पञ्चभ्यः साधनेभ्य इति) पूर्व के यमादि पांच साधनों से यह अर्थ है ॥ ७ ॥

भो० वृत्ति

पूर्वेभ्यो यमादिभ्यो योगाङ्गेभ्यः पारम्पर्येण समाधेरुपकारकेभ्यो धारणादियोगाङ्गत्रयं संप्रज्ञातस्य समाधेरन्तरङ्गं समाधिस्वरूपनिष्पादनात् ॥ ७ ॥

तस्यापि समाध्यन्तरापेक्षया बहिरङ्गत्वमाह—

भो० वृ० पदार्थ

(पूर्वेभ्यो यमादिभ्यो योगाङ्गेभ्यः) पूर्व के यमादि योगाङ्ग से (पारम्पर्येण समाधिरुपकारकेभ्यः) परम्परा द्वारा समाधि के उपकारकों से (धारणादियोगाङ्गत्रयं) धारणादि योग के तीन अङ्ग (संप्रज्ञातस्य समाधेरन्तरङ्गं) संप्रज्ञात समाधि के अन्तरङ्ग हैं (समाधिस्वरूपनिष्पादनात्) समाधि के स्वरूप को प्रकाशित करने के कारण ॥ ७ ॥

(तस्यापि समाध्यन्तरापेक्षया बहिरङ्गत्वमाह) उन का भी दूसरी समाधि की अपेक्षा से बहिरङ्गत्व कहते हैं—

तदपि बहिरङ्गं निर्बीजस्य ॥ ८ ॥

सू०—निर्बीज समाधि के तो वह धारणा–ध्यान–समाधि भी "बहिरङ्ग" साधन ही हैं ॥ ८ ॥

व्या० भाष्यम्

तदप्यन्तरङ्गं साधनत्रयं निर्बीजस्य योगस्य बहिरङ्गं भवति। कस्मात्, तदभावे भावादिति ॥ ८ ॥

अथ निरोधचित्तक्षणेषु चलं गुणवृत्तमिति कीदृशस्तदा चित्तपरिणामः—

व्या० भा० पदार्थ

(तदप्यन्तरङ्गं साधनत्रयं) वह तीनों अन्तरङ्ग साधन भी (निर्बीजस्य योगस्य बहिरङ्गं भवति) निर्बीज समाधि के तो

बहिरङ्ग ही होते हैं । (कस्मात्) क्योंकि, (तदभावे भावादिति) इन के अभाव में असंप्रज्ञात योग होता है ॥ ८ ॥

(अथ चलं गुणवृत्तमिति) अब यह शङ्का होती है कि गुणों की वृत्ति तो चलायमान है (चित्तनिरोध क्षणेषु) चित्त निरोध क्षणों में (किदृशस्तदा चित्तपरिणामः) कैसा उस समय चित्त का परिणाम होता है ?—

भो० वृत्ति

निर्बीजस्य निरालम्बनस्य शून्यभावनापरपर्यायस्य समाधेरेतदपि योगाङ्गत्रयं बहिरङ्गं पारम्पर्येणोपकारकत्वात् ॥ ८ ॥

इदानीं योगसिद्धिराख्यातुकामः संयमस्य विषयपरिशुद्धिं कर्तुं क्रमेण परिणामत्रयमाह—

भो० वृ० पदार्थ

(निर्बीजस्य निरालम्बनस्य शून्यभावनापरपर्यायस्य समाधेः) निर्बीज निरालम्बन जो कार्य—कारण के विचार से शून्य समाधि है (एतदपि योगाङ्गत्रयं बहिरङ्गं) उस में यह तीनों धारण—ध्यान—समाधि भी बहिरङ्ग साधन हैं (पारम्पर्येणोपकारकत्वात्) परम्परा से उपकारक होने से ॥ ८ ॥

(इदानीं योगसिद्धिराख्यातुकामः संयमस्य विषय) अब योग सिद्धि के कथन करने की इच्छा से संयम का विषय (परिशुद्धिं कर्तुंक्रमेण परिणामत्रयमाह) शुद्ध करने को क्रम से तीनों परिणाम कहते हैं—

व्युत्थाननिरोधसंस्कारयोरभिभवप्रादुर्भावौ निरोधक्षणचित्तान्वयो निरोधपरिणामः ॥ ९ ॥

सू०—निरोध क्षण स्वभाव सम्बन्धी चित्त में एक क्षण में व्युत्थान संस्कारों का दबजाना और निरोध संस्कारों का प्रकट

होना, निरोधपरिणाम कहलाता है। इस परिणाम को चित्त धर्मी का धर्म परिणाम कहते हैं ॥ ९ ॥

व्या० भाष्यम्

व्युत्थानसंस्काराश्चित्तधर्मा न ते प्रत्ययात्मका इति प्रत्ययनिरोधे न निरुद्धा निरोधसंस्कारा अपि चित्तधर्मास्तयोरभिभवप्रादुर्भावौ व्युत्थानसंस्कारा हीयन्ते निरोधसंस्कारा आधीयन्ते। निरोधक्षणं चित्तमन्वेति तदेकस्य चित्तस्य प्रतिक्षणमिदं संस्कारान्यथात्वं निरोधपरिणामः। तदा संस्कारशेषं चित्तमिति निरोधसमाधौ व्याख्यातम् ॥ ९ ॥

व्या० भा० पदार्थ

(व्युत्थानसंस्काराश्चित्तधर्माः) व्युत्थान संस्कार भी चित्त के धर्म हैं (न ते प्रत्ययात्मकाः) वह ज्ञानरूप नहीं है (इति प्रत्ययनिरोधे न निरुद्धाः) इस कारण वृत्तियों के रोकने पर रुक जाते हैं (निरोधसंस्कारा अपि चित्तधर्माः) निरोधसंस्कार भी चित्त के धर्म हैं (तयोरभिभवप्रादुर्भावौ) उन का दबना और प्रकट होना यह है कि (व्युत्थानसंस्कारा हीयन्ते) व्युत्थान संस्कार नष्ट किये जाते हैं (निरोधसंस्कारा आधीयन्ते) और निरोध संस्कार धारण किये जाते हैं। (निरोधक्षणं चित्तमन्वेति) निरोध क्षण सम्बन्धवाला चित्त यह है कि (तदेकस्य चित्तस्य प्रतिक्षणमिदं संस्कारान्यथात्वं) उस एक चित्त का एक क्षण में संस्कार का ऊपर कहे अनुसार अन्यथा परिणाम होना (निरोधपरिणामः) निरोध परिणाम कहलाता है। (तदा संस्कारशेषं चित्तमिति निरोधसमाधौ व्याख्यातम्) उस काल में संस्कारशेष वाला चित्त होता है यह निरोध समाधि में कहा गया है ॥ ९ ॥

भो० वृत्ति

व्युत्थानं क्षिप्तमूढविक्षिप्ताख्यं भूमित्रयम् । निरोधः प्रकृष्टसत्त्वस्याङ्गितया चेतसः परिणामः । ताभ्यां व्युत्थाननिरोधाभ्यां यौ जनितौ संस्कारौ तयोर्यथाक्रममभिभवप्रादुर्भावौ यदा भवतः । अभिभवो न्यग्भूततया कार्यकरणसामर्थ्येनावस्थानम् । प्रादुर्भावो वर्तमानेऽध्वनि अभिव्यक्तरूपतयाऽवस्थानम् । तदा निरोधक्षणे चित्तस्योभयवृत्तित्वादन्वयो यः स निरोधपरिणाम उच्यते । अयमर्थः—यदा व्युत्थानसंस्काररूपो धर्मस्तिरोभूतो भवति, निरोधसंस्काररूपश्चाऽऽविर्भवति, धर्मिरूपतया च चित्तमुभयत्रान्वयित्वेनाऽवस्थितं प्रतीयते, तदा स निरोधपरिणामशब्देन व्यवह्रियते । चलत्वाद्गुणवृत्तस्य यद्यपि चेतसो निश्चलत्वं नास्ति तथाऽपि एवंभूतः परिणामः स्थैर्यमुच्यते ॥ ९ ॥

तस्यैव फलमाह—

भो० वृ० पदार्थ

(व्युत्थानं क्षिप्तमूढविक्षिप्ताख्यं भूमित्रयम्) क्षिप्त–मूढ–विक्षिप्त नाम वाली तीनों भूमि "व्युत्थान" कहलाती हैं । (निरोधः प्रकृष्टसत्त्वस्याङ्गितया चेतसः परिणामः) सत्त्व की वृद्धिरूप अङ्गिता से चित्त का परिणाम "निरोध" कहलाता है । (ताभ्यां व्युत्थाननिरोधाभ्यां) उन दोनों व्युत्थान–निरोध के (यौ जनितौ संस्कारौ) जो वह दोनों उत्पन्न हुए संस्कार (तयोर्यथाक्रममभिभवप्रादुर्भावौ यदा भवतः) उन दोनों का यथाक्रम दबना और प्रकट होना जब होता है । (अभिभवो न्यग्भूततया कार्यकरणसामर्थ्येनावस्थानम्) अभिभाव का यह अर्थ है कि निर्बल रूपता से कार्य करने की सामर्थ्य से रहित होकर रहना । (प्रादुर्भावो वर्तमानेऽध्वनि अभिव्यक्तरूपतयाऽवस्थानम्) प्रादुर्भाव का अर्थ यह है कि वर्तमान मार्ग में प्रकटतारूप से रहना । (तदा निरोधक्षणे चित्तस्योभयवृत्तित्वादन्वयो यः) उस निरोध क्षण में चित्त को

दोनों के वर्तने से जो उस का सम्बन्ध है (स निरोधपरिणाम उच्यते) वह निरोध परिणाम कहा जाता है। (अयमर्थः) यह अर्थ है—(यदा व्युत्थानसंस्काररूपो धर्मस्तिरोभूतो भवति) जब व्युत्थान संस्काररूप धर्म दब जाता है, (निरोधसंस्काररूपश्चाऽऽविर्भवति) निरोध संस्कार का रूप प्रकट होता है, (धर्मिरूपतया च चित्तमुभयत्रान्वयित्वेनाऽवस्थितं प्रतीयते) और धर्मीरूप से चित्त दोनों में अन्वयि भाव से रहता हुआ जाना जाता है, (तदा स निरोधपरिणामशब्देन व्यवह्रियते) तब वह निरोध परिणाम शब्द से कहा जाता है। (चलत्वाद्गुणवृत्तस्य) गुणों की वृत्ति चल स्वभाव होने के कारण (यद्यपि चेतसो निश्चलत्वं नास्ति) यदि चित्त निश्चल नहीं है (तथाऽपि एवंभूतः परिणामः स्थैर्यमुच्यते) तो भी ऐसा परिणाम हुआ २ चित्त स्थिर कहा जाता है ॥ ९ ॥

(तस्यैव फलमाह) उस का ही फल कहते हैं—

तस्य प्रशान्तवाहिता संस्कारात् ॥ १० ॥

सू०—उस निरोध संस्कार की दृढ़ता से शान्त-प्रवाह वाली गति चित्त की होती है ॥ १० ॥

व्या० भाष्यम्

निरोधसंस्काराभ्यासपाटवापेक्षा प्रशान्तवाहिता चित्तस्य भवति। तत्संस्कारमान्द्ये व्युत्थानधर्मिणा संस्कारेण निरोधधर्मसंस्कारोऽभिभूयत इति ॥ १० ॥

व्या० भा० पदार्थ

(निरोधसंस्काराभ्यासपाटवापेक्षा प्रशान्तवाहिता चित्तस्य भवति) निरोधसंस्कारों के अभ्यास दृढ़ करने की आवश्यक्ता है क्योंकि उससे चित्त की शान्तप्रवाह वाली गति होती है। (तत्संस्कारमान्द्ये) क्योंकि उन संस्कारों की मन्दता में (व्युत्थानधर्मिणा संस्कारेण निरोधधर्मसंस्कारोऽभिभूयत इति) व्युत्थान धर्म वाले संस्कारों से निरोध धर्म वाले संस्कार दब जाते हैं ॥१०॥

भो० वृत्ति

तस्य चेतसो निरुक्तान्निरोधसंस्काराव्प्रशान्तवाहिता भवति । परिहृत-विक्षेपतया सदृशप्रवाहपरिणामि चित्तं भवतीत्यर्थः ॥ १० ॥

निरोधपरिणाममभिधाय समाधिपरिणाममाह—

भो० वृ० पदार्थ

(तस्य चेतसो निरुक्तान्निरोधसंस्काराव्प्रशान्तवाहिता भवति) चित्त के उन ऊपर कहे निरोध संस्कारों से चित्त की शान्त-प्रवाहवाली गति होती है । (परिहृतविक्षेपतया सदृशप्रवाहपरिणामि चित्तं भवतीत्यर्थः) विक्षेप हरन द्वारा समान प्रवाहवाला परिणाम चित्त का होता है, यह अर्थ है ॥ १० ॥

(निरोधपरिणाममभिधाय समाधिपरिणाममाह) निरोध परिणाम को कहकर अब आगे समाधि परिणाम को कहते हैं—

सर्वार्थतैकाग्रतयोः क्षयोदयौ चित्तस्य समाधिपरिणामः ॥ ११ ॥

सू०—चित्त की सर्वार्थता अर्थात् सर्व विषयों में गतिरूप भाव का नाश और एकाग्रता की उत्पत्ति को "समाधिपरिणाम" कहते हैं ॥ ११ ॥

व्या० भाष्यम्

सर्वार्थता चित्तधर्मः । एकाग्रताऽपि चित्तधर्मः । सर्वार्थतायाः क्षयस्तिरोभाव इत्यर्थः । एकाग्रताया उदय आविर्भाव इत्यर्थः । तयोर्धर्मित्वेनानुगतं चित्तं, तदिदं चित्तमपायोपजनयोः स्वात्मभूतयोर्धर्मयोरनुगतं समाधीयते स चित्तस्य समाधिपरिणामः । ११॥

व्या० भा० पदार्थ

(सर्वार्थता चित्तधर्मः) सर्व अर्थों में लगना चित्त का धर्म है । (एकाग्रताऽपि चित्तधर्मः) सर्व विषयों को त्याग कर एक

विषय में लगना भी चित्त का धर्म है। (सर्वार्थतायाः क्षयस्तिरोभाव इत्यर्थः) सर्वार्थता का नाश = दब जाना, यह अर्थ है। (एकाग्रताया उदय आविर्भाव इत्यर्थः) एकाग्रता की उत्पत्ति अर्थात् प्रकट होना यह अर्थ है (तयोर्धर्मित्वेनानुगतं चित्तं) उन दोनों के साथ धर्मिभाव से चित्त का सम्बन्ध है, (तदिदं चित्तमपायोपजनयोः स्वात्मभूतयोर्धर्मयोरनुगतं समाधीयते) वह यह चित्त अपने स्वरूप भूत नाश और उत्पत्ति दोनों धर्मों से युक्त हुआ एकाग्र होकर विचार करता है (स चित्तस्य समाधिपरिणामः) वह चित्त का समाधि परिणाम है ॥ ११ ॥

भो० वृत्ति

सर्वार्थता चलत्वान्नानाविधार्थग्रहणं चित्तस्य विक्षेपो धर्मः। एकस्मिन्नेवाऽऽलम्बने सदृशपरिणामितैकाग्रता, साऽपि चित्तस्य धर्मः। तयोर्यथाक्रमं क्षयोदयौ सर्वार्थतालक्षणस्य धर्मस्य क्षयोऽत्यन्ताभिभव एकाग्रतालक्षणस्य धर्मस्य प्रादुर्भावोऽभिव्यक्तिश्चित्तस्योद्रिक्तसत्त्वस्यान्वयितयाऽवस्थानं समाधिपरिणाम इत्युच्यते। पूर्वस्मात्परिणामादस्यायं विशेषः—तत्र संस्कारलक्षणयोर्धर्मयोरभिभवप्रादुर्भावौ पूर्वस्य व्युत्थानसंस्काररूपस्य न्यग्भावः। उत्तरस्य निरोधसंस्काररूपस्योद्भवोऽनभिभूतत्वेनावस्थानम्। इह तु क्षयोदयाविति सर्वार्थतारूपस्य विक्षेपस्यात्यन्ततिरस्कारादनुत्पत्तिरतीतेऽध्वनि प्रवेशः क्षय एकाग्रतालक्षणस्य धर्मस्योद्भवो वर्तमानेऽध्वनि प्रकटत्वम् ॥ ११ ॥

तृतीयमेकाग्रतापरिणाममाह—

भो० वृ० पदार्थ

(सर्वार्थता चलत्वान्नानाविधार्थग्रहणं) चल स्वभाव वाला होने से अनेक प्रकार के अर्थों को ग्रहण करना सर्वार्थता (चित्तस्य विक्षेपो धर्मः) चित्त का विक्षेपरूपी धर्म है। (एकस्मिन्नेवाऽऽलम्बने सदृशपरिणामितै-

काग्रता, साऽपि चित्तस्य धर्मः) एक ही विषय में समान परिणामता से जो एकाग्रता होती है वह भी चित्त का धर्म है । (तयोर्यथाक्रमं क्षयोदयौ सर्वार्थतालक्षणस्य धर्मस्य क्षयः) उन दोनों की यथाक्रम नाश और उत्पत्ति यह है कि सर्वार्थतारूप धर्म का नाश (अत्यन्ताभिभव) अत्यन्त दब जाना (एकाग्रतालक्षणस्य धर्मस्य प्रादुर्भावोऽभिव्यक्ति) एकाग्रतारूप धर्म की उत्पत्ति प्रकटना (चित्तस्योद्रिक्तसत्त्वस्यान्वयितयाऽवस्थानं) चित्त में सत्त्वगुण की अधिकता का अन्वयि भाव से रहना (समाधिपरिणाम इत्युच्यते) समाधि परिणाम इसको कहा जाता है । (पूर्वस्मात्परिणामादस्यायं विशेषः) पूर्व के परिणाम से इसकी यह विशेषता है कि—(तत्र संस्कारलक्षणयोर्धर्मयोरभिभवप्रादुर्भावौ) उनमें दोनों रूपों वाले संस्कार धर्मों का नाश और उत्पत्ति (पूर्वस्य व्युत्थानसंस्काररूपस्य न्यग्भावः) पहले व्युत्थान रूप संस्कार का न्यून होना । (उत्तरस्य निरोधसंस्काररूपस्योद्भवोऽनभिभूतत्वेनावस्थानम्) उत्तर वाले निरोध रूप संस्कार की प्रकटता अर्थात् प्रकाशित रहना । (इह तु क्षयोदयाविति) इस सूत्र में तो नाश और उदय दोनों यह हैं कि (सर्वार्थतारूपस्य विक्षेपस्यात्यन्ततिरस्कारादनुत्पत्तिरतीतेऽध्वनि प्रवेशः क्षयः) सर्वार्थतारूप विक्षेप के अत्यन्त न्यून होने से अनुत्पत्ति, अतीत मार्ग में प्रवेश अर्थात् नाश (एकाग्रतालक्षणस्य धर्मस्योद्भवो वर्तमानेऽध्वनि प्रकटत्वम्) एकाग्रतारूप धर्म की उत्पत्ति, वर्तमान मार्ग में प्रकटता होना है ॥ ११ ॥

(तृतीयमेकाग्रतापरिणाममाह) अब तीसरे एकाग्रता रूप परिणाम को कहते हैं—

ततः पुनः शान्तोदितौ तुल्यप्रत्ययौ चित्तस्यैकाग्रतापरिणामः ॥ १२ ॥

सू०—(ततः पुनः शान्तोदितौ तुल्यप्रत्ययौ) उस समाहित चित्त में पूर्व वृत्ति शान्त होने पर उत्तर वृत्ति का उसके

समान ही उत्पन्न होना (चित्तस्यैकाग्रतापरिणामः) चित्त का एकाग्रतारूप परिणाम कहलाता है ॥ १२ ॥

व्या० भाष्यम्

समाहितचित्तस्य पूर्वप्रत्ययः शान्त उत्तरस्तत्सदृश उदितः, समाधिचित्तमुभयोरनुगतं पुनस्तथैवाऽऽसमाधिभ्रेषादिति । स खल्वयं धर्मिणश्चित्तस्यैकाग्रतापरिणामः ॥ १२ ॥

व्या० भा० पदार्थ

(समाहितचित्तस्य पूर्वप्रत्ययः शान्तः) उस एकाग्र चित्त की पूर्व वृत्ति शान्त (उत्तरस्तत्सदृश उदितः) उत्तर वृत्ति का उसके समान उत्पन्न होना, (समाधिचित्तमुभयोरनुगतं) समाधिविपयिणि बुद्धि में दोनों युक्त होते हैं (पुनस्तथैवाऽऽसमाधिभ्रेषादिति) समाधि अभाव काल में फिर वैसी ही हो जाती हैं । (स खल्वयं धर्मिणश्चित्तस्यैकाग्रतापरिणामः) निश्चय वह यही धर्मी चित्त का एकाग्रतारूप परिणाम है इसी को चित्त धर्मी का धर्म भी कहते हैं ॥१२॥

भो० वृत्ति

समाहितस्यैव चित्तस्यैकप्रत्ययो वृत्तिविशेषः शान्तोऽतीतमध्वानं प्रविष्टः । अपरस्तूदितो वर्तमानेऽध्वनि स्फुरितः । द्वावपि समाहितचित्तत्वेन तुल्यावेकरूपालम्बनत्वेन सदृशौ प्रत्ययावुभयत्रापि समाहितस्यैव चित्तस्यान्वयित्वेनावस्थानं, स एकाग्रतापरिणाम इत्युच्यते ॥ १२ ॥

चित्तपरिणामोक्तं रूपमन्यत्राप्यतिदिशन्नाह—

भो० वृ० पदार्थ

(समाहितस्यैव चित्तस्यैकप्रत्ययो वृत्तिविशेषः शान्तः) समाहित चित्त की एक वृत्ति विशेष शान्त (अतीतमध्वानं प्रविष्टः) अतीत मार्ग

में प्रविष्ट हुई । (अपरस्तूदितो वर्तमानेऽध्वनि स्फुरितः) दूसरी उदित वर्तमान मार्ग में वर्तती हुई । (द्वावपि समाहितचित्तत्वेन तुल्यावेक-रूपालम्बनत्वेन सदृशौ प्रत्ययौ) चित्त एकाग्रता के कारण एक समान रूप की आलम्बनता से दोनों वृत्तियें समान, (उभयत्रापि समाहितस्यैव चित्तस्यान्वयित्वेनावस्थानं) दोनों में भी समाहित चित्त का अन्वयि भाव से रहना, (स एकाग्रतापरिणाम इत्युच्यते) वह एकाग्रता परिणाम है, ऐसा कहा जाता है ॥ १२ ॥

(चित्तपरिणामोक्तं रूपमन्यत्राप्यतिदिशन्नाह) ऊपर कहा हुआ जो चित्त परिणाम अन्यत्र भी उस की गति कहते हैं--

एतेन भूतेन्द्रियेषु धर्मलक्षणावस्थापरिणामा व्याख्याताः ॥ १३ ॥

सू०—ऊपर कहे तीन प्रकार के चित्तपरिणाम से स्थूल-सूक्ष्म भूतों और सर्व इन्द्रियों में धर्मपरिणाम-लक्षणपरिणाम-अवस्थापरिणाम कहे गये जानो ॥ १३ ॥

व्या० भाष्यम्

एतेन पूर्वोक्तेन चित्तपरिणामेन धर्मलक्षणावस्थारूपेण भूतेन्द्रियेषु धर्मपरिणामो लक्षणपरिणामोऽवस्थापरिणामश्चोक्तो वेदितव्यः । तत्र व्युत्थाननिरोधयोर्धर्मयोरभिभवप्रादुर्भावौ धर्मिणि धर्मपरिणामः । लक्षणपरिणामश्च । निरोधस्त्रिलक्षणस्त्रिभिरध्वभिर्युक्तः । स खल्वनागतलक्षणमध्वानं प्रथमं हित्वा धर्मत्वमनतिक्रान्तो वर्तमानलक्षणं प्रतिपन्नः । यत्रास्य स्वरूपेणाभिव्यक्तिः । एषोऽस्य द्वितीयोऽध्वा । न चातीतानागताभ्यां लक्षणाभ्यां वियुक्तः ।

तथा व्युत्थानं त्रिलक्षणं त्रिभिरध्वभिर्युक्तं वर्तमानलक्षणं हित्वा धर्मत्वमनतिक्रान्तमतीतलक्षणं प्रतिपन्नम् । एषोऽस्य तृतीयोऽध्वा । न चानागतवर्तमानाभ्यां लक्षणाभ्यां वियुक्तम् । एवं पुनर्व्युत्थान-

मुपसंपद्यमानमनागतलक्षणं हित्वा धर्मत्वमनतिक्रान्तं वर्तमानलक्षणं प्रतिपन्नम्। यत्रास्य स्वरूपाभिव्यक्तौ सत्यां व्यापारः। एषोऽस्य द्वितीयोऽध्वा। न चातीतानागताभ्यां लक्षणाभ्यां वियुक्तमिति। एवं पुनर्निरोध एवं पुनर्व्युत्थानमिति।

तथाऽवस्थापरिणामः। तत्र निरोधक्षणेषु निरोधसंस्कारा बलवन्तो भवन्ति दुर्बला व्युत्थानसंस्कारा इति। एष धर्माणामवस्था परिणामः। तत्र धर्मिणो धर्मैः परिणामो धर्माणां त्र्यध्वनां लक्षणैः परिणामो लक्षणानामप्यवस्थाभिः परिणाम इति। एवं धर्मलक्षणावस्थापरिणामैः शून्यं न क्षणमपि गुणवृत्तमवतिष्ठते। चलं च गुणवृत्तम्। गुणस्वाभाव्यं तु प्रवृत्तिकारणमुक्तं गुणानामिति। एतेन भूतेन्द्रियेषु धर्मधर्मिभेदात्त्रिविधः परिणामो वेदितव्यः।

परमार्थतस्त्वेक एव परिणामः। धर्मिस्वरूपमात्रो हि धर्मो धर्मिविक्रियैवैषा धर्मद्वारा प्रपञ्च्यत इति। तत्र धर्मस्य धर्मिणि वर्तमानस्यैवाध्वस्वतीतानागतवर्तमानेषु भावान्यथात्वं भवति न तु द्रव्यान्यथात्वम्। यथा सुवर्णभाजनस्य भित्त्वाऽन्यथाक्रियमाणस्य भावान्यथात्वं भवति न सुवर्णान्यथात्वमिति।

अपर आह—धर्मानभ्यधिको धर्मी पूर्वतत्त्वानतिक्रमात्। पूर्वापरावस्थाभेदमनुपतितः कौटस्थ्येनैव परिवर्तेत यद्यन्वयी स्यादिति। अयमदोषः। कस्मात्। एकान्ततानभ्युपगमात्। तदेतत्त्रैलोक्यं व्यक्तेरपैति नित्यत्वप्रतिषेधात्। अपेतमप्यस्ति विनाशप्रतिषेधात्। संसर्गाच्चास्य सौक्ष्म्यं, सौक्ष्म्याच्चानुपलब्धिरिति।

लक्षणपरिणामो धर्मोऽध्वसु वर्तमानोऽतीतोऽतीतलक्षणयुक्तोऽनागतवर्तमानाभ्यां लक्षणाभ्यामवियुक्तः। तथाऽनागतोऽनागतलक्षणयुक्तो वर्तमानातीताभ्यां लक्षणाभ्यामवियुक्तः। तथा वर्तमानो वर्तमानलक्षणयुक्तोऽतीतानागताभ्यां लक्षणाभ्यामवियुक्त इति। यथा पुरुष एकस्यां स्त्रियां रक्तो न शेषासु विरक्तो भवतीति।

अत्र लक्षणपरिणामे सर्वस्य सर्वलक्षणयोगादध्वसंकरः प्राप्नोतीति परैर्दोषश्चोद्यत इति । तस्य परिहारः—धर्माणां धर्मत्वमप्रसाध्यम् । सति च धर्मत्वे लक्षणभेदोऽपि वाच्यो न वर्तमानसमय एवास्य धर्मत्वम् । एवं हि न चित्तं रागधर्मकं स्यात्क्रोधकाले रागस्यासमुदाचारादिति ।

किञ्च त्रयाणां लक्षणानां युगपदेकस्यां व्यक्तौ नास्ति संभवः । क्रमेण तु स्वव्यञ्जकाञ्जनस्य भावो भवेदिति । उक्तं च रूपातिशया वृत्त्यतिशयाश्च विरुध्यन्ते, सामान्यानि त्वतिशयैः सह प्रवर्तन्ते । तस्मादसंकरः । यथा रागस्यैव क्वचित्समुदाचार इति न तदानीमन्यत्राभावः किंतु केवलं सामान्येन समन्वागत इत्यस्ति तदा तत्र तस्य भावः । तथा लक्षणस्येति ।

न धर्मी त्र्यध्वा धर्मास्तु त्र्यध्वानस्ते लक्षिता अलक्षितास्तत्र लक्षितास्तां तामवस्थां प्राप्नुवन्तोऽन्यत्वेन प्रतिनिर्दिश्यन्तेऽवस्थान्तरतो न द्रव्यान्तरतः । यथैका रेखा शतस्थाने शतं दशस्थाने दशैका चैकस्थाने । यथा चैकत्वेऽपि स्त्री माता चोच्यते दुहिता च स्वसा चेति ।

अवस्थापरिणामे कौटस्थ्यप्रसङ्गदोषः कैश्चिदुक्तः । कथम् । अध्वनो व्यापारेण व्यवहितत्वात् । यदा धर्मः स्वव्यापारं न करोति तदाऽनागतो यदा करोति तदा वर्तमानो यदा कृत्वा निवृत्तस्तदाऽतीत इत्येवं धर्मधर्मिणोर्लक्षणानामवस्थानां च कौटस्थ्यं प्राप्नोतीति परैर्दोष उच्यते ।

नासौ दोषः । कस्मात् । गुणिनित्यत्वेऽपि गुणानां विमर्दवैचित्र्यात् । यथा संस्थानमादिमद्धर्ममात्रं शब्दादीनां गुणानां विनाश्यविनाशिनामेवं लिङ्गमादिमद्धर्ममात्रं सत्त्वादीनां गुणानां विनाश्यविनाशिनां तस्मिन्विकारसंज्ञेति ।

तत्रेदमुदाहरणं मृद्धर्मी पिण्डाकाराद्धर्माद्धर्मान्तरमुपसंपद्यमानो

धर्मतः परिणमते घटाकार इति। घटाकारोऽनागतं लक्षणं हित्वा वर्तमानलक्षणं प्रतिपद्यत इति लक्षणतः परिणमते। घटो नवपुराणतां प्रतिक्षणमनुभवन्नवस्थापरिणामं प्रतिपद्यत इति। धर्मिणोऽपि धर्मान्तरमवस्था धर्मस्यापि लक्षणान्तरमवस्थेत्येक एव द्रव्यपरिणामो भेदेनोपदर्शित इति। एवं पदार्थान्तरेष्वपि योज्यमिति। त एते धर्मलक्षणावस्थापरिणामा धर्मिस्वरूपमनतिक्रान्ता इत्येक एव परिणामः सर्वानमून्विशेषानभिप्लवते। अथ कोऽयं परिणामः। अवस्थितस्य द्रव्यस्य पूर्वधर्मनिवृत्तौ धर्मान्तरोत्पत्तिः परिणाम इति॥ १३॥

तत्र—

व्या० भा० पदार्थ

(एतेन पूर्वोक्तेन चित्तपरिणामेन) इस ऊपर कहे चित्त परिणाम को (धर्मलक्षणावस्थारूपेण) धर्म-लक्षण-अवस्थारूप भेद से (भूतेन्द्रियेषु) भूत और इन्द्रियों में (धर्मपरिणामो लक्षणपरिणामोऽवस्थापरिणामश्चोक्तो वेदितव्यः) धर्मपरिणाम-लक्षणपरिणाम-अवस्थापरिणाम कहा गया जानने योग्य है। (तत्र व्युत्थाननिरोधयोर्धर्मयोरभिभवप्रादुर्भावौ) उनमें व्युत्थान-निरोध दोनों धर्मों का नाश और उत्पत्ति दोनों (धर्मिणि धर्मपरिणामः) धर्मी में "धर्मपरिणाम" है। (लक्षणपरिणामश्च) और लक्षणपरिणाम यह है कि। (निरोधस्त्रिलक्षणः) निरोध भी तीन लक्षणों वाला है (त्रिभिरध्वभिर्युक्तः) अतीत-अनागत-वर्तमान तीन मार्गों से युक्त हैं। (स खल्वनागतलक्षणमध्वानं प्रथमं हित्वा) निश्चय वह निरोध अनागतरूप मार्ग प्रथम त्यागकर (धर्मत्वमनतिक्रान्तो वर्तमानलक्षणं प्रतिपन्नः) धर्मभाव को न छोड़ता हुआ वर्तमानरूप को प्राप्त हुआ। (यत्रास्य स्वरूपेणाभिव्यक्तिः) जिसमें

इसकी स्वरूप से प्रकटता है। (एषोऽस्य द्वितियोऽध्वा । न चातीतानागताभ्यां लक्षणाभ्यां वियुक्तः) यह इस का दूसरा मार्ग है कि अतीत-अनागत दोनों लक्षणों से रहित न होना अर्थात् सदा के लिये निरोध रहना।

(तथा व्युत्थानं त्रिलक्षणं) वैसा ही व्युत्थान भी तीन लक्षणों वाला है (त्रिभिरध्वभिर्युक्तं) तीन मार्गों से युक्त है (वर्तमानलक्षणं हित्वा धर्मत्वमनतिक्रान्तमतीतलक्षणं प्रतिपन्नम्) वर्तमान रूप को त्यागकर धर्मभाव को न त्यागता हुआ अतीतलक्षण को प्राप्त होना (एषोऽस्य तृतीयोऽध्वा) यह इस निरोध का तीसरा मार्ग है। (न चानागतवर्तमानाभ्यां लक्षणाभ्यां वियुक्तम्) अनागत और वर्तमान लक्षणों से रहित न होना (एवं पुनर्व्युत्थानमुपसंपद्यमानमनागतलक्षणं हित्वा धर्मत्वमनतिक्रान्तं वर्तमानलक्षणं प्रतिपन्नम्) इसी प्रकार फिर व्युत्थान को प्राप्त हुए अनागत लक्षण को त्यागकर धर्मभाव को न त्यागते हुए वर्तमान लक्षण को प्राप्त होकर रहना। (यत्रास्य स्वरूपाभिव्यक्तौ सत्यां व्यापारः) जिस व्यापार में इसके स्वरूप की प्रकटता है। (एषोऽस्य द्वितियोऽध्वा) यह इसका दूसरा मार्ग है कि। (न चातीतानागताभ्यां लक्षणाभ्यां वियुक्तमिति) अतीत अनागत लक्षणों से रहित न होना। (एवं पुनर्निरोधः) इस प्रकार फिर निरोध (एवं पुनर्व्युत्थानमिति) इस प्रकार फिर व्युत्थान।

(तथाऽवस्थापरिणामः) वैसा ही अवस्था परिणाम है। (तत्र निरोधलक्षणेषु निरोधसंस्काराः) उन में निरोधलक्षणों में निरोध के संस्कार (बलवन्तो भवन्ति) बलवान होते हैं (दुर्बला व्युत्थानसंस्कारा इति) और व्युत्थान के संस्कार दुर्बल होते हैं। (एष धर्माणामवस्थापरिणामः) यह निरोधादि धर्मों का "अवस्थापरिणाम" है। (तत्र धर्मिणो धर्मैः परिणामः) उनमें धर्मी का धर्मों

से परिणाम होता है (धर्माणां त्र्यध्वनां लक्षणैः परिणामः) धर्मों का तीन मार्गवाले लक्षणों से परिणाम होता है (लक्षणानामप्यवस्थाभिः परिणाम इति) लक्षणों का अवस्था से परिणाम होता है। (एवं धर्मलक्षणावस्थापरिणामैः शून्यं न क्षणमपि गुणवृत्तमवतिष्ठते) इस प्रकार धर्म–लक्षण–अवस्थापरिणामों से शून्य एकक्षण भी गुणवृत्ति नहीं रहती। (चलं च गुणवृत्तम्) गुणों की वृत्ति चलस्वभाववाली है। (गुणस्वाभाव्यं तु प्रवृत्तिकारणमुक्तं गुणानामिति) गुणों का स्वभाव तो प्रवृत्ति का कारण है, गुणों का यहांतक वर्णन किया गया। (एतेन भूतेन्द्रियेषु धर्मधर्मिभेदात्त्रिविधः परिणामो वेदितव्यः) इस से भूत–इन्द्रियों में भी धर्म–धर्मी के भेद से त्रिविध परिणाम जानलेना चाहिये।

(परमार्थतस्त्वेक एव परिणामः) यथार्थ में तो यह सब एक ही परिणाम है। (धर्मिस्वरूपमात्रो हि धर्मः) धर्मी का स्वरूप मात्र ही धर्म है कोई भिन्न वस्तु नहीं (धर्मिविक्रियैवैषा धर्मद्वारा प्रपञ्च्यत इति) धर्मी का विकार ही यह धर्म नाम से कहा जाता है। (तत्र धर्मस्य धर्मिणि वर्तमानस्यैवाध्वस्वतीतानागतवर्तमानेषु भावान्यथात्वं भवति) उन में धर्मी में वर्तमान हुए धर्मों का अतीत–अनागत–वर्तमान मार्गों में भाव अन्यथा होता है (न तु द्रव्यान्यथात्वम्) न कि द्रव्य का अन्यथापन, भाव यह है कि कार्य का रूप बदलता है कारण का स्वरूप नहीं बदलता। (यथा सुवर्णभाजनस्य भित्त्वाऽन्यथाक्रियमाणस्य भावान्यथात्वं भवति न सुवर्णान्यथात्वमिति) जैसे सुवर्ण के पात्र को तोड़ कर दूसरे रूप से बनाये हुए पात्र का स्वरूप अन्यथा होता है सुवर्ण का स्वरूप नहीं बदल जाता जैसे सोने की थाली को तोड़ कर उसी सोने का गिलास बनाया तो पात्र का स्वरूप बदल गया सुवर्ण का स्वरूप नहीं बदला वह तो ज्यों का त्यों रहा। इसी प्रकार चित्त धर्मी का स्वरूप नहीं बदलता निरोधादि धर्मों का भाव बदलता है।

(अपरं आह) और कोई तार्किक कहता है—(धर्मानभ्यधिको धर्मी) धर्मों से धर्मी बड़ा है (पूर्वतत्त्वानतिक्रमात्) पूर्व स्वरूप के न त्यागने से । (पूर्वापरावस्थाभेदमनुपतितः कौटस्थ्येनैव परिवर्तेत) पूर्वापर अवस्था भेद को प्राप्त हुआ कूटस्थरूप से ही वर्तता है अर्थात् सदा एकसा रहता है (यद्यन्वयी स्यादिति) और यदि अन्वयि हो तो ।

(अयमदोषः) यह दोष है । (कस्मात्) क्योंकि । (एकान्ततानभ्युपगमात्) सदा एक समान स्वरूप न रहने से । (तदेतत्त्रैलोक्यं व्यक्तेरपैति) वह यह तीनों लोक स्थूलता को प्राप्त होते हैं (नित्यत्वप्रतिषेधात्) इस से नित्यत्व का निषेध होने से । (अपेतमप्यस्ति विनाशप्रतिषेधात्) प्रलय भी होता है इसलिये नाश का भी निषेध होने से संशय होता है, इसका उत्तर देते हैं । (संसर्गाच्चास्य सौक्ष्म्यं, सौक्ष्म्याच्चानुपलब्धिरिति) कारण में लय होने से सूक्ष्मता अर्थात् दृष्टीगोचर नहीं होता इस लिये सूक्ष्म होने से उपलब्धि नहीं होती ।

(लक्षणपरिणामो धर्मोऽध्वसु वर्तमानः) लक्षणपरिणाम धर्म तीन मार्गों में वर्तमान होता है (अतीतोऽतीतलक्षणयुक्तोऽनागतवर्तमानाभ्यां लक्षणाभ्यामवियुक्तः) अतीत अतीतरूप से युक्त होता है अनागत वर्तमान दोनों रूपों से रहित होता है । (तथाऽनागतोऽनागतलक्षणयुक्तो वर्तमानातीताभ्यां लक्षणाभ्यामवियुक्तः) वैसे ही अनागत अनागतरूप से युक्त वर्तमान और अतीतरूपों से रहित होता है । (तथा वर्तमानो वर्तमानलक्षणयुक्तोऽतीतानागताभ्यां लक्षणाभ्यामवियुक्तः) वैसे ही वर्तमान वर्तमानरूप से युक्त अतीत अनागतरूप से रहित होता है (इति) यह लक्षणपरिणाम है । अब कोई नास्तिक इस प्रकार दोष उठाता है । (यथा पुरुष एकस्यां स्त्रियां रक्तो न शेषासु विरक्तो भवतीति) जैसे पुरुष एक स्त्री में रक्त होता है तो औरों में विरक्त नहीं होता ।

(अत्र लक्षणपरिणामे सर्वस्य सर्वलक्षणयोगादध्वसंकरः प्राप्नोतीति) सो इस लक्षणपरिणाम में भी सबका सब लक्षणों के साथ योग होने से सब का मार्ग एकमेक होता है। (परैर्दोषश्चोद्यत इति) इस प्रकार दूसरे मत वाले दोष उठाते हैं। (तस्य परिहारः) उस का समाधान यह है कि—(धर्माणां धर्मत्वमप्रसाध्यम्) धर्मों का धर्मत्व साधने योग्य है (सति च धर्मत्वे लक्षणभेदोऽपि वाच्यः) धर्म के हेतु हुए लक्षण भेद भी मानने योग्य हैं (न वर्तमानसमय एवास्य धर्मत्वम्) क्योंकि वर्तमानकाल में ही इसका धर्मत्व नहीं है। [किन्तु अतीत अनागत में भी है] (एवं हि न चित्तं रागधर्मकं स्यात्) इस प्रकार चित्त केवल रागधर्मक ही नहीं है (क्रोधकाले रागस्यासमुदाचारादिति) क्रोध काल में राग नहीं वर्तता है।

(किंच त्रयाणां लक्षणानां युगपदेकस्यां व्यक्तौ नास्ति संभवः) किन्तु तीनों लक्षण एक व्यक्ति में एक साथ नहीं होसक्ते। (क्रमेण तु स्वव्यञ्जकाञ्जनस्य भावो भवेदिति) क्रम से अपने के प्रकाश द्वारा उत्पन्न होते हैं। (उक्तं च रूपातिशया वृत्त्यतिशयाश्च विरुध्यन्ते) रूप की अधिकता से वृत्ति की अधिकता होकर गुण परस्पर विरोध करते हैं यह पूर्व कहा गया, (सामान्यानि त्वतिशयैः सह प्रवर्तन्ते) सामान्य गुण बढ़े हुए गुण के साथ वर्तते हैं। (तस्मादसंकरः) इस कारण भूत—भविष्यत—वर्तमान तीनों मार्गों का रूप एक नहीं होता। (यथा रागस्यैव क्वचित्समुदाचार इति) जैसे राग का कहीं वर्तना देखा जाता है (न तदानीमन्यत्राभावः) उस काल में यह नहीं होता कि अन्य में अभाव हो (किंतु केवलं सामान्येन समन्वागतः) किन्तु केवल सामान्य रूप से प्राप्त है (इत्यस्ति तदा तत्र तस्य भावः) इस कारण उस काल में उसमें उसका भाव है। (तथा लक्षणस्येति) वैसे ही लक्षण का रूप है।

(न धर्मी त्र्यध्वा धर्मास्तु त्र्यध्वानः) धर्मी तीन मार्गों वाला नहीं है परन्तु धर्म तीन मार्गों वाले हैं (ते लक्षिता अलक्षिताः) वह धर्म लक्षित–अलक्षित दो प्रकार के हैं (तत्र लक्षितास्तां तामवस्थां प्राप्नुवन्तोऽन्यत्वेन प्रतिनिर्दिश्यन्ते) उनमें जो लक्षित हैं वह उस २ अवस्था को प्राप्त होते हुए भिन्न २ नाम से कहे जाते हैं (अवस्थान्तरतो न द्रव्यान्तरतः) अवस्था से परिणाम होता है द्रव्य का परिणाम नहीं होता । (यथैका रेखा शतस्थाने शतं दशस्थाने दशैका चैकस्थाने) जैसे एक की रेखा सौ के स्थान में सौ और दश के स्थान में दश और एक के स्थान में एक पढ़ी जाती है । (यथा चैकत्वेऽपि स्त्री माता चोच्यते दुहिता च स्वसा चेति) जैसे एक होते हुए स्त्री के किसी की वह माता कही जाती, किसी की पुत्री, किसी की भगिनी ।

(अवस्थापरिणामे कौटस्थ्यप्रसङ्गदोषः कैश्चिदुक्तः) अवस्था परिणाम के होने पर कौटस्थ रूप में दोष कोई एक कहते हैं । (कथम्) किस प्रकार कि । (अध्वनो व्यापारेण व्यवहितत्वात्) भूत–भविष्यत्–वर्तमान तीनों मार्गों का व्यापार से भेद होने के कारण । (यदा धर्मः स्वव्यापारं न करोति तदाऽनागतः) जब धर्म अपना व्यापार नहीं करता तब अनागत रूप से रहता है (यदा करोति तदा वर्तमानः) जब करता है तब वर्तमान रूप से (यदा कृत्वा निवृत्तस्तदाऽतीतः) जब करके निवृत्त होता है तब अतीतरूप होता है (इत्येवं धर्मधर्मिणोर्लक्षणानामवस्थानां च कौटस्थ्यं प्राप्नोति) इस प्रकार धर्म धर्मी दोनों को लक्षण और अवस्थाओं में कौटस्थ्य प्राप्त होता है (इति परैर्दोष उच्यते) इस प्रकार कोई एक दोष लगाते हैं ।

(नासौ दोषः) वह दोष नहीं है । (कस्मात्) क्योंकि । (गुणिनित्यत्वेऽपि गुणानां विमर्दवैचित्र्यात्) गुणी के नित्य होने

पर भी गुणों के विनाश्य-विनाशिता में विचित्रता होने से। (यथा संस्थानमादिमद्धर्ममात्रं शब्दादीनां) जैसे पृथ्वी आकाशादि अपने प्रथम कारण शब्दादि के धर्ममात्र हैं (गुणानां विनाश्यविनाशिनामेवं) विनाश्य विनाशी गुणों का भी इसी प्रकार (लिङ्गमादिमद्धर्ममात्रं) बुद्धि धर्म है (सत्त्वादीनां गुणानां विनाश्यविनाशिनां तस्मिन्विकारसंज्ञेति) उन विनाश्य विनाशी सत्त्वादि गुणों का, वह विकार होने से उसका भिन्न बुद्धि नाम बोला जाता है।

(तत्रेदमुदाहरणं) उस में यह दृष्टान्त है (मृद्धर्मी पिण्डाकाराद्धर्माद्धर्मान्तरमुपसंपद्यमानो धर्मतः परिणमते घटाकार इति) मिट्टी धर्मी पिण्डरूप धर्म से दूसरे २ धर्मों को प्राप्त होती हुई धर्म से परिणाम होकर घटरूप हो जाती है। (घटाकारोऽनागतं लक्षणं हित्वा वर्तमानलक्षणं प्रतिपद्यत इति लक्षणतः परिणमते) घटाकार अनागत लक्षण को त्यागकर वर्तमान लक्षण को प्राप्त होता है यह लक्षण से परिणाम होता है इसी प्रकार। (घटो नवपुराणतां प्रतिक्षणमनुभवन्नवस्थापरिणामं प्रतिपद्यत इति) नवीन घट जो पुराणता को क्षण २ अनुभव करता हुआ अवस्थापरिणाम को प्राप्त होता है। (धर्मिणोऽपि धर्मान्तरमवस्थाः) धर्मी की भी धर्मान्तर अवस्था है (धर्मस्यापि लक्षणान्तरमवस्थाः) धर्म की भी लक्षणान्तर अवस्था है (इत्येक एव द्रव्यपरिणामो भेदेनोपदर्शित इति) इस प्रकार एक ही द्रव्यपरिणाम भेद से देखा गया है। (एवं पदार्थान्तरेष्वपि योज्यमिति) इस प्रकार अन्य पदार्थों में भी युक्त करना चाहिये। (त एते धर्मलक्षणावस्थापरिणामाः) वह यह धर्म-लक्षण-अवस्थापरिणाम तीनों (धर्मिस्वरूपमनतिक्रान्ताः) धर्मी स्वरूप को न त्यागते हुए रहते हैं (इत्येक एव परिणामः) इस प्रकार एक ही परिणाम (सर्वानमून्विशेषानभिप्लवते) सर्व विचार विशेषों को भले प्रकार प्रकाशित करता

है। (अथ कोऽयं परिणामः) अब कौन यह परिणाम है। (अवस्थितस्य द्रव्यस्य पूर्वधर्मनिवृत्तौ धर्मान्तरोत्पत्तिः परिणाम इति) द्रव्य के रहते हुए पूर्व धर्म के निवृत्त होने पर दूसरे धर्म की उत्पत्ति ही परिणाम है ॥ १३ ॥

(तत्र) उस विषय में—

भो० वृत्ति

एतेन त्रिविधेनोक्तेन चित्तपरिणामेन भूतेषु स्थूलसूक्ष्मेषु इन्द्रियेषु बुद्धिकर्मलक्षणभेदेनावस्थितेषु धर्मलक्षणावस्थाभेदेन त्रिविधः परिणामो व्याख्यातोऽवगन्तव्यः। अवस्थितस्य धर्मिणः पूर्वधर्मनिवृत्तौ धर्मान्तरोत्पत्तिर्धर्म परिणामः। यथा—मृल्लक्षणस्य धर्मिणः पिण्डरूपधर्मपरित्यागेन घटरूपधर्मान्तरस्वीकारः धर्मपरिणाम इत्युच्यते। लक्षणपरिणामो यथा—तस्यैव घटस्यानागताध्वपरित्यागेन वर्तमानाध्वस्वीकारः। तत्परित्यागेन चातीताध्वपरिग्रहः। अवस्थापरिणामो यथा— तस्यैव घटस्य प्रथमद्वितीययोः सदृशयोः क्षणयोरन्वयित्वेन। यतश्च गुणवृत्तिर्नापरिणममाना क्षणमप्यस्ति ॥ १३ ॥

ननु कोऽयं धर्मीत्याशङ्क्य धर्मिणो लक्षणमाह—

भो० वृ० पदार्थ

(एतेन त्रिविधेनोक्तेन चित्तपरिणामेन) इस ऊपर कहे गये तीन प्रकार के चित्त परिणाम से (भूतेषु स्थूलसूक्ष्मेषु इन्द्रियेषु बुद्धिकर्मलक्षणभेदेनावस्थितेषु) स्थूल,—सूक्ष्म, भूतों में ज्ञानेन्द्रिय और कर्मेन्द्रियों में रहते हुए (धर्मलक्षणावस्थाभेदेन त्रिविधः परिणामो व्याख्यातोऽवगन्तव्यः) धर्म,—लक्षण,—अवस्था भेद से तीन प्रकार के परिणामों का व्याख्यान हुआ जानना चाहिये (अवस्थितस्य धर्मिणः पूर्वधर्मनिवृत्तौ धर्मान्तरोत्पत्तिर्धर्मपरिणामः) धर्मी के रहते हुए पूर्व धर्म की निवृत्ति होने पर अन्य धर्म की प्राप्ति ही धर्म परिणाम है (यथा मृल्लक्षणस्य

धर्मिणः पिण्डरूपधर्मपरित्यागेन घटरूपधर्मान्तरस्वीकारः) जैसे मिट्टीरूप धर्मी का पिण्डरूप धर्म के त्याग द्वारा घटरूप अन्य धर्म का स्वीकार (धर्मपरिणाम इत्युच्यते) यह "धर्मपरिणाम" कहा जाता है। (लक्षण-परिणामः) लक्षणपरिणाम यह है कि (यथा) जैसे—(तस्यैव घटस्यानागताध्वपरित्यागेन वर्तमानाध्वस्वीकारः) उस घट का ही अनागत मार्ग त्याग के द्वारा वर्तमान मार्ग का स्वीकार। (तत्परित्यागेन चातीताध्वपरिग्रहः) उसके त्यागने पर अतीत मार्ग का ग्रहण करना। (अवस्थापरिणामः) अवस्थापरिणाम यह है कि (यथा तस्यैव घटस्य प्रथमद्वितीययोः सदृशयोः क्षणयोरन्वयित्वेन) जैसे उसी घट का पहले दूसरे दोनों समान क्षणों में अन्वयि रूप से होना। (यतश्च गुणवृत्तिर्नापरिणममाना क्षणमप्यस्ति) क्योंकि गुण वृत्ति परिणाम के विना एक क्षण भी नहीं रहती ॥ १३ ॥

(ननु कोऽयं धर्मीत्याशङ्क्य धर्मिणो लक्षणमाह) यह धर्मी कौन है? यह शङ्का करके धर्मी के लक्षण को आगे कहते हैं—

शान्तोदिताव्यपदेश्यधर्मानुपाती धर्मी ॥१४॥

सू०—उन तीन, शान्त अर्थात् अतीत, उदित = वर्तमान, अव्यपदेश्य = अनागत, धर्मों से अनुगत धर्मी है ॥ १४ ॥

व्या० भाष्यम्

योग्यतावच्छिन्ना धर्मिणः शक्तिरेव धर्मः। स च फलप्रसवभेदानुमितसद्भाव एकस्यान्योऽन्यश्च परिदृष्टः। तत्र वर्तमानः स्वव्यापारमनुभवन्धर्मी धर्मान्तरेभ्यः शान्तेभ्यश्चाव्यपदेश्येभ्यश्च भिद्यते। यदा तु सामान्येन समन्वागतो भवति तदा धर्मिस्वरूपमात्रत्वात्कोऽसौ केन भिद्येत।

तत्र ये खलु धर्मिणो धर्माः शान्ता उदिता अव्यपदेश्याश्चेति, तत्र शान्ता ये कृत्वा व्यापारानुपरताः सव्यापारा उदितास्ते चानागतस्य लक्षणस्य समनन्तरा। वर्तमानस्यानन्तरा अतीताः। किम-

र्थमतीतस्यानन्तरा न भवन्ति वर्तमानाः । पूर्वपश्चिमताया अभावात् । यथाऽनागतवर्तमानयोः पूर्वपश्चिमता नैवमतीतस्य । तस्मान्नातीतस्यास्ति समनन्तरः । तदनागत एव समनन्तरो भवति वर्तमानस्येति ।

"अथाव्यपदेश्याः के । सर्वं सर्वात्मकमिति । यत्रोक्तम्—जलभूम्योः पारिणामिकं रसादिवैश्वरूप्यं स्थावरेषु दृष्टम् । तथा स्थावराणां जङ्गमेषु जङ्गमानां स्थावरेष्वित्येवं जात्यनुच्छेदेन सर्वं सर्वात्मकमिति ।

देशकालाकारनिमित्तापबन्धान्न खलु समानकालमात्मनामभिव्यक्तिरिति । य एतेष्वभिव्यक्तानभिव्यक्तेषु धर्मेष्वनुपाती सामान्यविशेषात्मा सोऽन्वयी धर्मी । यस्य तु धर्ममात्रमेवेदं निरन्वयं तस्य भोगाभावः । कस्मात्, अन्येन विज्ञानेन कृतस्य कर्मणोऽन्यत्कथं भोक्तृत्वेनाधिक्रियेत । तत्स्मृत्यभावश्च नान्यदृष्टस्य स्मरणमन्यस्यास्तीति । वस्तुप्रत्यभिज्ञानाच्च स्थितोऽन्वयी धर्मी यो धर्मान्यथात्वमभ्युपगतः प्रत्यभिज्ञायते । तस्मान्नेदं धर्ममात्रं निरन्वयमिति" ॥ १४ ॥

व्या० भा० पदार्थ

(योग्यतावच्छिन्ना धर्मिणः शक्तिरेव धर्मः) योग्यता सहित धर्मी की शक्ति ही धर्म है । (स च फलप्रसवभेदानुमितसद्भावः) उस धर्म का सद्भाव भिन्न २ फलों की उत्पत्ति से अनुमान किया गया है (एकस्यान्योऽन्यश्च परिदृष्टः) एक एक का भिन्न २ होना देखा गया । (तत्र वर्तमानः स्वव्यापारमनुभवन्धर्मी धर्मान्तरेभ्यः शान्तेभ्यश्चाव्यपदेश्येभ्यश्च भिद्यते) उन में वर्तमान धर्म यह है कि अपने व्यापार को करते हुए धर्मी, अतीत और अनागत धर्मों से भिन्नता करता है । (यदा तु सामान्येन समन्वागतो भवति) जब सामान्यता से एकत्रित होवे हैं (तदा धर्मिस्वरूपमात्रत्वात्कोऽ-

सौ केन भिद्येत) तब धर्मी का स्वरूपमात्र होने से कौन किससे भेद करे।

(तत्र ये खलु धर्मिणो धर्माः शान्ता उदिता अव्यपदेश्याश्चेति) निश्चय उस धर्मी के जो धर्म अतीत–वर्तमान–अनागत हैं, (तत्र शान्ता ये कृत्वा व्यापारानुपरताः) जो व्यापार करके उपरत हो गये वह "शान्त" कहलाते हैं, (सव्यापारा उदिताः) जो व्यापार को कर रहे हैं वह "उदित" कहलाते हैं, (ते चानागतस्य लक्षणस्य समनन्तराः) वह अनागत लक्षण की पीछे उत्पत्ति करते हैं (वर्तमानस्यानन्तरा अतीताः) वर्तमान की अतीत के पीछे उत्पत्ति है (किमर्थमतीतस्यानन्तरा न भवन्ति वर्तमानाः) अतीत की समनन्तरता वर्तमान से क्यों नहीं होती ? (पूर्वपश्चिमताया अभावात्) उत्तर यह है कि—पहले की पिछले में कारणता का अभाव होने से। (यथाऽनागतवर्तमानयोः पूर्वपश्चिमताः) जैसे अनागत और वर्तमान में पूर्व–पश्चिमता है (नैवमतीतस्य) इस प्रकार अतीत में नहीं। (तस्मान्नातीतस्यास्ति समनन्तरः) इस कारण अतीत की समनन्तरता नहीं है (तदनागत एव समनन्तरो भवति वर्तमानस्येति) वर्तमान के समनन्तर अनागत ही होता है।

अथाऽव्यपदेश्याः के। यहां से किसी ने शास्त्र विरुद्ध और तत्त्व विरुद्ध असम्बद्ध कल्पना करके भाष्य में रखदी है और महर्षिव्यास का भाष्य लोप कर दिया है। क्योंकि अब प्रकरण चित्त के अनागत धर्मों का है और उसका ही अर्थ होना चाहिये था जैसा कि वृत्तिकार महाराज भोजने किया है "अव्यपदेश्या ये शक्तिरूपेण स्थिता व्यपदेष्टुं न शक्यन्ते तेषां" = अनागत धर्म वह हैं जो शक्तिरूप से रहते हैं जिन का उपदेश नहीं कर सक्के और विशेष इसकी व्याख्या आगे वृत्ति में देखो और यहां वह भ्रान्त पुरुष लिखता है कि "सर्वं सर्वात्मकमिति" = सर्व सर्वरूप हैं।

आगे जल-भूमि आदि का परिणाम रसादि, स्थावरों का जङ्गमों में जङ्गमों का स्थावरों में ऐसी २ अनेक उन्मत्तों जैसा असम्बद्ध प्रलाप करता है यह व्यास-भाष्य नहीं है । इस लिये इसका मूल-मात्र भाष्य में रखदिया है अर्थ की आवश्यक्ता नहीं इस का अर्थ वृत्ति के प्रमाण द्वारा जो हमने लिखा है वही जानना चाहिये ॥१४॥

भो० वृत्ति

शान्ता ये कृतस्वस्वव्यापारा अतीतेऽध्वनि अनुप्रविष्टाः, उदिता येऽनागतमध्वानं परित्यज्य वर्तमानेऽध्वनि स्वव्यापारं कुर्वन्ति, अव्यपदेश्या ये शक्तिरूपेण स्थिता व्यपदेष्टुं न शक्यन्ते तेषां नियतकार्यकारणरूपयोग्यतयाऽवच्छिन्ना शक्तिरेवेह धर्मशब्देनाभिधीयते । तं त्रिविधमपि धर्मं योऽनुपतति अनुवर्ततेऽन्वयित्वेन स्वीकरोति स शान्तोदिताव्यपदेश्यधर्मानुपाती धर्मीत्युच्यते । यथा सुवर्णं रूचकरूपधर्मपरित्यागेन स्वस्तिकरूपधर्मान्तरपरिग्रहे सुवर्णरूपतयाऽनुवर्तमानं तेषु धर्मेषु कथंचिद्भिन्नेषु धर्मिरूपतया सामान्यात्मना धर्मरूपतया विशेषात्मना स्थितमन्वयित्वेनावभासते ॥ १४ ॥

एकस्य धर्मिणः कथमनेके परिणामा इत्याशङ्कामपनेतुमाह—

भो० वृ० पदार्थ

(शान्ता ये कृतस्वस्वव्यापाराः) शान्त वे हैं जो अपना २ व्यापार करके (अतीतेऽध्वनि अनुप्रविष्टाः) अतीत मार्ग में प्रविष्ट हो गये, (उदिता येऽनागतमध्वानं परित्यज्य वर्तमानेऽध्वनि स्वव्यापारं कुर्वन्ति) उदित वह हैं जो अनागत मार्ग को त्यागकर वर्तमान मार्ग में अपना व्यापार करते हैं, (अव्यपदेश्या ये शक्तिरूपेण स्थिता व्यपदेष्टु न शक्यन्ते तेषां) अनागत वह हैं जो शक्तिरूप से रहते हुए जिनका उपदेश नहीं कर सक्ते (नियतकार्यकारणरूपयोग्यतयाऽवच्छिन्ना शक्तिरेवेह धर्मशब्देनाभिधीयते) कार्य-कारण की योग्यता सहित नियत शक्ति ही यहां धर्म

शब्द से कही जाती है। (तं त्रिविधमपि धर्मं योऽनुपतति अनुवर्ततेऽन्वयित्वेन स्वी करोति) उस तीन प्रकार के धर्म को जो अन्वयिभाव से वर्तता हुआ ग्रहण करता है (स शान्तोदिताव्यपदेश्यधर्मानुपाती धर्मीत्युच्यते) वह शान्त,-उदित,-अव्यपदेश्य,-धर्मानुपाती, धर्मी नाम से कहा जाता है। (यथा सुवर्णं रूचकरूपधर्मपरित्यागेन स्वस्तिकरूपधर्मान्तरपरिग्रहे सुवर्णरूपतयाऽनुवर्तमानं) जैसे सुवर्ण डलेरूप धर्म को त्याग कर अलङ्कार रूप दूसरे धर्म को ग्रहण करने पर सुवर्णरूप से वर्तमान रहता है (तेषु धर्मेषु कथंचिद्भिन्नेषु धर्मिरूपतया सामान्यात्मना धर्मरूपतया विशेषात्मना स्थितमन्वयित्वेनावभासते) उन भिन्न धर्मों में सामान्य धर्मी रूप से, विशेष धर्मरूप से स्थित हुआ अन्वयिरूप से भासित होता है॥ १४॥

(एकस्य धर्मिणः कथमनेके परिणामा इत्याशङ्कामपनेतुमाह) एक धर्मी के किस प्रकार अनेक परिणाम होवें? इस शङ्का के निवारणार्थ आगे सूत्र कहते हैं—

क्रमान्यत्वं परिणामान्यत्वे हेतुः॥ १५॥

सू०—भिन्न २ क्रम का होना भिन्न २ परिणाम का हेतु है॥ १५॥

व्या० भाष्यम्

एकस्य धर्मिण एक एव परिणाम इति प्रसक्ते क्रमान्यत्वं परिणामान्यत्वे हेतुर्भवतीति। तद्यथा चूर्णमृत्पिण्डमृद् घटमृत्कपालमृत्कणमृदिति च क्रमः। यो यस्य धर्मस्य समनन्तरो धर्मः स तस्य क्रमः। पिण्डः प्रच्यवते घट उपजायत इति धर्मपरिणामक्रमः। लक्षणपरिणामक्रमो घटस्यानागतभावाद्वर्तमानभावः क्रमः। तथा पिण्डस्य वर्तमानभावादतीतभावः क्रमः। नातीतस्यास्ति क्रमः। कस्मात्। पूर्वपरतायां सत्यां समनन्तरत्वं, सा तु नास्त्यतीतस्य।

तस्माद्द्वयोरेव लक्षणयोः क्रमः । तथाऽवस्थापरिणामक्रमोऽपि घटस्याभिनवस्य प्रान्ते पुराणता दृश्यते । सा च क्षणपरम्परानुपातिना क्रमेणाभिव्यज्यमाना परां व्यक्तिमापद्यत इति । धर्मलक्षणाभ्यां च विशिष्टोऽयं तृतीयः परिणाम इति ।

य एते क्रमा धर्मधर्मिभेदे सति प्रतिलब्धस्वरूपाः । धर्मोऽपि धर्मी भवत्यन्यधर्मस्वरूपापेक्षयेति । यदा तु परमार्थतो धर्मिण्यभेदोपचारद्वारेण स एवाभिधीयते धर्मस्तदाऽयमेकत्वेनैव क्रमः प्रत्यवभासते ।

चित्तस्य द्वये धर्मा परिदृष्टाश्चापरिदृष्टाश्च । तत्र प्रत्ययात्मकाः परिदृष्टा वस्तुमात्रात्मका अपरिदृष्टाः । ते च सप्तैव भवन्त्यनुमानेन प्रापितवस्तुमात्रसद्भावाः ।

"निरोधधर्मसंस्काराः परिणामोऽथ जीवनम् ।
चेष्टा शक्तिश्च चित्तस्य धर्मा दर्शनवर्जिताः ॥इति॥१५॥

अतो योगिन उपात्तसर्वसाधनस्य बुभुत्सितार्थप्रतिपत्तये संयमस्य विषय उपक्षिप्यते—

व्या० भा० पदार्थ

(एकस्य धर्मिण एक एव परिणाम इति प्रसक्तेः) एक धर्मी का एक ही परिणाम होना चाहिये न कि अनेक ? इस शङ्का पर उत्तर देते हैं (क्रमान्यत्वं परिणामान्यत्वे हेतुर्भवतीति) परिणामों के भिन्न २ होने में क्रम का भिन्न २ होना ही कारण है । (तद्यथा चूर्णमृत्पिण्डमृद्घटमृत्कपालमृत्कणमृदिति च क्रमः) जैसे चूर्ण मिट्टी का पिण्ड, मिट्टी का घट, मिट्टी का कड़ल, मिट्टी का कण और मिट्टी यह क्रम है । (यो यस्य धर्मस्य समनन्तरो धर्मः) जो जिस धर्म के ठीक पीछे होने वाला धर्म है (स तस्य क्रमः) वह उस का क्रम है । (पिण्डः प्रच्यवते घट उपजायतः) पिण्ड नष्ट होता

हैं घट उत्पन्न हो जाता है (इति धर्मपरिणामक्रमः) यह "धर्मपरिणाम" क्रम है। (लक्षणपरिणामक्रम) "लक्षणपरिणाम" क्रम यह है। (घटस्यानागतभावाद्वर्तमानभावक्रमः) घट की अनागत सत्ता का कारण वर्तमान सत्ता क्रम है। (तथा पिण्डस्य वर्तमानभावादतीतभावक्रमः) वैसे ही पिण्ड की वर्तमान सत्ता का कारण अतीत सत्ता क्रम है। (नातीतस्यास्ति क्रमः) अतीत सत्ता का क्रम नहीं है (कस्मात) क्योंकि। (पूर्वपरतायां सत्यां समनन्तरत्वं) पूर्व-पर के होते हुए समनन्तरता होती है, (सा तु नास्त्यतीतस्य) अतीत की वह नहीं है। (तस्माद्द्वयोरेव लक्षणयोः क्रमः) इस कारण लक्षणपरिणाम के दो ही क्रम हैं। (तथाऽवस्थापरिणामक्रमोऽपि) वैसे ही अवस्थापरिणाम क्रम भी (घटस्याभिनवस्य प्रान्ते पुराणता दृश्यते) नवीन घट की भी अन्त में पुराणता देखी जाती है। (सा च क्षणपरम्परानुपातिना) वह क्षणों की परम्परा से प्राप्त होने वाली (क्रमेणाभिव्यज्यमाना परां व्यक्तिमापद्यत इति) क्रम से प्रकट होती हुई अन्त में परम स्थूलता को प्राप्त हो जाती है। (धर्मलक्षणाभ्यां च विशिष्टोऽयं तृतीयः परिणाम इति) इस कारण धर्म-लक्षण दोनों परिणामों से विशेष यह तीसरा "अवस्थापरिणाम" है।

(त एते क्रमा धर्मधर्मिभेदे सति प्रतिलब्धस्वरूपाः) वह यह क्रम धर्म धर्मी के भेद होते हुए लब्ध होते हैं। (धर्मोऽपि धर्मी भवत्यन्यधर्मस्वरूपापेक्षयेति) अन्य धर्म के स्वरूप की अपेक्षा से धर्म भी धर्मी होता है। (यदा तु परमार्थतो धर्मिण्यभेदोपचारद्वारेण) जब यथार्थ में धर्मी का अभेद उपचार द्वारा (स एवाभिधीयते धर्मः) वही कहा जाता है कि धर्म है, (तदाऽयमेकत्वेनैव क्रमः प्रत्यवभासते) तब यह एकत्वता से ही क्रम भी भासित होता है।

(चित्तस्य द्वये धर्माः) चित्त के दो धर्म हैं (परिदृष्टाश्चापरि-

दृष्टाश्च । तत्र प्रत्ययात्मकाः परिदृष्टाः) ज्ञानवाले और ज्ञान रहित, उन में ज्ञानरूप परिदृष्टा कहलाते हैं (वस्तुमात्रात्मका अपरिदृष्टाः) वस्तु मात्ररूप अपरिदृष्टा कहलाते हैं। (ते च सप्तैव भवन्ति) वह सात होते हैं (अनुमानेन प्रापितवस्तुमात्रसद्भावः) अनुमान से वस्तुमात्र का सद्भाव प्राप्त है।

(निरोधधर्मसंस्काराः परिणामोऽथ जीवनम् ।
चेष्टा शक्तिश्च चित्तस्य धर्मा दर्शनवर्जिताः ॥ इति ॥)

१-निरोध २-धर्म ३-संस्कार ४-परिणाम ५-जीवन ६-चेष्टा ७-शक्ति चित्त के धर्म नेत्र गोचर नहीं हैं ॥ १५ ॥

(अतो योगिन उपात्तसर्वसाधनस्य बुभुत्सितार्थप्रतिपत्तये संयमस्य विषय उपक्षिप्यते) इस कारण प्राप्त हैं सर्व साधन जिस योगी को उस के सुख भोगने की इच्छापूर्ती के लिये संयम का विषय आगे कहा जाता है—

भो० वृत्ति

धर्माणामुक्तलक्षणानां यः क्रमस्तस्य यत्प्रतिक्षणमन्यत्वं परिदृश्यमानं तत् परिणामस्योक्तलक्षणस्यान्यत्वे नानाविधत्वे हेतुर्लिङ्गं ज्ञापकं भवति । अयमर्थः—योऽयं नियतः क्रमो मृच्चूर्णान्मृत्पिण्डस्ततः कपालानि तेभ्यश्च घट इत्येवंरूपः परिदृश्यमानः परिणामस्यान्यत्वमावेदयति, तस्मिन्नेव धर्मिणि यो लक्षणपरिणामस्यावस्थापरिणामस्य वा क्रमः सोऽपि अनेनैव न्यायेन परिणामान्यत्वे गमकोऽवगन्तव्यः । सर्व एव भावा नियतेनैव क्रमेण प्रतिक्षणं परिणममानाः परिदृश्यन्ते । अतः सिद्धं क्रमान्यत्वात्परिणामान्यत्वम् । सर्वेषां चित्तादीनां परिणममानानां केचिद्धर्माः प्रत्यक्षेणैवोपलभ्यन्ते । यथा सुखादयः संस्थानादयश्च । केचिच्चैकान्तेनानुमानगम्याः । यथा—धर्मसंस्कारशक्तिप्रभृतयः । धर्मिणश्च भिन्नाभिन्नरूपतया सर्वत्रानुगमः ॥ १५ ॥

इदानीमुक्तस्य संयमस्य विषयप्रदर्शनद्वारेण सिद्धीः प्रतिपादयितुमाह—

भो० वृ० पदार्थ

(धर्माणामुक्तलक्षणानां यः क्रमः) ऊपर कहे धर्मों का जो क्रम है (तस्य यत्प्रतिक्षणमन्यत्वं परिदृश्यमानं तत् परिणामस्योक्तलक्षणस्यान्यत्वे नानाविधत्वे हेतुर्लिङ्गं ज्ञापकं भवति) उसका जो क्षण २ अन्यत्व देखा जाता वह ऊपर कहे नाना प्रकार के परिणाम अन्यत्व में कारण, लिङ्ग अर्थात् ज्ञान कराने वाला है। (अयमर्थः) यह अर्थ है—(योऽयं नियतः क्रमः) जो यह नियत क्रम है कि (मृच्चूर्णान्मृत्पिण्डस्ततः कपालानि तेभ्यश्च घटः) मिट्टी के चूर्ण से मिट्टी का पिण्ड उस से कपाल उस से घड़ा (इत्येवंरूपः परिदृश्यमानः) इस प्रकार रूप दीखते हुए (परिणामस्यान्यत्वमावेदयति) परिणाम के अन्यत्व को प्रकाशित करता है, (तस्मिन्नेव धर्मिणि यो लक्षणपरिणामस्यावस्थापरिणामस्य वा क्रमः) उसी धर्मी में जो लक्षणपरिणाम—अवस्थापरिणाम का क्रम है (सोऽपि अनेनैव न्यायेन परिणामान्यत्वे गमकोऽवगन्तव्यः) वह भी इसी नियम से परिणाम के अन्यत्व में 'प्रापक' जानने योग्य है। (सर्व एव भावा नियतेनैव क्रमेण प्रतिक्षणं परिणममानाः परिदृश्यन्ते) सब ही उत्पन्न हुए पदार्थ नियत क्रम से ही क्षण २ परिणाम को प्राप्त होते हुए देखे जाते हैं (अतः सिद्धं) इस से सिद्ध हुआ कि (क्रमान्यत्वात्परिणामान्यत्वम्) क्रम के अन्यत्व से परिणाम का अन्यत्व होता है। (सर्वेषां चित्तादीनां परिणममानानां) परिणाम को प्राप्त होते हुए सर्व चित्तादि के (केचिद्धर्माः प्रत्यक्षेणैवोपलभ्यन्ते) कोई एक धर्म तो प्रत्यक्ष से ही जाने जाते हैं। (यथा सुखादयः संस्थानादयश्च) जैसे सुखादि और भूमि आदि। (केचिच्चैकान्तेनानुमानगम्याः) और कोई एक एकाग्रता द्वारा अनुमान से प्राप्त करने योग्य हैं। (यथा धर्मसंस्कारशक्तिप्रभृतयः) जैसे धर्म—संस्कार—शक्ति आदि। (धर्मिणश्च भिन्नाभिन्नरूपतया सर्वत्रानुगमः) धर्मी की भिन्न—अभिन्न रूप से सर्वत्र प्राप्ति है ॥ १५ ॥

(इदानीमुक्तस्य संयमस्य विषयप्रदर्शनद्वारेण सिद्धीः प्रतिपादयि-

तुमाह) अब पूर्व कहे संयम की विषय के प्रदर्शन द्वारा सिद्धि को प्रतिपादन करते हैं—

परिणामत्रयसंयमादतीतानागतज्ञानम् ॥१६॥

सू०—धर्म-लक्षण-अवस्था इन तीनों परिणामों में संयम करने से योगी को भूत-भविष्यत् का भी ज्ञान हो जाता है ॥१६॥

व्या० भाष्यम

धर्मलक्षणावस्थापरिणामेषु संयमाद्योगिनां भवत्यतीतानागतज्ञानम् । धारणाध्यानसमाधित्रयमेकत्र संयम उक्तः । तेन परिणामत्रयं साक्षात्क्रियमाणमतीतानागतज्ञानं तेषु संपादयति ॥ १६ ॥

व्या० भा० पदार्थ

(धर्मलक्षणावस्थापरिणामेषु संयमाद्योगिनां भवत्यतीतानागतज्ञानम) धर्म-लक्षण-अवस्था इन तीनों परिणामों में संयम करने से योगियों को अतीत-अनागत का ज्ञान होता है । (धारणाध्यानसमाधित्रयमेकत्र संयम उक्तः) धारणा-ध्यान-समाधि इन तीनों का एक विषय में होना "संयम" पूर्व कहा गया । (तेन परिणामत्रयं साक्षात्क्रियमाणमतीतानागतज्ञानं तेषु संपादयति) उस संयम के द्वारा तीनों परिणामों के साक्षात् करने से अतीत अनागत का ज्ञान योगी उन में सम्पादन करता है ॥ १६ ॥

भो० वृत्ति

धर्मलक्षणावस्थाभेदेन यत्परिणामत्रयमुक्तं तत्र संयमात्तस्मिन्विषये पूर्वोक्तसंयमस्य कारणादतीतानागतज्ञानं योगिनः समाधेराविर्भवति । इदमत्र तात्पर्यम्—अस्मिन्धर्मिणि अयं धर्म इदं लक्षणमियमवस्था चानागताध्वनः समेत्य वर्तमानेऽध्वनि स्वं व्यापारं विधायातीतमध्वानं प्रविशतीत्येवं परिहृतविक्षेपतया यदा संयमं करोति तदा यत्किंचिदनुत्पन्नमतिक्रान्तं वा

तत्सर्वं योगी जानाति। यतश्चित्तस्य शुद्धसत्त्वप्रकाशरूपत्वात्सर्वार्थग्रहणसामर्थ्यमविद्यादिभिर्विक्षेपैरपक्रियते। यदा तु तैस्तैरूपायैर्विक्षेपाः परिह्रियन्ते तदा निवृत्तमलस्येवाऽऽदर्शस्य सर्वार्थग्रहणसामर्थ्यमेकाग्रतावलादाविर्भवति॥ १६ ॥

सिद्ध्यन्तरमाह—

भो० वृ० पदार्थ

(धर्मलक्षणावस्थाभेदेन यत्परिणामत्रयमुक्तं) धर्म—लक्षण—अवस्था भेद से जो तीन परिणाम पूर्व कहे गये (तत्र संयमात्) उन में संयम करने से (तस्मिन्विषये पूर्वोक्तसंयमस्य कारणादतीतानागतज्ञानं योगिनः समाविराविर्भवति) उस विषय में पूर्व कहे संयम के कारण से योगी को अतीत अनागत का ज्ञान समाधि में उत्पन्न होता है (इदमत्र तात्पर्यम्) वह इस का तात्पर्य है—(अस्मिन्धर्मिणि अयं धर्म इदं लक्षणमियमवस्था च) इस धर्मी में यह धर्म है, यह लक्षण और यह अवस्था है (अनागतादध्वनः समेत्य वर्तमानेऽध्वनि स्वं व्यापारं विधायातीतमध्वानं प्रविशति) अनागत मार्ग से मिलकर वर्तमान मार्ग में अपने व्यापार को करके अतीत मार्ग में प्रवेश करता है (इत्येवं परिहृतविक्षेपतया यदा संयमं करोति) इस प्रकार विक्षेपों को दूर करके जब संयम करता है (तदा यत्किंचिदनुत्पन्नमतिक्रान्तं वा तत्सर्वं योगी जानाति) तब जो कुछ ज्ञान उत्पन्न नहीं हुआ और जो छूटा हुआ है वह सब योगी जानता है। (यतश्चित्तस्य शुद्धसत्त्वप्रकाशरूपत्वात्सर्वार्थग्रहणसामर्थ्यमविद्यादिभिर्विक्षेपैरपक्रियते) जिस कारण चित्त के शुद्ध प्रकाशरूप होने से अर्थ ग्रहण करने की सामर्थ्य को अविद्यादि विक्षेपों द्वारा नष्ट किया जाता है। (यदा तु तैस्तैरुपायैर्विक्षेपाः परिह्रियन्ते) और जब उन २ उपायों से विक्षेप दूर किये जाते हैं (तदा निवृत्तमलस्येवाऽऽदर्शस्य सर्वार्थग्रहणसामर्थ्यमेकाग्रताबलादाविर्भवति) तब शुद्ध दर्पण समान मल निवृत्त हुए चित्त की सर्वार्थग्रहण सामर्थ्य एकाग्रता बल से उत्पन्न होती है ॥ १६ ॥

(सिद्धयन्तरमाह) अन्य सिद्धि कहते हैं—

शब्दार्थप्रत्ययानामितरेतराध्यासात्संकरस्तत्प्रविभागसंयमात्सर्वभूतरुतज्ञानम् ॥ १७ ॥

सू०—शब्द-अर्थ-ज्ञान इन तीनों का परस्पर भेद ज्ञात न होने से एकमेक हो रहा है। इस कारण न जानी हुई भाषा का ज्ञान नहीं होता। उस के विभाग में संयम करने से सर्व प्राणियों के कहे वचनों का अर्थ ज्ञात होता है ॥ १७ ॥

व्या० भाष्यम्

तत्र वाग्वर्णेष्वेवार्थवती। श्रोत्रं च ध्वनिपरिणाममात्रविषयम्। पदं पुनर्नादानुसंहारबुद्धिनिर्ग्राह्यमिति।

वर्णा एकसमयासंभवित्वात्परस्परनिरनुग्रहात्मानस्ते पदमसंस्पृश्यानुपस्थाप्याऽऽविर्भूतास्तिरोभूताश्चेति प्रत्येकमपदस्वरूपा उच्यन्ते।

वर्णः पुनरेकैकः पदात्मा सर्वाभिधानशक्तिप्रचितः सहकारिवर्णान्तरप्रतियोगित्वाद्वैश्वरूप्यमिवाऽऽपन्नः पूर्वश्चोत्तरेणोत्तरश्च पूर्वेण विशेषेऽवस्थापित इत्येवं बहवो वर्णाः क्रमानुरोधिनोऽर्थसंकेतेनावच्छिन्ना इयन्त एते सर्वाभिधानशक्तिपरिवृता गकारौकारविसर्जनीयाः सास्नादिमन्तमर्थं द्योतयन्तीति।

तदेतेषामर्थसंकेतेनावच्छिन्नानामुपसंहृतध्वनिक्रमाणां य एको बुद्धिनिर्भासस्तत्पदं वाचकं वाच्यस्य संकेत्यते। तदेकं पदमेकबुद्धिविषयमेकप्रयत्नाक्षिप्तमभागमक्रममवर्णं बौद्धमन्त्यवर्णप्रत्ययव्यापारोपस्थापितं परत्र प्रतिपिपादयिषया वर्णैरेवाभिधीयमानैः श्रूयमाणैश्च श्रोतृभिरनादिवाग्व्यवहारवासनानुविद्धया लोकबुद्ध्या सिद्धवत्संप्रतिपत्त्या प्रतीयते।

तस्य संकेतबुद्धितः प्रविभागः एतावतामेवंजातीयकोऽनुसंहार एकस्यार्थस्य वाचक इति। संकेतस्तु पदपदार्थयोरितरेतराध्यासरूपः

स्मृत्यात्मको योऽयं शब्दः सोऽयमर्थो योऽयमर्थः सोऽयं शब्द इति । एवमितरेतराध्यासरूपः संकेतो भवतीति । एवमेते शब्दार्थप्रत्यया इतरेतराध्यासात्संकीर्णा गौरिति शब्दो गौरित्यर्थो गौरिति ज्ञानम् । य एषां प्रविभागज्ञः स सर्ववित् ।

सर्वपदेषु चास्ति वाक्यशक्तिर्वृक्ष इत्युक्तेऽस्तीति गम्यते ।

न सत्तां पदार्थो व्यभिचरतीति । तथा न ह्यसाधना क्रियाऽस्तीति ।

तथा च पचतीत्युक्ते सर्वाकारकाणामाक्षेपो नियमार्थोऽनुवादः कर्तृकरणकर्मणां चैत्राग्नितण्डुलानामिति । दृष्टं च वाक्यार्थे पदरचनं श्रोत्रियश्छन्दोऽधीते, जीवति प्राणान्धारयति । तत्र वाक्ये पदार्थाभिव्यक्तिस्ततः पदं प्रविभज्य व्याकरणीयं क्रियावाचकं वा कारकवाचकं वा । अन्यथा भवत्यश्वोऽजापय इत्येवमादिषु नामाख्यातसारूप्यादनिर्ज्ञातं कथं क्रियायां कारके वा व्याक्रियेतेति ।

तेषां शब्दार्थप्रत्ययानां प्रविभागः । तद्यथा श्वेतते प्रासाद इति क्रियार्थः, श्वेतः प्रासाद इति कारकार्थः शब्दः, क्रियाकारकात्मा तदर्थः प्रत्ययश्च । कस्मात् । सोऽयमित्यभिसंबन्धादेकाकार एव प्रत्ययः संकेत इति ।

यस्तु श्वेततोऽर्थः स शब्दप्रत्यययोरालम्बनीभूतः । स हि स्वाभिरवस्थाभिर्विक्रियमाणो न शब्दसहगतो न बुद्धिसहगतः । एवं शब्द एवं प्रत्ययो नेतरेतरसहगत इत्यन्यथा शब्दोऽन्यथाऽर्थोऽन्यथा प्रत्यय इति विभागः । एवं तत्प्रविभागसंयमाद्योगिनः सर्वभूतरुतज्ञानं संपद्यत इति ॥ १७ ॥

व्या० भा० पदार्थ

(तत्र वाग्वर्णेष्वेवार्थवती) शब्दों में वाणी वर्णों में ही अर्थ वाली है अर्थात् वर्णों द्वारा ही अर्थ को प्रकाश करती है । (श्रोत्रं च ध्वनिपरिणाममात्रविषयम्) ध्वनि के परिणाममात्र को विषय

करने वाला श्रोत्रेन्द्रिय है। (पदं पुनर्नादानुसंहारबुद्धिनिर्ग्राह्यमिति) नाद=ध्वनि के समाप्त होने पर बुद्धि से ग्रहण करने योग्य "पद" है।

(वर्णा एकसमयासंभवित्वात्परस्परनिरनुग्रहात्मनः) वर्णों का एक साथ उच्चारण असंभव होने से परस्पर सहायक नहीं हैं (ते पदमसंस्पृश्यानुपस्थाप्याऽऽविर्भूतास्तिरोभूताश्च) वह वर्ण पदों में मिलकर न ठहरते हुए प्रकट और लुप्त होते हैं (इति प्रत्येकमपद-स्वरूपा उच्यन्ते) इस कारण प्रत्येक को पद स्वरूप कहा जाता है।

(वर्णः पुनरेकैकः पदात्मा सर्वाभिधानशक्तिप्रचितः) वर्ण फिर एक २ पदरूप सर्वार्थ प्रकाशक शक्ति से युक्त (सहकारि-वर्णान्तरप्रतियोगित्वाद्वैश्वरूप्यमिवाऽऽपन्नः) दूसरे सहकारि वर्ण का प्रतियोगी होने से सर्वरूपता को प्राप्त हुआ (पूर्वश्चोत्तरेणो-त्तरश्च पूर्वेण विशेषेऽवस्थापित इति) पहला पिछले के साथ और पिछला पहले के साथ विशेषरूप से रहते हैं (एवं बहवो वर्णाः क्रमानुरोधिनोऽर्थसंकेतेनावच्छिन्नाः) इस प्रकार बहुत से वर्ण क्रमानुसार अर्थ संकेत सहित (इयन्त एते सर्वाभिधानशक्तिपरि-वृताः) यहां तक की यह सब प्रकाशक शक्ति से वर्तते हुए (गका-रौकारविसर्जनीया सास्नादिमन्तमर्थं द्योतयन्तीति) गकार-औकार और विसर्ग के द्वारा सास्नादि विशेष चिन्ह वाले अर्थ को प्रका-शित करते हैं अर्थात् "गौ" शब्द का जो अर्थ गौ पशु विशेष उस को प्रकाशित करते हैं।

(तदेतेषामर्थसंकेतेनावच्छिन्नानामुपसंहृतध्वनिक्रमाणां य एको बुद्धिनिर्भासस्तत्पदं वाचकं) इन अर्थ संकेत सहित वर्णों की ध्वनि क्रम के समाप्त होने पर जो बुद्धि से एक भासित होता है वह "पद" वाचक है (वाच्यस्य संकेत्यते) वाच्य के साथ उसका संकेत किया जाता है। (तदेकं पदमेकबुद्धिविषयमेकप्रयत्नाक्षिप्तम्) वह

एक पद एक ज्ञान का विषय एक प्रयत्न से प्रकाशित किया हुआ (अभागमक्रममवर्णं) भाग, क्रम और वर्ण रहित (बौद्धमन्त्य-वर्णप्रत्ययव्यापारोपस्थापितं) बुद्धि में पूर्व और अन्त्य वर्णों से उत्पन्न ज्ञान रूप व्यापार स्थापित करके (परत्र प्रतिपिपादयिषया:) दूसरे पुरुष में प्रतिपादन करने की इच्छा से (वर्णैरेवाभिधीय-मानैः) उच्चारण किये वर्णों द्वारा (श्रूयमाणैश्च श्रोतृभिः) सुनते हुए श्रोता से (अनादिवाग्व्यवहारवासनानुविद्धया) अनादि वाग व्यवहार वासनावाली परमार्थ बुद्धि से युक्त (लोकबुद्ध्या सिद्धि-वत्संप्रतिपत्त्या प्रतीयते) लोक बुद्धि की सिद्धि के समान वर्तमान काल में भी अर्थ जाना जाता है।

(तस्य संकेतबुद्धितः प्रविभागः) उसका संकेत बुद्धि से विभक्त होता है कि (एतावतामेवंजातीयकोऽनुसंहार एकस्यार्थस्य वाचक इति) यहां तक इस पद का अनुसंहार इस एक अर्थ अमुक जाति का वाचक है। (संकेतस्तु पदपदार्थयोरितरेतराध्यासरूपः स्मृत्या-त्मकः) संकेत तो पद और पदार्थ इन दोनों का परस्पर अध्यास-रूप स्मृतिरूप है अर्थात् पूर्व सुने हुए के अनुसन्धान द्वारा ग्रहण होता है (योऽयं शब्दः सोऽयमर्थः) जो यह शब्द है वह इसका यह अर्थ है (योऽयमर्थः सोऽयं शब्द इति) जो यह अर्थ है वही यह शब्द है। (एवमेते शब्दार्थप्रत्यया इतरेतराध्यासात्संकीर्णाः) इस प्रकार यह शब्द—अर्थ—ज्ञान तीनों परस्पर अध्यासरूप से मिले हुए हैं। (गौरिति शब्दो गौरित्यर्थो गौरिति ज्ञानम्) गौ यह शब्द, गौ यह अर्थ, गौ यह ज्ञान। (य एषां प्रविभागज्ञः स सर्व-वित्) जो इन तीनों के विभाग का जानने वाला वह सर्व प्राणियों के वाक्यार्थ का जानने वाला है।

(सर्वपदेषु चास्ति वाक्यशक्तिः) सर्व पदों में वाक्यशक्ति है (वृक्ष इत्युक्तेऽस्तीति गम्यते) "वृक्ष" इतना कहने पर अस्ति शब्द

भी इसमें है यह सिद्ध होता है । (न सत्तां पदार्थो व्यभिचरतीति) पद और अर्थ होते हुए व्यभिचार नहीं होसक्ता । (तथा न ह्यसाधना क्रियाऽस्तीति) क्रिया अपने साधनों के बिना नहीं होती ।

(तथा च पचतीत्युक्ते) पचति इस कहने पर (सर्वकारकाणामाक्षेपः) सर्व कारकों का इसमें अध्याहार है (नियमार्थोऽनुवादः) नियमानुसार अर्थानुवाद होता है (कर्तृकरणकर्मणां चैत्राग्नितण्डुलानामिति) कर्ता, करण, कर्म चैत्र, अग्नि, तण्डुलादि इस वाक्य में हैं । (दृष्टं च वाक्यार्थे पदरचनं) इस प्रकार वाक्यार्थ में पदरचना देखी गई (श्रोत्रियश्छन्दोऽधीते, जीवति प्राणान्धारयति) वेदपाठी वेद पढ़ता है. जीता हुआ प्राणों को धारण करता हुआ । (तत्र वाक्ये पदार्थाभिव्यक्तिः) उस वाक्य में पद और अर्थ की अभिव्यक्ति है (ततः पदं प्रविभज्य व्याकरणीयं) इस कारण पद विभाग करके वाक्य रचना करनी योग्य है (क्रियावाचकं वा कारकवाचकं वा) क्रियावाचक हो अथवा कारकवाचक हो । (अन्यथा भवत्यश्वोऽजापय इत्येवमादिषु) यदि पद विभाग करके वाक्य रचना न की जाय तो ऐसा होगा कि घोड़ा, बकरी, दूध, इत्यादि, होना यह चाहिये अश्व यातिः=घोड़ा जाता है, अजापय पिब=बकरी का दूध पी इस तरह वाक्य पूरा होता है । इस कारण (नामाख्यातसारूप्यादनिर्ज्ञातं) नामिक, सुबन्त, आख्यातिक, तिङन्त का एक रूप होने से निश्चय रूप से ज्ञात नहीं होता (कथं क्रियायां कारके वा व्याक्रियेतेति) किस प्रकार कि क्रिया में वा कारक में वाक्य रचना की जाती है ।

(तेषां शब्दार्थप्रत्ययानां प्रविभागः) उनमें शब्द और अर्थ और ज्ञान का विभाग है । (तद्यथा श्वेतते प्रासाद इति क्रियार्थः) उस विषय में जैसे अटारी श्वेत हो रही है यह क्रियार्थक वाक्य है, (श्वेतः प्रसाद इति कारकार्थः शब्दः) अटारी रंग से सफेद है

यह कारकार्थ पद है, (क्रियाकारकात्मा तदर्थः प्रत्ययश्च) क्रिया और कारक रूप ही वह अर्थ और ज्ञान है। (कस्मात्) क्योंकि, (सोऽयमित्यभिसंबन्धादेकाकार एव प्रत्ययः संकेत इति) सो यह संकेत ऊपर कहे सम्बन्ध से एक रूप ज्ञान ही है।

(यस्तु श्वेतोऽर्थ स शब्दप्रत्यययोरालम्बनीभूतः) जो वह श्वेत "अर्थ" अटारी है वह शब्द और ज्ञान इन दोनों को आश्रित किये हुए है। (स हि स्वाभिरवस्थाभिर्विक्रियमाणो न शब्दसहगतो न बुद्धिसहगतः) वह अर्थ अपनी अवस्था से विकार को प्राप्त होता हुआ न शब्द के साथ मिला है, न बुद्धि के साथ मिला है। (एवं शब्द एवं प्रत्यय) इस प्रकार शब्द और इस प्रकार ज्ञान (नेतरेतरसहगतः) एक दूसरे के साथ मिले हुए नहीं (इत्यन्यथा शब्दोऽन्यथाऽर्थोऽन्यथा प्रत्यय इति विभागः) इस कारण शब्द का भिन्न रूप है अर्थ भिन्नरूप वाला है ज्ञान का भिन्न रूप है यह तीनों में भेद है। (एवं तत्प्रविभागसंयमाद्योगिनः सर्वभूतरुतज्ञानं संपद्यत इति) इस प्रकार योगी को उनके विभाग में संयम करने से सर्व प्राणियों के वाक्यार्थ का ज्ञान प्राप्त होता है ॥ १७ ॥

भो० वृत्ति

शब्द श्रोत्रेन्द्रियग्राह्यो नियतक्रमवर्णात्मा नियतैकार्थप्रतिपत्त्यवच्छिन्नः। यदि वा क्रमरहितः स्फोटात्मा शास्त्रसंस्कृतबुद्धिग्राह्यः। उभयथाऽपि पदरूपो वाक्यरूपश्च तयोरेकार्थप्रतिपत्तौ सामर्थ्यात्। अर्थो जातिगुणक्रियादिः। प्रत्ययो ज्ञानं विषयाकारा बुद्धिवृत्तिः। एषां शब्दार्थज्ञानानां व्यवहार इतरेतराध्यासाद्भिन्नानामपि बुद्ध्येकरूपतासंपादनात्संकीर्णत्वम्। तथा हि—गामानयेत्युक्ते कश्चिद्गोलक्षणमर्थं गोत्वजात्यवच्छिन्नं सास्नादिमत्पिण्डरूपं शब्दं च तद्वाचकं ज्ञानं च तद्ग्राहकमभेदेनैवाध्यवस्यति, न त्वस्य गोशब्दो वाचकोऽयं गोशब्दस्य वाच्यस्तयोरिदं ग्राहकं ज्ञानमिति भेदेन व्यवहरति। तथा हि—कोऽयमर्थः कोऽयं शब्दः किमिदं ज्ञानमिति

पृष्टः सर्वत्रैकरूपमेवोत्तरं ददाति गौरिति । स यद्येकरूपतां न प्रतिपद्यते कथमेकरूपमुत्तरं प्रयच्छति । एतस्मिन् स्थिते योऽयं प्रविभाग इदं शब्दस्य तत्त्वं यद्वाचकत्वं नाम, इदमर्थस्य यद्वाच्यत्वमिदं ज्ञानस्य यत्प्रकाशकत्वमिति प्रविभागं विधाय तस्मिन्प्रविभागे यः संयमं करोति तस्य सर्वेषां भूतानां मृगपशुपक्षिसरीसृपादीनां यद्रुतं यः शब्दस्तत्र ज्ञानमुत्पद्यतेऽनेनैवाभिप्रायेणैतेन प्राणिनाऽयं शब्दः समुच्चारित इति सर्वं जानाति ॥ १७ ॥

सिद्ध्यन्तरमाह—

भो० वृ० पदार्थ

(शब्दः श्रोत्रेन्द्रियग्राह्यः नियतक्रमवर्णात्मा नियतैकार्थप्रतिपत्त्यवच्छिन्नः) श्रोत्र इन्द्रिय से ग्रहण करने योग्य वर्णों का क्रम नियम के साथ एक नियत अर्थ की प्राप्ति सहित शब्द कहलाता है । (यदि वा क्रमरहितः स्फोटात्मा शास्त्रसंस्कृतबुद्धिग्राह्यः) यदि वह क्रम रहित स्फोट रूप शास्त्र से उत्पन्न हुई बुद्धी से ग्रहण करने योग्य, वह भी शब्द है । (उभयथाऽपि पदरूपो वाक्यरूपश्च) दोनों प्रकार से भी पदरूप और वाक्यरूप (तयोरेकार्थप्रतिपत्तौ समर्थ्यात्) उन दोनों की एक अर्थ प्राप्ति में सामर्थ होने से । (अर्थो जातिगुणक्रियादिः) जाति, गुण, क्रिया सहित अर्थ होता है । इसी को वैशेषिक शास्त्र की परिभाषा में क्रिया और गुण का आश्रय ही द्रव्य है यह कहते हैं । (प्रत्ययो ज्ञानं विषयाकारा बुद्धिवृत्तिः) प्रत्यय का अर्थ ज्ञान अर्थात् विषयाकार बुद्धि की वृत्ति है । (एषां शब्दार्थज्ञानानां व्यवहार इतरेतराध्यासाद्भिन्नानामपि) शब्द अर्थ और ज्ञान इन तीनों का व्यवहार परस्पर एक दूसरे के अध्यास से भिन्न हुओं का भी (बुद्ध्येकरूपतासंपादनात्संकीर्णत्वम्) बुद्धि में एकरूपता से सम्पादन होने से मिला हुआ है । (तथा हि—गामानयेत्युक्ते) वैसे ही—गाय को लाओ इस कहने पर (कश्चिद्गोलक्षणमर्थं गोत्वजात्यवच्छिन्नं सास्नादिमत्पिण्डरूपं) कोई गौ चिन्ह वाले अर्थ गोत्व जाति सहित सास्नादि वाले पिण्डरूप को (शब्दं च तद्वाचकं ज्ञानं च

तद्ग्राहकम्) उसके वाचक शब्द की और उसके ग्राहक ज्ञान को (अभेदेनैवाध्यवस्यति) भेद रहितता से निश्चय करता है, (न ह्यस्य गोशब्दो वाचकोऽयं गोशब्दस्य वाच्यस्तयोरिदं ग्राहकं ज्ञानमिति भेदेन व्यवहरति) यह गौ शब्द वाचक है, यह गौ शब्द का वाच्य है, यह इन दोनों का ग्राहकज्ञान है इस प्रकार के भेद से इसका व्यवहार नहीं करता । (तथा हि—कोऽयमर्थः कोऽयं शब्दः किमिदं ज्ञानम्) वैसे ही—कौन यह अर्थ है ? कौन यह शब्द है ? क्या यह ज्ञान है ? (इति पृष्ठः सर्वत्रैकरूपमेवोत्तरं ददाति गौरिति) ऐसा पूछनेपर सर्वत्र एक रूप से ही उत्तर देता है, गौ है । (स यद्येकरूपतां न प्रतिपद्यते कथमेकरूपमुत्तरं प्रयच्छति) यदि वह एकरूपता को न प्राप्त होवे तो किस प्रकार एक उत्तर देता है । (एतस्मिन्स्थिते योऽयं प्रविभागः) इसमें रहते हुए जो यह विभाग है (इदं शब्दस्य तत्त्वं यद्वाचकत्वं नाम) यह शब्द का तत्त्व है जो वाचक नाम है, (इदमर्थस्य यद्वाच्यत्वम्) यह अर्थ का तत्त्व है जो वाच्यत्व है (इदं ज्ञानस्य यत्प्रकाशकत्वम्) जो प्रकाशकत्व धर्म है वह ज्ञान का तत्त्व है (इति प्रविभागं विधाय तस्मिन्प्रविभागे यः संयमं करोति) इस प्रकार विभाग को जानकर उस विभाग में जो संयम करता है (तस्य सर्वेषां भूतानां मृगपशुपक्षिसरीसृपादीनां यद्रुतं यः शब्दस्तत्र ज्ञानमुत्पद्यते) उसका सर्वभूतों मृग, पशु, पक्षी, सरी, सरपादि की जो ध्वनि जो शब्द है उनमें ज्ञान उत्पन्न होता है (अनेनैवाभिप्रायेणैतेन प्राणिनाऽयं शब्द समुच्चारित इति सर्वं जानाति) इस अभिप्राय से इस प्राणी ने यह शब्द बोला है इस प्रकार सर्व जानता है ॥ १७ ॥

(सिद्ध्यन्तरमाह) दूसरी सिद्धि कहते हैं—

संस्कारसाक्षात्करणात्पूर्वजातिज्ञानम् ॥ १८ ॥

सू०—पूर्वोक्त संयम द्वारा संस्कार के साक्षात् करने से पूर्व जाति का ज्ञान होता है ॥ १८ ॥

व्या० भाष्यम्

द्वये खल्वमी संस्काराः स्मृतिक्लेशहेतवो वासनारूपा विपाकहेतवो धर्माधर्मरूपाः । ते पूर्वभवाभिसंस्कृताः परिणामचेष्टानिरोधशक्तिजीवनधर्मवदपरिदृष्टाश्चित्तधर्माः । तेषु संयमः संस्कारसाक्षात्क्रियायै समर्थः । न च देशकालनिमित्तानुभवैर्विना तेषामस्ति साक्षात्करणम् । तदित्थं संस्कारसाक्षात्करणात्पूर्वजातिज्ञानमुत्पद्यते योगिनः । परत्राप्येवमेव संस्कारसाक्षात्करणात्परजातिसंवेदनम् ।

अत्रेदमाख्यानं श्रूयते—भगवतो जैगीषव्यस्य संस्कारसाक्षात्करणाद्दशसु महासर्गेषु जन्मपरिणामक्रममनुपश्यतो विवेकजं ज्ञानं प्रादुरभूत । अथ भगवानावट्यस्तनुधरस्तमुवाच – दशसु महासर्गेषु भव्यत्वादनभिभूतबुद्धिसत्त्वेन त्वया नरकतिर्यग्गर्भसंभवं दुःखं संपश्यता देवमनुष्येषु पुनः पुनरुत्पद्यमानेन सुखदुःखयोः किमधिकमुपलब्धमिति । भगवन्तमावट्यं जैगीषव्य उवाच—दशसु महासर्गेषु भव्यत्वादनभिभूतबुद्धिसत्त्वेन मया नरकतिर्यग्भवं दुःखं संपश्यता देवमनुष्येषु पुनः पुनरुत्पद्यमानेन यत्किंचिदनुभूतं तत्सर्वं दुःखमेव प्रत्यवैमि । भगवानावट्य उवाच—यदिदमायुष्मतः प्रधानवशित्वमनुत्तमं च संतोषसुखं किमिदमपि दुःखपक्षे निक्षिप्तमिति । भगवाञ्जैगीषव्य उवाच—विषयसुखापेक्षयैवेदमनुत्तमं संतोषसुखमुक्तम् कैवल्यसुखापेक्षया दुःखमेव । बुद्धिसत्त्वस्यायं धर्मस्त्रिगुणस्त्रिगुणश्च प्रत्ययो हेयपक्षे न्यस्त इति दुःखरूपस्तृष्णातन्तुः । तृष्णादुःखसंतापापगमात्तु प्रसन्नमबाधं सर्वानुकूलं सुखमिदमुक्तमिति ॥ १८ ॥

व्या० भा० पदार्थ

(द्वये खल्वमी संस्काराः) निश्चय यह संस्कार दो प्रकार के हैं (स्मृतिक्लेशहेतवः) स्मृति और क्लेशों के कारण अर्थात् ज्ञान से उत्पन्न हुए संस्कार पुनः ज्ञान स्मृति के कारण होते हैं, अवि-

द्यादि क्लेशों के संस्कार पुनः अविद्यादि क्लेशों के कारण होते हैं (वासनारूपा विपाकहेतवो धर्माधर्मरूपाः) विषय वासनारूप धर्म—अधर्म के कारण सुख—दुःख फल के उत्पादक होते हैं। (ते पूर्वभवाभिसंस्कृताः) वह पूर्व जन्म के बनाये हुए होते हैं (परिणामचेष्टानिरोधशक्तिजीवनधर्मवदपरिदृष्टाश्चित्तधर्माः) चित्त के धर्म परिणामरूप, क्रियावाले, निरोधरूप, सामर्थतासहित, जीवन अर्थात् भोगरूप और धर्म वाले देखे गये हैं। (तेषु संयमः संस्कारसाक्षात्क्रियायै समर्थः) उनमें संयम किया हुआ संस्कार साक्षात् करने के लिये समर्थ होता है। (न च देशकालनिमित्तानुभवैर्विना तेषामस्ति साक्षात्करणम्) परन्तु देश, काल, निमित्त, अनुभव के विना उनका साक्षात् नहीं किया जाता। (तदित्थं संस्कारसाक्षात्करणात्पूर्वजातिज्ञानमुत्पद्यते योगिनः) वह इस प्रकार संस्कार साक्षात् करने से योगी को पूर्व जाती का ज्ञान उत्पन्न होता है। (परत्राप्येवमेव संस्कारसाक्षात्करणात्परजातिसंवेदनम्) दूसरे पुरुष के चित्त धर्मों में भी इसी प्रकार संयम द्वारा संस्कारों के साक्षात् करने से उस दूसरे पुरुष की पूर्व जाति का ज्ञान होता है।

(अत्रेदमाख्यानं श्रूयते) इस विषय में यह आख्यायिका=कथा सुनी जाती है—(भगवतो जैगीषव्यस्य संस्कारसाक्षात्करणाद्दशसु महासर्गेषु) ऐश्वर्य्यशाली महर्षि जैगीषव्य को संस्कार साक्षात् करने से दश सृष्टियों में (जन्मपरिणामक्रममनुपश्यतो विवेकजं ज्ञानं प्रादुरभूत) जन्मपरिणाम क्रम को देखते हुए विवेकज ज्ञान उत्पन्न हुआ।

(अथ भगवानावट्यस्तनुधरस्तमुवाच) परमैश्वर्ययुक्त आवट्य ऋषि शरीरधारी ने उन महर्षि जैगीषव्य से प्रश्न किया—(दशसु महासर्गेषु भव्यत्वादनभिभूतबुद्धिसत्त्वेन त्वया नरकतिर्यग्गर्भसंभवं दुःखं संपश्यताः) दश महान् सृष्टियों में भोग अवश्यंभावी होने

से प्रकाशमय बुद्धि द्वारा आपने नरक तिर्यकादि गर्भों में उत्पन्न दुःख को साक्षात् करते हुए (देवमनुष्येषु पुनः पुनरुत्पद्यमानेन सुखदुःखयोः) और देव-मनुष्यादि योनियों में बारम्बार उत्पन्न होते हुए सुख-दुःखादि में (किमधिकमुपलब्धमिति) क्या अधिक उपलब्ध किया।

(भगवन्तमावट्यं जैगीषव्य उवाच) ऐश्वर्यसम्पन्न जैगीषव्य ऋषि ने उत्तर दिया कि—(दशसु महासर्गेषु भव्यत्वादनभिभूत-बुद्धिसत्त्वेन मया नरकतिर्यग्भवं दुःखं संपश्यता) दश महान् सृष्टियों में भोग अवश्यंभावी होने से प्रकाशमय बुद्धि द्वारा मैंने नरक तिर्यकादि जन्मदुःख को देखते हुए (देवमनुष्येषु पुनः पुनरुत्पद्यमानेन) और देव मनुष्यादि योनियों में बार २ उत्पन्न होते हुए (यत्किंचिदनुभूतं तत्सर्वं दुःखमेव प्रत्यवैमी) जो कुछ अनुभव किया वह सब दुःख ही जानता हूं।

(भगवानावट्य उवाच) भगवान् आवट्य ऋषि ने पुनः प्रश्न किया—(यदिदमायुष्मतः प्रधानवशित्वमनुत्तमं च संतोषसुखं) जो यह जीवन काल में चित्त इन्द्रियादि को वश करके सबसे उत्तम संतोष सुख होता है (किमिदमपि दुःखपक्षे निक्षिप्तमिति) क्या यह भी आपने दुःखपक्ष में डाल दिया।

(भगवाञ्जैगीषव्य उवाच) पुनः भगवान् जैगीषव्य ने उत्तर दिया—(विषयसुखापेक्षयैवेदमनुत्तमं संतोषसुखमुक्तम्) विषय सुख की अपेक्षा से ही यह संतोष सुख सबसे उत्तम कहा है। (कैवल्यसुखापेक्षया दुःखमेव) कैवल्य सुख की अपेक्षा से तो संतोष सुख भी दुःख ही है। (बुद्धिसत्त्वस्यायं धर्मस्त्रिगुणः) यह त्रिगुण बुद्धि का धर्म है (त्रिगुणश्च प्रत्ययो हेयपक्षे न्यस्त) और तीन गुणों से उत्पन्न हुआ ज्ञान त्याज्य पक्ष में रक्खा गया है (इति दुःखरूपैस्तृष्णातन्तुः) इस कारण दुःखरूप ही तृष्णा का तार है।

(तृष्णादुःखसंतापापगमात्तु प्रसन्नमबाधं सर्वानुकूलं सुखमिदमुक्तमिति) तृष्णा जनक दुःख संताप के नष्ट होने से प्रसन्न अबाधरूप सर्वानुकूल यह संतोष सुख कहा गया ॥ १८ ॥

भो० वृत्ति

द्विविधाश्चित्तस्य वासनारूपाः संस्काराः । केचित्स्मृतिमात्रोत्पादनफलाः, केचिज्जात्यायुर्भोगलक्षणविपाकहेतवः, यथा धर्माधर्माख्याः । तेषु संस्कारेषु यदा संयमं करोति एवं मया सोऽर्थोऽनुभूत एवं मया सा क्रिया निष्पादितेति पूर्ववृत्तमनुसंदधानो भावयन्नेव प्रबोधकमन्तरेणोद्बुद्धसंस्कारः सर्वमतीतं स्मरति । क्रमेण साक्षात्कृतेषूद्बुद्धेषु संस्कारेषु पूर्वजन्मानुभूतानपि जात्यादीन्प्रत्यक्षेण पश्यति ॥ १८ ॥

सिद्ध्यन्तरमाह—

भो० वृ० पदार्थ

(द्विविधाश्चित्तस्य वासनारूपाः संस्काराः) चित्त के वासनारूपी संस्कार दो प्रकार के हैं (केचित्स्मृतिमात्रोत्पादनफलाः) कोई एक स्मृति को उत्पन्न करना रूप फलवाले, (केचिज्जात्यायुर्भोगलक्षणविपाकहेतवः) और कोई एक जाति, आयु, भोगरूप फल के कारण, (यथा धर्माधर्माख्याः) जैसे धर्म, अधर्म कहे गये । (तेषु संस्कारेषु यदा संयमं करोति) उन संस्कारों में जब संयम करता है (एवं मया सोऽर्थोऽनुभूतः) इस प्रकार मैंने अमुक अर्थ अनुभव किया (एवं मया सा क्रिया निष्पादित) इस प्रकार मैंने वह क्रिया की है (इति पूर्ववृत्तमनुसंदधानो भावयन्नेव) इस प्रकार पूर्ववृत्ति का ध्यान सहित स्मरण करते हुए और विचार करते हुए (प्रबोधकमन्तरेणोद्बुद्धसंस्कारः सर्वमतीतं स्मरति) प्रबोधक दूसरे उद्बुद्ध संस्कार द्वारा सर्व अतीत ज्ञान—कर्मादि को स्मरण करता है । (क्रमेण साक्षात्कृतेषूद्बुद्धेषु संस्कारेषु पूर्वजन्मानुभूतानपि जात्यादीन्प्रत्यक्षेण

पश्यति) क्रम से साक्षात् किये उद्बुद्ध संस्कारों द्वारा पूर्व जन्मों में अनुभव किये हुए जाति आदि को भी प्रत्यक्ष रूप से देखता है ॥ १८ ॥

(सिद्ध्यन्तरमाह) अन्य सिद्धि कहते हैं—

प्रत्ययस्य परचित्तज्ञानम् ॥ १९ ॥

सू०—पर पुरुष की वृत्ति में संयम करने से उसके साक्षात् होनेपर उसके चित्त का ज्ञान होता है ॥ १९ ॥

व्या० भाष्यम्

प्रत्यये संयमात्प्रत्ययस्य साक्षात्करणात्ततः परचित्तज्ञानम् ॥१९॥

व्या० भा० पदार्थ

(प्रत्यये संयमात्प्रत्ययस्य साक्षात्करणात्ततः परचित्तज्ञानम्) वृत्ति में संयम करके वृत्ति के साक्षात् करने से उस से अन्य के चित्त का ज्ञान होता है ॥ १९ ॥

भो० वृत्ति

प्रत्ययस्य परचित्तस्य केनचिन्मुखरागादिना लिङ्गेन गृहीतस्य यदा संयमं करोति तदा परकीयचित्तस्य ज्ञानमुत्पद्यते सरागमस्य चित्तं विरागं वेति । परचित्तगतानपि धर्माञ्जानातीत्यर्थः ॥ १९ ॥

अस्यैव परचित्तज्ञानस्य विशेषमाह—

भो० वृ० पदार्थ

(प्रत्ययस्य परचित्तस्य केनचिन्मुखरागादिना लिङ्गेन गृहीतस्य यदा संयमं करोति) दूसरे के चित्त की वृत्ति में मुख की आकृति और रागादि कोई एक चिन्हों के ग्रहणपूर्वक जब योगी संयम करता है (तदा परकीयचित्तस्य ज्ञानमुत्पद्यते) तब दूसरे के चित्त का ज्ञान उत्पन्न होता है (स रागमस्य चित्तं विरागं वेति) इसका चित्त रागयुक्त है अथवा वैराग्य-

वाला है। (परचित्तगतानपि धर्मान्जानातीत्यर्थः) दूसरे के चित्त प्रविष्ट धर्मों को जानता है यह अर्थ है ॥ १९ ॥

(अस्यैव परचित्तज्ञानस्य विशेषमाह) इस ही परचित्त ज्ञान की विशेषता को आगे कहते हैं—

न च तत्सालम्बनं तस्याविषयीभूतत्वात् ॥ २० ॥

सू०—उस के अविषयरूप होने से योगी को आलम्बन सहित अन्य के चित्त का ज्ञान उत्पन्न नहीं होता अर्थात् उस दूसरे पुरुष के चित्त का आलम्बन अविषय होता है ॥ २० ॥

व्या० भाष्यम्

रक्तं प्रत्ययं जानात्यमुष्मिन्नालम्बने रक्तमिति न जानाति। परप्रत्ययस्य यदालम्बनं तद्योगिचित्तेन नाऽऽलम्बनीकृतं परप्रत्ययमात्रं तु योगिचित्तस्यालम्बनीभूतमिति ॥ २० ॥

व्या० भा० पदार्थ

(रक्तं प्रत्ययं जानात्यमुष्मिन्नालम्बने रक्तमिति न जानाति) रागवाली वृत्ति को जानता है परन्तु अमुक आश्रय में रक्त है योगी यह नहीं जानता। (परप्रत्ययस्य यदालम्बनं तद्योगिचित्तेन नाऽऽलम्बनीकृतं) दूसरे के ज्ञान का जो आश्रय है उसको योगी ने चित्त के साथ आश्रित नहीं किया है (परप्रत्ययमात्रं तु योगिचित्तस्यालम्बनीभूतमिति) दूसरे की वृत्तिमात्र तो योगी के चित्त की आलम्बनरूप हुई है ॥ २० ॥

भो० वृत्ति

तस्य परस्य यच्चित्तं तत्सालम्बनं स्वकीयेनाऽऽलम्बनेन सहितं न शक्यते ज्ञातुमालम्बनस्य केनचिल्लिङ्गेनाविषयीकृतत्वात्। लिङ्गाच्चित्तमात्रं परस्यावगतं न तु नीलविषयमस्य चित्तं पीतविषयमिति वा। यच्च न गृहीतं तत्र संय-

मस्य कर्तुमशक्यत्वान्न भवति परचित्तस्य यो विषयस्तत्र ज्ञानम् । तस्मात्परकीयचित्तं नाऽऽलम्बनसहितं गृह्यते, तस्याऽऽलम्बनस्यागृहीतत्वात् । चित्तधर्माः पुनर्गृह्यन्त एव । यदा तु किमनेनाऽऽलम्बितमिति प्रणिधानं करोति तदा तत्संयमात्तद्विषयमपि ज्ञानमुत्पद्यत एव ॥ २० ॥

सिद्ध्यन्तरमाह—

भो० वृ० पदार्थ

(तस्य परस्य यच्चित्तं तत्सालम्बनं स्वकीयेनाऽऽलम्बनेन सहितं न शक्यते ज्ञातुम्) दूसरे का जो चित्त है वह आलम्बन सहित अर्थात् उस के अपने आलम्बन सहित नहीं जाना जा सक्ता (आलम्बनस्य केनचिल्लिङ्गेनाविषयीकृतत्वात्) आलम्बन का किसी लिङ्ग से विषयी कृतत्व न होने से क्योंकि आलम्बन किसी चिन्ह से विषय नहीं होता अर्थात् जाना नहीं जाता । (लिङ्गाच्चित्तमात्रं परस्यावगतं) लिङ्ग से दूसरे का चित्तमात्रभाव प्राप्त होता है (न तु नीलविषयमस्य चित्तं पीतविषयमिति वा) न कि इसका चित्त नीलरंग विषयक है अथवा पीतरंगविषयक है यह जानता । (यच्च न गृहीतं तत्र संयमस्य कर्तुमशक्यत्वान्न भवति परचित्तस्य यो विषयस्तत्र ज्ञानम्) जो ग्रहण नहीं किया उसमें संयम करना असंभव होने से दूसरे के चित्त का जो विषय है उसका ज्ञान नहीं होता । (तस्मात्परकीयचित्तं नाऽऽलम्बनसहितं गृह्यते, तस्याऽऽलम्बनस्यागृहीतत्वात्) उस कारण दूसरे के चित्त को आलम्बन सहित नहीं ग्रहण किया जाता क्योंकि उसका आलम्बन अगृहीतरूप होने से । (चित्तधर्माः पुनर्गृह्यन्त एव) परन्तु चित्त के धर्म ग्रहण किये जाते हैं । (यदा तु किमनेनाऽऽलम्बितमिति प्रणिधानं करोति) इसके चित्त से क्या वस्तु आलम्बित है जब इस प्रकार ध्यान करता है (तदा तत्संयमात्तद्विषयमपि ज्ञानमुत्पद्यत एव) तब उसका संयम होने से उस विषयक ज्ञान भी उत्पन्न होता ही है ॥ २० ॥

(सिद्ध्यन्तरमाह) अन्य सिद्धि आगे कहते हैं—

कायरूपसंयमात्तद्ग्राह्यशक्तिस्तम्भे चक्षुष्प्रकाशासंप्रयोगेऽन्तर्धानम् ॥ २१ ॥

सू०—काया के रूप में संयम करने से उसकी ग्राह्य शक्ति के बन्द करने पर चक्षु प्रकाश का संयोग न होने से योगी को "अन्तर्धान" उत्पन्न होता है ॥ २१ ॥

व्या० भाष्यम्

कायस्य रूपे संयमाद्रूपस्य या ग्राह्या शक्तिस्तां प्रतिष्टभ्नाति । ग्राह्यशक्तिस्तम्भे सति चक्षुष्प्रकाशासंप्रयोगेऽन्तर्धानमुत्पद्यते योगिनः । एतेन शब्दाद्यन्तर्धानमुक्तं वेदितव्यम् ॥ २१ ॥

व्या० भा० पदार्थ

(कायस्य रूपे संयमाद्रूपस्य या ग्राह्या शक्तिस्तां प्रतिष्टभ्नाति) शरीर के रूप में संयम करने से रूप की जो ग्राह्य शक्ति है उस को योगी बांध देता है । (ग्राह्यशक्तिस्तम्भे सति) ग्राह्य शक्ति के बन्द होने पर (चक्षुष्प्रकाशासंप्रयोगेऽन्तर्धानमुत्पद्यते योगिनः) योगी को चक्षु प्रकाश का संयोग न होने पर अन्तर्धान उत्पन्न होता है । (एतेन शब्दाद्यन्तर्धानमुक्तं वेदितव्यम्) इस से ही शब्दादि का भी अन्तर्धान कहा जानना चाहिये ॥ २१ ॥

भो० वृत्ति

कायः शरीरं तस्य रूपं चक्षुर्ग्राह्यो गुणस्तस्मिन्नस्त्यस्मिन्काये रूपमिति संयमात्तस्य रूपस्य चक्षुर्ग्राह्यत्वरूपा या शक्तिस्तस्याः स्तम्भे भावनावशात्प्रतिबन्धे चक्षुष्प्रकाशासंयोगे चक्षुषः प्रकाशः सत्त्वधर्मस्तस्यासंयोगे तद्ग्रहणव्यापाराभावे योगिनोऽन्तर्धानं भवति, न केनचिदसौ दृश्यत इत्यर्थः । एतेनैव रूपाद्यन्तर्धानोपायप्रदर्शनेन शब्दादीनां श्रोत्रादिग्राह्याणामन्तर्धानमुक्तं वेदितव्यम् ॥ २१ ॥

सिद्ध्यन्तरमाह—

भो० वृ० पदार्थ

(कायः शरीरं) काया = शरीर को कहते हैं (तस्य रूपं चक्षुर्ग्राह्यो गुणः) उसमें रूप चक्षु से ग्रहण होने योग्य धर्म है (तस्मिन्नस्त्यस्मिन्नकाये रूपमिति) उस इस शरीर में जो रूप है (संयमात्तस्य रूपस्य चक्षुर्ग्राह्यत्वरूपा या शक्तिस्तस्याः स्तम्भे भावनावशात्प्रतिबन्धे) उसमें संयम करने से चक्षुग्राह्य जो शक्ति भावना वश से उस के बन्द होने पर (चक्षुष्प्रकाशासंयोगे) चक्षु प्रकाश का संयोग न होने से (चक्षुषः प्रकाशः सत्त्वधर्मः) चक्षु का प्रकाश बुद्धि का धर्म है (तस्यासंयोगे) उसके संयोग न होने पर (तद्ग्रहणव्यापाराभावे) उस ग्रहण रूप व्यापार के अभाव होने पर (योगिनोऽन्तर्धानं भवति) योगी को अन्तर्धान प्राप्त होता है, (न केनचिदसौ दृश्यत इत्यर्थः) किसी से वह योगी देखा नहीं जाता यह अर्थ है । (एतेनैव रूपाद्यन्तर्धानोपायप्रदर्शनेन) इसी रूपादि अन्तर्धान के उपाय प्रदर्शन द्वारा (शब्दादीनां श्रोत्रादिग्राह्याणामन्तर्धानमुक्तं वेदितव्यम्) श्रोत्रादि द्वारा ग्राह्य शब्दादि विषयों का भी अन्तर्धान कहागया जानना चाहिये ॥ २१ ॥

(सिद्ध्यन्तरमाह) आगे अन्य सिद्धि कहते हैं—

सोपक्रमं निरुपक्रमं च कर्म तत्संयमादपरान्तज्ञानमरिष्टेभ्यो वा ॥ २२ ॥

सू०—(सोपक्रम) प्रारब्ध कर्म, उपक्रम सहित अर्थात् तीव्रवेग से फल देनेवाला और (निरुपक्रम) उपक्रम रहित अर्थात् मन्दवेग से फल देनेवाला इन दो रूपों वाला होता है उनमें संयम करने से मृत्यु का ज्ञान होता है अथवा मृत्यु के चिन्ह देखने से मृत्यु का ज्ञान होता है ॥ २२ ॥

व्या० भाष्यम्

आयुर्विपाकं कर्म द्विविधं सोपक्रमं निरुपक्रमं च । तत्र यथाऽऽ-

र्द्रं वस्त्रं वितानितं ह्रसीयसा कालेन शुष्येत्तथा सोपक्रमम्। यथा च तदेव संपिण्डितं चिरेण संशुष्येदेवं निरुपक्रमम्। यथा वाऽग्निः शुष्के कक्षे मुक्तो वातेन समन्ततो युक्तः क्षेपीयसा कालेन दहेत्तथा सोपक्रमम्। यथा वा स एवाग्निस्तृणराशौ क्रमशोऽवयवेषु न्यस्तश्चिरेण दहेत्तथा निरुपक्रमम्। तदैकभविकमायुष्करं कर्म द्विविधं सोपक्रमं निरुपक्रमं च। तत्संयमादपरान्तस्य प्रायणस्य ज्ञानम्।

अरिष्टेभ्यो वेति। त्रिविधमरिष्टमाध्यात्मिकमाधिभौतिकमाधिदैविकं च। तत्राऽऽध्यात्मिकं घोषं स्वदेहे पिहितकर्णो न शृणोति, ज्योतिर्वा नेत्रेऽवष्टब्धे न पश्यति। तथाऽऽधिभौतिकं यमपुरुषान्पश्यति, पितृनतीतानागतानकस्मात्पश्यति। तथाऽऽधिदैविकं स्वर्गमकस्मात्सिद्धान्वा पश्यति। विपरीतं वा सर्वमिति। अनेन वा जानात्यपरान्तमुपस्थितमिति॥ २२॥

व्या० भा० पदार्थ

(आयुर्विपाकं कर्म द्विविधं) आयुरूप फल देने वाला कर्म दो प्रकार का है (सोपक्रमं निरुपक्रमं च) उपक्रम सहित और उपक्रम रहित। (तत्र) उन दोनों में (यथाऽऽर्द्रं वस्त्रं वितानितं ह्रसीयसा कालेन शुष्येत्तथा सोपक्रमम्) जैसे गीला वस्त्र निचोड़ कर फैलाया हुआ अल्पकाल में सूख जाता है वैसा "सोपक्रम" है। (यथा च तदेव संपिण्डितं चिरेण संशुष्येदेवं निरुपक्रमम्) और जैसे वह ही वस्त्र इकट्ठा हुआ देर से सूखता है इस प्रकार "निरुपक्रम" है। भाव इस का यह है कि किसी के प्रारब्धकर्म जल्दी २ भोग कराकर आयु समाप्त करते हैं और किसी के देर से करते हैं आगे दूसरे दृष्टान्त से समझाते हैं। (यथा वाऽग्निः शुष्के कक्षे मुक्तो वातेन समन्ततो युक्तः क्षेपीयसा कालेन दहेत्तथा सोपक्रमम्) जैसे अग्नि सूखे तृणों में डाली हुई चारों ओर वायु से युक्त हुई अल्प काल में उसको जला देती है वैसा "सोपक्रम"

है। (यथा वा स एवाग्निस्तृणराशौ क्रमशोऽवयवेषु न्यस्तश्चिरेण दहेत्तथा निरुपक्रमम्) और जैसे वही अग्नि तृण समूह में क्रम से उसके अवयवों में लगाई हुई देर से जलावे वैसा "निरुपक्रम" है। (तदैकभविकमायुष्करं कर्म द्विविधं) वह एक जन्म की आयु को बनाने वाला कर्म दो प्रकार का है (सोपक्रमं निरूपक्रमं च) उपक्रमसहित और उपक्रमरहित। (तत्संयमादपरान्तस्य प्रायणस्य ज्ञानम्) उसमें संयम करने से अपरान्त अर्थात् मृत्यु का ज्ञान होता है कि इतने काल में मृत्यु होगा।

(अरिष्टेभ्यो वेति) अथवा अरिष्टों से ज्ञान होता है। (त्रिविधमरिष्टमाध्यात्मिकमाधिभौतिकमाधिदैविकं च) अरिष्ट तीन प्रकार के हैं आध्यात्मिक–आधिभौतिक–आधिदैविक। (तत्राऽऽध्यात्मिकं घोषं स्वदेहे पिहितकर्णो न शृणोति) अपने देह में जो घोष है कर्ण बन्द करने पर नहीं सुनता वह आध्यात्मिक है, (ज्योतिर्वा नेत्रेऽवष्टब्धे न पश्यति) नेत्रों के बन्द होने पर शरीर के अन्दर की ज्योति को नहीं देखता है। (तथाऽऽधिभौतिकं) वैसे ही आधिभौतिक यह है कि (यमपुरुषान्पश्यति) यम के पुरुषों को देखता है, (पितृनतीतानागतानकस्मात्पश्यति) अगले–पिछले पित्रों को अकस्मात् देखता है। (तथाऽऽधिदैविकं) वैसे ही आधिदैविक है (स्वर्गमकस्मात्सिद्धान्वा पश्यति) अकस्मात् स्वर्ग को अथवा सिद्धों को देखता है। (विपरीतं वा सर्वमिति) अथवा सर्व विपरीत देखता है। (अनेन वा जानात्यपरान्तमुपस्थितमिति) इससे जान लेता है कि मृत्यु समीपस्थ है ॥ २२ ॥

विशेष सूचना

इस सूत्र में फिर अरिष्टों की कहानी पौराणिक प्रतीत होती है क्योंकि योगी को अन्यथा ज्ञान=अविद्या–भ्रान्ति नहीं होती ऐश्वर्य सामर्थ्य से उसको सत्य=यथार्थ ज्ञान और ईश्वर में उसका प्रवेश रहता है यहां तो मरे मुरदों

और भविष्य के माता—पिता जिसकी उसको इच्छा नहीं और यम पुरुषों को देखता है और स्वर्गलोक भी देखता है जो वैदिक मार्ग में कोई लोक विशेष नहीं किंतु स्वर्ग जीव की एक गति विशेष है इसको मृत्यु का चिन्ह भी नहीं कह सके इस कारण यह भाष्य किसी पौराणिक ने वेदविरुद्ध यहां लिख दिया और ऋषिकृत भाष्य निकाल दिया और यदि दुर्जनतोष न्याय से मान भी लिया जावे तो आध्यात्मिक—आधिभौतिक—आधिदैविक इन तीनों का यह अर्थ है। आध्यात्मिक=शरीर के अङ्गादि की पुष्टी और स्वस्थ्यता से मृत्यु का अनुमान करना। आधिभौतिक=दूसरे प्राणियों से प्रारब्ध कर्मानुसार कैसी सहायता या हानि पहुंचती है। आधिदैविक=ऋतु आदि सहन की शक्ति अधिक वा न्यून है इससे अनुमान हो सक्ता है॥ २२॥

भो० वृत्ति

आयुर्विपाकं यत्पूर्वकृतं कर्म तद्द्विप्रकारं सोपक्रमं निरुपक्रमं च। तत्र सोपक्रमं यत्फलजननायोपक्रमेण कार्यकारणाभिमुख्येन सह वर्तते। यथोष्णप्रदेशे प्रसारितमार्द्रवासः शीघ्रमेव शुष्यति। उक्तरूपविपरीतं निरुपक्रमं यथा तदेवाऽऽर्द्रवासः संवर्तितमनुष्णदेशे चिरेण शुष्यति। तस्मिन्द्विविधे कर्मणि यः संयमं करोति किं मम कर्म शीघ्रविपाकं चिरविपाकं वा, एवं ध्यानदार्ढ्यादपरान्तज्ञानमस्योत्पद्यते। अपरान्तः शरीरवियोगस्तस्मिञ्ज्ञानममुष्मिन्कालेऽमुष्मिन्देशे मम शरीरवियोगो भविष्यतीति निःसंशयं जानाति। अरिष्टेभ्यो वा। अरिष्टानि त्रिविधानि आध्यात्मिकाधिभौतिकाधिदैविकभेदेन। तत्राऽऽध्यात्मिकानि पिहितकर्णः कोष्ठगस्य वायोर्घोषं न शृणोतीत्येवमादीनि। आधिभौतिकानि अकस्माद्विकृतपुरुषदर्शनादीनि। आधिदैविकानि अकाण्ड एव द्रष्टमशक्यस्वर्गादिपदार्थदर्शनादीनि। तेभ्यः शरीरवियोगकालं जानाति। यद्यपि अयोगिनामप्यरिष्टेभ्यः प्रायेण तज्ज्ञानमुत्पद्यते तथाऽपि तेषां सामान्याकारेण तत्संशयरूपं, योगिनां पुनर्नियत देशकालतया प्रत्यक्षवदव्यभिचारि॥ २२॥

परिकर्मनिष्पादिताः सिद्धीः प्रतिपादयितुमाह—

भो० वृ० पदार्थ

(आयुर्विपाकं यत्पूर्वकृतं कर्म) आयुरूप फल का देनेवाला जो पूर्व जन्मकृत कर्म है (तद्द्विप्रकारं) वह दो प्रकार का है (सोपक्रमं निरुपक्रमं च) सोपक्रम और निरुपक्रम (तत्र सोपक्रमं) उन में सोपक्रम वह है (यत्फलजननायोपक्रमेण कार्यकरणाभिमुख्येन सह वर्तते) जो आयुरूप फल का जनक उपक्रम से कार्य सिद्धि की सन्मुखता सहित वर्तता है । (यथोष्णप्रदेशे प्रसारितमार्द्रवासः शीघ्रमेव शुष्यति) जैसे उष्ण स्थान में फैलाया हुआ गीला वस्त्र शीघ्र ही सूख जाता है । (उक्तरूपविपरीतं निरुपक्रमं) उक्तरूप से विपरीत निरुपक्रम है (यथा तदेवाऽऽर्द्रवासः संवर्तितमनुष्णदेशे चिरेण शुष्यति) जैसे वही गीला वस्त्र शरद् देश में रक्खा हुआ देर से सूखता है । (तस्मिन्द्विविधे कर्मणि यः संयमं करोति) उन दो प्रकार के कर्मों में जो संयम करता है (किं मम कर्म शीघ्रविपाकं चिरविपाकं वा) क्या मेरा कर्म शीघ्र फल देनेवाला है अथवा चिरकाल में फल देनेवाला है, (एवं ध्यानदार्ढ्यादपरान्तज्ञानमस्योत्पद्यते) इस प्रकार ध्यान की दृढ़ता से मृत्यु का ज्ञान उत्पन्न होता है । (अपरान्तः शरीरवियोगस्तस्मिञ्ज्ञानममुष्मिन्कालेऽमुष्मिन्देशे मम शरीरवियोगो भविष्यति) अपरान्त शरीर वियोग का नाम है उस विषय में ज्ञान अमुक काल में अमुक देश में मेरा शरीर वियोग होगा (इति निःसंशयं जानाति) यह संशय रहित जानता है (अरिष्टानि त्रिविधानि) अरिष्ट तीन प्रकार के हैं (आध्यात्मिकाधिभौतिकाधिदैविकभेदेन) आध्यात्मिक–आधिभौतिक–आधिदैविक भेद से । (तत्राऽऽध्यात्मिकानि) उन में आध्यात्मिक यह हैं कि (पिहितकर्णः कोष्ठ्यस्य वायोर्घोषं न शृणोतीत्येवमादीनी) कान बन्द करके उदर के वायु का घोष नहीं सुनता इस प्रकार और विषय में भी । (आधिभौतिकानि) आधिभौतिक यह हैं कि (अकस्माद्विकृतपुरुषदर्शनादीनि) अकस्मात् भयानक आकृतिवाले पुरुषों का दर्शनादि । (आधिदैविकानि) आधिदैविक यह हैं

कि (अकाण्ड एव द्रष्टुमशक्य) अकस्मात् जो देखे नहीं जा सके (स्वर्गादिपदार्थदर्शनादीनि) स्वर्गादि पदार्थों का दर्शनादि । (तेभ्यः शरीरवियोगकालं जानाति) उन से शरीर वियोग काल को जानता है । (यद्यपि अयोगिनामप्यरिष्टेभ्यः प्रायेण तज्ज्ञानमुत्पद्यते) यदि अयोगी पुरुष को भी अरिष्टों से प्रायः वह ज्ञान उत्पन्न होता है (तथाऽपि तेषां सामान्याकारेण तत्संशयरूपं) तो भी उन को सामान्य रूप से ज्ञान होता है वह संशयरूप है, (योगिनां पुनर्नियतदेशकालतया प्रत्यक्षवदव्यभिचारि) योगियों को तो नियत देश काल सहित प्रत्यक्ष के समान अबाधरूप होता है ॥ २२ ॥

(परिकर्मनिष्पादिताः सिद्धीः प्रतिपादयितुमाह) परिकर्म से वर्णन की गई, सिद्धि का वर्णन आगे करते हैं—

मैत्र्यादिषु बलानि ॥ २३ ॥

सू०—मैत्री आदि में संयम करने से मैत्री आदि बल की प्राप्ति होती है ॥ २३ ॥

व्या० भाष्यम्

मैत्री करुणा मुदितेति तिस्रो भावनास्तत्र भूतेषु सुखितेषु मैत्रीं भावयित्वा मैत्रीबलं लभते । दुःखितेषु करुणां भावयित्वा करुणा-बलं लभते । पुण्यशीलेषु मुदितां भावयित्वा मुदिताबलं लभते । भावनातः समाधिर्यः स संयमस्ततो बलान्यवन्ध्यवीर्याणि जायन्ते । पापशीलेषूपेक्षा न तु भावना । ततश्च तस्यां नास्ति समाधिरित्यतो न बलमुपेक्षातस्तत्र संयमाभावादिति ॥ २३ ॥

व्या० भा० पदार्थ

(मैत्री करुणा मुदितेति तिस्रो भावनाः) मैत्री—करुणा—मुदिता यह तीन भावना हैं (तत्र भूतेषु सुखितेषु मैत्रीं भावयित्वा मैत्री-

बलं लभते) उन में से सुखी प्राणियों में मित्रता की भावना करके योगी मैत्री बल को प्राप्त होता है । (दुःखितेषु करुणां भावयित्वा करुणाबलं लभते) दुःखी पुरुषों में दयाभाव करके करुणा बल को प्राप्त होता है । (पुण्यशीलेषु मुदितां भावयित्वा मुदिताबलं लभते) पुण्यात्मा पुरुषों में हर्ष की भावना करके मुदिताबल को प्राप्त होता है । (भावनातः समाधिर्यः स संयमः) इन भावनाओं द्वारा जो समाधि की जाती है वही संयम है (ततः बलान्यवन्ध्य-वीर्याणि जायन्ते) उस से अतिबल उत्पन्न होते हैं । (पापशीलेषू-पेक्षा न तु भावना) पाप स्वभाववालों में उदासीनता ही करनी न कि भावना । (ततश्च तस्यां नास्ति समाधिरित्यतो न बलमुपे-क्षातः) उस कारण उस में उपेक्षा के करने से न समाधि होती है न बल (तत्र संयमाभावादिति) उस में संयम का अभाव होने से ॥ २३ ॥

भो० वृत्ति

मैत्रीकरुणामुदितोपेक्षासु यो विहितसंयमस्तस्य बलानि मैत्र्यादीनां संबन्धीनि प्रादुर्भवन्ति । मैत्रीकरुणामुदितापेक्षास्तथाऽस्य प्रकर्षं गच्छन्ति यथा सर्वस्य मित्रत्वादिकमयं संपद्यते ॥ २३ ॥

सिद्ध्यन्तरमाह—

भो० वृ० पदार्थ

(मैत्रीकरुणामुदितोपेक्षासु) मैत्री–करुणा–मुदिता–उपेक्षा इन चारों में (यो विहितसंयमस्तस्य बलानि मैत्र्यादीनां संबन्धीनि प्रादुर्भवन्ति) जो संयम कहा है उस से बल मैत्री आदि सम्बन्धी उत्पन्न होते हैं (मैत्रीकरुणामुदितोपेक्षास्तथाऽस्य प्रकर्षं गच्छन्ति) मैत्री–करुणा–मुदिता–उपेक्षा बल इस के ऐसे बढ़ जाते हैं (यथा सर्वस्य मित्रत्वादिकमयं संपद्यते) मानो सब के मित्रत्वादि को यह योगी प्राप्त हो जाता है ॥२३॥

(सिद्ध्यन्तरमाह) आगे अन्य सिद्धि कहते हैं—

बलेषु हस्तिबलादीनि ॥ २४ ॥

सू०—बल के स्वरूप में संयम करने से योगी को हस्ति आदि बल की प्राप्ति होती है ॥ २४ ॥

व्या० भाष्यम्

हस्तिबले संयमाद्धस्तिबलो भवति । वैनतेयबले संयमाद्वैनतेय बलो भवति । वायुबले संयमाद्वायुबलो भवतीत्येवमादि ॥ २४ ॥

व्या० भा० पदार्थ

(हस्तिबले संयमाद्धस्तिबलो भवति) हस्तिबल में संयम करने से हस्तिबल प्राप्त होता है । (वैनतेयबले संयमाद्वैनतेय बलो भवति) पक्षी के बल में संयम करने से पक्षीबल को प्राप्त होता है । (वायुबले संयमाद्वायुबलो भवतीत्येवमादि) वायुबल में संयम करने से वायुबल पाता है इसी प्रकार अन्य बलों में भी जानलेना चाहिये । इससे यह भी सारांश निकलता है कि जिस भाव में तन्मय हो जाता है, उसी के अनुसार भावी जन्म भी होता है, इस लिये मनुष्य को सर्वदा शुभ भावनाओं की ही इच्छा करनी योग्य है, जिस से भावी जन्म शुभ होकर इस की सद्गति हो जावे ॥ २४ ॥

भो० वृत्ति

हस्त्यादिसंबन्धिषु बलेषु कृतसंयमस्य तद्बलानि हस्त्यादिबलानि आविर्भवन्ति । तदयमर्थः—यस्मिन्हस्तिबले वायुवेगे सिंहवीर्ये वा तन्मयीभावेनायं संयमं करोति तत्तत्सामर्थ्ययुक्तत्वात्सर्वमस्य प्रादुर्भवतीत्यर्थः ॥ २४ ॥

सिद्ध्यन्तरमाह—

भो० वृ० पदार्थ

(हस्त्यादिसंबन्धिषु बलेषु कृतसंयमस्य) हस्ति आदि के बलों में संयम करने से (तद्बलानि हस्त्यादिबलानि आविर्भवन्ति) वह हस्ति आदि बल उत्पन्न होते हैं । (तदयमर्थः) उस का यह अर्थ है कि— (यस्मिन्हस्तिबले वायुवेगे सिंहवीर्ये वा तन्मयीभावेनायं संयमं करोति) जिस हस्तिबल–वायुवेग–सिंहवीर्य में योगी तन्मयी भाव से संयम करता है (तत्तत्सामर्थ्ययुक्तत्वात्सर्वमस्य प्रादुर्भवतीत्यर्थः) वह २ सामर्थ्ययुक्त होने से सर्व सामर्थ्य इस को उत्पन्न होती हैं यह अर्थ है ॥ २४ ॥

(सिद्ध्यन्तरमाह) आगे अन्य सिद्धि कहते हैं—

प्रवृत्त्यालोकन्यासात्सूक्ष्मव्यवहितविप्रकृष्ट-ज्ञानम् ॥ २५ ॥

सू०—प्रथम पाद में जो ज्योतिष्मती प्रवृत्ति कही गई, संयम द्वारा पदार्थों में उस के प्रकाश का संबन्ध करने से सूक्ष्म, व्यवहित = ढके हुए, विप्रकृष्ट = दूर के पदार्थों का ज्ञान होता है ॥२५॥

व्या० भाष्यम्

ज्योतिष्मती प्रवृत्तिरुक्ता मनसस्तस्यां य आलोकस्तं योगी सूक्ष्मे वा व्यवहिते वा विप्रकृष्टे वाऽर्थे विन्यस्य तमर्थमधिगच्छति ॥ २५ ॥

व्या० भा० पदार्थ

(ज्योतिष्मती प्रवृत्तिरुक्ता मनसः) मन की ज्योतिष्मती प्रवृत्ति प्रथम पाद में कही गई (तस्यां य आलोकः) उस में जो प्रकाश है (तं योगी सूक्ष्मे वा व्यवहिते वा विप्रकृष्टे वाऽर्थे विन्यस्य तमर्थमधिगच्छति) उस को योगी सूक्ष्म = इन्द्रियातीत, व्यवहिते = ढकेहुए, अथवा विप्रकृष्टे = दूरस्थ, पदार्थों में सम्बन्ध करके उस अर्थ को जान लेता है ॥ २५ ॥

भो० वृत्ति

प्रवृत्तिर्विषयवती ज्योतिष्मती च प्रागुक्ता तस्या योऽसावालोकः सात्त्विकप्रकाशप्रसरस्तस्य निखिलेषु विषयेषु न्यासात्तद्वासितानां विषयाणां भावनात्सान्तःकरणेषु इन्द्रियेषु प्रकृष्टशक्तिमापन्नेषु सूक्ष्मस्य परमाण्वादेर्व्यवहितस्य भूम्यन्तर्गतस्य निधानादेर्विप्रकृष्टस्य मेर्वपरपार्श्ववर्तिनो रसायनादेर्ज्ञानमुत्पद्यते ॥ २५ ॥

एतत्समानवृत्तान्तं सिद्ध्यन्तरमाह—

भो० वृ० पदार्थ

(प्रवृत्तिर्विषयवती ज्योतिष्मती च प्रागुक्ता) विषयवती ज्योतिष्मती प्रवृत्ति प्रथम पाद में कही गई (तस्या योऽसावालोकः सात्त्विकप्रकाशप्रसरः) उस का जो वह आलोक अर्थात् सात्त्विक प्रकाश विस्तृत है (तस्य निखिलेषु विषयेषु न्यासात्तद्वासितानां विषयाणां भावनात्) उस का सम्पूर्ण विषयों में सम्बन्ध करने से उस से वासित हुए विषयों के विचार से (सान्तः करणेषु इन्द्रियेषु प्रकृष्टशक्तिमापन्नेषु सूक्ष्मस्य परमाण्वादेर्व्यवहितस्य भूम्यन्तर्गतस्य निधानादेर्विप्रकृष्टस्य मेर्वपरपार्श्ववर्तिनो) अन्तःकरण सहित बलवान् हुए इन्द्रियों में सूक्ष्म परमाणु आदि और व्यवहित = भूमि में गड़े हुए धनादि और विप्रकृष्ट = मेरु पर्वत के परे वर्तनेवाले पदार्थ (रसायनादेर्ज्ञानमुत्पद्यते) रसायनादि का ज्ञान उत्पन्न होता है।

इस सूत्र की वृत्ति में मेरुपर्वत और रसायनादि का कथन फिर वही पौराणिक ढोंग प्रतीत होता है, कुछ मेरुपर्वत ही दूर नहीं है किन्तु उस से भी दूर अन्य पदार्थ हैं, इस लिये दूरस्थ पदार्थ लिखना चाहिये था, क्योंकि मेरुपर्वत किसी से समीप है किसी से दूर यह भी दोष है, ऐसी ही रसायन की भी बकवाद है, जिस में कोई प्रमाण नहीं है।

कहाँ तक कहें ऐसे अनेक स्थलों पर आधुनिक पुरुषों ने भाष्य और वृत्ति में अपने मतानुसार बदलने का बहुत प्रयत्न किया है, परन्तु आर्ष ग्रन्थों के जाननेवालों को सर्व विदित हो जाता है ॥ २५ ॥

भुवनज्ञानं सूर्ये संयमात् ॥ २६ ॥

सू०—सूर्य्य में संयम करने से भुवन ब्रह्माण्ड वा त्रिलोकी का ज्ञान होता है, तात्पर्य यह है कि जब सूर्यमण्डल की रचना विशेष में योगी संयम करता है तब उस सम्बन्धि भुवनों = लोकों का ज्ञान होता है, क्योंकि ब्रह्माण्ड में सूर्य्य नाभि स्थानि है, और वह सर्वभूमियों और चन्द्रादि से बड़ा है, और सर्व भूमि आदि का आकर्षण करता है भूमि आदि सूर्य्य को आकर्षित करते हैं और सूर्य्य इन सब को प्रकाश करता है यह सब साक्षात् और परम्परा से सूर्य की परिक्रमा करते हैं। जैसे चन्द्रमा भूमि की एक मास में एक परिक्रमा करता हुआ, जब एक वर्ष में भूमि सूर्य्य की एक परिक्रमा कर लेती है तब चन्द्रमा भी सूर्य की परिक्रमा करलेता है, चन्द्रमा का जितना भाग सूर्य के सामने होता है वह प्रकाशित होता है जितने पर भूमि के अधोभाग की छाया पड़ती है वह प्रकाशित नहीं होता, सूर्य जब भूमि के समीप होता है तब ग्रीष्म ऋतु होता है, जब दूर होता है तब शरद् ऋतु होता है, मध्य में मध्य ऋतु होता है, संयम द्वारा इन की गति और रचनादि का बोध योगी को यथार्थ होता है, और इसी प्रकार अन्य भुवन मंगल–बुध–बृहस्पति–शुक्र–शनि–मण्डलों का भी प्रकाशक सूर्य होने से उन के उदय–अस्त क्रिया के विचार करने से उन का भी सूर्याश्रित होना जाना जाता है, उन की रचनादि का ज्ञान भी होता है। सूर्य और भूमि के मध्यवर्ति अन्तरिक्ष लोक का भी ज्ञान हो जाता है इस लिये त्रिलोकी भूमि–अन्तरिक्ष–द्युलोक और सर्व भुवनों का ज्ञान संयम द्वारा योगी को होता है।

सूचना

इस व्यास भाष्य में दो चार शब्द ही जिनको अब हम भाष्य में दिखलाते हैं महर्षि व्यास कृत हैं शेष सर्व निर्बुद्धों जैसी गाथा अप्रामाणिक वेदविरुद्ध किसी ने अपने पाखण्डमत को पुष्ट करने की इच्छा से भरी है, इस कारण वह वेदविरुद्ध और बुद्धिविरुद्ध होने से पाठकों को भ्रान्तिदायक है, उनका अर्थ नहीं किया गया केवल मूल भाष्य रख दिया गया है, भोज वृत्ति में भी इस भाष्य का कोई अंश नहीं है उसके पढ़ने से भी पाठकों को ज्ञात हो जायगा कि किसी ने पीछे मिला दिया है ॥ २६ ॥

व्या० भाष्यम्

तत्प्रस्तारः सप्त लोकाः। तत्रावीचेः प्रभृति मेरुपृष्ठं यावदित्येवं भूर्लोकः मेरुपृष्ठादारभ्य—आध्रुवाद्ग्रहनक्षत्रताराविचित्रोऽन्तरिक्षलोकः। ततः परः स्वर्लोकः पञ्चविधो माहेन्द्रस्तृतीयो लोकः। चतुर्थः प्राजापत्यो महर्लोकः त्रिविधो ब्राह्मः। तद्यथा—जनलोकस्तपोलोकः सत्यलोक इति।

ब्राह्मस्त्रिभूमिको लोकः प्राजापत्यस्ततो महान्।
माहेन्द्रश्च स्वरित्युक्तो दिवि तारा भुवि प्रजाः॥

इति संग्रहश्लोकः।

तत्रावीचेरुपर्युपरि निविष्टाः षण्महानरकभूमयो घनसलिलानलानिलाकाशतमः प्रतिष्ठा महाकालाम्बरीषरौरवमहारौरवकालसूत्रान्धतामिस्राः। यत्र स्वकर्मोपार्जितदुःखवेदनाः प्राणिनः कष्टमायुर्दीर्घमाक्षिप्य जायन्ते। ततो महातलरसातलातलसुतलवितलतलातलपातालाख्यानि सप्त पातालानि। भूमिरियमष्टमी सप्तद्वीपा वसुमती, यस्याः सुमेरुर्मध्ये पर्वतराजः काञ्चनः। तस्य राजतवैदूर्यस्फटिकहेममणिमयानि शृङ्गाणि। तत्र वैदूर्यप्रभानुरागान्नीलोत्पलपत्रश्यामो नभसो दक्षिणो भागः, श्वेतः पूर्वः, स्वच्छः पश्चिमः, कुरण्टकाभ

उत्तरः । दक्षिणपार्श्वे चास्य जम्बूर्यतोऽयं जम्बूद्वीपः । तस्य सूर्यप्रचाराद्रात्रिंदिवं लग्नमिव वर्तते । तस्य नीलश्वेतशृङ्गवन्त उदीचीनास्त्रयः पर्वता द्विसाहस्रायामाः । तदन्तरेषु त्रीणि वर्षाणि नव नव योजनसाहस्राणि रमणकं हिरण्मयमुत्तराः कुरव इति । निषधहेमकूटहिमशैला दक्षिणतो द्विसाहस्रायामाः । तदन्तरेषु त्रीणि वर्षाणि नव नव योजनसाहस्राणि हरिवर्षं किंपुरुषं भारतमिति । सुमेरोः प्राचीना भद्राश्वमाल्यवत्सीमानः प्रतीचीनाः केतुमाला गन्धमादनसीमानः । मध्ये वर्षमिलावृतम् । तदेतद्योजनशतसाहस्रं सुमेरोर्दिशिदिशि तदर्धेन व्यूढम् ।

स खल्वयं शतसाहस्रायामो जम्बूद्वीपस्ततो द्विगुणेन लवणोदधिना वलयाकृतिना वेष्टितः । ततश्च द्विगुणा द्विगुणाः शाककुशक्रौञ्चशाल्मगोमेधपुष्करद्वीपाः समुद्राश्च सर्षपराशिकल्पाः सविचित्रशैलावतंसा इक्षुरससुरासर्पिर्दधिमण्डक्षीरस्वादूदकाः । सप्त समुद्रपरिवेष्टिता वलयाकृतयो लोकालोकपर्वतपरिवाराः पञ्चाशद्योजनकोटिपरिसंख्याताः । तदेतत्सर्वं सुप्रतिष्ठितसंस्थानमण्डमध्ये व्यूढम् । अण्डं च प्रधानस्याणुरवयवो यथाऽऽकाशे खद्योत इति ।

तत्र पाताले जलधौ पर्वतेष्वेतेषु देवनिकाया असुरगन्धर्वकिंनरकिंपुरुषयक्षराक्षसभूतप्रेतपिशाचापस्मारकाप्सरोब्रह्मराक्षसकूष्माण्डविनायकाः प्रतिवसन्ति । सर्वेषु द्वीपेषु पुण्यात्मनो देवमनुष्याः ।

सुमेरुस्त्रिदशानामुद्यानभूमिः तत्र मिश्रवनं नन्दनं चैत्ररथं सुमानसमित्युद्यानानि । सुधर्मा देवसभा । सुदर्शनं पुरम् वैजयन्तः प्रासादः । ग्रहनक्षत्रताराकास्तु ध्रुवे निबद्धा वायुविक्षेपनियमेनोपलक्षितप्रचाराः सुमेरोरुपर्युपरि संनिविष्टा दिवि विपरिवर्तन्ते ।

माहेन्द्रनिवासिनः षड्देवनिकायाः—त्रिदशा अग्निष्वात्ता याम्यास्तुषिता अपरिनिर्मितवशवर्तिनः परिनिर्मितवशवर्तिनश्चेति ।

सर्वे संकल्पसिद्धा अणिमाद्यैश्वर्योपपन्नाः कल्पायुषो वृन्दारकाः कामभोगिन औपपादिकदेहा उत्तमानुकूलाभिरप्सरोभिः कृतपरिचाराः ।

महति लोके प्राजापत्ये पञ्चविधो देवनिकायः—कुमुदा ऋभवः प्रतर्दना अञ्जनाभाः प्रचिताभा इति । एते महाभूतवशिनो ध्यानहाराः कल्पसहस्रायुषः । प्रथमे ब्रह्मणो जनलोके चतुर्विधो देवनिकायो ब्रह्मपुरोहिता ब्रह्मकायिका ब्रह्ममहाकायिका अमरा इति ते भूतेन्द्रियवशिनो द्विगुणद्विगुणोत्तरायुषः ।

द्वितीयो तपसि लोके त्रिविधो देवनिकायः—आभास्वरा महाभास्वराः सत्यमहाभास्वराः इति । ते भूतेन्द्रियप्रकृतिवशिनो द्विगुणद्विगुणोत्तरायुषः सर्वे ध्यानाहारा ऊर्ध्वरेतस ऊर्ध्वमप्रतिहतज्ञाना अधरभूमिष्वनावृताज्ञानविषयाः । तृतीये ब्रह्मणः सत्यलोके चत्वारो देवनिकाया अकृतभवनन्यासाः स्वप्रतिष्ठा उपर्युपरिस्थिताः प्रधानवशिनो यावत्सर्गायुषः ।

तत्राच्युताः सवितर्कध्यानसुखाः, शुद्धनिवासाः सविचारध्यानसुखाः, सत्याभा आनन्दमात्रध्यानसुखाः, संज्ञासंज्ञिनश्चास्मितामात्रध्यानसुखाः । तेऽपि त्रैलोक्यमध्ये प्रतितिष्ठन्ति । त एते सप्त लोकाः सर्व एव ब्रह्मलोकाः । विदेहप्रकृतिलयास्तु मोक्षपदे वर्तन्त इति न लोकमध्ये न्यस्ता इति । एतद्योगिना साक्षात्करणीयं सूर्य द्वारे संयमं कृत्वा, ततोऽन्यत्रापि एवं तावदभ्यसेद्यावदिदं सर्वं दृष्टमिति ॥ २६ ॥

व्या० भा० पदार्थ

(तत्प्रस्तारः सप्त लोकाः) उस ब्रह्माण्ड का विस्तार सात लोक हैं भूमि, चन्द्रमा, मङ्गल, बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनि, (तत्रावीचेः प्रभृति) उसके बीच में प्रभृति यह हैं (मेरुपृष्ठं यावदित्येवं भूर्लोकः) जहां तक मेरु पर्वत की चोटी है वहां तक भूलोक है, यहां पृष्ठ शब्द से पृष्ठ का अर्थ नहीं चोटी से अभिप्राय है । (मेरुपृष्ठादा-

रभ्य—आध्रुवाद्ग्रहनक्षत्रताराविचित्रोऽन्तरिक्षलोकः) मेरु पृष्ठ से लेकर ध्रुव पर्यन्त ग्रह मङ्गल बुधादि जो ऊपर कहे गये और विचित्र नक्षत्र जिसमें हैं, वह अन्तरिक्षलोक है । (ततः परः स्वर्लोकः) उससे परे द्युलोक है यह सर्व त्रिलोकी है । इसका ज्ञान सूर्य संयम द्वारा योगी को हो जाता है ।

आगे देखिये ! इस प्रकार अज्ञानता पूर्वक कोई आधुनिक प्रलाप करता है, थोड़ा सा दिखलाते हैं (पञ्चविधो माहेन्द्रस्तृतीयो लोकः) पञ्च प्रकार का महेन्द्र तृतीय लोक है, जब द्युलोक–अन्तरिक्ष–भूमि तीनों को ऊपर कथन कर चुके तो यह तीसरा लोक दुबारा कैसे कथन किया गया यह विरोध है । (चतुर्थः प्राजापत्यो महर्लोकः) चौथा प्राजापत्य महर्लोक है, प्राजापत्य कोई स्थान विशेष वेदोक्त नहीं है किन्तु जीव की एक गति विशेष है । आगे पांचवें नम्बर पर ब्रह्मलोक बताया उसके तीन भाग किये जनलोक–तपलोक–सत्यलोक और पुनः उसके बीच में (नहीं मालुम कि किसी एक के बीच में या तीनों के बीच में इसका कुछ ठिकाना नहीं) परन्तु छः लोक बताये और लोक के अन्दर लोक इस कथन से यह भी नहीं समझा जाता कि किस तरह उनकी बनावट है पापी लोग सब उनमें ही रहते हैं, क्या यहां पापी नहीं रहते ? । देखिये "**महातलरसातलसुतलवितलतलातलपातालाख्यानि सप्त पातालानि । भूमिरियमष्टमी सप्तद्वीपा वसुमती, यस्याः सुमेरुर्मध्ये पर्वतराजः काञ्चनः**"=पश्चात् सप्त पाताल बताये नहीं मालूम वह कहां और किधर हैं उन पातालों में आठवां यही भूमि बताई इस के आसपास जुड़ा हुआ कोई लोक नहीं दिखाई देता और इस भूमि में सात द्वीप बताये जिन में एक सुवर्ण का है ।

"**इक्षुरससुरासर्पिर्दधिमण्डक्षीरस्वादूदकाः। सप्त समुद्रपरिवेष्टिताः**" = आगे यह सप्त समुद्र इक्षुरस, सुरा = शराब, घी, दही, मण्ड दूधादि के बताये, इस शराब शब्द के आने से यह भी मालूम होता है कि यह कोई मदिराभिलाषी वाममार्गी अपनी इच्छापूर्ति के लिये परिश्रम करता है। तदन्तर="**तत्र पाताले असुरगन्धर्वकिंनरकिंपुरुषयक्षराक्षसभूतप्रेतपिशाचापस्मारकाप्सरोब्रह्मराक्षसकूष्माण्डविनायकाः प्रतिवसन्ति**" = उस पाताल लोक में असुर, गन्धर्व, किन्नर, यक्ष, राक्षस, भूत, प्रेत, पिशाच और अप्सराओं की कहानी कहीं कहां तक बतलायें अपने पौराणिक जाल की पुष्टि के लिये व्यास भाष्य का सहारा लेने का अति परिश्रम किया परन्तु विद्वानों की दृष्टि से यह पाखण्ड छिपा नहीं रह सक्ता और सूत्र में भुवन ज्ञान कहा है न कि भूत प्रेतादि का ज्ञान इस लिये सर्वथा वेद विरुद्ध असत्य होने से त्याज्य है॥ २६॥

भो० वृत्ति

सूर्ये प्रकाशमये यः संयमं करोति तस्य सप्तसु भूर्भुवः स्वः प्रभृतिषु लोकेषु यानि भुवनानि तत्तत्संनिवेशभाञ्जि स्थानानि तेषु यथावदस्य ज्ञानमुत्पद्यते। पूर्वस्मिन्सूत्रे सात्त्विकप्रकाश आलम्बनतयोक्त इह तु भौतिक इति विशेषः॥ २६॥

भौतिकप्रकशालम्बनद्वारेणैव सिद्ध्यन्तरमाह—

भो० वृ० पदार्थ

(सूर्ये प्रकाशमये यः संयमं करोति) प्रकाशरूप सूर्य में जो संयम करता है (तस्य सप्तसु भूर्भुवः स्वः प्रभृतिषु लोकेषु) उसका भूः भुवः स्वः आदि सात लोकों में (यानि भुवनानि) जो भुवन हैं (तत्तत्संनिवेश-

भाग्नि स्थानानि) उनमें संनिवेश होता है जो भाग स्थान हैं (तेषु यथावदस्य ज्ञानमुत्पद्यते) उनमें यथार्थ ज्ञान इसको उत्पन्न होता है । (पूर्वस्मिन्सूत्रे सात्त्विकप्रकाश आलम्बनतयोक्तः) पूर्व सूत्र में सात्त्विक प्रकाश की आलम्बनता से संयम कहा गया (इह तु भौतिक इति विशेषः) इस सूत्र में भौतिक प्रकाश द्वारा संयम कहा गया यह विशेषता है ॥ २६ ॥

(भौतिकप्रकाशालम्बनद्वारेणैव सिद्ध्यन्तरमाह) भौतिक प्रकाश के आलम्बन द्वारा ही अन्य सिद्धि आगे कहते हैं—

चन्द्रे ताराव्यूहज्ञानम् ॥ २७ ॥

सू०—चन्द्रमा में संयम करने से ताराओं के व्यूह का ज्ञान होता है ॥ २७ ॥

व्या० भाष्यम्

चन्द्रे संयमं कृत्वा ताराणां व्यूहं विजनीयात् ॥ २७ ॥

व्या० भा० पदार्थ

(चन्द्रे संयम कृत्वा ताराणां व्यूहं विजानीयात्) चन्द्रमा में संयम करके ताराओं के समूह को जाने ॥ २७ ॥

भो० वृत्ति

ताराणां ज्योतिषां यो व्यूहो विशिष्टः संनिवेशस्तस्मिंश्चन्द्रे कृतसंयमस्य ज्ञानमुत्पद्यते । सूर्यप्रकाशेन हततेजस्कत्वात्ताराणां सूर्यसंयमात्तज्ज्ञानं न शक्नोति भवितुमिति पृथगुपायोऽभिहितः ॥ २७ ॥

सिद्ध्यन्तरमाह—

भो० वृ० पदार्थ

(ताराणां ज्योतिषां यो व्यूहो विशिष्टः संनिवेशस्तस्मिंश्चन्द्रे कृतसंयमस्य ज्ञानमुत्पद्यते) ज्योतिरूप तारों का जो समूह विशेष उसका

चन्द्रमा में प्रवेश है उसमें संयम करने से उनका ज्ञान उत्पन्न होता है। (सूर्यप्रकाशेन हततेजस्कत्वात्ताराणां सूर्यसंयमात्तज्ज्ञानं न शक्नोति भवितुमिति पृथगुपायोऽभिहितः) सूर्य प्रकाश से उन तारों का प्रकाश दब जाने के कारण सूर्य संयम द्वारा उनका ज्ञान नहीं हो सक्ता इस कारण यह पृथक् उपाय वर्णन किया ॥ २७ ॥

(सिद्ध्यन्तरमाह) अन्य सिद्धि आगे कहते हैं—

ध्रुवे तद्गतिज्ञानम् ॥ २८ ॥

सू०—ध्रुव में संयम करने से उन तारों की गति का ज्ञान होता है ॥ २८ ॥

व्या० भाष्यम्

ततो ध्रुवे संयमं कृत्वा ताराणां गतिं विजनीयात्। ऊर्ध्वविमानेषु कृतसंयमस्तानि विजानीयात् ॥ २८ ॥

व्या० भा० पदार्थ

(ततो ध्रुवे संयमं कृत्वा ताराणां गतिं विजानीयात्) उस के-पश्चात् ध्रुव में संयम करके तारों की गति को जाने। (ऊर्ध्वविमानेषु कृतसंयमस्तानि विजानीयात्) आकाशमार्ग में उड़ने वाले विमानों में संयम करने से विमानों को जाने ॥ २८ ॥

भो० वृत्ति

ध्रुवे निश्चले ज्योतिषां प्रधाने कृतसंयमस्य तासां ताराणां या गतिः प्रत्येकं नियतकाला नियतदेशा च तस्या ज्ञानमुत्पद्यते। इयं ताराऽयं ग्रह इयता कालेनामुं राशिमिदं नक्षत्रं यास्यतीति सर्वं जानाति। इदं कालज्ञानमस्य फलमित्युक्तं भवति ॥ २८ ॥

बाह्याः सिद्धीः प्रतिपाद्याऽऽन्तराः सिद्धीः प्रतिपादयितुमुपक्रमते—

भो० वृ० पदार्थ

(ध्रुवे निश्चले ज्योतिषां प्रधाने कृतसंयमस्य) सर्व तारागणों में प्रधान जो निश्चल ध्रुव है उस में संयम करने से (तासां ताराणां या गतिः प्रत्येकं नियतकाला नियतदेशा च तस्या ज्ञानमुत्पद्यते) उन तारागणों की जो गति प्रत्येक की, नियतकाल और नियतदेश के सहित उस का ज्ञान उत्पन्न होता है । (इयं ताराऽयं ग्रह इयता कालेनामुं राशिमिदं नक्षत्रं यास्यतीति सर्वं जानाति) यह तारा यह ग्रह इतने काल में अमुक राशि में यह नक्षत्र पहुंचेगा इस प्रकार सर्व जानता है । (इदं कालज्ञानमस्य फलमित्युक्तं भवति) यह कालज्ञान इसका फल है, इस लिये यह उपदेश है ॥ २८ ॥

(बाह्याः सिद्धीः प्रतिपाद्याऽऽन्तराः सिद्धीः प्रतिपादयितुमुपक्रमते) बाह्य सिद्धियों को कहकर अब आभ्यन्तर सिद्धियों का आरम्भ करते हैं—

नाभिचक्रे कायव्यूहज्ञानम् ॥ २९ ॥

सू०—नाभिचक्र में संयम करने से शरीर समुदाय का ज्ञान होता है ॥ २९ ॥

व्या० भाष्यम्

नाभिचक्रे संयमं कृत्वा कायव्यूहं विजानीयात् । वातपित्तश्लेष्माणस्त्रयो दोषाः । धातवः सप्त त्वग्लोहितमांसस्नाय्वस्थिमज्जाशुक्राणि । पूर्वं पूर्वमेषां बाह्यमित्येष विन्यासः ॥ २९ ॥

व्या० भा० पदार्थ

(नाभिचक्रे संयमं कृत्वा कायव्यूहं विजानीयात्) नाभिचक्र में संयम करके काया समूह को जाने । (वातपित्तश्लेष्माणस्त्रयो दोषाः) वात, पित्त, कफ यह शरीर में तीन दोष कहलाते हैं । (धातवः सप्तः) धातु सात हैं (त्वग्लोहितमांसस्नाय्वस्थिमज्जा-

शुक्राणि) त्वचा, रक्त, मांस, नाड़ि, हड्डी, चरबी, वीर्य । (पूर्व पूर्वमेषां बाह्यमित्येष विन्यासः) इन में प्रथम २ बाहरी है इस प्रकार सम्बन्ध है ॥ २९ ॥

भो० वृत्ति

शरीरमध्यवर्ति नाभिसंज्ञकं यत्षोड़शारं चक्रं तस्मिन् कृतसंयमस्य योगिनः कायगतो योऽसौ व्यूहो विशिष्टरसमलधातुनाड्यादीनामवस्थानं तत्र ज्ञानमुत्पद्यते । इदमुक्तं भवति—नाभिचक्रं शरीरमध्यवर्ति सर्वतः प्रसृतानां नाड्यादीनां मूलभूतमतस्तत्र कृतावधानस्य समग्रसंनिवेशो यथावदाभाति ॥ २९ ॥

सिद्ध्यन्तरमाह—

भो० वृ० पदार्थ

(शरीरमध्यवर्ति नाभिसंज्ञकं यत्षोड़शारं चक्रं) शरीर के मध्य में वर्तमान नाभिनामक जो षोड़श अरों का चक्र है (तस्मिन् कृतसंयमस्य योगिनः) उस में जिस योगी ने संयम किया है (कायगतो योऽसौ व्यूहो विशिष्टः) शरीर के अन्दर जो वह समुदाय विशेष (रसमलधातु-नाड्यादीनामवस्थानं तत्र ज्ञानमुत्पद्यते) रस, मल, धातु, नाड़ि आदि का स्थान उस का ज्ञान उत्पन्न होता है । (इदमुक्तं भवति) यह अभिप्राय है कि—(नाभिचक्रं शरीरमध्यवर्ति सर्वतः प्रसृतानां नाड्यादीनां मूलभूतमतस्तत्र कृतावधानस्य समग्रसंनिवेशो यथावदाभाति) नाभिचक्र शरीर के मध्य में वर्तनेवाला सब तरफ से फैली हुई नाड़ि आदियों का मूलरूप है इस कारण उस में संयम करने से सब प्रविष्ट नाड़ि आदियों को यथार्थ जानता है ॥ २९ ॥

(सिद्ध्यन्तरमाह) आगे अन्य सिद्धि कहते हैं—

कण्ठकूपे क्षुत्पिपासानिवृत्तिः ॥ ३० ॥

स०—कण्ठकूप में संयम करने से क्षुधा-तृषा की निवृत्ति होती है ॥ ३० ॥

व्या० भाष्यम्

जिह्वाया अधस्तात्तन्तुस्तन्तोरधस्तात्कण्ठस्ततोऽधस्तात्कूपस्तत्र संयमात्क्षुत्पिपासे न बाधेते ॥ ३० ॥

व्या० भा० पदार्थ

(जिह्वाया अधस्तात्तन्तुः) जिह्वा के नीचे जो एक सूत्र के समान नाड़ी (तन्तोरधस्तात्कण्ठः) उस नाड़ी के नीचे कण्ठ स्थान है (ततोऽधस्तात्कूपः) उस से नीचे कूप के समान एक कूप है (तत्र संयमात्क्षुत्पिपासे न बाधेते) उस में संयम करने से भूख प्यास बाधा नहीं करते ॥ ३० ॥

भो० वृत्ति

कण्ठे गले कूपः कण्ठकूपः, जिह्वामूले जिह्वातोऽधस्तात्कूप इव कूपो गर्ताकारः प्रदेशः प्राणादेर्यत्संस्पर्शात्क्षुत्पिपासादयः प्रादुर्भवन्ति तस्मिन्कृतसंयमस्य योगिनः क्षुत्पिपासादयो निवर्तन्ते । घण्टिकाधस्तात्स्रोतसा धार्यमाणे तस्मिन्भाविते भवत्येवंविधा सिद्धिः ॥ ३० ॥

सिद्ध्यन्तरमाह—

भो० वृ० पदार्थ

(कण्ठे गले कूपः कण्ठकूपः) कण्ठ अर्थात् गले में जो कूप वह कण्ठकूप कहलाता है, (जिह्वामूले जिह्वातोऽधस्तात्) जिह्वा के मूल में जिह्वा से नीचे (कूप इव कूपो गर्ताकारः प्रदेशः) कूप के समान कूप अर्थात् गढ़े के समान स्थान है (प्राणादेर्यत्संस्पर्शात्क्षुत्पिपासादयः प्रादुर्भवन्ति) जिस में प्राणादि के संस्पर्श से क्षुधा पिपासादि उत्पन्न होते हैं । (तस्मिन्कृतसंयमस्य योगिनः) उस में जिस योगी ने संयम किया है (क्षुत्पिपासादयो निवर्तन्ते) उस के क्षुधा तृषादि निवर्त हो जाते हैं । (घण्टिकाधस्तात्स्रोतसा धार्यमाणे तस्मिन्भाविते भवत्येवंविधा सिद्धिः)

कण्ठ के नीचे स्रोत के समान धारण हुए उस में भावना करने पर इस प्रकार की सिद्धि होती है ॥ ३० ॥

(सिद्ध्यन्तरमाह) आगे अन्य सिद्धि कहते हैं—

कूर्मनाड्यां स्थैर्यम् ॥ ३१ ॥

सू०—कण्ठकूप के नीचे कूर्माकार नाड़ी है उस में संयम करने से चित्त स्थिर होता है ॥ ३१ ॥

व्या० भाष्यम्

कूपादध उरसि कूर्माकारा नाड़ी, तस्यां कृतसंयमः स्थिरपदं लभते। यथा सर्पो गोधा चेति ॥ ३१ ॥

व्या० भा० पदार्थ

(कूपादध उरसि कूर्माकारा नाड़ी) कण्ठकूप के नीचे छाती में कछवे के आकारवाली नाड़ी है, (तस्यां कृतसंयमः स्थिरपदं लभते) उस में संयम करने से स्थिरता की प्राप्ति होती है। (यथा सर्पो गोधा चेति) जैसे सर्प और गोह स्थिर होते हैं ॥ ३१ ॥

भो० वृत्ति

कण्ठकूपस्याधस्ताद्या कूर्माख्या नाड़ी तस्यां कृतसंयमस्य चेतसः स्थैर्यमुत्पद्यते। तत्स्थानमनुप्रविष्टस्य चञ्चलता न भवतीत्यर्थः। यदि वा कायस्य स्थैर्यमुत्पद्यते न केनचित्स्यन्दयितुं शक्यत इत्यर्थः ॥ ३१ ॥

सिद्ध्यन्तरमाह—

भो० वृ० पदार्थ

(कण्ठकूपस्याधस्ताद्या कूर्माख्या नाड़ी) कण्ठकूप के नीचे जो कूर्म नामवाली नाड़ी है (तस्यां कृतसंयमस्य चेतसः स्थैर्यमुत्पद्यते) उस में संयम किया है जिस योगी ने उस का चित्त स्थिरता को प्राप्त होता है।

(तत्स्थानमनुप्रविष्टस्य चञ्चलता न भवतीत्यर्थः) उस स्थान में प्रविष्ट हुए को चञ्चलता नहीं होती यह अर्थ है । (यदि वा कायस्य स्थैर्यमुत्पद्यते) वा शरीर की स्थिरता उत्पन्न होती है (न केनचित्स्यन्दयितुं शक्यत इत्यर्थः) किसी से भी उसका शरीर चलाया नहीं जा सक्ता यह अर्थ है ॥ ३१ ॥

(सिद्ध्यन्तरमाह) आगे अन्य सिद्धि कहते हैं—

मूर्धज्योतिषि सिद्धदर्शनम् ॥ ३२ ॥

सू०—मूर्धज्योति में संयम करने से योगी को यथार्थ दर्शन करने की शक्ति होती है अर्थात् आत्मदर्शन का सामर्थ होता है ॥ ३२ ॥

व्या० भाष्यम्

शिरः कपालेऽन्तश्छिद्रं प्रभास्वरं ज्योतिस्तत्र संयमं कृत्वा सिद्धानां द्यावापृथिव्योरन्तरालचारिणां दर्शनम् ॥ ३२ ॥

व्या० भा० पदार्थ

(शिरः कपालेऽन्तश्छिद्रं प्रभास्वरं ज्योतिः) शिर कपाल के अन्दर एक छिद्र है उस में प्रकाशवाली ज्योति है (तत्र संयम कृत्वा सिद्धानां द्यावापृथिव्योरन्तरालचारिणां दर्शनम) उस में संयम करके द्यौलोक और पृथ्वीलोक के बीच में विचरनेवाले सिद्धों का दर्शन होता है ॥ ३२ ॥

भो० वृत्ति

शिर कपाले ब्रह्मरन्ध्राख्यं छिद्रं प्रकाशाधारत्वाज्ज्योतिः । यथा— गृहाभ्यन्तरस्थस्य मणेः प्रसरन्ती प्रभा कुञ्चिताकारेव सर्वप्रदेशे संघटते तथा हृदयस्थः सात्त्विकः प्रकाशः प्रसृतस्तत्र संपिण्डितत्वं भजते । तत्र कृतसंयमस्य ये द्यावापृथिव्योरन्तरालवर्तिनः सिद्धा दिव्याः पुरुषास्तेषामितर-

प्राणिभिरदृश्यानां तस्य दर्शनं भवति । तान्पश्यति तैश्च स संभाषत इत्यर्थः ॥ ३२ ॥

सर्वज्ञत्व उपायमाह—

भो० वृ० पदार्थ

(शिरःकपाले ब्रह्मरन्ध्राख्यं छिद्रं) शिर के कपाल में ब्रह्मरन्ध्रनामक एक छिद्र है (प्रकाशधारत्वाज्ज्योतिः) प्रकाश का आधाररूप होने से ज्योतिरूप है। (यथा गृहाभ्यन्तरस्थस्य मणेः प्रसरन्ती प्रभा) जैसे घर के अन्दर रक्खी हुई मणि का प्रकाश गृह में फैलता है (कुञ्चिताकारेव सर्वप्रदेशे संघटते) वह ब्रह्मरन्ध्र में इकट्ठा रहता हुआ सर्व शरीर में फैलता है (तथा हृदयस्थः सात्विकः प्रकाशः प्रसृतस्तत्र संपिण्डितत्वं भजते) वैसे ही हृदय में रहता हुआ सात्त्विक प्रकाश उस इकट्ठे हुए प्रकाश को पाकर फैलता है। (तत्र कृतसंयमस्य) उस में किया है संयम जिस योगी ने (ये द्यावापृथिव्योरन्तरालवर्तिनः सिद्धा दिव्याः पुरुषास्तेषामितरप्राणिभिरदृश्यानां तस्य दर्शनं भवति) द्युलोक, पृथ्वीलोक के बीच में विचरनेवाले जो सिद्ध दिव्य पुरुष हैं जो दूसरे प्राणियों से नहीं देखे जाते उनका दर्शन होता है। (तान् पश्यति तैश्च स संभाषत इत्यर्थः) उनको देखता है और उन के साथ भाषण करता है यह अर्थ है ॥ ३२ ॥

(सर्वज्ञत्व उपायमाह) सर्वज्ञता के उपाय को आगे कहते हैं—

विशेष सूचना

इस सूत्र के भाष्य और वृत्ति में आकाश में विचरनेवाले सिद्धपुरुषों की कहानी पौराणिक जान पड़ती है, क्योंकि प्रथम तो सिद्ध दिव्य पुरुष क्यों घूमने फिरें ? और फिर मूर्धज्योति में संयम करने से उनका दर्शन क्यों, ज्योति में संयम करने से तो आत्मज्ञान होना चाहिये उन से क्या सम्बन्ध ? और किस कारण ? यह निरहेतुक कथन प्रतीत होता है हमारे विचार में तो ज्योति में

संयम करने से तो आत्मज्ञान का सामर्थ्य होता है और दूसरी तर्क यह है कि यदि वह पुरुष शरीरधारी हुए विचरते हैं तो चक्षु से क्यों नहीं दीखते? यदि शरीर रहित विचरते हैं तो आत्मदर्शन का ही अर्थ हुआ, यदि कोई ऐसा शरीर बनाकर वह घूमते हों जो अन्य पुरुषों से नहीं देखा जाता, तो वह सिद्ध ज्ञानी होते हुए किस फल के लाभार्थ ऐसा करते फिरते हैं? इन सब तर्कों से यह कहानी बुद्धि विरुद्ध मन घड़न्त प्रतीत होती है, जो किन्हीं पौराणिक मतावलम्बियों का मिलाया हुआ लेख मालूम होता है ॥ ३२ ॥

प्रातिभाद्वा सर्वम् ॥ ३३ ॥

सू०—अथवा प्रातिभ ज्ञान की उत्पत्ति होने से योगी सर्व को जानता है ॥ ३३ ॥

व्या० भाष्यम्

प्रातिभं नाम तारकं तद्विवेकजस्य ज्ञानस्य पूर्वरूपम् । यथोदये प्रभा भास्करस्य । तेन वा सर्वमेव जानाति योगी प्रातिभस्य ज्ञानस्योत्पत्ताविति ॥ ३३ ॥

व्या० भा० पदार्थ

(प्रातिभं नाम तारकं) प्रातिभ नाम तारकज्ञान का है जिस का वर्णन इसी पाद के ५४ सूत्र में आवेगा (तद्विवेकजस्य ज्ञानस्य पूर्वरूपम) वह विवेकज ज्ञान का प्रथमरूप है । (यथोदये प्रभा भास्करस्य) जैसे सूर्य की प्रभा उदय होने पर (तेन वा सर्वमेव जानाति) उस से सर्व को जानता है (योगी प्रातिभस्य ज्ञानस्योत्पत्ताविति) इसी प्रकार प्रतिभ ज्ञान की उत्पत्ति होने पर योगी सर्व को जानता है ॥ ३३ ॥

भो० वृत्ति

निमित्तानपेक्षं मनोमात्रजन्यमविसंवादकं द्रागुत्पद्यमानं ज्ञानं प्रतिभा ।

तस्यां संयमे क्रियमाणे प्रातिभं विवेकख्यातेः पूर्वभावि तारकं ज्ञानमुदेति । यथा—उदेष्यति सवितरि पूर्वं प्रभा प्रादुर्भवति तद्वद्विवेकख्यातेः पूर्वं तारकं सर्वविषयं ज्ञानमुत्पद्यते । तस्मिन्सति संयमान्तरानपेक्षः सर्वं जानातीत्यर्थः ॥ ३३ ॥

सिद्ध्यन्तरमाह—

भो० वृ० पदार्थ

(निमित्तानपेक्षं मनोमात्रजन्यमविसंवादकं द्रागुत्पद्यमानं ज्ञानं प्रतिभा) निमित्त के विना केवल बुद्धिमात्रजन्य संवाद रहित एक दम उत्पन्न हुआ ज्ञान प्रतिभा कहलाती है (तस्यां संयमे क्रियमाणे प्रातिभं विवेकख्यातेः पूर्वभावितारकं ज्ञानमुदेति) उस प्रतिभा में संयम करने पर विवेकख्याति के पूर्व होनेवाला तारक ज्ञान उदय होता है । (यथा—उदेष्यति सवितरि पूर्वं प्रभा प्रादुर्भवति) जैसे सूर्योदय से प्रथम प्रभा उत्पन्न होती है (तद्वद्विवेकख्यातेः पूर्वं तारकं सर्वविषयं ज्ञानमुत्पद्यते) इसी समान विवेकख्याति के पूर्व होनेवाला तारक ज्ञान सर्व का विषय करनेवाला उत्पन्न होता है । (तस्मिन्सति संयमान्तरानपेक्षः सर्वं जानातीत्यर्थः) उसके होने पर अन्य संयमों के विना ही सर्व पदार्थों को जानता है यह अर्थ है ॥ ३३ ॥

(सिद्ध्यन्तरमाह) आगे अन्य सिद्धि कहते हैं—

हृदये चित्तसंवित् ॥ ३४ ॥

सू०—हृदय में संयम करने से चित्त का ज्ञान होता है ॥३४॥

व्या० भाष्यम्

यदिदमस्मिन्ब्रह्मपुरे दहरं पुण्डरीकं वेश्म तत्र विज्ञानं तस्मिन्संयमाच्चित्तसंविन् ॥ ३४ ॥

व्या० भा० पदार्थ

(यदिदमस्मिन्ब्रह्मपुरे दहरं पुण्डरीकं वेश्म तत्र विज्ञानं तस्मिन्संयमाच्चित्तसंवित्) जो यह ब्रह्मपुर अर्थात् हृदय में सूक्ष्म कमल के समान गृह है, उसमें विज्ञान है उसमें संयम करने से चित्त का बोध होता है ॥ ३४ ॥

भो० वृत्ति

हृदयं शरीरस्य प्रदेशविशेषस्तस्मिन्नधोमुखस्वल्पपुण्डरीकाऽभ्यन्तरेऽन्तःकरणसत्त्वस्य स्थानं तत्र कृतसंयमस्य स्वपरचित्तज्ञानमुत्पद्यते । स्वचित्तगताः सर्वा वासनाः परचित्तगतांश्च रागादीञ्जानातीत्यर्थः ॥ ३४ ॥

सिद्ध्यन्तरमाह—

भो० वृ० पदार्थ

(हृदयं शरीरस्य प्रदेशविशेषः) हृदय शरीर में विशेष स्थान है (तस्मिन्नधोमुखस्वल्पपुण्डरीकाऽभ्यन्तरेऽन्तःकरणसत्त्वस्य स्थानं) उसमें सूक्ष्म कमलाकार जिसका नीचे को मुख है उसके अन्दर अन्तःकरण बुद्धि आदि का स्थान है (तत्र कृतसंयमस्य स्वपरचित्तज्ञानमुत्पद्यते) उसमें संयम किया है जिस योगी ने उसको अपने और दूसरों के चित्त का ज्ञान उत्पन्न होता है । (स्वचित्तगताः सर्वावासनाः परचित्तगतांश्च रागादीञ्जानातीत्यर्थः) अपने चित्त में प्रविष्ट सर्व वासनाओं और दूसरे के चित्त प्रविष्ट रागादि को जानता है यह अर्थ है ॥ ३४ ॥

(सिद्ध्यन्तरमाह) आगे अन्य सिद्धि कहते हैं—

सत्त्वपुरुषयोरत्यन्तासंकीर्णयोः प्रत्ययाविशेषो भोगः परार्थात्स्वार्थसंयमात्पुरुषज्ञानम् ॥ ३५ ॥

सू०—(सत्त्वपुरुषयोरत्यन्तासंकीर्णयोः) बुद्धि और जीवात्मा पुरुष यह दोनों परस्पर अत्यन्त भिन्न हैं (प्रत्ययाविशेषो भोगः)

इन दोनों का अभेद ज्ञान भोग कहलाता है (परार्थात्) [परार्थ साधक] बुद्धि के ज्ञान से भिन्न (स्वार्थसंयमात्) जीवात्मा का अपने स्वरूप में संयम करने से (पुरुषज्ञानम्) जीवात्मापुरुष को अपने स्वरूप का ज्ञान होता है ॥ ३५ ॥

व्या० भाष्यम्

बुद्धिसत्त्वं प्रख्याशीलं समानसत्त्वोपनिबन्धने रजस्तमसी वशीकृत्य सत्त्वपुरुषान्यताप्रत्ययेन परिणतम्। तस्माच्च सत्त्वात्परिणामिनोऽत्यन्तविधर्मा विशुद्धोऽन्यश्चितिमात्ररूपः पुरुषः। तयोरत्यन्तासंकीर्णयोः प्रत्ययाविशेषो भोगः पुरुषस्य दर्शितविषयत्वात्। स भोगप्रत्ययः सत्त्वस्य परार्थत्वाद् दृश्यः।

यस्तु तस्माद्विशिष्टश्चितिमात्ररूपोऽन्यः पौरुषेयः प्रत्ययस्तत्र संयमात्पुरुषविषया प्रज्ञा जायते। न च पुरुषप्रत्ययेन बुद्धिसत्त्वात्मना पुरुषो दृश्यते पुरुष एव तं प्रत्ययं स्वात्मावलम्बनं पश्यति। तथा ह्युक्तम्—"विज्ञातारमरे केन विजानीयात्" [बृ० २।४।१४] इति ॥ ३५ ॥

व्या० भा० पदार्थ

(बुद्धिसत्त्वं प्रख्याशीलं) सात्त्विक बुद्धि ज्ञान स्वभाववाली है (समानसत्वोपनिबन्धने रजस्तमसी वशीकृत्य) बुद्धि में सत्त्व गुण, अविना भाव सम्बन्ध से रहनेवाले रज-तम को वश करके (सत्त्वपुरुषान्यताप्रत्ययेण परिणतम्) बुद्धि और पुरुष की भिन्नतारूप ज्ञान में परिणत हुई चित्त की वृत्ति। (तस्माच्च सत्त्वात्परिणामिनोऽत्यन्तविधर्मा विशुद्धोऽन्यश्चितिमात्ररूपः पुरुषः) उस परिणामी अत्यन्त विधर्मी जड़ बुद्धि से भिन्न शुद्ध चेतनमात्ररूप पुरुष है। (तयोरत्यन्तासंकीर्णयोः प्रत्ययाविशेषो भोगः) उन दोनों अत्यन्त भिन्नों बुद्धि और पुरुष का ज्ञान अभेद रूप होना

भोग है (पुरुषस्य दर्शितविषयत्वात्) पुरुष का देखा हुआ विषय होने से। (स भोगप्रत्ययः) वह भोग ज्ञान (सत्त्वस्य परार्थत्वा दृद्दश्यः) बुद्धि दूसरे के प्रयोजनार्थ होने से वह पुरुष का दृश्य है।

(यस्तु तस्माद्विशिष्टश्चितिमात्ररूपोऽन्यः पौरुषेयः प्रत्ययस्तत्र संयमात्पुरुषविषया प्रज्ञा जायते) जो उस बुद्धि से विशेष चेतन मात्र रूप अन्य पुरुष ज्ञान है उसमें संयम करने से पुरुष स्वरूप विषयक ज्ञान उत्पन्न होता है। (न च पुरुषप्रत्ययेन बुद्धिसत्त्वात्मना पुरुषो दृश्यते) पुरुष ज्ञान से बुद्धि द्वारा पुरुष नहीं देखा जाता। (पुरुष एव तं प्रत्ययं स्वात्मावलम्बनं पश्यति) पुरुष ही उस अपने आलम्बनवाली बुद्धि वृत्ति को देखता है। (तथा ह्युक्तम्) वैसा ही बृहदारण्यकोपनिषद् में कहा है—("विज्ञातारमरे केन विजानीयात्" इति) समाधि काल में ज्ञाता को किस के द्वारा जानें अर्थात् जाननेवाला जीवात्मा जानने योग्य विषय को तो अपने निज स्वरूप से जानता है, परन्तु निजस्वरूप को किस से जाने क्योंकि उस काल में चित्त की सर्व वृत्ति निरोध हो जाने से अहम् वृत्ति भी नहीं रहती ॥ ३५ ॥

भो० वृत्ति

सत्त्वं प्रकाशसुखात्मकः प्राधानिकः परिणामविशेषः, पुरुषो भोक्ताऽधिष्ठातृरूपः। तयोरत्यन्तासंकीर्णयोर्भोग्यभोक्तृरूपत्वाच्चेतनाचेतनत्वाच्च भिन्नयोर्यः प्रत्ययस्याविशेषो भेदेनाप्रतिभासनं तस्मात्सत्त्वस्यैव कर्तृताप्रत्ययेन या सुखदुःखसंवित्स भोगः। सत्त्वस्य स्वार्थनैरपेक्ष्येण परार्थः पुरुषार्थनिमित्तस्तस्मादन्यो यः स्वार्थः पुरुषस्वरूपमात्रालम्बनः परित्यक्ताहंकारसत्त्वे या चिच्छायासंक्रान्तिस्तत्र कृतसंयमस्य पुरुषविषयं ज्ञानमुत्पद्यते। तत्र तदेवं रूपं स्वालम्बनं ज्ञानं सत्त्वनिष्ठः पुरुषो जानाति न पुनः पुरुषो ज्ञाता ज्ञानस्य विषयभावमापद्यते, ज्ञेयत्वापत्तेर्ज्ञातृज्ञेययोश्चात्यन्तविरोधात् ॥ ३५ ॥

अस्यैव संयमस्य फलमाह—

भो० वृ० पदार्थ

(सत्त्वं प्रकाशसुखात्मकः) बुद्धि जो प्रकाश और सुखरूप है (प्राधानिकः परिणामविशेषः) वह प्रकृति का परिणाम विशेष है, (पुरुषो भोक्ताऽधिष्ठातृरूपः) पुरुष भोगनेवाला अधिष्ठाता रूप है। (तयोरत्यन्तासंकीर्णयोर्भोग्यभोक्तृरूपत्वाच्चेतनाचेतनत्वाच्च भिन्नयोर्यः प्रत्ययस्याविशेषः) उन दोनों जड़-चेतन भोग्य-भोक्तारूप अत्यन्त भिन्नों के जो ज्ञानों की विशेषता का न होना (भेदेनाप्रतिभासनं) अभेद भासित होना (तस्मात्सत्त्वस्यैव कर्तृताप्रत्ययेन या सुखदुःखसंवित्स भोगः) उस बुद्धि की ही कर्तृत्व वृत्ति द्वारा जो सुख–दुःख का ज्ञान वह भोग है। (सत्त्वस्य स्वार्थनैरपेक्ष्येण परार्थः पुरुषार्थनिमित्तस्तस्मादन्यो यः स्वार्थः पुरुषस्वरूपमात्रालम्बनः) बुद्धि अपने प्रयोजन की अपेक्षा से रहित होने के कारण दूसरे अर्थात् पुरुष के निमित्त है उससे भिन्न जो स्वार्थ अर्थात् पुरुष स्वरूप मात्र का आलम्बन है (परित्यक्ताहंकारसत्त्वे या चिच्छायासंक्रान्तिः) अहंकार रहित बुद्धि में जो चेतन छाया का परिणाम (तत्र कृतसंयमस्य पुरुषविषयं ज्ञानमुत्पद्यते) उसमें संयम किया है जिस योगी ने उसको पुरुष स्वरूप विषयक ज्ञान उत्पन्न होता है। (तत्र तदेवंरूपं स्वालम्बनं ज्ञानं सत्त्वनिष्ठः पुरुषो जानाति) इस प्रकार अपने आलम्बमवाले ज्ञान-बुद्धिनिष्ठ हुए को पुरुष जानता है (न पुनः पुरुषो ज्ञाता ज्ञानस्य विषयभावमापद्यते) फिर ज्ञाता पुरुष ज्ञान के भाव को नहीं प्राप्त होता, (ज्ञेयत्वापत्तेः) ज्ञेयत्व प्राप्त होने से (ज्ञातृज्ञेययोश्चात्यन्तविरोधात्) क्योंकि ज्ञाता और ज्ञेय इन दोनों के अत्यन्य विरोध होने से दोनों भिन्न हैं ॥ ३५ ॥

(अस्यैव संयमस्य फलमाह) इस संयम का ही फल आगे कहते हैं—

ततः प्रातिभश्रावणवेदनादर्शास्वादवार्ता जायन्ते ॥ ३६ ॥

सू०—उपरोक्त सूत्रानुसार पुरुष स्वरूप में संयम करने से व्युत्थान चित्त वाले को भी प्रातिभ ज्ञान जो पूर्व कहा गया और श्रावण अर्थात् सूक्ष्म शब्दों का सुनना, वेदना = सूक्ष्म स्पर्शज्ञान, आदर्श = सूक्ष्म रूप का ज्ञान, आस्वाद = सूक्ष्म रसज्ञान, वार्त्ता = सूक्ष्म गन्धज्ञान, प्राप्त करने की सामर्थ योगी में उत्पन्न हो जाती है ॥ ३६ ॥

व्या० भाष्यम्

प्रातिभात्सूक्ष्मव्यवहितविप्रकृष्टातीतानागतज्ञानम् । श्रावणाद्दिव्यशब्दश्रवणम् । वेदनाद्दिव्यस्पर्शाधिगमः । आदर्शाद्दिव्यरूपसंवित् । आस्वादाद्दिव्यरससंवित् । वार्तातो दिव्यगन्धविज्ञानमित्येतानि नित्यं जायन्ते ॥ ३६ ॥

व्या० भा० पदार्थ

(प्रातिभात्सूक्ष्मव्यवहितविप्रकृष्टातीतानागतज्ञानम्) प्रातिभज्ञान से सूक्ष्म और छिपी हुई, अतिदूर देशवर्ती, अतीत-अनागत वस्तुओं का ज्ञान उत्पन्न होता है । (श्रावणाद्दिव्यशब्दश्रवणम्) श्रवणशक्ति से सूक्ष्म शब्दों का सुनना, (वेदनाद्दिव्यस्पर्शाधिगमः) वेदनाशक्ति से सूक्ष्म स्पर्श की प्राप्ति, (आदर्शाद्दिव्यरूपसंवित्) आदर्श शक्ति से सूक्ष्म रूप का ज्ञान, (आस्वादाद्दिव्यरससंवित्) आस्वादनशक्ति से सूक्ष्म रस का ज्ञान, (वार्तातो दिव्यगन्धविज्ञानम्) वार्ताशक्ति से सूक्ष्म गन्ध का ज्ञान, (इत्येतानि नित्यं जायन्ते) इस प्रकार यह नित्य प्राप्त होते हैं ॥ ३६ ॥

भो० वृत्ति

ततः पुरुषसंयमादभ्यस्यमानाद्व्युत्थितस्यापि ज्ञानानि जायन्ते । तत्र प्रातिभं पूर्वोक्तं ज्ञानं, तस्याऽऽविर्भावात्सूक्ष्मादिकमर्थं पश्यति ।

श्रावणं श्रोत्रेन्द्रियजं ज्ञानं, तस्माच्च प्रकृष्टाद्दिव्यं—दिवि भवं—शब्दं जानाति। वेदना स्पर्शेन्द्रियजं ज्ञानं, वेद्यतेऽनयेति कृत्वा तान्त्रिक्या संज्ञया व्यवह्रियते। तस्माद्दिव्यस्पर्शविषयं ज्ञानं समुपजायते। आदर्शश्चक्षुरिन्द्रियजं ज्ञानम्। आ समन्ताद्दृश्यतेऽनुभूयते रूपमनेनेति कृत्वा, तस्य प्रकर्षाद्दिव्यं रूपज्ञानमुत्पद्यते। आस्वादो रसनेन्द्रियजं ज्ञानम्। आस्वाद्यतेऽनेनेति कृत्वा, तस्मिन्प्रकृष्टे दिव्ये रसे संविदुपजायते। वार्ता गन्धसंवित्तिः। वृत्तिशब्देन तान्त्रिक्या परिभाषया घ्राणेन्द्रियमुच्यते। वर्तते गन्धविषय इति कृत्वा वृत्तेर्घ्राणेन्द्रियाज्जाता वार्ता गन्धसंवित्। तस्याः प्रकृष्यमाणायां दिव्यगन्धोऽनुभूयते ॥ ३६ ॥

एतेषां फलविशेषाणां विशेषविभागमाह—

भो० वृ० पदार्थ

(ततः पुरुषसंयमादभ्यस्यमानाद्व्युत्थितस्यापि ज्ञानानि जायन्ते) उस पुरुष स्वरूप में संयम के अभ्यास से व्युत्थान चित्तवाले को भी ज्ञान उत्पन्न होते हैं (तत्र प्रातिभं पूर्वोक्तं ज्ञानं) उनमें प्रातिभज्ञान प्रथम कहा गया, (तस्याऽऽविर्भावात्सूक्ष्मादिकमर्थं पश्यति) उसके उत्पन्न होने से सूक्ष्म आदि पदार्थों को देखता है। (श्रावणं श्रोत्रेन्द्रियजं ज्ञानं) श्रावण श्रोत्रेन्द्रिय से उत्पन्न हुआ ज्ञान है, (तस्माच्च प्रकृष्टाद्दिव्यं—दिवि भवं—शब्दं जानाति) उसके बलवान होने से आकाश और पृथ्वी में उत्पन्न हुए सूक्ष्म शब्दों को जानता है। (वेदना स्पर्शेन्द्रियजं ज्ञानं) स्पर्श इन्द्रिय से उत्पन्न हुआ ज्ञान वेदना कहलाता है, (वेद्यतेऽनयेति) जाना जाता है जिस के द्वारा (कृत्वा तान्त्रिक्या संज्ञया व्यवह्रियते) ऐसा मान कर इस शास्त्र की भाषा में वेदना कहलाती है (तस्माद्दिव्यस्पर्शविषयं ज्ञानं समुपजायते) उससे दिव्य स्पर्श विषय का ज्ञान उत्पन्न होता है। (आदर्शश्चक्षुरिन्द्रियजं ज्ञानम्) चक्षु इन्द्रिय से उत्पन्न हुआ ज्ञान आदर्श कहलाता है। (आ समन्ताद्दृश्यतेऽनुभूयते रूपमनेनेति कृत्वा) इस प्रकार इस शब्द की व्युत्पत्ति करके कि देखा

जाता अनुभव किया जाता है रूप जिसके द्वारा वह आदर्श का अर्थ है, (तस्य प्रकर्षाद्दिव्यं रूप ज्ञानमुत्पद्यते) उसके सिद्ध होने से सूक्ष्म रूप का ज्ञान उत्पन्न होता है। (आस्वादो रसनेन्द्रियजं ज्ञानम्) रसना इन्द्रिय से उत्पन्न हुआ ज्ञान आस्वाद कहलाता है। (आस्वाद्यतेऽनेनेति कृत्वा) जिस के द्वारा आस्वादन किया जाय सो आस्वाद इस प्रकार व्युत्पत्ति मानकर, (तस्मिन्प्रकृष्टे दिव्ये रसे संविदुपजायते) उस के सिद्ध होने पर सूक्ष्म रस का ज्ञान उत्पन्न होता है। (वार्ता गन्धसंवित्तिः) गन्ध ज्ञान को वार्ता कहते हैं। (वृत्तिशब्देन तान्त्रिकया परिभाषया घ्राणेन्द्रियमुच्यते) वृत्ति शब्द से इस शास्त्र की भाषा में घ्राणेन्द्रिय को कहते हैं, (वर्तते गन्धविषय इति कृत्वा) जिसके द्वारा गन्ध विषय में प्रवर्त हो इस प्रकार व्युत्पत्ति करके यह शब्द बनाया है, (वृत्तेर्घ्राणेन्द्रियाज्जात वार्ता गन्धसंवित्) घ्राण इन्द्रिय से उत्पन्न हुआ वर्तता है सो वार्ता गन्ध ज्ञान है। (तस्यां प्रकृष्यमाणायां दिव्यगन्धोऽनुभूयते) उसके उत्कर्ष होने पर दिव्य गन्ध का अनुभव किया जाता है ॥ ३६ ॥

(एतेषां फल विशेषाणां विशेष विभागमाह) इन विशेष फलों के विशेष विभाग को आगे कहते हैं—

ते समाधावुपसर्गा व्युत्थाने सिद्धयः ॥ ३७ ॥

सू०—वह समाधि सिद्धि में विघ्न हैं और व्यवहार काल में सिद्धियें हैं ॥ ३७ ॥

व्या० भाष्यम्

ते प्रातिभादयः समाहितचित्तस्योत्पद्यमाना उपसर्गास्तद्दर्शन-प्रत्यनीकत्वात्। व्युत्थितचित्तस्योत्पद्यमानाः सिद्धयः ॥ ३७ ॥

व्या० भा० पदार्थ

(ते प्रातिभादयः समाहितचित्तस्योत्पद्यमाना उपसर्गाः) वह प्रातिभादि एकाग्र चित्तवाले को उत्पन्न हुए विघ्न हैं (तद्दर्शन-

प्रत्यनीकत्वात्) क्योंकि उनका दर्शन अच्छा प्रतीत होने से ईश्वर साक्षात्कार में विघ्नकारी हैं, (व्युत्थितचित्तस्योत्पद्यमानाः सिद्धयः) व्युत्थान चित्तवाले को उत्पन्न हुई सिद्धियें हैं ॥ ३७ ॥

भो० वृत्ति

ते प्राक्प्रतिपादिताः फलविशेषाः समाधेः प्रकर्षं गच्छत उपसर्गा उपद्रवा विघ्नकारिणः। तत्र हर्षविस्मयादिकरणेन समाधिः शिथिली भवति। व्युत्थाने तु पुनर्व्यवहारदशायां विशिष्टफलदायकत्वात्सिद्धयो भवन्ति ॥ ३७ ॥

सिद्ध्यन्तरमाह—

भो० वृ० पदार्थ

(ते प्राक्प्रतिपादिताः) वह पूर्व सूत्र में कहे (फलविशेषाः) फल विशेष (समाधेः प्रकर्षं गच्छत उपसर्गा उपद्रवा विघ्नकारिणः) समाधि के उत्कर्ष होने में उपसर्ग अर्थात् उपद्रव = विघ्नकारी हैं। (तत्र हर्ष-विस्मयादिकरणेन समाधिः शिथिली भवति) उसमें हर्ष और गर्वादि करने से समाधि शिथिल होती है। (व्युत्थाने तु पुनर्व्यवहारदशायां विशिष्टफलदायकत्वात्सिद्धयो भवन्ति) फिर व्युत्थान काल व्यवहार दशा में तो विशेष फलदायक होने से सिद्धि रूप होती हैं ॥ ३७ ॥

(सिद्ध्यन्तरमाह) आगे अन्य सिद्धि कहते हैं—

बन्धकारणशैथिल्यात्प्रचारसंवेदनाच्च चित्तस्य परशरीरावेशः ॥ ३८ ॥

सू०—संयम द्वारा बन्धन के कारणरूप कर्म की शिथिलता से और नाड़ी प्रवेश के ज्ञान से चित्त का पर शरीर में योगी प्रवेश करता है ॥ ३८ ॥

व्या० भाष्यम्

लोलीभूतस्य मनसोऽप्रतिष्ठस्य शरीरे कर्माशयवशाद्बन्धः प्रतिष्ठेत्यर्थः । तस्य कर्मणो बन्धकारणस्य शैथिल्यं समाधिबलाद्भवति । प्रचारसंवेदनं च चित्तस्य समाधिजमेव । कर्मबन्धक्षयात्स्वचित्तस्य प्रचारसंवेदनाच्च योगी चित्तं स्वशरीरान्निष्कृष्य शरीरान्तरेषु निक्षिपति । निक्षिप्तं चित्तं चेन्द्रियाण्यनु पतन्ति । यथा मधुकरराजानं मक्षिका उत्पतन्तमनूत्पतन्ति निविशमानमनु निविशन्ते तथेन्द्रियाणि परशरीरावेशे चित्तमनु विधीयन्त इति ॥ ३८ ॥

व्या० भा० पदार्थ

(लोलीभूतस्य मनसोऽप्रतिष्ठस्य) विषयों में लोलुपता भाव वाले अस्थिर मन का (शरीरे कर्माशयवशाद्बन्धः प्रतिष्ठेत्यर्थः) कर्म और वासनाओं के कारण शरीर में बन्धन अर्थात् ठहराव है यह अर्थ है । (तस्य कर्मणो बन्धकारणस्य शैथिल्यं समाधिबलाद्भवति) उस बन्धन के कारण कर्म की शिथिलता समाधि बल से होती है । (प्रचारसंवेदनं च चित्तस्य समाधिजमेव) और चित्त के नाड़ी द्वारा जाने आने का ज्ञान भी समाधि से उत्पन्न होता है । (कर्मबन्धक्षयात्स्वचित्तस्य प्रचारसंवेदनाच्च योगी चित्तं स्वशरीरान्निष्कृष्य शरीरान्तरेषु निक्षिपति) बन्धनरूप कर्म के क्षय करने से और अपने चित्त के नाड़ी द्वारा जाने आने का मार्ग जानने से योगी चित्त को अपने शरीर से निकालकर दूसरे शरीरों में डाल देता है । (निक्षिप्तं चित्तं चेन्द्रियाण्यनु पतन्ति) चित्त के निकलने पर इन्द्रियें भी पीछे दूसरे शरीर में पड़ जाती हैं । (यथा मधुकरराजानं मक्षिका उत्पतन्तमनूत्पतन्ति निविशमानमनु निविशन्ते) जैसे मधु के बनानेवाली राणी मक्खी के उड़ते हुए अन्य मक्खियें भी उसके पीछे उड़ती हैं, निवास करती हुई के पीछे

निवास करती हैं (तथेन्द्रियाणि परशरीरावेशे चित्तमनु विधियन्त इति) उसी प्रकार दूसरे के शरीर में चित्त प्रवेश करने के पश्चात् इन्द्रियें भी उसी में चली जाती हैं ॥ ३८ ॥

भो० वृत्ति

व्यापकत्वादात्मचित्तयोर्नियतकर्मवशादेव शरीरान्तर्गतयोर्भोक्तृभोग्यभावेन यत्संवेदनमुपजायते स एव शरीरे बन्ध इत्युच्यते । तद्यदा समाधिवशाद्बन्धकारणं धर्माधर्माख्यं शिथिलं भवति तानवमापद्यते । चित्तस्य च योऽसौ प्रचारो हृदयप्रदेशादिन्द्रियद्वारेण विषयाभिमुख्येन प्रसरस्तस्य संवेदनं ज्ञानमियं चित्तवहा नाड़ी, अनया चित्तं वहति, इयं च रसप्राणादि वहाभ्यो नाडीभ्यो विलक्षणेति, स्वपरशरीरयोर्यदा संचारं जानाति तदा परकीयं शरीरं मृतं जीवच्छरीरं वा चित्तसंचारद्वारेण प्रविशति । चित्तं परशरीरे प्रविशदिन्द्रियाण्यपि अनुवर्तन्ते मधुकरराजमिव मधुमक्षिकाः । "अथ परशरीरप्रविष्टो योगी स्वशरीरवत्तेन व्यवहरति । यतो व्यापकयोश्चित्तपुरुषयोर्भोगसंकोचे कारणं कर्म तच्चेत्समाधिना क्षिप्तं तदा स्वातन्त्र्यात्सर्वत्रैव भोगनिष्पत्तिः" ॥ ३८ ॥

सिद्ध्यन्तरमाह—

भो० वृ० पदार्थ

(व्यापकत्वादात्मचित्तयोर्नियतकर्मवशादेव) व्यापक होने से आत्मा और चित्त दोनों नियत कर्म वश से (शरीरान्तर्गतयोर्भोक्तृभोग्यभावेन यत्संवेदनमुपजायते) दोनों का शरीर में रहते हुए भोक्ता-भोग्यभाव से जो ज्ञान उत्पन्न होता है (स एव शरीरे बन्ध इत्युच्यते) वह ही शरीर में बन्धन कहा जाता है । (तद्यदा समाधिवशाद्बन्धकारणं धर्माधर्माख्यं शिथिलं भवति) वह बन्धन का कारण धर्म-अधर्मरूप कर्म जब समाधि वश से शिथिल होता है (तानवमापद्यते) सूक्ष्मता को प्राप्त होता है । (चित्तस्य च योऽसौ प्रचारः) चित्त का जो वह गमनागमन का मार्ग

(हृदयप्रदेशादिन्द्रियद्वारेण विषयाभिमुख्येन प्रसरः) हृदय प्रदेश में इन्द्रियों द्वारा विषयों की सन्मुखता से विस्तृत है (तस्य संवेदनं ज्ञानमियं चित्तवहा नाड़ी) उस का संवेदन अर्थात् ज्ञान, कि यह चित्त के गमन–आगमन की नाड़ी है, (अनया चित्तं वहति) इसके द्वारा चित्त जाता आता है, (इयं च रसप्राणादिवहाभ्यः) यह रस और प्राणादि के जाने–आने की (नाडीभ्यो विलक्षणेति) नाड़ियों से विलक्षण है, (स्वपरशरीरयोर्यदा संचारं जानाति) अपने और दूसरों के शरीरों में जब गमनागमन को जानता है (तदा परकीयं शरीरं मृतं जीवच्छरीरं वा चितसंचारद्वारेण प्रविशति) तब दूसरे के जीवित वा मृत शरीर में चित्त सञ्चार द्वारा प्रवेश करता है। (चित्तं परशरीरे प्रविशदिन्द्रियाण्यपि अनुवर्तन्ते) दूसरे के शरीर में चित्त प्रवेश होने पर इन्द्रियें भी पीछे प्रवेश हो जाती हैं (मधुकरराजमिव मधुमक्षिकाः) मधु के बनाने वाली राणी मक्खी के पीछे जैसे अन्य मक्खियें जाती हैं। (अथ परशरीरप्रविष्टो योगी स्वशरीरवत्तेन व्यवहरति) "पश्चात् दूसरे शरीर में प्रविष्ट हुआ योगी अपने शरीर के समान उस शरीर से व्यवहार करता है। (यतो व्यापकयोश्चित्तपुरुषयोर्भोगसंकोचे कारणं कर्म तच्चेत्समाधिना क्षिप्तं तदा स्वातन्त्र्यात्सर्वत्रैव भोगनिष्पत्तिः) जिस कारण चित्त और पुरुष दोनों व्यापक हैं भोग का इकट्ठा करनेवाला कारण रूप कर्म यदि वह समाधि से नष्ट किया हो तब स्वतन्त्रता के कारण सर्वत्र ही भोग को पाता है।"

उदानजयाज्जलपङ्ककण्टकादिष्वसङ्ग उत्क्रान्तिश्च ॥ ३९ ॥

सू०—संयम द्वारा उदान के जय होने से जल,-कीचड़,-कण्टकादि में पांव रखने से योगी के पांव का सङ्ग नहीं होता और ऊर्ध्वगमन भी होता है ॥ ३९ ॥

व्या० भाष्यम्

समस्तेन्द्रियवृत्तिः प्राणादिलक्षणा जीवनं, तस्य क्रिया पञ्च-

तयी प्राणो मुखनासिकागतिराहृदयवृत्तिः। समं नयनात्समानश्चाऽऽनाभिवृत्तिः। अपनयनादपान आपादतलवृत्तिः। उन्नयनादुदान आशिरोवृत्तिः। व्यापी व्यान इति। एषां प्रधानं प्राणः। उदानजयाज्जलपङ्ककण्टकादिष्वसङ्ग उत्क्रान्तिश्च प्रयाणकाले भवति। तां वशित्वेन प्रतिपद्यते ॥ ३९ ॥

व्या० भा० पदार्थ

(समस्तेन्द्रियवृत्तिः प्राणादिलक्षणा जीवनं) समस्त इन्द्रियों में वर्तनेवाले प्राण उदानादि जीवन के आधार हैं, (तस्य क्रिया पञ्चतयी) उस की क्रिया पांच प्रकार की हैं (प्राणो मुखनासिकागतिराहृदयवृत्तिः) "प्राण" मुख नासिका द्वारा गति करनेवाला हृदय पर्यन्त वर्तता है। (समं नयनात्समानश्चाऽऽनाभिवृत्तिः) खान पानादि के रस को सम्पूर्ण शरीर में समानरूप से पहुंचाने वाला होने से "समान" कहलाता है और नाभि पर्यन्त वर्तता है।

(अपनयनादपान) नीचे को फेंकनेवाला होने से "अपान" कहलाता है (आपादतलवृत्तिः) पादतल पर्यन्त वर्तता है।

(उन्नयनादुदानः) ऊपर को गति करनेवाला होने से "उदान" कहलाता है (आशिरोवृत्तिः) कण्ठ में रहता हुआ शिर पर्यन्त वर्तता है।

(व्यापी व्यान इति) सर्व शरीर में जो व्यापक है वह "व्यान' कहलाता है। (एषां प्रधानं प्राणः) इनमें मुख्य प्राण है। (उदानजयाज्जलपङ्ककण्टकादिष्वसङ्गः) उदान के वश हो जाने से योगी जल कीचड़ादि पर पांव रखता हुआ नीचे को नहीं जाता और कण्टक के ऊपर पांव रखने से कण्टक पांव में प्रवेश नहीं करता, क्योंकि वह अपने शरीर को ऊपर ही थाम लेता है, ऊर्ध्वगमन भी इसी के द्वारा करता है (उत्क्रान्तिश्च प्रयाणकाले भवति) और मरण काल में ऊर्ध्वगति भी होती है। (तां वशि-

त्वेन प्रतिपद्यते) इस उदान प्राण के वश करने से उक्त फल प्राप्त होते हैं ॥ ३९ ॥

भो० वृत्ति

समस्तानामिन्द्रियाणां तुषज्वालावद्या युगपदुत्थिता वृत्तिः सा जीवन शब्दवाच्या । तस्याः क्रियाभेदात्प्राणापानादिसंज्ञाभिर्व्यपदेशः तत्र । हृदयान्मुखनासिकाद्वारेण वायोः प्रणयनात्प्राण इत्युच्यते । नाभिदेशात्पादाङ्गुष्ठपर्यन्तमपनयनादपानः । नाभिदेशं परिवेष्टय समन्तान्नयनात्समानः । कृकाटिकादेशादाशिरोवृत्तेरुन्नयनादुदानः । व्याप्य नयनात्सर्वशरीरव्यापी व्यानः । तत्रोदानस्य संयमद्वारेण जयादितरेषां वायूनां निरोधादूर्ध्वगतित्वेन जले महानद्यादौ महति वा कर्दमे तीक्ष्णेषु कण्टकेषु वा न सज्जतेऽतिलघुत्वात् । तूलपिन्डवज्जलादौ मज्जितोऽप्युद्गच्छतीत्यर्थः ॥ ३९॥

सिद्ध्यन्तरमाह—

भो० वृ० पदार्थ

(समस्तानामिन्द्रियाणां तुषज्वालावद्या युगपदुत्थिता वृत्ति सा जीवन शब्दवाच्या) समस्त इन्द्रियों की वृत्ति जो एक साथ जैसे तुषों में डाली हुई अग्नि प्रज्वलित होती है इस समान एक साथ उत्थित होती है वह जीवन शब्द से कही जाती है । (तस्याः क्रियाभेदात्प्राणापानादिसंज्ञाभिर्व्यपदेशः) उसकी क्रियाभेद होने से प्राण अपानादि पांच नामों से कहे जाते हैं । (तत्र हृदयान्मुखनासिकाद्वारेण वायोः प्रणयनात्प्राण इत्युच्यते) उनमें हृदय से मुख, नासिका द्वारा वायु को चलाने से "प्राण" कहलाता है ।

(नाभिदेशात्पादाङ्गुष्ठपर्यन्तमपनयनादपानः) नाभिदेश से पांव के अङ्गुष्ठ पर्यन्त नीचे को गति करनेवाला होने से "अपान" कहलाता है ।

(नाभिदेशं परिवेष्टय समन्तान्नयनात्समानः) नाभि देश में प्रवेश होकर समानता से सर्व शरीर में रस पहुंचाने वाला होने के कारण "समान" कहलाता है ।

(कृकाटिकादेशादाशिरोवृत्तेरुन्नयनादुदानः) कण्ठ के नीचे जो

गले का भाग है वहां से लेकर शिर पर्यन्त ऊपर को गति करने वाला "उदान" कहलाता है।

(व्याप्य नयनात्सर्वशरीरव्यापी व्यानः) व्यापक होकर समस्त शरीर को गति करानेवाला होने से "व्यान" कहलाता है।

(तत्र उदानस्य संयमद्वारेण जयात्) उनमें उदान का संयम द्वारा वश करने से (इतरेषां वायूनां निरोधात्) और दूसरे प्राणों के निरोध करने से (ऊर्ध्वगतित्वेन) उर्ध्वगति द्वारा (जले महानद्यादौ महति वा कर्दमे तीक्ष्णेषु कण्टकेषु वा न सज्जतेऽतिलघुत्वात्) महान् नदी समुद्रादि जल में वा बड़ी कीचड़ में वा अति तीव्रधार वाले कण्टकों में सम्बन्ध नहीं करता हलका हो जाने से। (तूलपिण्डवज्जलादौ मज्जितोऽप्युद्गच्छतीत्यर्थः) रूई पिण्ड के समान जलादि में डूबता हुआ भी ऊपर ही चलता है यह अर्थ है ॥ ३९ ॥

(सिद्ध्यन्तरमाह) आगे अन्य सिद्धि कहते हैं—

समानजयाज्ज्वलनम् ॥ ४० ॥

सू०—संयम द्वारा समान के जय होने से योगी दीप्तिमान होता है ॥ ४० ॥

व्या० भाष्यम्

जितसमानस्तेजस उपध्मानं कृत्वा ज्वलयति ॥ ४० ॥

व्या० भा० पदार्थ

(जितसमानस्तेजस उपध्मानं कृत्वा ज्वलयति) संयम द्वारा समान प्राण को जय किया है जिस योगी ने, तेज को बढ़ा कर दीप्तिमान होता है ॥ ४० ॥

भो० वृत्ति

अग्निमावेष्ट्य व्यवस्थितस्य समानाख्यस्य वायोर्जयात्संयमेन वशीकारान्निरावरणस्याग्नेरुद्भूतत्वात्तेजसा प्रज्वलन्निव योगी प्रतिभाति ॥ ४० ॥

सिद्ध्यन्तरमाह—

भो० वृ० पदार्थ

(अग्निमावेष्ट्य व्यवस्थितस्य समानाख्यस्य वायोर्जयात्संयमेन वशीकारान्निरावरणस्याग्नेरुद्भूतत्वात्तेजसा प्रज्वलन्निव योगी प्रतिभाति) शरीरस्थ समान प्राण जो अग्नि को वेष्टित किये हुए है संयम द्वारा उसके जय होने से वश होने पर तेज उद्भूत होने के कारण जलती हुई अग्नि के समान योगी भासित होता है ॥ ४० ॥

(सिद्ध्यन्तरमाह) आगे अन्य सिद्धि कहते हैं—

श्रोत्राकाशयोः संबन्धसंयमाद्दिव्यं श्रोत्रम् ॥४१॥

सू०—श्रोत्रेन्द्रिय और आकाश इन दोनों के सम्बन्ध में संयम करने से दिव्य श्रोत्र योगी को प्राप्त होता है ॥ ४१ ॥

व्या० भाष्यम्

सर्वश्रोत्राणामाकाशं प्रतिष्ठा सर्वशब्दानां च । यथोक्तम्—तुल्यदेशश्रवणानामेकदेशश्रुतित्वं सर्वेषां भवतीति । तच्चैतदाकाशस्य लिङ्गम् ।

अनावरणं चोक्तम् । तथाऽमूर्तस्याप्यन्यत्रानावरणदर्शनाद्विभुत्वमपि प्रख्यातमाकाशस्य । शब्दग्रहणनिमित्तं श्रोत्रम् । बधिराबधिरयोरेकः शब्दं गृह्णात्यपरो न गृह्णातीति । तस्माच्छ्रोत्रमेव शब्दविषयम् । श्रोत्राकाशयोः संबन्धे कृतसंयमस्य योगिनो दिव्यं श्रोत्रं प्रवर्तते ॥ ४१ ॥

व्या० भा० पदार्थ

(सर्वश्रोत्राणामाकाशं प्रतिष्ठाः) सर्व प्राणियों के श्रोत्रेन्द्रिय का आधार आकाश है, (सर्वशब्दानां च) और सम्पूर्ण शब्दों का भी आधार आकाश ही है। (यथोक्तम्) जैसा ऊपर कहा है—(तुल्यदेशश्रवणानामेकदेशश्रुतित्वं सर्वेषां भवतीति) एक देश

में उच्चारित शब्दों का समान रूप से सुनाई देना सबको पाया जाता है। (तच्चैतदाकाशस्य लिङ्गम्) यही आकाश का लिङ्ग है।

(अनावरणं चोक्तम्) आवरण रहित भी आकाश को कहा है। (तथाऽमूर्तस्याप्यन्यत्रानावरणदर्शनाद्विभूत्वमपि प्रख्यातमाकाशस्य) इसी प्रकार अमूर्त पदार्थों का अन्यत्र भी अनावरण देखने से आकाश का विभूत्व भी प्रसिद्ध है। (शब्दग्रहणनिमित्तं श्रोत्रम्) शब्द को ग्रहण करने के लिये श्रोत्रेन्द्रिय है। (बधिराबधिरयोरेकः शब्दं गृह्णात्यपरो न गृह्णातीति) बधिर और अबधिर दोनों, इन में से एक शब्द को ग्रहण करता है, एक नहीं ग्रहण करता है। (तस्माच्छ्रोत्रमेव शब्दविषयम्) इस कारण कर्णेन्द्रिय ही शब्द को विषय करनेवाला है। (श्रोत्राकाशयोः संबन्धे कृतसंयमस्य योगिनो दिव्यं श्रोत्रं प्रवर्तते) श्रोत्र और आकाश के सम्बन्ध में किया है संयम जिस योगी ने उसको दिव्य श्रोत्र प्राप्त होता है॥ ४१ ॥

भो० वृत्ति

श्रोत्रं शब्दग्राहकमाहंकारिकमिन्द्रियम्। आकाशं व्योम शब्दतन्मात्रकार्यम्। तयोः संबन्धो देशदेशिभावलक्षणस्तस्मिन्कृतसंयमस्य योगिनो दिव्यं श्रोत्रं प्रवर्तते, युगपत्सूक्ष्मव्यवहितविप्रकृष्टशब्दग्रहणसमर्थं भवतीत्यर्थः ॥ ४१ ॥

सिद्ध्यन्तरमाह—

भो० वृ० पदार्थ

(श्रोत्रं शब्दग्राहकमाहंकारिकमिन्द्रियम्) शब्द की ग्राहक अहंकार से उत्पन्न हुई श्रोत्रेन्द्रिय है। (आकाशं व्योम शब्दतन्मात्रकार्यम्) आकाश शब्द तन्मात्रा का कार्य है। (तयोः संबन्धो देशदेशिभावलक्षणः) उन दोनों का सम्बन्ध देश देशि भावरूप है (तस्मिन्कृतसंयमस्य योगिनो दिव्यं श्रोत्रं प्रवर्तते) उसमें किया है संयम जिस योगी ने

उसको दिव्य श्रोत्र प्राप्त होते हैं, (युगपत्सूक्ष्मव्यवहितविप्रकृष्टशब्दग्रहण-समर्थं भवतीत्यर्थः) एक साथ सूक्ष्म और आवृत और दूरदेशी शब्दों के ग्रहण करने की सामर्थ होती है, यह अर्थ है ॥ ४१ ॥

(सिद्ध्यन्तरमाह) आगे अन्य सिद्धि कहते हैं—

कायाकाशयोः संबन्धसंयमाल्लघुतूलसमापत्तेश्चाऽऽकाशगमनम् ॥ ४२ ॥

सू०—शरीर और आकाश इन दोनों के सम्बन्ध में संयम करने से रूई आदि के समान हलकेपन को प्राप्त होने पर योगी का आकाश में गमन होता है ॥ ४२ ॥

व्या० भाष्यम्

यत्र कायस्तत्राऽऽकाशं तस्यावकाशदानात्कायस्य तेन सम्बन्धः प्राप्तिस्तत्र कृतसंयमो जित्वा तत्संबन्धं लघुषु वा तूलादिष्वा परमाणुभ्यः समापत्तिं लब्ध्वा जितसंबन्धो लघुर्भवति । लघुत्वाच्च जले पादाभ्यां विहरति । ततस्तूर्णनाभितन्तुमात्रे विहृत्य रश्मिषु विहरति । ततो यथेष्टमाकाशगतिरस्य भवतीति ॥ ४२ ॥

व्या० भा० पदार्थ

(यत्र कायस्तत्राऽऽकाशं) जहाँ २ काया है वहाँ २ सर्वत्र आकाश है (तस्यावकाशदानात्) उस आकाश का शरीर को अवकाश देने से (कायस्य तेन संबन्धः प्राप्तिः) उस आकाश से शरीर का संबन्ध है (तत्र कृतसंयमो जित्वा तत्संबन्धं) उस में संयम करने से उस के संबन्ध को जीतकर (लघुषु वा तुलादिष्वा परमाणुभ्यः समापत्तिं लब्ध्वा) और हलके रूई आदि में परमाणु पर्यन्त तत्तदञ्जनता रूप को प्राप्त होकर (जितसंबन्धो लघुर्भवति) उस संबन्ध को जय करके हलका होता है । (लघुत्वाच्च जले पादाभ्यां विहरति) लघु होने से जल के ऊपर पांव रखता हुआ

चलता है। (ततस्तूर्णनाभितन्तुमात्रे विहृत्य रश्मिषु विहरति) उस के पश्चात् मकड़ी जाले के तार के साथ विचरता है, पश्चात् सूर्य्य की किरणों पर स्वच्छन्द विचरता है। (ततोयथेष्टमाकाशगतिरस्या भवतीति) उस के पश्चात् यथेष्ट आकाश में गति योगी की होती है ॥ ४२ ॥

भो० वृत्ति

कायः पाञ्चभौतिकं शरीरं तस्याऽऽकाशेनावकाशदायकेन यः संबन्धस्तत्र संयमं विधाय लघुनि तूलादौ समापत्तिं तन्मयीभावलक्षणां च विधाय प्राप्तातिलघुभावो योगी प्रथमं यथारुचि जले संचरन्क्रमेणोर्णनाभतन्तुजालेन संचरमाण आदित्यरश्मिभिश्च विहरन्यथेष्टमाकाशेन गच्छति ॥ ४२ ॥

सिद्ध्यन्तरमाह—

भो० वृ० पदार्थ

(कायः पाञ्चभौतिकं शरीरं) पञ्च भौतिक शरीर "काया" कहलाती है (तस्याऽऽकाशेनवकाशदायकेन यः संबन्धः) उस का अवकाशदायक जो आकाश उस से जो सम्बन्ध है (तत्र संयमं विधाय) उस में संयम करके (लघुनि तूलादौ समापत्तिं तन्मयीभावलक्षणां च विधाय) हलके रूई आदि में समापत्ति अर्थात् तन्मयी भावरूप करके (प्राप्तातिलघुभावो योगी) अति लघुत्व को योगी प्राप्त होकर (प्रथमं यथारुचि जले संचरन्क्रमेणोर्णनाभतन्तुजालेन संचरमाणः) प्रथम इच्छा पूर्वक जल के ऊपर विचर कर क्रम से ऊर्णनाभितन्तु अर्थात् मकड़ी के तन्तुओं से उत्पन्न जाले के सहारे विचरता हुआ (आदित्यरश्मिभिश्च विहरन्यथेष्टमाकाशेन गच्छति) तत्पश्चात् आदित्यरश्मियों के साथ विचरता हुआ इच्छापूर्वक आकाश में गमन करता है ॥ ४२ ॥

(सिद्ध्यन्तरमाह) आगे और सिद्धि कहते हैं—

बहिरकल्पिता वृत्तिर्महाविदेहा ततः प्रकाशावरणक्षयः ॥ ४३ ॥

सू०—शरीर से बाहर देश में विना कल्पना के जो वृत्ति का लाभ होता है वह महाविदेहा धारणा कहलाती है (ततः प्रकाशावरणक्षयः) उस से ज्ञान के ऊपर जो आवरण वह नष्ट हो जाता है ॥ ४३ ॥

व्या० भाष्यम्

शरीराद्बहिर्मनसो वृत्तिलाभो विदेहा नाम धारणा । सा यदि शरीरप्रतिष्ठस्य मनसो बहिर्वृत्तिमात्रेण भवति सा कल्पितेत्युच्यते । या तु शरीर निरपेक्षा बहिर्भूतस्यैव मनसो बहिर्वृत्तिः सा खल्वकल्पिता । तत्र कल्पितया साधयन्त्यकल्पितां महाविदेहामिति ।

यया परशरीराण्याविशन्ति योगिनः । ततश्च धारणातः प्रकाशात्मनो बुद्धिसत्त्वस्य यदावरणं क्लेशकर्मविपाकत्रयं रजस्तमोमूलं तस्य च क्षयो भवति ॥ ४३ ॥

व्या० भा० पदार्थ

(शरीराद्बहिर्मनसो वृत्तिलाभो विदेहा नाम धारणा) शरीर से बाहर आत्मज्ञान सम्बन्धि मन की वृत्ति का लाभ "विदेहानामी" धारणा कहलाती है । (सा यदि शरीर प्रतिष्ठस्य मनसो बहिर्वृत्तिमात्रेण भवति) यदि वह शरीर में रहते हुए मन की बहिर्वृत्तिमात्र होती है (सा कल्पितेत्युच्यते) वह कल्पिता कहलाती है । (या तु शरीरनिरपेक्षा बहिर्भूतस्यैव मनसो बहिर्वृत्तिः) जो शरीर की अपेक्षा से रहित बाहर हुई मन की वृत्ति वह बहिर्वृत्ति कहलाती है (सा खल्वकल्पिता) निश्चय वह अकल्पिता है । (तत्र कल्पितया साधयन्त्यकल्पितां महाविदेहामिति) उन में कल्पना से साधते हैं अकल्पिता को, यह "महाविदेहा" कहलाती है ।

(यया परशरीराण्याविशन्ति योगिनः) जिस से योगी पर शरीरों में प्रविष्ट होता है।

(ततश्च धारणातः प्रकाशात्मनो बुद्धिसत्त्वस्य) उस धारणा के करने से प्रकाशरूप सात्त्विक बुद्धि का (यदावरणं क्लेशकर्मविपाकत्रयं तजस्तमोमूलं) जो आवरण क्लेश, कर्म, विपाक, रूप तीनों रज-तम रूप मूलवाले (तस्य क्षयो भवति) उन का नाश होता है ॥ ४३ ॥

भो० वृत्ति

शरीराद्बहिर्या मनसः शरीरनैरपेक्ष्येण वृत्तिः सा महाविदेहा नाम विगताहंकारकार्यवेगेणोच्यते । ततस्तस्यां कृतात्संयमात्प्रकाशावरणक्षयः सात्त्विकस्य चित्तस्य यः प्रकाशस्तस्य यदावरणं क्लेशकर्मादि तस्य क्षयः प्रविलयो भवति । अयमर्थः—शरीराहंकारे सति या मनसो बहिर्वृत्तिःसा कल्पितेत्युच्यते । यदा पुनः शरीराहंकारभावं परित्यज्य स्वातन्त्र्येण मनसो वृत्तिः साऽकल्पिता, तस्यां संयमाद्योगिनः सर्वे चित्तमलाः क्षीयन्ते ॥४३॥

तदेवं पूर्वान्तविषयाः परान्तविषया मध्यभवाश्च सिद्धीः प्रतिपाद्यानन्तरं भुवनज्ञानादिरूपा बाह्याः कायव्यूहादिरूपा आभ्यन्तरा परिकर्मनिष्पन्नभूताश्च मैत्र्यादिषु बलानील्येवाद्याः समाध्युपयोगिनीश्चान्तःकरणबहिः करणलक्षणेन्द्रियभवाः प्राणादिवायुभवाश्च सिद्धीश्चित्तदार्ढ्यात्समाधौ समाश्वासोत्पत्तये प्रतिपाद्येदानीं स्वदर्शनोपयोगिसबीजनिर्बीजसमाधिसिद्धये विविधोपायप्रदर्शनायाऽऽह—

भो० वृ० पदार्थ

(शरीराद्बहिर्या मनसः शरीरनैरपेक्ष्येण वृत्तिः) शरीर से बाहर शरीर की अपेक्षा से रहित जो मन की वृत्ति (सा महाविदेहा नाम) यह "महाविदेहा" नामवाली है (विगताहंकारकार्यवेगेणोच्यते) यह नाम कार्यवेग से अहङ्कार छूट जाने के कारण बोला जाता है।

(ततस्तस्यां कृतात्संयमात्प्रकाशावरणक्षयः) इस कारण उसमें संयम करने से ज्ञान का आवरण नष्ट हो जाता है (सात्त्विकस्य चित्तस्य यः प्रकाशस्तस्य यदावरणं क्लेशकर्मादि तस्य क्षयः प्रविलयो भवति) सात्त्विक चित्त का जो प्रकाश उसका जो आच्छादक क्लेश–कर्मादि उनका नाश अर्थात् लय हो जाता है । (अयमर्थः) यह अर्थ है–(शरीराहंकारे सति या मनसो बहिर्वृत्ति सा कल्पितेत्युच्यते) शरीर का अभिमान रहते हुए जो मन की बहिर्वृत्ति होती है वह कल्पित कही जाती है । (यदा पुनः शरीराहंकारभावं परित्यज्य स्वातन्त्र्येण मनसो वृत्ति साऽकल्पिता) जब फिर शरीर अभिमान को त्यागकर स्वतन्त्रता से मन की वृत्ति आत्मस्वरूप में प्रवेश करती है वह "अकल्पिता" कहलाती है, (तस्यां संयमाद्योगिनः सर्वे चित्तमलाः क्षीयन्ते) उस में संयम करने से योगी के सर्व चित्तमल नष्ट हो जाते हैं ॥ ४३ ॥

(तदेवं पूर्वान्तविषयाः परान्तविषया मध्यभवाश्च सिद्धीः प्रतिपाद्यानन्तरं भुवनज्ञानादिरूपा बाह्याः) इस प्रकार पहली–पिछली–मध्य की सिद्धि प्रतिपादन करने के पश्चात् भुवन ज्ञानादि बाह्य (कायव्यूहादिरूपा आभ्यन्तरा) कायासमूह आदि अन्दर की (परिकर्मनिष्पन्नभूताश्च) परिकर्म से निष्पन्न हुई (मैत्र्यादिषु बलानीत्येवमाद्याः) मैत्री आदि में बल (समाध्युपयोगिनीश्चान्तः करणबहिः करणलक्षणेन्द्रियभवाः) समाधि के उपयोगी अन्तःकरण और बहिःकरण इन्द्रियरूप (प्राणादिवायुभवाश्च) प्राणादि वायुओं की (सिद्धीः) सिद्धि (चित्तदार्ढ्यात्) चित्त की दृढ़ता के कारण से (समाधौ समाश्वासोत्पत्तये प्रतिपाद्य) समाधि में विश्वास उत्पत्ति के लिये वर्णन करके (इदानीं स्वदर्शनोपयोगिसबीजनिर्बीजसमाधिसिद्धये विविधोपायप्रदर्शनायाऽऽह) अब अपने दर्शन की उपयोगी सबीज–निर्बीज समाधि की सिद्धि में विविध उपाय दिखलाने के लिये आगे वर्णन करते हैं—

स्थूलस्वरूपसूक्ष्मान्वयार्थवत्त्वसंयमाद्भूतजयः ॥ ४४ ॥

सू०—स्थूल-स्वरूप-सूक्ष्म-अन्वय-अर्थवत्त्व, इन पांचों रूपों में संयम करने से पञ्चभूत योगी के वश हो जाते हैं। यहां यह जानना चाहिये कि एक २ भूत के यह पांच २ रूप हैं, इस से पांचों भूतों के पच्चीस रूप हुए ॥ ४४ ॥

व्या० भाष्यम्

तत्र पार्थिवाद्याः शब्दादयो विशेषाः सहाऽऽकारादिभिर्धर्मैः स्थूलशब्देन परिभाषिताः। एतद्भूतानां प्रथमं रूपम्। द्वितीयं रूपं स्वसामान्यं मूर्तिर्भूमिः स्नेहो जलं वह्निरुष्णता वायुः प्रणामी सर्वतोगतिरकाश इत्येतत्स्वरूपशब्देनोच्यते।

अस्य सामान्यस्य शब्दादयो विशेषाः। तथा चोक्तम्—एकजातिसमन्वितानामेषां धर्ममात्रव्यावृत्तिरिति।

सामान्यविशेषसमुदायोऽत्र द्रव्यम्। द्विष्ठो हि समूहः प्रत्यस्तमितभेदावयवानुगतः शरीरं वृक्षो यूथं वनमिति।

शब्देनोपात्तभेदावयवानुगतः समूह उभये देवमनुष्याः। समूहस्य देवा एको भागो मनुष्या द्वितीयो भागस्ताभ्यामेवाभिधीयते समूहः।

स च भेदाभेदविवक्षितः। आम्राणां वनं ब्राह्मणानां संघ आम्रवणं ब्राह्मणसंघ इति।

स पुनर्द्विविधो युतसिद्धावयवोऽयुतसिद्धावयवश्च। युतसिद्धावयवः समूहो वनं संघ इति। अयुतसिद्धावयवः संघातः शरीरं वृक्षः परमाणुरिति। अयुतसिद्धावयवभेदानुगतः समूहो द्रव्यमिति पतञ्जलिः। एतत्स्वरूपमित्युक्तं।

अथ किमेषां सूक्ष्मरूपं, तन्मात्रं भूतकारणं, तस्यैकोऽवयवः

परमाणुः सामान्यविशेषात्माऽयुतसिद्धावयवभेदानुगतः समुदाय इत्येवं सर्वतन्मात्राण्येतत्तृतीयम् । अथ भूतानां चतुर्थं रूपं ख्याति-क्रियास्थितिशीला गुणाः कार्यस्वभावानुपातिनोऽन्वयशब्देनोक्ताः । अथैषां पञ्चमं रूपमर्थवत्त्वं, भोगापवर्गार्थता गुणेष्वेवान्वयिनी, गुणास्तन्मात्रभूतभौतिकेष्विति सर्वमर्थवत् । तेष्विदानीं भूतेषु पञ्चसु पञ्चरूपेषु संयमात्तस्य तस्य रूपस्य स्वरूपदर्शनं जयश्च प्रादु-र्भवति । तत्र पञ्च भूतस्वरूपाणि जित्वा भूतजयी भवति । तज्ज-याद्वत्सानुसारिण्य इव गावोऽस्य संकल्पानुविधायिन्यो भूतप्रकृतयो भवन्ति ॥ ४४ ॥

व्या० भा० पदार्थ

(तत्र पार्थिवाद्याः शब्दादयो विशेषाः) उन में पृथ्वी आदि शब्दादि के विशेष कार्य हैं (सहाऽऽकारादिभिर्धर्मैः स्थूलशब्देन परिभाषिताः) समान आकारादि धर्मोंवाले होने से "स्थूल" शब्द से कहे गये हैं। (एद्भूतानां प्रथमं रूपं) यह पृथ्वी आदि भूतों का प्रथमरूप है।

(द्वितीयं रूपं स्वसामान्यं) दूसरारूप उन का अपना सामान्य है (मूर्तिः भूमिः) भूमि का स्वरूप मूर्ति है (स्नेहो जलं) जल का स्वरूप चिकनापन है (वह्निरुष्णताः) उष्णता अग्नि का स्वरूप है (वायु प्रणामी) वहनशील होना वायु का स्वरूप है (सर्वतो-गतिराकाशः) सर्वत्र प्राप्त होना आकाश का स्वरूप है (इत्येत-त्स्वरूपशब्देनोच्यते) इस प्रकार यह पांच "स्वरूप" शब्द से कहे जाते हैं।

(अस्य सामान्यस्य शब्दादयो विशेषाः) इस सामान्य के शब्दादि विशेष हैं। (तथा चोक्तम्) वैसा ही कहा है—(एक-जातिसमन्वितानामेषां धर्ममात्रव्यावृत्तिरिति) इन एक जाति अनु-गत हुओं की धर्ममात्र से पृथक्ता है।

(सामान्यविशेषसमुदायोऽत्र द्रव्यम्) सामान्य–विशेष समूहों को यहां द्रव्य जानना चाहिये। (द्विष्ठो हि समूहः) क्योंकि दो भेदोंवाले समूह हैं (प्रत्यस्तमितभेदावयवानुगतः) एक जिनका अवयव भेद प्राप्त है (शरीरं वृक्षो यूथं वनमिति) शरीर–वृक्ष–यूथ–वन यह।

(शब्देनोपात्तभेदावयवानुगतः) इन शब्दों से प्राप्त भेद अवयवानुगत (समूह उभये देवमनुष्याः) समूह शब्दान्तर्गत देव–मनुष्य दोनों हैं। (समूहस्य देवा एको भागो मनुष्या द्वितीयो भागः) समूह का एक भाग देव हैं दूसरा भाग मनुष्य हैं (ताभ्यामेवाभिधीयते समूहः) उन दोनों को भी समूह शब्द से कहा जाता है।

(स च भेदाभेदविवक्षितः) और वह दोनों भेद और अभेद रूप से व्याख्या किये जाते हैं। (आम्राणां वनं ब्राह्मणानां संघः) आमों का वन, ब्राह्मणों की सभा, समास होकर इस प्रकार बोला जाता है। कि (आम्रवणं ब्राह्मणसंघ इति) आम्रवन–ब्राह्मणसंघ।

(स पुनर्द्विविधो युतसिद्धावयवोऽयुतसिद्धावयवश्च) वह पुनः दो प्रकार के हैं, युतसिद्धावयव = अर्थात् सिद्ध हैं अवयव जिसके। अयुतसिद्धावयव = नहीं हैं सिद्ध अवयव जिसके। (युतसिद्धावयवः समूहो वनं संघ इति) बन और सभा यह समूह युतसिद्धावयव हैं। (अयुतसिद्धावयवः संघातः शरीरं वृक्षः परमाणुरिति) संघात–शरीर, वृक्ष, परमाणु अयुतसिद्धावयव हैं। (अयुतसिद्धावयवभेदानुगतः) अयुतसिद्धावयव और भेद वाले (समूहो द्रव्यमिति पतञ्जलिः) समूह द्रव्य हैं यह पतञ्जलि ऋषि मानते हैं। (एतत्स्वरूपमित्युक्तम्) यह स्वरूप कहा गया।

(अथ किमेषां सूक्ष्मरूपं) अब इनका सूक्ष्म रूप क्या है यह वर्णन करते हैं, (तन्मात्रं भूतकारणं, तस्यैकोऽवयः परमाणुः)

तन्मात्रा स्थूलभूतों की कारण हैं उनका एक अवयव परमाणु है (सामान्यविशेषात्माऽयुतसिद्धावयवभेदानुगतः समुदायः) सामान्य, विशेषरूप, नहीं हैं सिद्ध अवयव जिसके, और भेद को प्राप्त समुदाय (इत्येवं सर्वतन्मात्राण्येतत्तृतीयम्) इस प्रकार यह सर्व तन्मात्रा इनका तीसरा रूप है ।

(अथ भूतानां चतुर्थं रूपं) अब भूतों का चतुर्थरूप कथन करते हैं (ख्यातिक्रियास्थितिशीला गुणाः) ज्ञान-क्रिया-स्थिति स्वभाववाले तीनों गुण (कार्यस्वभावानुपातिनोऽन्वयशब्देनोक्ताः) कार्य स्वरूप को प्राप्त होने वाले "अन्वयि" शब्द से कहे जाते हैं ।

(अथैषां पञ्चमं रूपमर्थवत्त्वं) अब इनका पञ्चमरूप प्रयोजनवाला होना, (भोगापवर्गार्थता गुणेष्वेवान्वयिनी) भोग,-मोक्ष, कार्यरूप गुणों में सम्पादन करना प्रयोजन है, (गुणास्तन्मात्रभतभौतिकेष्विति सर्वमर्थवत्) गुण तो तन्मात्रा, भूत और भौतिक सर्व पदार्थों में प्रयोजन वाले हैं । (तेष्विदानीं भूतेषु पञ्चसु पञ्चरूपेषु संयमात्तस्य तस्य रूपस्य स्वरूपदर्शनं जयश्च प्रादुर्भवति) अब उन पञ्च भूतों के पञ्च रूपों में संयम करने से उस २ रूप का स्वरूप दर्शन और जय योगी को प्राप्त होता है । (तत्र पञ्च भूतस्वरूपाणि जित्वा भूतजयी भवति) उनमें पञ्च भूतों के स्वरूप को जीत कर "भूतजयी" होता है । (तज्जयाद्वत्सानुसारिण्य इव गावोऽस्य संकल्पानुविधायिन्यो भूतप्रकृतयो भवन्ति) उन भूतों के जय होने से जिस प्रकार वत्स=बछड़े के अनुकूल गौ दूध को स्रवित करती है, इसी प्रकार इस योगी के संकल्पानुकूल पञ्चभूत और प्रकृति हो जाती हैं ॥ ४४ ॥

भो० वृत्ति

पञ्चानां पृथिव्यादीनां भूतानां ये पञ्चावस्थाविशेषरूपा धर्माः स्थूल

त्वादयस्तत्र कृतसंयमस्य भूतजयो भवति। भूतानि अस्य वश्यानि भवन्तीत्यर्थः। तथाहि—भूतानां परिदृश्यमानं विशिष्टाकारवत्स्थूलरूपं।

स्वरूपं चैषां यथाक्रमं कार्यं गन्धस्नेहोष्णताप्रेरणावकाशदानलक्षणं।

सूक्ष्मं च यथाक्रमं भूतानां कारणत्वेन व्यवस्थितानि गन्धादितन्मात्राणि।

अन्वयिनो गुणाः प्रकाशप्रवृत्तिस्थितिरूपतया सर्वत्रैवान्वयित्वेन समुपलभ्यन्ते।

अर्थवत्त्वं तेष्वेव गुणेषु भोगापवर्गसंपादनाख्या शक्तिः। तदेवं भूतेषु पञ्चसूक्तधर्मलक्षणावस्थाभिन्नेषु प्रत्यवस्थं संयमं कुर्वन्योगी भूतजयी भवति। तद्यथा—प्रथमं स्थूल रूपे संयमं विधाय तदनु स्वरूपे इत्येवं क्रमेण तस्य कृतसंयमस्य संकल्पानुविधायिन्यो वत्सानुसारिण्य इव गावो भूतप्रकृतयो भवन्ति ॥ ४४ ॥

तस्यैव भूतजयस्य फलमाह—

भो० वृ० पदार्थ

(पञ्चानां पृथिव्यादीनां भूतानां) पृथिवी आदि पञ्चभूतों के (ये पञ्चावस्थाविशेषरूपा धर्माः स्थूलत्वादयः) जो पञ्चावस्था रूप स्थूलत्वादि विशेष धर्म हैं (तत्र कृतसंयमस्य भूतजयो भवति) जिस योगी ने उनमें संयम किया है, वह भूतों का जय करनेवाला होता। (भूतानि अस्य वश्यानि भवन्तीत्यर्थः) भूत इस के वश हो जाते हैं, यह अर्थ है। (तथाहि) वैसे ही—भूतानां परिदृश्यमानं विशिष्टाकारवत्स्थूलरूपं) इन भूतों का विशेष आकारवाला स्थूल रूप दृश्यमान है।

(स्वरूपं चैषां यथाक्रमं कार्यं गन्धस्नेहोष्णताप्रेरणावकाशदानलक्षणं) और इनका स्वरूप यथाक्रम कार्य गन्ध, स्नेह, उष्णता, प्रेरणा, और अवकाश दान हैं।

(सूक्ष्मं च यथाक्रमं भूतानां कारणत्वेन व्यवस्थितानि गन्धादितन्मात्राणि) और भूतों के यथाक्रम गन्धादि तन्मात्रा कारण रूप से व्यवस्थित सूक्ष्म कहे जाते हैं (अन्वयिनो गुणाः प्रकाशप्रवृत्तिस्थितिरूप-

तया सर्वत्रैवान्वयित्वेन समुपलभ्यन्ते) ज्ञान, क्रिया, स्थिति स्वभाववाले कार्य गुण अन्वयिभाव से सर्वत्र उपलब्ध होते हैं ।

(अर्थवत्त्वं तेष्वेव गुणेषु भोगापवर्गसंपादनाख्या शक्ति) उन गुणों में भोग–मोक्ष सम्पादन करने वाली शक्ति ही प्रयोजनत्व है । (तदेवं भूतेषु उक्तधर्मलक्षणावस्थाभिन्नेषु प्रत्यवस्थं) ऊपर कहे अनुसार भिन्न धर्म, लक्षण, अवस्थावाले पञ्च भूतों में भोग–मोक्ष शक्ति रहते हुओं में (कुर्वन्योगी भूतजयी भवति) योगी संयम करता हुआ "भूत-जयी" होता है । (तद्यथा) उस विषय में जैसे—(प्रथमं स्थूलरूपे संयमं विधाय) प्रथम स्थूलरूप में संयम करके (तदनु स्वरूपं) उस के पश्चात् स्वरूप में (इत्येवं क्रमेण तस्य कृतसंयमस्य) इस प्रकार क्रम से उसमें संयम किया है जिस योगी ने (संकल्पानुविधायिन्यो वत्सा-नुसारिण्य इव गावो भूतप्रकृतयो भवन्ति) उसके संकल्पानुसारी भूत और प्रकृति होती हैं, जैसे वत्सानुसारी गौ होती है ॥ ४४ ॥

(तस्यैव भूतजयस्य फलमाह) उन भूतों के जय का फल आगे कहते हैं—

ततोऽणिमादिप्रादुर्भावः कायसंपत्तद्धर्मान-भिघातश्च ॥ ४५ ॥

सू०—उन भूतों के जय करने से अणिमादि सिद्धियों की प्राप्ति और शरीर सम्पत्ति और उन भूतों के धर्मों से योगी का बाध न होना सिद्ध होता है, अर्थात् सर्वभूत योगी के अनुकूल हो जाते हैं । तत्र सिद्धिः, अणिमा = अणु होना ।१। लघिमा लघु होना ।२। महिमा महान् होना ।३। प्राप्ति = अति दूरस्थ पदार्थों को प्राप्त करना ।४। प्राकाम्य = इच्छा पूर्ण होना ।५। वशित्व = सर्व का वश करना और स्वयं किसी के वश न होना ।६।

ईशितृत्व = उत्पत्ति प्रलय करने का समर्थ होना ।७। **यत्रकामावसायित्व** = संकल्प को पूरा होना ।८। ॥ ४४ ॥

व्या० भाष्यम्

तत्राणिमा भवत्यणुः । लघिमा लघुर्भवति । महिमा महान्भवति । प्राप्तिरङ्गुल्यग्रेणापि स्पृशति चन्द्रमसम् । प्राकाम्यमिच्छानभिघातः । भूमावुन्मज्जति निमज्जति यथोदके । वशित्वं भूतभौतिकेषु वशी भवत्यवश्यश्चान्येषाम् । ईशितृत्व तेषां प्रभवाप्ययव्यूहानामीष्टे । यत्र कामावसायित्वं सत्यसंकल्पता यथा संकल्पस्तथा भूतप्रकृतीनामवस्थानम् । न च शक्तोऽपि पदार्थविपर्यासं करोति । कस्मात् । अन्यस्य यत्र कामावसायिनः पूर्वसिद्धस्य तथा भूतेषु संकल्पादिति । एतान्यष्टावैश्वर्याणि ।

कायसंपद्वक्ष्यमाणा । तद्धर्मानभिघातश्च पृथ्वी मूर्त्या न निरुणद्धि योगिनः शरीरादिक्रियां, शिलामप्यनुविशतीति । नाऽऽपः स्निग्धाः क्लेदयन्ति । नाग्निरुष्णो दहति । न वायु प्रणामी वहति । अनावरणात्मकेऽप्याकाशे भवत्यावृतकायः सिद्धानामप्यदृश्यो भवति ॥ ४५ ॥

व्या० भा० पदार्थ

(तत्राणिमा भवत्यणुः) उन में 'अणिमा' सिद्धि वह है जिस में योगी अपने शरीर को सूक्ष्म कर लेता है ।

(लघिमा लघुर्भवति) हलका हो जाने से 'लघिमा' सिद्धि कहलाती है ।

(महिमा महान्भवति) जब योगी अपने शरीर को महान् कर लेता है तब 'महिमा' सिद्धि कहलाती है ।

(प्राप्तिरङ्गुल्यग्रेणापि स्पृशति चन्द्रमसम्) 'प्राप्ति' सिद्धि वह है जिसमें योगी चन्द्रमा को हाथ से स्पर्श करता है ।

(प्राकाम्यमिच्छानभिघातः) इच्छा का पूर्ण होना 'प्राकाम्य' सिद्धि कहलाती है। (भूमावुन्मज्जति निमज्जति यथोदके) भूमि में डूब जाता है और निकल आता है, जिस प्रकार जल में।

(वशित्वं भूतभौतिकेषु वशी भवत्यवश्यश्चान्येषाम्) भूत प्राणी और सर्व भौतिक पदार्थ योगी के वश में हो जाते हैं और योगी किसी के वश में नहीं रहता, इस सिद्धि को 'वशित्व' कहते हैं।

(ईशितृत्वं तेषां प्रभवाप्ययव्यूहानामीष्टे) उन भूत भौतिकों के उत्पत्ति विनाश की सामर्थ्य होना 'ईशितृत्व' सिद्धि कहलाती है।

(यत्र कामावसायित्वं सत्यसंकल्पता यथा संकल्पस्तथा भूतप्रकृतिनामवस्थानम्) योगी जो संकल्प करे वह पूरा होना, अर्थात् जैसा योगी का संकल्प उसके अनुसार भूत और प्रकृति का रहना, 'यत्रकामावसायित्व' सिद्धि कहलाती है।

(न च शक्तोऽपि पदार्थविपर्यासं करोति) परन्तु योगी समर्थ होता हुआ भी पदार्थों को ईश्वर रचना से विपरीत नहीं करता। (कस्मात्) क्योंकि (अन्यस्य यत्र कामावसायिनः पूर्वसिद्धस्य तथा भूतेषु संकल्पादिति) दूसरे प्राणियों के पूर्वसिद्ध प्रारब्ध कर्मानुसार भूतों को भोग ईश्वर नियम से प्राप्त है, इस कारण सिद्ध योगी ईश्वर आज्ञा भंग नहीं करता। (एतान्यष्टावैश्वर्याणि) यह आठ ऐश्वर्य हैं।

(कायसंपद्वक्ष्यमाणा) कायसम्पत्ति अगले सूत्र में कही जायेगी। (तद्धर्मानभिघातश्च) और उन भूतों के धर्मों से योगी का घात नहीं होता, वह इस प्रकार है कि (पृथ्वी मूर्त्या न निरुणद्धि योगिनः शरीरादिक्रियां शिलामप्यनुविशतीति) मूर्त्तिमान् कठिन पृथ्वी योगी की शरीरादि क्रिया को नहीं रोकती, शिला में भी योगी प्रवेश कर जाता है। (नाऽऽपः स्निग्धाः क्लेदयन्ति) जल की चिकनाहट योगी को गीला नहीं कर सक्ती। (नाग्निरुष्णो-

दहति) अग्नि की उष्णता उस को नहीं जला सक्ती । (न वायुः प्रणामी वहति) वहनशील वायु उस को नहीं उड़ा सक्ता । (अनावरणात्मकेऽप्याकाशे भवत्यावृतकायः) अनावरणरूप आकाश में भी योगी अपने शरीर को ढकलेता है (सिद्धानामप्यदृश्यो भवति). सिद्ध पुरुषों से भी अदृश्य हो जाता है ॥ ४५ ॥

भो० वृत्ति

अणिमा परमाणुरूपतापत्तिः । महिमा महत्त्वम् । लघिमा तूलपिण्डवल्लघुत्वप्राप्तिः । गरिमा गुरुत्वम् । प्राप्तिरङ्गुल्यग्रेण चन्द्रादिस्पर्शनशक्तिः । प्राकाम्यमिच्छानभिघातः । शरीरान्तःकरणेश्वरत्वमीशित्वम् । सर्वत्र प्रभविष्णुता वशित्वं, सर्वाण्येव भूतानि अनुगामित्वात्तदुक्तं नातिक्रामन्ति । यत्र कामावसायो यस्मिन्विषयेऽस्य काम इच्छा भवति यस्मिन्विषये योगिनो व्यवसायो भवति तं विषयं स्वीकारद्वारेणाभिलापसमाप्तिपर्यन्तं नयन्तीत्यर्थः । त एतेऽणिमाद्याः समाध्युपयोगिनो भूतजयाद्योगिनः प्रादुर्भवन्ति । यथा परमाणुत्वं प्राप्तो वज्रादीनामप्यन्तः प्रविशति । एवं सर्वत्र योज्यम् । त एतेऽणिमाद्योऽष्टौ गुणा महासिद्धयय उच्यन्ते । कायसंपद्वक्ष्यमाणा तां प्राप्नोति तद्धर्मानभिघातश्च तस्य कायस्य ये धर्मा रूपादयस्तेषामनभिघातो नाशो न कुतश्चिद्भवति नास्य रूपमग्निर्दहति न वायुः शोषयतीत्यादि योज्यम् ॥ ४५ ॥

कायसंपदमाह—

भो० वृ० पदार्थ

(अणिमा परमाणुरूपतापत्तिः) परमाणु के समान सूक्ष्म होना "अणिमा" सिद्धि कहलाती है ।१। (महिमा महत्त्वम्) महान् होना "महिमा" सिद्धि है ।२। (लघिमा तूलपिण्डवल्लघुत्वप्राप्तिः) रूई के ढेर के समान हलका होना "लघिमा" सिद्धि है ।३। (गरिमा गुरुत्वम्)

भारी होना "गरिमा" सिद्धि कहलाती है ।४। (प्राप्तिरङ्गुल्यग्रेण चन्द्रादिस्पर्शनशक्तिः) चन्द्रादि को अंगुली से छूने की शक्ति "प्राप्ति" सिद्धि है ।५। (प्राकाम्यमिच्छानभिघातः) इच्छा पूर्ति होना "प्राकाम्य" सिद्धि है ।६। (शरीरान्तः करणेश्वरत्वमीशित्वम्) शरीर—अन्तःकरण का वश होना "ईशित्व" सिद्धि है ।७। (सर्वत्र प्रभविष्णुता वशित्वं) सर्वत्र उत्पत्ति पालन "वशित्व" सिद्धि है ।८। (सर्वाण्येव भूतानि अनुगामित्वात्तदुक्तं) सर्व भूत इसके अनुगामी होने से ऐसा कहा गया (नातिक्रामन्ति) क्योंकि इस की आज्ञा को नहीं उल्लङ्घन कर सक्के (यत्र कामावसायो यस्मिन्विषयेऽस्य काम इच्छा भवति यस्मिन्विषये योगिनो व्यवसायो भवति तं विषयं स्वीकारद्वारेणाभिलाषसमाप्तिपर्यन्तं नयन्तीत्यर्थः) जिस विषय में उस की इच्छा होती है और जिस विषय में योगी का निश्चय होता है, उस विषय के स्वीकार द्वारा इच्छा पूर्ति पर्यन्त गति होती है, यह अर्थ है यही "यत्रकामावसायित्व" सिद्धि है ।९।

(त एतेऽणिमाद्याः समाध्युपयोगिनो भूतजयाद्योगिनः प्रादुर्भवन्ति) वह यह अणिमादि सिद्धि समाधि की सहकारी भूतजय करने से योगी को प्रकट होती हैं । (यथा परमाणुत्वं प्राप्तो वज्रादीनामप्यन्तः प्रविशति) ऐसा कि अतिसूक्ष्मता को प्राप्त हुआ योगी वज्रादि के अन्दर प्रवेश करता है । (एवं सर्वत्र योज्यम्) इस प्रकार सर्वत्र युक्त करना चाहिये । (त एतेऽणिमादयोऽष्टौ गुणा महासिद्धयय उच्यन्ते) वह यह अणिमादि आठ धर्म महासिद्धि कहलाती हैं । (कायसंपद्वक्ष्यमाणा तां प्राप्नोति) शारीरिक ऐश्वर्य जो अगले सूत्र में कहे जांयगे उनको भी प्राप्त होता है । (तद्धर्मानभिघातश्च तस्य कायस्य ये धर्मा रूपादयस्तेषामनभिघातो नाशो न कुतश्चिद्भवति) उन के धर्मों का घात न होना, उस शरीर के जो रूपादि धर्म हैं, उन का कहीं भी नाश न होना (नास्य रूपमग्निर्दहति) इस के रूप को अग्नि नहीं जलाता (न वायुः शोषयति) न वायु सुखाता है (इत्यादि योज्यम्) इस प्रकार अन्यों में भी युक्त करना चाहिये ॥४५॥

(कायसंपादमाह) काया सम्पत्ति आगे कहते हैं—

विशेष सूचना

इस सूत्र की वृत्ति में नौ सिद्धियें हैं और वृत्तिकार इस निम्न वाक्य से "त एतेऽणिमादयोऽष्टौ गुणा महासिद्धयय उच्यन्ते" आठ ही बतलाते हैं, इसलिये "गरिमा" सिद्धि अधिक है जो व्यास भाष्य में भी नहीं है मालूम होता है किसी आधुनिक ने पीछे से बढ़ा दी है।

रूपलावण्यबलवज्रसंहननत्वानि कायसंपत् ॥४६॥

सू०—सुन्दरता-कान्तिमान-अतिशयबल-वज्र के समान अच्छेद्य होना यह भूतजयी योगी को शारीरिक ऐश्वर्य प्राप्त होते हैं ॥ ४६ ॥

व्या० भाष्यम्

दर्शनीयः कान्तिमानतिशयबलो वज्रसंहननश्चेति ॥ ४६ ॥

व्या० भा० पदार्थ

(दर्शनीयः कान्तिमानतिशयबलो वज्रसंहननश्चेति) मनोहररूपवाला तेजस्वी और अतिबलवान् और वज्र के समान अति कठिन अच्छेद्य होना यह शारीरिक ऐश्वर्य हैं ॥ ४६ ॥

भो० वृत्ति

रूपलावण्यबलानि प्रसिद्धानि। वज्रसंहननत्वं वज्रवत्कठिना संहतिरस्य शरीरे भवतीत्यर्थः। इति कायस्याऽऽविर्भूतगुणसंपत् ॥ ४६ ॥

एवं भूतजयमभिधाय प्राप्तिभूमिकाविशेषस्य इन्द्रियजयमाह—

भो० वृ० पदार्थ

(रूपलावण्यबलानि प्रसिद्धानि) रूप सुन्दरता और बल सर्वत्र प्रसिद्ध हैं। (वज्रसंहननत्वं वज्रवत्कठिना संहतिरस्य शरीरे भवतीत्यर्थः) वज्र के समान कठिनता अर्थात् अच्छेद्य होना इस के शरीर में होता है,

यह वज्रसंहननत्व का अर्थ है (इति कायस्याऽऽविर्भूतगुणसंपत्) यह शारीरिक गुण सम्पत्ति का आविर्भाव है ॥ ४६ ॥

(एवं भूतजयमभिधाय प्राप्तभूमिकाविशेषस्य इन्द्रियजयमाह) इस प्रकार भूतों के जय को कथन करके प्राप्त है भूमि का विशेष जिस को उस के लिये इन्द्रियजय कहते हैं—

ग्रहणस्वरूपास्मितान्वयार्थवत्त्वसंयमा-दिन्द्रियजयः ॥ ४७ ॥

सू०—ग्रहण—स्वरूप—अस्मिता—अन्वय—अर्थवत्त्व इन पांचों में संयम करने से योगी को इन्द्रियजयी सिद्धि प्राप्त होती है ॥४७॥

व्या० भाष्यम्

सामान्यविशेषात्मा शब्दादिर्ग्राह्यः । तेष्विन्द्रियाणां वृत्तिर्ग्रहणम् । न च तत्सामान्यमात्रग्रहणाकारं कथमनालोचितः स विषय विशेष इन्द्रियेण मनसाऽनुव्यवसीयेतेति । स्वरूपं पुनः प्रकाशात्मनो बुद्धिसत्त्वस्य सामान्यविशेषयोरयुतसिद्धावयवभेदानुगतः समूहो द्रव्यमिन्द्रियम् । तेषां तृतीयं रूपमस्मितालक्षणोऽहंकारः । तस्य सामान्यस्येन्द्रियाणि विशेषाः । चतुर्थं रूपं व्यवसायात्मकाः प्रकाशक्रियास्थितिशीला गुणा येषामिन्द्रियाणि साहंकाराणि परिणामः । पञ्चमं रूपं गुणेषु यदनुगतं पुरुषार्थवत्त्वमिति । पञ्चस्वेतेष्विन्द्रियरूपेषु यथाक्रमं संयमस्तत्र तत्र जयं कृत्वा पञ्चरूपजयादिन्द्रियजयः प्रादुर्भवति योगिनः ॥ ४७ ॥

व्या० भा० पदार्थ

(सामान्यविशेषात्मा शब्दादिर्ग्राह्यः) सामान्य-विशेष रूप शब्दादि ग्रहण करने योग्य हैं । (तेष्विन्द्रियाणां वृत्तिर्ग्रहणम्) उन शब्दादि विषयों में इन्द्रियों की वृत्ति ग्रहण कहलाती है । (न च तत्सामान्यमात्रग्रहणाकारं) वह वृत्ति सामान्य मात्र से ग्रहणा-

कार नहीं होती (कथमनालोचितः स विषय विशेष इन्द्रियेण मनसाऽनुव्यवसीयेतेति) मन इन्द्रिय से विना विचारे वह विषय विशेष किस प्रकार निश्चय करे अर्थात् मन के सहित इन्द्रियवृत्ति "ग्रहण" कहलाती है। (स्वरूपं पुनः प्रकाशात्मनो बुद्धिसत्त्वस्य सामान्यविशेषयोरयुतसिद्धावयवभेदानुगतः समूहो द्रव्यमिन्द्रियम्) फिर प्रकाशरूप सात्विक बुद्धि के परिणाम सामान्य अहंकार विशेष इन्द्रिय भिन्न २ सिद्धावयव भेद को प्राप्त, इन्द्रियसमूह द्रव्य, स्वरूप कहलाता है। (तेषां तृतीयं रूपमस्मितालक्षणोऽहंकारः) उनका तीसरा रूप अस्मिता लक्षण अहंकार है। (तस्य सामान्यस्येन्द्रियाणि विशेषाः) उस सामान्य रूप अहंकार के इन्द्रिय विशेष परिणाम हैं। (चतुर्थं रूपं व्यवसायात्मकाः प्रकाशक्रियास्थितिशीला गुणा येषामिन्द्रियाणि साहंकाराणि परिणामः) चतुर्थ रूप निश्चयात्मिका बुद्धि, प्रकाश, क्रिया, स्थिति, स्वभाववाले तीन गुणों का कार्य है जिन गुणों के इन्द्रियां अहंकार सहित परिणाम हैं। (पञ्चमं रूपं गुणेषु यदनुगतं पुरुषार्थवत्त्वमिति) पञ्चमरूप, गुणों में जो पुरुष का भोग-मोक्ष रूप प्रयोजनत्व अनुगत है। (पञ्चस्वेतेष्विन्द्रियरूपेषु यथाक्रमं संयमस्तत्र तत्र जयं कृत्वा पञ्चरूपजयादिन्द्रियजयः प्रादुर्भवति योगिनः) इन पांचों इन्द्रियों में यथाक्रम उस २ में संयम द्वारा जय करके, पांच रूपों के जय होने से योगी को इन्द्रियजय सामर्थ उत्पन्न होती है ॥ ४७ ॥

भो० वृत्ति

ग्रहणमिन्द्रियाणां विषयाभिमुखी वृत्तिः। स्वरूपं सामान्येनप्रकाशकत्वम्। अस्मिताऽहंकारानुगमः। अन्वयार्थवत्त्वे पूर्ववत्। एतेषामिन्द्रियाणामवस्थापञ्चके पूर्ववत्संयमं कृत्वेन्द्रियजयी भवति ॥ ४७ ॥

तस्य फलमाह—

भो० वृ० पदार्थ

(ग्रहणमिन्द्रियाणां विषयाभिमुखी वृत्तिः) इन्द्रियों की विषय संमुखी वृत्ति ग्रहण कहलाती है । (स्वरूपं सामान्येन प्रकाशकत्त्वम्) सामान्य रूप से इन्द्रियों का प्रकाशकत्व स्वरूप है । (अस्मिताऽहंकारानुगमः) अभिमान को प्राप्त अस्मिता है । (अन्वयार्थवत्त्वे पूर्ववत्) अन्वय और अर्थवत्त्व पूर्व इस पाद के ४४ सूत्र में कहे अनुसार जानो । (एतेषामिन्द्रियाणामवस्थापञ्चके पूर्ववत्संयमं कृत्वेन्द्रियजयी भवति) इन इन्द्रियों की पांच अवस्थाओं में पूर्व कहे समान संयम करके योगी इन्द्रियजयी होता है ॥ ४७ ॥

(तस्य फलमाह) इस इन्द्रियजय का फल आगे कथन करते हैं—

ततो मनोजवित्वं विकरणभावः प्रधानजयश्च ॥४८॥

सू०—उस इन्द्रियजय से मन के समान शरीर की अनुत्तम गति का लाभ इष्ट देश-काल और विषय की अपेक्षा से विदेहा इन्द्रियों की वृत्ति का लाभ और कार्य सहित प्रकृति का वश होना योगी को सिद्ध होता है । मन के समान कहने का यह अभिप्राय है कि जैसा विषय अभिलाष रहित मन हो वैसा ही शरीर भी पवित्र हो ॥ ४८ ॥

व्या० भाष्यम्

कायस्यानुत्तमो गतिलाभो मनोजवित्वम् । विदेहानामिन्द्रियाणामभिप्रेतदेशकालविषयापेक्षो वृत्तिलाभो विकरणभावः । सर्वप्रकृतिविकारवशित्वं प्रधानजय इत्येतास्तिस्रः सिद्धयो मधुप्रतीका उच्यन्ते । एताश्च करणपञ्चकस्वरूपजयादधिगम्यन्ते ॥ ४८ ॥

व्या० भा० पदार्थ

(कायस्यानुत्तमो गतिलाभो मनोजवित्वम्) शरीर की सर्व से उत्तम गति का लाभ "मनोजवित्व" है । (विदेहानामिन्द्रिया-

णामभिप्रेतदेशकालविषयापेक्षो वृत्तिलाभो विकरणभावः) इष्ट देश–काल–विषय की अपेक्षा से देह अभिमान रहित इन्द्रियों की वृत्ति का लाभ "विकरणभाव" कहलाता है। (सर्वप्रकृतिविकार वशित्वं प्रधानजय इति) सब प्रकृति के विकारों का वशित्व "प्रधानजय" कहलाता है (एतास्तिस्रः सिद्धयो मधुप्रतीका उच्यन्ते) इन तीनों सिद्धियों को "मधुप्रतीका" नाम से कहते हैं। (एताश्च करणपञ्चकस्वरूपजयादधिगम्यन्ते) यह तीनों सिद्धियां पांचों इन्द्रियों के स्वरूप जय से प्राप्त होती हैं। इन सिद्धियों के प्राप्त होने पर योगी को प्रत्येक सिद्धि में मधु समान स्वाद प्रतीत होता है, इस कारण इनका मधुप्रतीका नाम है ॥ ४८ ॥

भो० वृत्ति

शरीरस्य मनोवदनुत्तमगतिलाभो मनोजवित्वम्। कायनिरपेक्षाणामिन्द्रियाणां वृत्तिलाभो विकरणभावः। सर्ववशित्वं प्रधानजयः। एताः सिद्धयो जितेन्द्रियस्य प्रादुर्भवन्ति ताश्चास्मिञ्शास्त्रे मधुप्रतीका इत्युच्यन्ते। यथा मधुन एकदेशोऽपि स्वदत एवं प्रत्येकमेताः सिद्धयः स्वदन्त इति मधुप्रतीकाः ॥ ४८ ॥

इन्द्रियजयमभिधायान्तः करणजयमाह—

भो० वृ० पदार्थ

(शरीरस्य मनोवदनुत्तमगतिलाभो मनोजवित्वम्) मन के समान शरीर की सर्वोत्तम गति का लाभ "मनोजवित्व" कहलाता है। (कायनिरपेक्षाणामिन्द्रियाणां वृत्तिलाभो विकरणभावः) शरीर की अपेक्षा से रहित इन्द्रियों की वृत्ति का लाभ "विकरणभाव" है। (सर्ववशित्वं प्रधानजयः) सर्व वशित्व "प्रधानजय" कहलाता है। (एताः सिद्धयो जितेन्द्रियस्य प्रादुर्भवन्ति) जितेन्द्रिय पुरुष को यह सिद्धियां प्राप्त होती हैं (ताश्चास्मिञ्शास्त्रे मधुप्रतीका इत्युच्यन्ते) और वह इस शास्त्र में

मधुप्रतीका नाम से कही जाती हैं । (यथा मधुन एकदेशोऽपि स्वदत एवं प्रत्येकमेताः सिद्धयः स्वदन्तः) जैसे मधु का एक देश भी स्वाद देता है इसी प्रकार इन तीनों में से प्रत्येक सिद्धि स्वाद देती है (इति मधुप्रतीकाः) इस कारण मधुप्रतीका कहलाती हैं ॥ ४८ ॥

(इन्द्रियजयमभिधायान्तःकरणजयमाह) इन्द्रियजय को कथन करके, आगे अन्तःकरण जय का कथन करते हैं—

सत्त्वपुरुषान्यताख्यातिमात्रस्य सर्वभावाधिष्ठातृत्वं सर्वज्ञातृत्वं च ॥ ४९ ॥

सू०—बुद्धि और पुरुष इन दोनों की भिन्नता का ज्ञानमात्र है जिस योगी को, उसको सर्व चित्त के भावों का अधिष्ठातृत्व और सर्वज्ञातृत्व प्राप्त होता है ॥ ४९ ॥

व्या० भाष्यम्

निर्धूतरजस्तमोमलस्य बुद्धिसत्त्वस्य परे वैशारद्ये परस्यां वशीकारसंज्ञायां वर्तमानस्य सत्त्वपुरुषान्यताख्यातिमात्ररूपप्रतिष्ठस्य सर्वभावाधिष्ठातृत्वम् । सर्वात्मानो गुणा व्यवसायव्यवसेयात्मकाः स्वामिनं क्षेत्रज्ञं प्रत्यशेषदृश्यात्मत्वेनोपस्थिता इत्यर्थः । सर्वज्ञातृत्वं सर्वात्मनां गुणानां शान्तोदिताव्यपदेश्यधर्मत्वेन व्यवस्थितानामक्रमोपारूढं विवेकजं ज्ञानमित्यर्थः । इत्येषा विशोका नाम सिद्धिर्यां प्राप्य योगी सर्वज्ञः क्षीणक्लेशबन्धनो वशी विहरति ॥ ४९ ॥

व्या० भा० पदार्थ

(निर्धूतरजस्तमोमलस्य बुद्धिसत्त्वस्य परे वैशारद्ये) दूर हो गया है रज-तम रूपी मल जिस का ऐसी सात्त्विक बुद्धि के प्रकाश में (परस्यां वशीकारसंज्ञायां वर्तमानस्य) परम वशीकार नाम वाले वैराग्य में वर्तमान (सत्त्वपुरुषान्यताख्यातिमात्ररूपप्रतिष्ठस्य) बुद्धि और पुरुष की भिन्नताख्यातिमात्र रूप में प्रतिष्ठित योगी को

(सर्वभावाधिष्ठातृत्वम्) सर्व भावों का अधिष्ठातापन कि (सर्वात्मानो गुणा व्यवसायव्यवसेयात्मकाः स्वामिनं क्षेत्रज्ञं प्रत्यशेषदृश्यात्मत्वेनोपस्थिता इत्यर्थः) सर्व अन्तःकरण के धर्म निश्चित, और निश्चय करने योग्य, का सम्पूर्ण ज्ञान क्षेत्रज्ञ=जाननेवाले स्वामी को दृश्यरूप से प्राप्त रहता है, यह अर्थ है। (सर्वज्ञातृत्वं) सर्व का ज्ञातापन यह है कि (सर्वात्मनां गुणानां शान्तोदिताव्यपदेश्यधर्मत्वेन व्यवस्थितानामक्रमोपारूढं विवेकजं ज्ञानमित्यर्थः) सर्व अन्तः करण के धर्म अतीत-वर्तमान और अनागत रूप से व्यवस्थित हुओं का क्रम से विवेकज ज्ञान होता है, यह अर्थ है। (इत्येषा विशोका नाम सिद्धिर्यां प्राप्य योगी सर्वज्ञः क्षीणक्लेशबन्धनो वशी विहरति) इस प्रकार यह विशोका नामवाली सिद्धि है, जिसको प्राप्त होकर योगी सर्वज्ञ होता है और क्लेशरूपी बन्धन क्षीण होने से सर्व को वश किये हुए विचरता है ॥ ४९ ॥

भो० वृत्ति

तस्मिन्बुद्धेः सात्त्विके परिणामे कृतसंयमस्य या सत्त्वपुरुषयोरुत्पद्यते विवेकख्यातिर्गुणानां कर्तृत्वाभिमानशिथिलीभावरूपा तन्माहात्म्यात्तत्रैव स्थितस्य योगिनः सर्वभावाधिष्ठातृत्वं सर्वज्ञातृत्वं च समाधेर्भवति। सर्वेषां गुणपरिणामानां भावानां स्वामिवदाक्रमणं सर्वभावाधिष्ठातृत्वं, तेषामेव च शान्तोदिताव्यपदेश्यधर्मित्वेनावस्थितानां यथावद्विवेकज्ञानं सर्वज्ञातृत्वम्। एषां चास्मिञ्शास्त्रे परस्यां वशीकारसंज्ञायां प्राप्तायां विशोका नाम सिद्धिरित्युच्यते ॥ ४९ ॥

क्रमेण भूमिकान्तरमाह—

भो० वृ० पदार्थ

(तस्मिन्बुद्धेः सात्त्विके परिणामे कृतसंयमस्य या सत्त्वपुरुषयोरुत्पद्यते विवेकख्यातिः) उस बुद्धि के सात्त्विक परिणाम में किया है संयम

जिस योगी ने उस को जो बुद्धि और पुरुष विषयक विवेकख्याति उत्पन्न होती है (गुणानां कर्तृत्वाभिमानशिथिलीभावरूपा तन्माहात्म्यात्तत्रैव स्थितस्य योगिनः सर्वभावाधिष्ठातृत्वं सर्वज्ञातृत्वं च समाधेर्भवति) गुणों का कर्तृत्व-रूप अभिमान शिथिल होने पर उसके महत्व से उसमें स्थिर हुए योगी को चित्त के सर्व भावों का अधिष्ठातापन और सर्व ज्ञातापन समाधि में होता है। (सर्वेषां गुणपरिणामानां भावानां स्वामिवदाक्रमणं सर्वभावाधिष्ठातृत्वं) गुणों के सर्वपरिणामों और भावों का स्वामी के समान आक्रमण करना सर्वभावाधिष्ठातृत्व है, (तेषामेव च शान्तोदिताव्यपदेश्य-धर्मित्वेनावस्थितानां यथावद्विवेकज्ञानं सर्वज्ञातृत्वम्) और अतीत—वर्तमान—अनागत काल में धर्मीभाव से अवस्थित हुए उन्हीं गुणों का यथार्थ विवेकज्ञान सर्वज्ञातृत्व कहलाता है। (एषां चास्मिन्शास्त्रे परस्यां वशीकारसंज्ञायां प्राप्तायां) परमवशीकार संज्ञा में प्राप्त हुए इनको इस शास्त्र में (विशोका नाम सिद्धिरित्युच्यते) विशोका सिद्धि कहते हैं ॥४९॥

(क्रमेण भूमिकान्तरमाह) क्रम से अन्य भूमिका को कहते हैं—

तद्वैराग्यादपि दोषबीजक्षये कैवल्यम् ॥ ५० ॥

सू०—उस विवेक ज्ञान में भी वैराग्य होने से क्लेशों के बीज नाश होने पर योगी को कैवल्य की प्राप्ति होती है ॥ ५० ॥

व्या० भाष्यम्

यदाऽस्यैवं भवति क्लेशकर्मक्षये सत्त्वस्यायं विवेकप्रत्ययो धर्मः सत्त्वं च हेयपक्षे न्यस्तं पुरुषश्चापरिणामी शुद्धोऽन्यः सत्वादिति। एवमस्य ततो विरज्यमानस्य यानि क्लेशबीजानि दग्धशालिबीज-कल्पान्यप्रसवसमर्थानि तानि सह मनसा प्रत्यस्तं गच्छन्ति। तेषु प्रलीनेषु पुरुषः पुनरिदं तापत्रयं न भुङ्क्ते। तदेतेषां गुणानां मनसि कर्मक्लेशविपाकस्वरूपेणाभिव्यक्तानां चरितार्थानाम् प्रतिप्रसवे पुरुषस्याऽऽत्यन्तिको गुणवियोगः कैवल्यम्, तदा स्वरूपप्रतिष्ठा चिति-शक्तिरेव पुरुष इति ॥ ५० ॥

व्या० भा० पदार्थ

(यदाऽस्यैवं भवति क्लेशकर्मक्षये) क्लेश और कर्मों के नाश होने पर जब इस योगी का ऐसा भाव होता है कि (सत्त्वस्यायं विवेकप्रत्ययो धर्मः) यह विवेकज्ञान बुद्धि का धर्म है (सत्त्वं च हेयपक्षे न्यस्तं) और बुद्धि त्याज्य पक्ष में मानी गई है (पुरुषश्चा-परिणामी शुद्धोऽन्यः सत्त्वादिति) और शुद्धस्वरूप अपरिणामी पुरुष बुद्धि से भिन्न है । (एवमस्य ततो विरज्यमानस्य यानि क्लेश-बीजानि दग्धशालिबीजकल्पान्यप्रसवसमर्थानि) इस प्रकार उस विवेकज्ञान से भी वैराग्य को प्राप्त हुए योगी के जो क्लेश बीज कर्म-वासना हैं जले हुए धाना बीज के समान, अनुत्पत्ति के योग्य हो जाते हैं (तानि सह मनसा प्रत्यस्तं गच्छन्ति) वह मन के सहित लयता को प्राप्त हो जाते हैं । (तेषु प्रलीनेषु पुरुषः पुनरिदं तापत्रयं न भुङ्क्ते) मन सहित उन कर्म वासनाओं के लीन होने पर फिर पुरुष इन आध्यात्मिक-आधिभौतिक-आधिदैविक ताप त्रय को नहीं भोगता । (तदेतेषां गुणानां मनसि कर्मक्लेशविपाकस्वरू-पेणाभिव्यक्तानां चरितार्थानां प्रतिप्रसवे) कर्म-क्लेश और फल रूप से मन में प्रकट हुए पुनः कृतप्रयोजन हुए इन गुणों के कारण में लीन होने पर (पुरुषस्याऽऽत्यन्तिको गुणवियोगः कैवल्यम्) पुरुष का अत्यन्त गुणों से पृथक् होना कैवल्य कहलाता है, (तदा स्वरूपप्रतिष्ठा चितिशक्तिरेव पुरुष इति) तब चेतन पुरुष स्वरूप में प्रतिष्ठित होता है ॥ ५० ॥

भो० वृत्ति

एतस्यामपि विशोकायां सिद्धौ यदा वैराग्यमुत्पद्यते योगिनस्तदा तस्माद्दोषाणां रागादीनां यद्बीजमविद्यादयस्तस्य क्षये निर्मूलने कैवल्यमात्य-

न्तिकी दुःखनिवृत्तिः पुरुषस्य गुणानामधिकारपरिसमाप्तौ स्वरूपप्रतिष्ठ-त्वम् ॥ ५० ॥

अस्मिन्नेव समाधौ स्थित्युपायमाह—

भो० वृ० पदार्थ

(एतस्यामपि विशोकायां सिद्धौ यदा वैराग्यमुत्पद्यते योगिनः) इस विशोका सिद्धि में भी जब योगी को वैराग्य उत्पन्न होता है (तदा तस्माद्दोषाणां रागादीनां यद्बीजमविद्यादयस्तस्य क्षये निर्मूलने कैवल्यम्) तब उस वैराग्य से रागादि दोषों का जो बीज अविद्यादि हैं, उनके नाश अर्थात् निर्मूल होने पर कैवल्यगति (आत्यन्तिकी दुःखनिवृत्तिः पुरुषस्य) पुरुष की दुःखों से अत्यन्त निवृत्ति होती है (गुणानामधिकारपरिसमाप्तौ स्वरूपप्रतिष्ठत्वम्) गुणों का अधिकार समाप्त होने पर स्वरूप में स्थिर होना ही कैवल्य है ॥ ५० ॥

(अस्मिन्नेव समाधौ स्थित्युपायमाह) इसी समाधि में ठहरने का का उपाय आगे कहते हैं—

स्थान्युपनिमन्त्रणे सङ्गस्मयाकरणं पुन-रनिष्टप्रसङ्गात् ॥ ५१ ॥

सू०—(स्थान्युपनिमन्त्रणे) स्थानधारी गृहस्थ पुरुषों के निमन्त्रण करने पर (सङ्गस्मयाकरणं) उन का सङ्ग न करना और गर्व भी न करना (पुनरनिष्टप्रसङ्गात्) क्योंकि फिर अनिष्ट प्रसङ्ग होने से योग की हानि होगी ॥ ५१ ॥

व्या० भाष्यम्

चत्वारः खल्वमी योगिनः प्राथमकल्पिको मधुभूमिकः प्रज्ञाज्योतिरतिक्रान्तिभावनीयश्चेति । तत्राभ्यासी प्रवृत्तमात्रज्योतिः प्रथमः । ऋतंभरप्रज्ञो द्वितीयः । भूतेन्द्रियजयी तृतीयः सर्वेषु भावितेषु भाव-

नीयेषु कृतरक्षाबन्धः कर्तव्यसाधनादिमान् । चतुर्थो यस्त्वतिक्रान्त-भावनीयस्तस्य चित्तप्रतिसर्ग एकोऽर्थः। सप्तविधाऽस्य प्रान्तभूमिप्रज्ञा।

तत्र मधुमतीं भूमिं साक्षात्कुर्वतो ब्राह्मणस्य स्थानिनो देवाः सत्त्वविशुद्धिमनुपश्यन्तः स्थानैरुपनिमन्त्रयन्ते भो इहाऽऽस्यतामिह रम्यतां ।

[कमनीयोऽयं भोगः कमनीयेयं कन्या रसायनमिदं जरामृत्युं बाधते वैहायसमिदं यानममी कल्पद्रुमाः पुण्या मन्दाकिनी सिद्धा महर्षय उत्तमा अनुकूला अप्सरसो दिव्ये श्रोत्रचक्षुषी वज्रोपमः कायः स्वगुणैः सर्वमिदमुपार्जितमायुष्मताप्रतिपद्यतामिदमक्षयमजर-ममरस्थानं देवानां प्रियमिति]

एवमभिधीयमानः सङ्ग दोषान्भावयेद्घोरेषु संसाराङ्गारेषु पच्य-मानेन मया जननमरणान्धकारे विपरिवर्तमानेन कथंचिदासादितः क्लेशतिमिरविनाशी योगप्रदीपस्तस्य चैते तृष्णायोनयो विषयवायवः प्रतिपक्षाः। स खल्वहं लब्धालोकः कथमनया विषयमृगतृष्णया वञ्चितस्तस्यैव पुनः प्रदीप्तस्य संसाराग्नेरात्मानमिन्धनीं कुर्यामिति । स्वस्ति वः स्वप्नोपमेभ्यः कृपणजनप्रार्थनीयेभ्यो विषयेभ्य इत्येवं निश्चि-तमतिः समाधिं भावयेत् ।

सङ्गमकृत्वा स्मयमपि न कुर्यादेवमहं देवानामपि प्रार्थनीय इति । स्मयादयं सुस्थितंमन्यतया मृत्युना केशेषु गृहीतमिवाऽऽत्मानं न भाव-यिष्यति । तथा चास्य छिद्रान्तरप्रेक्षी नित्यं यत्नोपचर्यः प्रमादो लब्ध-विवरः क्लेशानुत्तम्भाविष्यति ततः पुनरनिष्टप्रसङ्गः । एवमस्य सङ्ग-स्मयावकुर्वतो भावितोऽर्थो दृढी भविष्यति । भावनीयश्चार्थोऽभिमुखी भविष्यतीति ॥ ५१ ॥

व्या० भा० पदार्थ

(चत्वारः खल्वमी योगिनः) निश्चय यह योगी चार गतियों-वाले होते हैं, (प्राथमकल्पिको मधुभूमिकः प्रज्ञाज्योतिरतिक्रान्तभा-

वनीयश्चेति) प्रथमः कल्पिकः, द्वितीयः मधुभूमिकः, तृतीयः प्रज्ञाज्योतिः, चतुर्थः अतिक्रान्तभावनीयः ।

(तत्राभ्यासी प्रवृत्तमात्रज्योतिः प्रथमः) उन में प्रवृत्तमात्रज्योतिवाला अभ्यासी पहला है । (ऋतंभरप्रज्ञो द्वितीयः) ऋतंभरा प्रज्ञावाला दूसरा है । (भूतेन्द्रियजयी तृतीयः) भूत-इन्द्रियों को जय किया है जिसने वह तीसरा है । (सर्वेषु भावितेषु भावनीयेषु कृतरक्षाबन्धः कर्तव्यसाधनादिमान्) सर्व विचार किये हुए और विचारने योग्य भावों में किया है रक्षा बन्ध जिसने, और करने योग्य साधनोंवाला (चतुर्थः) चौथा (यस्त्वतिक्रान्तभावनीयस्तस्य चित्तप्रतिसर्ग एकोऽर्थः) जो विचारणीय को लांघ चुका अर्थात् पूर्ण ज्ञानी है, उस के चित्त में एक मोक्षरूपी प्रयोजन है । (सप्तविधाऽस्य प्रान्तभूमिप्रज्ञा) इसकी अन्तिम भूमिका वाली प्रज्ञा सात प्रकार की होती हैं ।

(तत्र मधुमतीं भूमिं साक्षात्कुर्वतो ब्राह्मणस्य) उन में से मधुमती भूमि का साक्षात् किया है जिस ब्राह्मण ने उसको (स्थानिनो देवाः सत्वविशुद्धिमनुपश्यन्तः) ऐश्वर्ययुक्त स्थानधारी गृहस्थ विद्वान् पुरुष उसके अन्तःकरण की शुद्धि को देखते हुए (स्थानैरुपनिमन्त्रयन्ते) स्थानादि से निमन्त्रित करते हैं (भो इहाऽऽस्यतामिह रम्यतां) हे भगवन् हमारे यहां निवास करो, हमारे यहां रमण करो, यहां तक तो शास्त्रानुसार है, आगे दुष्ट पाखण्डियों का कथन है जो किसी ने इस भाष्य में मिला दिया है सो उसको भी मूलमात्र लिख दिया है, आगे यहां से जो शुद्धभाष्य है उसका अर्थ लिखते हैं और यही सङ्क्षिप्त है देखो !

(एवमभिधीयमानः सङ्गदोषान्भावयेत्) इस प्रकार प्रार्थना करते हुओं से सङ्ग दोषों को विचारे कि (घोरेषु संसाराङ्गारेषु पच्यमानेन मया) इस महान् भयङ्कर संसार अग्नि में जलते हुए

मैंने (जननमरणान्धकारे विपरिवर्तमानेन) जन्म-मरणरूप अन्धकार में परिवर्त होते हुए (कथंचिदासादितः क्लेशतिमिरविनाशी योगप्रदीपः) किसी पुण्य विशेष के प्रताप से क्लेशरूप अन्धकार का नाश करनेवाला योगप्रदीप प्राप्त किया (तस्य चैते तृष्णा-योनयो विषयवायवः प्रतिपक्षाः) और उसकी यह विषय तृष्णारूप वायु विरोधी कारण है। (स खल्वहं लब्धालोकः कथमनया विषय-मृगतृष्णया वञ्चितस्तस्यैव पुनः प्रदीप्तस्य संसाराग्नेरात्मानमिन्धनी कुर्यामिति) सो मैं ज्ञान को प्राप्त होकर किस प्रकार मृगतृष्णा के मिथ्याजल समान विरोधी विषयों को ग्रहण करके फिर उसी जलती हुई संसाररूपी अग्नि में अपने को इन्धन बनाऊँ। (स्वस्ति वः स्वप्नोपमेभ्यः कृपणजन प्रार्थनीयेभ्यो विषयेभ्यः) इस प्रकार विचार करके यह तुमको ही शुभ हो, सांसारिक विषय तो स्वप्न के समान शूद्र जनों से प्रार्थना करने योग्य हैं (इत्येवं निश्चितमतिः समाधिं भावयेत्) इस प्रकार निश्चित हुआ समाधि की ही भावना करे।

(सङ्गमकृत्वा स्मयमपि न कुर्यात्) सङ्ग न करके गर्व भी न करे कि (एवमहं देवानामपि प्रार्थनीय इति) मैं विद्वानों से पूजित होता हूँ। (स्मयादयं सुस्थितंमन्यतया मृत्युना केशेषु गृहीतमिवाऽऽ-त्मानं न भावयिष्यति) गर्व से यह सुख में स्थित मान कर उस मृत्युरूप से केश पकड़े हुए के समान अविद्या ग्रसित हुआ पर-मात्मस्वरूप का विचार न करेगा। (तथा चास्य छिद्रान्तरप्रेक्षी) वैसे ही इसके छिद्रान्तर को देखने वाला (नित्यं यत्न) नित्य यत्न करता है (उपचर्यः प्रमादो लब्धविवरः क्लेशानुत्तम्भाविष्यति) उपचार से प्रमादी हुआ छिद्र को पाकर क्लेशों को उत्तम बनायेगा (ततः पुनरनिष्टप्रसंङ्गः) उससे फिर अनिष्ट की प्राप्ति होगी (एवमस्य सङ्गस्मयावकुर्वतो भावितोऽर्थो दृढी भविष्यति) इस विचार से इस योगी को सङ्ग और गर्व न करते हुए विचारा हुआ

अर्थ दृढ़ हो जायगा (भावनीयश्चार्थोऽभिमुखी भविष्यतीति) और विचारणीय अर्थ के सम्मुख हो जायगा ॥ ५१ ॥

भो० वृत्ति

चत्वारो योगिनो भवन्ति । तत्राभ्यासवान्प्रवृत्तमात्रज्योतिः प्रथमः । ऋतंभरप्रज्ञो द्वितीयः । भूतेन्द्रियजयी तृतीयः । अतिक्रान्तभावनीयश्चतुर्थः । तत्र चतुर्थस्य समाधेः प्राप्तसप्तविधप्रान्तभूमिप्रज्ञो भवति । ऋतंभरप्रज्ञस्य द्वितीयां मधुमतीसंज्ञां भूमिकां साक्षात्कुर्वतः स्थानिनो देवा उपनिमन्त्रयितारो भवन्ति दिव्यस्त्रीवसनादिकं ढौकयन्ति तस्मिन्नुपनिमन्त्रणे नानेन सङ्गः कर्तव्यः, नापि स्मयः, सङ्गकरणे पुनर्विषयभोगे पतति, स्मयकरणे कृतकृत्यमात्मानं मन्यमानो न समाधावुत्सहते । अतः सङ्गस्मययोस्तेन वर्जनं कर्त्तव्यम् ॥ ५१ ॥

अस्यामेव फलभूतायां विवेकख्यातौ पूर्वोक्तसंयमव्यतिरिक्तमुपायान्तरमाह—

भो० वृ० पदार्थ

(चत्वारो योगिनो भवन्ति) चार प्रकार के अधिकारवाले योगी होते हैं । (तत्राभ्यासवान्प्रवृत्तमात्रज्योति प्रथमः) उनमें अभ्यासवान् प्रवृत्तमात्रज्योति पहला है (ऋतंभरप्रज्ञो द्वितीयः) ऋतंभरा प्रज्ञावाला दूसरा है । (भूतेन्द्रियजयी तृतीयः) भूत-इन्द्रियों को जय करने वाला तीसरा (अतिक्रान्तभावनीयश्चतुर्थः) जिसने सर्व विचारणीय को विचार लिया है वह चौथा है । (तत्र चतुर्थस्य समाधेः) उनमें चौथे की समाधि में (प्राप्तसप्तविधप्रान्तभूमिप्रज्ञो भवति) सात प्रकार की अन्तिम भूमिका वाली बुद्धि होती है । (ऋतंभरप्रज्ञस्य द्वितीयां मधुमतीसंज्ञां भूमिकां साक्षात्कुर्वतः स्थानिनो देवा उपनिमन्त्रयितारो भवन्ति) दूसरी ऋतंभराप्रज्ञा मधुमती नामवाली भूमिका साक्षात् करते हुए योगी को स्थानधारी ऐश्वर्यवान् गृहस्थी विद्वान् निमन्त्रण देते हैं (दिव्यस्त्रीवस-

नादिकं ढौकयन्ति) दिव्यस्त्री—वस्त्रादि नम्रतापूर्वक समर्पण करते हैं (तस्मिन्नुपनिमन्त्रणे नानेन सङ्ग कर्तव्यः नापि स्मयः) उसके उपनिमन्त्रण करने पर न इससे सङ्ग करना योग्य है, न गर्व करना, (सङ्गकरणे पुनर्विषयभोगे पतति) सङ्ग करने में फिर विषयभोगों में पड़ता है, (स्मयकरणे कृतकृत्यमात्मानं मन्यमानो न समाधावुत्सहते) गर्व करने में अपने को कृतकृत्य मानता हुआ समाधि में उत्साहवान् नहीं होता। (अतः सङ्गस्मययोस्तेन वर्जनं कर्त्तव्यम्) इस कारण सङ्ग और गर्व दोनों योगी से त्यागने योग्य हैं ॥ ५१ ॥

(अस्यामेव फलभूतायां विवेकख्यातौ पूर्वोक्तसंयमव्यतिरिक्तमुपायान्तरमाह) इस फलरूप विवेकख्याति में ऊपर कहे संयम से भिन्न दूसरा उपाय कहते हैं—

क्षणतत्क्रमयोः संयमाद्विवेकजं ज्ञानम् ॥ ५२ ॥

सू०—क्षण और उन के क्रम में संयम करने से योगी को विवेकज ज्ञान उत्पन्न होता है ॥ ५२ ॥

व्या० भाष्यम्

यथाऽपकर्षपर्यन्तं द्रव्यं परमाणुरेवं परमापकर्षपर्यन्तः कालः क्षणः यावता वा समयेन चलितः परमाणुः पूर्वदेशं जह्यादुत्तरदेशमुपसंपद्येत स कालः क्षणः। तत्प्रवाहाविच्छेदस्तु क्रमः। क्षण तत्क्रमयोर्नास्ति वस्तुसमाहार इति बुद्धिसमाहारो मुहूर्ताहोरात्रादयः। स खल्वयं कालो वस्तुशून्योऽपि बुद्धिनिर्माणः शब्दज्ञानानुपाती लौकिकानां व्युत्थितदर्शनानां वस्तुस्वरूप इवावभासते।

क्षणस्तु वस्तुपतितः क्रमावलम्बी। क्रमश्च क्षणानन्तर्यात्मा तं कालविदः काल इत्याचक्षते योगिनः। नच द्वौ क्षणौ सह भवतः। क्रमश्च न द्वयोः सहभूवोरसंभवात्। पूर्वस्मादुत्तरभाविनो यदानन्तर्यं क्षणस्य स क्रमः। तस्माद्वर्तमान एवैकः क्षणो न पूर्वोत्तर-

क्षणाः सन्तीति । तस्मान्नास्ति तत्समाहारः । ये तु भूतभाविनः क्षणास्ते परिणामान्विता व्याख्येयाः । तेनैकेन क्षणेन कृत्स्नो लोकः परिणाममनुभवति । तत्क्षणोपारूढाः खल्वमी सर्वे धर्माः । तयोः क्षणतत्क्रमयोः संयमात्तयोः साक्षात्करणम् । ततश्च विवेकजं ज्ञानं प्रादुर्भवति ॥ ५२ ॥

तस्य विषयविशेष उपक्षिप्यते—

व्या० भा० पदार्थ

(यथाऽपकर्षपर्यन्तं द्रव्यं परमाणुरेवं परमापकर्षपर्यन्तः कालः क्षणः) जैसे द्रव्य घटते २ अन्तिम दशा में परमाणुभाव को प्राप्त हो जाता है, वैसे ही काल घटते २ अन्त में क्षणगति को प्राप्त हो जाता है (यावता वा समयेन चलितः परमाणुः पूर्वदेशं जह्यादुत्तरदेशमुपसंपद्येत स कालः क्षणः) अथवा जब तक समय से चलता हुआ परमाणु पूर्व देश को त्यागकर उत्तर देश को प्राप्त होवे, वह काल का भाग क्षण है, अर्थात् अति न्यून से न्यून समय का नाम क्षण है । (तत्प्रवाहाविच्छेदस्तु क्रमः) उन क्षणों के प्रवाह का विच्छेद न होना क्रम कहलाता है । (क्षणतत्क्रमयोर्नास्ति वस्तुसमाहारः) क्षण और क्रम यह दोनों एक वस्तु नहीं है (इति बुद्धिसमाहारो मुहूर्ताहोरात्रादयः) इस कारण बुद्धि से समाहार किये दिन रात्रि आदि हैं । (स खल्वयं कालो वस्तुशून्योऽपि बुद्धिनिर्माणः) निश्चय वह काल, शून्य वस्तु होने पर भी बुद्धि से निर्माण किया हुआ है, (शब्दज्ञानानुपाती लौकिकानां व्युत्थितदर्शनानां वस्तुस्वरूप इवावभासते) शब्दज्ञान के पश्चात् ज्ञान को ग्रहण करने वाले व्युत्थान चित्त से देखनेवाले लौकिक पुरुषों को वस्तु स्वरूप के समान भासित होता है ।

(क्षणस्तु वस्तुपतितः क्रमावलम्बी) क्रमाश्रित होने से क्षण कोई वस्तु नहीं है । (क्रमश्च क्षणानन्तर्यात्मा । तं कालविदः काल

इत्याचक्षते योगिनः) एक क्षण के पश्चात् दूसरा क्षण यह रूप क्रम कहलाता है। उसको काल के जानने वाले योगी पुरुष काल कहते हैं। (नच द्वौ क्षणौ सह भवतः) और दो क्षण एक साथ नहीं होते। (क्रमश्च न द्वयोः सहभुवोः) और क्रम से भी दो साथ २ नहीं होते (असंभवात्) असंभव होने से। (पूर्वस्मादुत्तरभाविनो यदानन्तर्यं क्षणस्य स क्रमः) पूर्व वाले से उत्तर होनेवाले का जो अन्तर न होना वही क्षणों का क्रम है। (तस्माद्वर्तमान एवैकः क्षणः) इस कारण वर्तमान ही एक क्षण है (न पूर्वोत्तरक्षणाः सन्तीति) पूर्व उत्तर क्षण नहीं हैं। (तस्मान्नास्ति तत्समाहारः) इस कारण उनका एकतृत्व भी नहीं है। (ये तु भूतभाविनः क्षणास्ते परिणामान्विता व्याख्येयाः) जो अतीत-अनागत क्षण हैं, यह वर्तमान क्षण के ही परिणाम कहने योग्य हैं। (तेनैकेन क्षणेन कृत्स्नो लोकः परिणाममनुभवति) उस वर्तमान एक क्षण से ही सम्पूर्ण लोक परिणाम को प्राप्त होता है। (तत्क्षणोपारूढ़ाः खल्वमी सर्वे धर्माः) निश्चय यह सर्व धर्म उस क्षण के ही आश्रित हैं। (तयोः क्षणतत्क्रमयोः संयमात्तयोः साक्षात्करणम्) क्षण और क्षणों के क्रम इन दोनों में संयम करने से उन दोनों का साक्षात् होता है। (ततश्च विवेकजं ज्ञानं प्रादुर्भवति) उससे विवेकज ज्ञान उत्पन्न होता है॥ ५२॥

(तस्य विषयविशेष उपक्षिप्यते) उसका विषय विशेष आगे कहा जाता है—

भो० वृत्ति

क्षणः सर्वान्त्यः कालावयवो यस्य कलाः प्रभवितुं न शक्यन्ते। तथाविधानां कालक्षणानां यः क्रमः पौर्वापर्येण परिणामस्तत्र संयमात्प्रागुक्तं विवेकजं ज्ञानमुत्पद्यते। अयमर्थः—अयं कालक्षणोऽमुष्मात्कालक्षणादुत्तरोऽयमस्मात्पूर्वं इत्येवंविधे क्रमे कृतसंयमस्यात्यन्तसूक्ष्मेऽपि क्षणक्रमे

यदा भवति साक्षात्कारस्तदाऽन्यदपि सूक्ष्मं महदादि साक्षात्करोतीति विवेकज्ञानोत्पत्तिः ॥ ५२ ॥

अस्यैव संयमस्य विषयविवेकोपक्षेपणायाऽऽह—

भो० वृ० पदार्थ

(क्षणः सर्वान्त्यः कालावयवः) काल का सबसे अन्तिम भाग क्षण कहलाता है (यस्य कलाः प्रभवितुं न शक्यन्ते) जिस के फिर भाग नहीं हो सक्ते । (तथाविधानां कालक्षणानां यः क्रमः पौर्वापर्येण परिणामः) उस प्रकार के काल क्षणों का जो क्रम अर्थात् पहले का पिछले से परिणाम है (तत्र संयमात्प्रागुक्तं विवेकजं ज्ञानमुत्पद्यते) उसमें संयम करने से पूर्व कहा विवेकज ज्ञान उत्पन्न होता है । (अयमर्थः) यह अर्थ है—(अयं कालक्षणोऽमुष्मात्कालक्षणादुत्तरोऽयमस्मात्पूर्व इत्येवंविधे क्रमे) उस काल क्षण से यह काल क्षण उत्तरवाला है, यह इससे पूर्ववाला है इस प्रकार के क्रम में (कृतसंयमस्यात्यन्तसूक्ष्मेऽपि क्षणक्रमे यदा भवति साक्षात्कारः) किया है संयम जिस योगी ने उसको अत्यन्त सूक्ष्म क्षण क्रम में भी जब साक्षात्कार होता है (तदाऽन्यदपि सूक्ष्मं महदादि साक्षात्करोति) तब अन्य सूक्ष्म और महान् वस्तु का भी साक्षात् कर लेता है (इति विवेकज्ञानोत्पत्तिः) यह विवेक ज्ञान की उत्पत्ति है ॥ ५२ ॥

(अस्यैव संयमस्य विषयविवेकोपक्षेपणायाऽऽह) इसी संयम के विषय विवेक को आगे वर्णन करते हैं—

जातिलक्षणदेशैरन्यतानवच्छेदात्तुल्ययोस्ततः प्रतिपत्तिः ॥ ५३ ॥

सू०—जाति-लक्षण और देश द्वारा समान पदार्थों में भेद का निश्चय न होने से भी उस विवेकज ज्ञान से निश्चय होता है ॥५३॥

व्या० भाष्यम्

तुल्ययोर्देशलक्षणसारूप्ये जातिभेदोऽन्यताया हेतुः, गौरियं वडवेयमिति। तुल्यदेशजातियत्वे लक्षणमन्यत्वकरं कालाक्षी गौः स्वस्तिमती गौरिति। द्वयोरामलकयोर्जातिलक्षणसारूप्याद्देशभेदोऽन्यत्वकर इदं पूर्वमिदमुत्तरमिति। यदा तु पूर्वमामलकमन्यव्यग्रस्य ज्ञातुरुत्तरदेश उपावर्त्यते तदा तुल्यदेशत्वे पूर्वमेतदुत्तरमेतदितिप्रविभागानुपपत्तिः। असंदिग्धेन च तत्वज्ञानेन भवितव्यमित्यत इदमुक्तं ततः प्रतिपत्तिर्विवेकज्ञानादिति।

कथं, पूर्वामलकसहक्षणो देश उत्तरामलकसहक्षणाद्देशाद्भिन्नः। ते चाऽऽमलके स्वदेशक्षणानुभवभिन्ने। अन्यदेशक्षणानुभवस्तु तयोरन्यत्वे हेतुरिति। एतेन दृष्टान्तेन परमाणोस्तुल्यजातिलक्षणदेशस्य पूर्वपरमाणुदेशसहक्षणसाक्षात्करणादुत्तरस्य परमाणोस्तद्देशानुपपत्तावुत्तरस्य तद्देशानुभवो भिन्नः सहक्षणभेदात्तयोरीश्वरस्य योगिनोऽन्यत्वप्रत्ययो भवतीति।

अपरे तु वर्णयन्ति—येऽन्त्या विशेषास्तेऽन्यताप्रत्ययं कुर्वन्तीति। तत्रापि देशलक्षणभेदो मूर्तिव्यवधिजातिभेदश्चान्यत्वे हेतुः। क्षणभेदस्तु योगिबुद्धिगम्य एवेति। अत उक्तं मूर्तिव्यवधिजातिभेदाभावान्नास्ति मूलपृथक्त्वमिति वार्षगण्यः॥ ५३॥

व्या० भा० पदार्थ

(तुल्ययोर्देशलक्षणसारूप्ये) देश लक्षण समान होने पर दो समान पदार्थों में (जातिभेदोऽन्यताया हेतुः) जातिभेद उनके भेदज्ञान का कारण होता है, (गौरियं वडवेयमिति) जैसे यह गौ है, यह घोड़ी है। (तुल्यदेशजातियत्वे लक्षणमन्यत्वकरं) और जब देश और जाति समान हों, तब लक्षणभेद का कारण होता है (कालाक्षी गौः) जैसे गौ किस लक्षणवाली है (स्वस्तिमती गौरिति) जिसके गले में खाल लटकती है वह गौ है, इस

प्रकार लक्षणभिन्नता का कारण होता है । (द्वयोरामलकयोर्जातिलक्षणसारूप्याद्देशभेदोऽन्यत्वकरः) दो आमलों के जातिलक्षण सारूप्य होने पर देशभेद भिन्नता कारक है (इदं पूर्वमिदमुत्तरमिति) वह पूर्ववाला है, यह उत्तर वाला है । (यदा तु पूर्वमामलकमन्यव्यग्रस्य ज्ञातुरुत्तरदेश उपावर्त्यते) जब ज्ञाता का चित्त अन्य अर्थ में लगा होने पर पूर्व आमला उत्तर देश में रखदिया जावे (तदा तुल्यदेशत्वे पूर्वमेतदुत्तरमेतदिति प्रविभागानुपपत्तिः) तब समान देश होने पर यह पूर्ववाला है यह उत्तरवाला, यह विभाग निश्चय नहीं हो सक्ता । (असंदिग्धेन च तत्वज्ञानेन भवितव्यमित्यत इदमुक्तं) संशय रहित यथार्थ ज्ञान द्वारा निर्णय होना चाहिये, इस कारण यह कहा गया है कि (ततः प्रतिपत्तिर्विवेकजज्ञानादिति) उसका विवेकज ज्ञान से निश्चय होता है ।

(कथं) किस प्रकार ? (पूर्वामलकसहक्षणो देश उत्तरामलकसहक्षणाद्देशाद्भिन्नः) उत्तर आमले के क्षण सहित देश से पूर्व आमले के क्षण सहित देश भिन्न है । (ते चाऽऽमलके स्वदेशक्षणानुभवभिन्ने अन्यदेशक्षणानुभवस्तु) और जब वह आमले अपने देश क्षण अनुभव में भिन्न हैं तब दूसरे के देश क्षण का अनुभव (तयोरन्यत्वे हेतुरिति) उन दोनों के भेद का कारण है । (एतेन दृष्टान्तेन परमाणोस्तुल्यजातिलक्षणदेशस्य) इस दृष्टान्त से समान जाति–लक्षण–देश के परमाणु (पूर्वपरमाणुदेशसहक्षणसाक्षात्करणात्) पूर्व आमले के परमाणु देश क्षणों सहित साक्षात् करने से (उत्तरस्य परमाणोस्तद्देशानुपपत्तावुत्तरस्य तद्देशानुभवो भिन्नः सहक्षणभेदात्) उस उत्तरवाले के परमाणु वह देश निश्चय न होने पर उत्तरवाले के देश का भिन्न अनुभव क्षणों सहित भेद से होता है (तयोरीश्वरस्य योगिनोऽन्यत्वप्रत्ययो भवतीति) उन दोनों के ज्ञान में समर्थ योगी को भेद का ज्ञान होता है ।

(अपरे तु वर्णयन्ति) कोई दूसरे कहते हैं—(येऽन्त्या विशेषास्तेऽन्यताप्रत्ययं कुर्वन्तीति) जो अन्त अवस्था वाले विशेष द्रव्य हैं, उनका ज्ञान वह पुरुष भिन्नरूप से कहते हैं कि (तत्रापि देशलक्षणभेदो मूर्तिव्यवधिजातिभेदश्चान्यत्वे हेतुः) क्या उनमें भी देश-लक्षण-भेद मूर्ति व्यवधि जाति भेद भिन्नता के कारण हैं। इस प्रश्न द्वारा कहते हैं (क्षणभेदस्तु योगिबुद्धिगम्य एवेति) क्षण भेद तो योगी की बुद्धिगम्य ही है। (अत उक्तम्) इस कारण कहा गया कि (मूर्तिव्यवधिजातिभेदाभावान्नास्ति मूलपृथक्त्वमिति वार्षगण्यः) मूर्ति व्यवधि जाति भेद का अभाव होने से मूल प्रकृति में भिन्नत्व कभी भी नहीं हो सक्ता ॥ ५३ ॥

भो० वृत्ति

पदार्थानां भेदहेतवो जातिलक्षणदेशा भवन्ति। क्वचिद्भेदहेतुर्जातिः, यथा गौरियं महिषीऽयमिति। जात्या तुल्ययोर्लक्षणं भेदहेतुः, इयं कर्बुरेयमरुणेति। जात्या लक्षणेन चाभिन्नयोर्भेदहेतुर्देशो दृष्टः, यथा तुल्य-परिमाणयोरामलकयोर्भिन्न देशस्थितयोः। यत्र पुनर्भेदोऽवधारयितुं न शक्यते यथैकदेशस्थितयोः शुक्लयोः पार्थिवयोः परमाण्वोस्तथाविधे विषये भेदाय कृतसंयमस्य भेदेन ज्ञानमुत्पद्यते तदा तदभ्यासात्सूक्ष्माण्यपि तत्त्वानि भेदेन प्रतिपद्यते। एतदुक्तं भवति—यत्र केनचिदुपायेन भेदो नाव-धारयितुं शक्यस्तत्र संयमाद्भवत्येव भेदप्रतिपत्तिः ॥ ५३ ॥

सूक्ष्माणां तत्त्वानामुक्तस्य विवेकजन्यज्ञानस्य संज्ञाविषयस्वाभाव्यं व्याख्यातुमाह—

भो० वृ० पदार्थ

(पदार्थानां भेदहेतवो जातिलक्षणदेशा भवन्ति) पदार्थों के भेद ज्ञान का कारण जाति-लक्षण-देश होते हैं। (क्वचिद्भेदहेतुर्जातिः) कहीं भेद का कारण जाति होती है, (यथा गौरियं महिषीऽयमिति) जैसे यह

गौ है यह भैंस है। (जात्या तुल्ययोर्लक्षणं भेदहेतुः) और जाति के समान होने पर लक्षण भेद का कारण होता है, (इयं कर्बुरेयमरुणेति) यह गौ चितकबरी है, यह लाल है। (जात्या लक्षणेन चाभिन्नयोर्भेद-हेतुर्देशो दृष्ट) और जाति लक्षण से दोनों एक से होते हुए भेद का कारण देश देखा जाता है, (यथा) जैसे (तुल्यपरिमाणयोरामलकयो-र्भिन्नदेशस्थितयोः) समान परिमाणवाले दो आमले दो भिन्न देशों में स्थित हुओं का। (यत्र पुनर्भेदोऽवधारयितुं न शक्यते) फिर जहां भेद धारण करने को समर्थ नहीं होते (यथैकदेशस्थितयोः शुक्लयोः पार्थि-वयोः परमाण्वोस्तथाविधे विषये भेदाय कृतसंयमस्य भेदेन ज्ञानमुत्पद्यते) जैसे एक देश में स्थित पृथ्वी के दो शुक्ल परमाणु, वैसे विषय में भेद के लिये किया है संयम जिसने, उसको भेद के साथ ज्ञान उत्पन्न होता है, (तदा तदभ्यासात्सूक्ष्माण्यपि तत्त्वानि भेदेन प्रतिपद्यन्ते) तब उसके अभ्यास से सूक्ष्म तत्त्व भी भेद के साथ जाने जाते हैं। (एतदुक्तं भवति) यह कहा है कि—(यत्र केनचिदुपायेन भेदो नावधारयितुं शक्यस्तत्र संयमाद्भवत्येव भेदप्रतिपत्तिः) जहां किसी भी उपाय से भेद को नहीं धारण कर सकें, वहां संयम द्वारा भेद का निश्चय होता है ॥ ५३ ॥

(सूक्ष्माणां तत्त्वानामुक्तस्य विवेकजन्यज्ञानस्य संज्ञाविषयस्वाभाव्यं व्याख्यातुमाह) ऊपर कहे सूक्ष्म तत्त्वों के विवेकज्ञान का स्वभाव, संज्ञा, और विषय कहने को अगला सूत्र कहते हैं—

तारकं सर्वविषयं सर्वथाविषयमक्रमं चेति विवेकजं ज्ञानम् ॥ ५४ ॥

सू०—विना उपदेश के अपनी प्रतिभा से उत्पन्न हुआ ज्ञान "तारक" कहलाता है। वह सर्व पदार्थों का विषय करने वाला, सर्व प्रकार से विषय करनेवाला, एक साथ विषय करनेवाला हो, इस को विवेकज ज्ञान कहते हैं ॥ ५४ ॥

व्या० भाष्यम्

तारकमिति स्वप्रतिभोत्थमनौपदेशिकमित्यर्थः। सर्वविषयं नास्य किंचिदविषयीभूतमित्यर्थः। सर्वथाविषयमतीतानागतप्रत्युत्पन्नं सर्वं पर्यायैः सर्वथा जानातीत्यर्थः। अक्रममित्येकक्षणोपारूढं सर्वं सर्वथा गृह्णातीत्यर्थः। एतद्विवेकजं ज्ञानं परिपूर्णम्। अस्यैवांशो योगप्रदीपो मधुमतीं भूमिमुपादाय यावदस्य परिसमाप्तिरिति ॥ ५४ ॥

प्राप्तविवेकजज्ञानस्याप्राप्तविवेकजज्ञानस्य वा—

व्या० भा० पदार्थ

(तारकमिति स्वप्रतिभोत्थमनौपदेशिकमित्यर्थः) विना उपदेश के अपनी प्रतिभा से उत्पन्न ज्ञान को तारक कहते हैं (सर्वविषयं नास्य किंचिदविषयीभूतमित्यर्थः) सर्व का विषय करने वाला होने से, कोई पदार्थ भी इस का अविषयरूप नहीं होता, यह अर्थ है। (सर्वथाविषयमतीतानागतप्रत्युत्पन्नं सर्वं पर्यायै सर्वथा जानातीत्यर्थः) सर्वथा विषय का यह अभिप्राय है कि अतीत-अनागत के प्रति उत्पन्न हुआ ज्ञान सर्व धर्मों सहित सर्वथा जानता है। (अक्रममित्येकक्षणोपारूढं सर्व सर्वथा गृह्णातीत्यर्थः) एक क्षण में सर्व को सर्व प्रकार से ग्रहण करता है। यह अक्रम का अर्थ है। (एतद्विवेकजं ज्ञानं परिपूर्णम) यह विवेकज ज्ञान सम्पूर्ण है। (अस्यैवांशो योगप्रदीपो मधुमतीं भूमिमुपादाय यावदस्य परिसमाप्तिरिति) इस के ही अंश योगप्रदीप मधुमती भूमि को ग्रहण करके जब तक इस की समाप्ति हो योगी अपने ज्ञान की वृद्धि करता है अर्थात् यह ज्ञान की अन्तिम गति है ॥ ५४ ॥

(प्राप्तविवेकजज्ञानस्याप्राप्तविवेकजज्ञानस्य वा) योगी को विवेकज ज्ञान प्राप्त हो अथवा न हो, बुद्धि और पुरुष इन दोनों की समान शुद्धि कैवल्य का कारण है—

भो० वृत्ति

उक्तसंयमबलादन्त्यायां भूमिकायामुत्पन्नं ज्ञानं तारयत्यगाधात्संसार-सागराद्योगिनमित्यान्वर्थिक्या संज्ञया तारकमित्युच्यते । अस्य विषयमाह— **सर्वविषयमिति** । सर्वाणि तत्त्वानि महदादीनि विषयो यस्येति सर्ववि-षयम् । स्वभावश्चास्य सर्वथाविषयत्वम् । सर्वाभिरवस्थाभिः स्थूलसूक्ष्मादि-भेदेन तैस्तैः परिणामैः सर्वेण प्रकारेणावस्थितानि तत्त्वानि विषयो यस्येति सर्वथाविषयम् । स्वभावान्तरमाह—**अक्रमं चेति** । निःशेषनानावस्था-परिणतद्व्यात्मकभावग्रहणे नास्य क्रमो विद्यत इति अक्रमम् । सर्वं करत-लामलकवद्युगपत्पश्यतीत्यर्थः ॥ ५४ ॥

अस्माच्च विवेकजात्तारकाख्याज्ज्ञानात्किं भवतीत्याह—

भो० वृ० पदार्थ

(उक्तसंयमबलादन्त्यायां भूमिकायामुत्पन्नं ज्ञानं) ऊपर कहे संयम के बल से अन्तवाली भूमिका में उत्पन्न हुआ ज्ञान, (तारयत्यगाधात्संसार-सागराद्योगिनमित्यान्वर्थिक्या संज्ञया तारकमित्युच्यते) अगाध संसाररूप सागर से योगी को तारता है, इस अर्थ के अनुसार इस ज्ञान का नाम "तारक" कहा जाता है। (अस्य विषयमाह) इस का विषय कहा जाता है—(**सर्वविषयमिति** । सर्वाणि तत्त्वानि महदादीनि विषयो यस्येति सर्वविषयम्) सर्व विषय का अर्थ यह है कि महदादि सर्व तत्त्व विषय हैं जिस के वह सर्वविषयक ज्ञान कहलाता है । (स्वभावश्चास्य सर्वथाविषय-त्वम्) स्वभाव से ही इस का सर्व प्रकार से विषय करना । (सर्वाभिरव-स्थाभिः स्थूलसूक्ष्मादिभेदेन तैस्तैः परिणामैः सर्वेण प्रकारेणावस्थितानि तत्त्वानि विषयो यस्येति सर्वथाविषयम्) सर्व अवस्थाओं में स्थूल सूक्ष्मादि भेद से उस २ परिणाम के सहित सर्व प्रकार से अवस्थित हुए तत्त्व विषय हैं जिस के वह सर्वथाविषय कहलाता है। (स्वभावान्तरमाह) अब दूसरे भाव को कहते हैं—(**अक्रमं चेति**) अक्रम का अर्थ यह है । (निः

शेषनानावस्थापरिणतद्विस्यात्मकभावग्रहणे नास्य क्रमो विद्यत इति अक्रमम्) नाना अवस्था परिणत सम्पूर्ण द्वि त्रिरूप भाव ग्रहण करने में क्रम का न होना यह अक्रम का अर्थ है। (सर्वं करतलामलकवद्युगपत्पश्यतीत्यर्थः) सर्व पदार्थों को हथेलीपर रक्खे हुए आमले के समान एक साथ देखता है, यह अर्थ है ॥ ५४ ॥

(अस्माच्च विवेकजात्तारकाख्याज्ज्ञानात्किं भवतीत्याह) इस विवेक से उत्पन्न हुए तारक नामवाले ज्ञान से क्या फल होता है, यह अगले सूत्र से कहते हैं—

सत्त्वपुरुषयोः शुद्धिसाम्ये कैवल्यमिति ॥५५॥

सू०—बुद्धि और पुरुष इन दोनों की समान शुद्धि होने पर कैवल्य गति होती है ॥ ५५ ॥

व्या० भाष्यम्

यदा निर्धूतरजस्तमोमलं बुद्धिसत्त्वं पुरुषस्यान्यताप्रतीतिमात्राधिकारं दग्धक्लेशबीजं भवति तदा पुरुषस्य शुद्धिसारूप्यमिवाऽऽपन्नं भवति, तदा पुरुषस्योपचरितभोगाभावः शुद्धिः। एतस्यामवस्थायां कैवल्यं भवतीश्वरस्यानीश्वरस्य वा विवेकजज्ञानभागिन इतरस्य वा। नहि दग्धक्लेशबीजस्य ज्ञाने पुनरपेक्षा काचिदस्ति। सत्वशुद्धिद्वारेणैतत्समाधिजमैश्वर्यं ज्ञानं चोपक्रान्तम्। परमार्थतस्तु ज्ञानाददर्शनं निवर्तते तस्मिन्निवृत्ते न सन्त्युत्तरे क्लेशाः। क्लेशाभावात्कर्मविपाकाभावः। चरिताधिकाराश्चैतस्यामवस्थायां गुणा न पुरुषस्य पुनर्दृश्यत्वेनोपतिष्ठन्ते। तत्पुरुषस्य कैवल्यं, तदा पुरुषः स्वरूपमात्रज्योतिरमलः केवली भवति ॥ ५५ ॥

इति श्री पातञ्जले सांख्यप्रवचने योगशास्त्रे श्रीमद्व्यासभाष्ये
तृतीयः विभूतिपादः ॥ ३ ॥

व्या० भा० पदार्थ

(यदा निर्धूतरजस्तमोमलं बुद्धिसत्त्वं पुरुषस्यान्यताप्रतीतिमात्रधिकारं दग्धक्लेशबीजं भवति) जब सात्विक बुद्धि रज और तममल से रहित पुरुष की भिन्नता प्रतीतिमात्र अधिकारा–दग्धक्लेश बीजवाली होती है (तदा पुरुषस्य शुद्धिसारूप्यमिवाऽऽपन्नं भवति) तब पुरुष शुद्धि की सारूप्यता को प्राप्त होती है, (तदा पुरुषस्योपचरितभोगाभावः शुद्धिः) तब उपचार से जो पुरुष भोग करता था उन का अभाव पुरुष की शुद्धि है, अर्थात् सांसारिक वासना रहित होना पुरुष की शुद्धि है । (एतस्यामवस्थायां कैवल्यं भवति) इस अवस्था में कैवल्य गति होती है (ईश्वरस्यानीश्वरस्य वा विवेकजज्ञानभागिन इतरस्य वा । नहि दग्धक्लेशबीजस्य ज्ञाने पुनरपेक्षा काचिदस्ति) दग्ध हो गये हैं क्लेशबीज जिस के ऐसे विवेकज ज्ञान भागी योगी के ज्ञान में फिर किसी विभूति आदि की आवश्यक्ता नहीं रहती अर्थात् ऊपर कही किसी विभूति में समर्थ हो वा न हो । (सत्त्वशुद्धिद्वारेणैतत्समाधिजमैश्वर्यं ज्ञानं चोपक्रान्तम्) बुद्धि की शुद्धि द्वारा यह समाधि से उत्पन्न हुआ ऐश्वर्य और ज्ञान मुख्य है, विभूतियें कैवल्य के लिये परम्परा से सहकारी हैं (परमार्थतस्तु ज्ञानाददर्शनं निवर्तते) वास्तव में तो प्रसंख्यान ज्ञान से संसार का दर्शन निवर्त हो जाता है, अर्थात् कोई सांसारिक अभिलाषा उस को नहीं रहती (तस्मिन्निवृत्ते न सन्त्युत्तरे क्लेशाः) उस के निवृत्त होने पर आगे होनेवाले क्लेश भी नहीं रहते । (क्लेशाभावात्कर्मविपाकाभावः) क्लेशों के अभाव होने से कर्मफल का अभाव हो जाता है । (चरिताधिकाराश्चैतस्यामवस्थायां गुणा न पुरुषस्य पुनर्दृश्यत्वेनोपतिष्ठन्ते) इस अवस्था में समाप्त अधिकार हुए तीनों गुण फिर पुरुष के ज्ञान में दृश्यरूप से नहीं रहते । (तत्पुरुषस्य कैवल्यं) वह पुरुष की कैवल्यगति है, (तदा पुरुषः स्वरूपमात्रज्योतिरमलः

केवली भवति) तब पुरुष स्वरूपमात्र ज्योतिवाला मल रहित केवली होता है ॥ ५५ ॥

भावार्थ

इस सूत्र में महर्षि व्यास ने यह शुद्धरूप से बतला दिया कि पूर्वोक्त विभूति कोई योगी को सिद्ध हो वा न हो वा और कोई ज्ञान भी चाहे न हो, परन्तु जब क्लेश दग्धबीज हो जावें और विवेकख्याति उत्पन्न हो जावे जिस में परमात्मा—जीवात्मा—प्रकृति बुद्धि आदि का भिन्न २ साक्षात् होता है तो पुरुष की कैवल्यगति हो जाती है। इस कारण विवेकख्याति के लिये ही योगी को परम पुरुषार्थ कर्तव्य है ॥ ५५ ॥

भो० वृत्ति

सत्त्वपुरुषावुक्तलक्षणौ तयोः शुद्धिसाम्ये कैवल्यं सत्त्वस्य सर्वकर्तृत्वाभिमाननिवृत्त्या स्वकारणेऽनुप्रवेशः शुद्धिः, पुरुषस्य शुद्धिरुपचरितभोगाभाव इति द्वयोः समानायां शुद्धौ पुरुषस्य कैवल्यमुत्पद्यते मोक्षोभवतीत्यर्थः।

तदेवमन्तरङ्गं योगाङ्गत्रयमभिधाय तस्य च संयमसंज्ञां कृत्वा संयमस्य च विषयप्रदर्शनार्थं परिणामत्रयमुपपाद्य संयमबलोत्पद्यमानाः पूर्वान्तपरान्तमध्यभवाः सिद्धीरुपदर्श्य समाध्यभ्यासोपपत्तये बाह्या भुवनज्ञानादिरूपा आभ्यन्तराश्च कायव्यूहज्ञानादिरूपाः प्रदर्श्य समाध्युपयोगायेन्द्रियप्राणजयादिपूर्विकाः परमपुरुषार्थसिद्धये यथाक्रममवस्थासहितभूतजयेन्द्रियजयसत्त्वजयोद्भवाश्च व्याख्याय विवेकज्ञानोत्पत्तये तत्तामुपायानुपन्यस्य तारकस्य सर्वसमाध्यवस्थापर्यन्तभवस्य स्वरूपमभिधाय तत्समापत्तेः कृताधिकारस्य चित्तसत्त्वस्य स्वकारणेऽनुप्रवेशात्कैवल्यमुत्पद्यत इत्यभिहितमिति निर्णीतो विभूतिपादस्तृतीयः ॥ ५५ ॥

इति श्री भोजदेवविरचितायांपातञ्जलयोगशास्त्रसूत्रवृत्तौ
तृतीयः विभूतिपादः ॥ ३ ॥

भो० वृ० पदार्थ

(सत्त्वपुरुषावुक्तलक्षणौ तयोः शुद्धिसाम्ये कैवल्यं) उपरोक्त लक्षण वाले बुद्धि और पुरुष दोनों की समान शुद्धि कैवल्य है (सत्त्वस्य सर्वकर्तृत्वाभिमाननिवृत्त्या स्वकारणेऽनुप्रवेशः शुद्धिः) सर्व कर्तापन के अभिमान निवृत्ति द्वारा अपने कारण में प्रवेश होना बुद्धि की शुद्धि है, (पुरुषस्य शुद्धिरुपचरितभोगाभावः) उपचार से जो भोग होते हैं उनका अभाव पुरुष की शुद्धि है (इति द्वयोः समानायां शुद्धौ पुरुषस्य कैवल्यमुत्पद्यते मोक्षो भवतीत्यर्थः) इस प्रकार दोनों की समान शुद्धि होनेपर पुरुष को कैवल्य की प्राप्ति होती है, अर्थात् मोक्ष होती है यह अर्थ है ।

(तदेवमन्तरङ्गं योगाङ्गत्रयमभिधाय) इस प्रकार योग के तीन अन्तरङ्ग साधनों को कह कर (तस्य च संयमसंज्ञां कृत्वा) उसका संयम नाम बतला कर (संयमस्य च विषयप्रदर्शनार्थं) संयम के विषय दिखलाने के लिये (परिणामत्रयमुपपाद्य) तीनों परिणामों को प्रतिपादन करके (संयमबलोत्पद्यमानाः पूर्वान्तपरान्तमध्यभवाः सिद्धीरुपदर्श्य) संयम बल उत्पन्न हुए को पूर्व, अन्त और मध्य में होनेवाली सिद्धि दिखलाकर (समाध्यभ्यासोपपत्तये) समाधि अभ्यास प्राप्ति के लिये (बाह्या भुवनज्ञानादिरूपा आभ्यन्तराश्च कायव्यूहज्ञानादिरूपाः प्रदर्श्य) बाह्य भुवनज्ञानादिरूप, और आभ्यन्तर कायव्यूहज्ञानादिरूप दिखलाकर (समाध्युपयोगार्येन्द्रियप्राणजयादिपूर्विकाः परमपुरुषार्थसिद्धये) समाधि के उपयोगी इन्द्रिय प्राण जयादि पूर्वक कथन करके, परम पुरुषार्थ की सिद्धि के लिये (यथाक्रममवस्थासहितभूतजयेन्द्रियजयसत्त्वजयोद्भवाश्च व्याख्याय विवेकज्ञानोत्पत्तये) यथाक्रम विवेकज्ञान की उत्पत्ति के लिये अवस्था सहित भूतजय–इन्द्रियजय–सत्त्वजय से उत्पन्न हुए फलों को कह कर, (तासामुपायानुपन्यस्य तारकस्य सर्वसमाध्यवस्थापर्यन्तभवस्य स्वरूपमभिधाय) उन उपायों का सम्बन्ध दिखलाकर तारकज्ञान

जो सर्व समाधि की अन्तावस्था में होनेवाला उसके स्वरूप को कहकर (तत्समापत्तेः कृताधिकारस्य चित्तसत्त्वस्य स्वकारणेऽनुप्रवेशात्कैवल्य-मुच्यते) उसकी समापत्ति होने पर चित्त का अधिकार प्राप्त किया है जिसने उसका चित्त अपने कारण में प्रवेश होने से कैवल्य होता है, (इत्यभिहितमिति निर्णीतो विभूतिपादस्तृतीयः) यह सब इस तृतीय विभूतिपाद में निर्णय सहित प्रकाशित किया है ॥ ५५ ॥

समाप्तोऽयं तृतीयः विभूतिपादः ॥ ३ ॥

॥ ॐ ॥

पातंजलयोगदर्शनम्

अथ चतुर्थः कैवल्यपादः प्रारभ्यते

जन्मौषधिमन्त्रतपः समाधिजाः सिद्धयः ॥ १ ॥

भू०—जन्म, औषधि, मन्त्र, तप व समाधि इन पांच प्रकारों से चित्त की सिद्धि होती है। इनमें "जन्मसिद्धि" इसको कहते हैं कि पूर्व जन्म के शरीर द्वारा कर्म–ज्ञानाभ्यास के कारण उसका फलरूप परिणाम जो इस जन्म में होता है, जैसा कि उपनिषद् में कथन किया है—

योनिमन्ये प्रपद्यन्ते शरीरत्वाय देहिनः।
स्थाणुमन्येऽनुसंयन्ति यथाकर्म यथाश्रुतम् ॥ कठ० ।५।७।

अर्थ—कोई प्राणी कर्म ज्ञानानुसार जङ्गम योनि को और कोई स्थावर योनि को प्राप्त होते हैं अर्थात् कर्म–ज्ञान के अनुसार ही जन्म परिणाम होता है ॥ १ ॥

इस प्रकार अन्य उपनिषद् भी कथन करते हैं—

तद्यथा पेशस्कारी पेशसो मात्रामुपादायान्यन्नवतरं कल्याणतरं रूपं तनुत एवमेवायमात्मेदं शरीरं निहत्याऽविद्यां गमयित्वान्यन्नवतरं कल्याणतरं रूपं कुरुते पित्र्यं वा गान्धर्वं

वा दैवं वा प्राजापत्यं वा ब्राह्मं वाऽन्येषां वा भूतानाम्। बृहदारण्यक अ० ४। ब्रा० ४। मं० ४।

अर्थ—जैसे सुवर्णकार सुवर्ण मात्राओं को गला कर अन्य नवीन उत्तम आभूषण बना लेता है, इस दृष्टान्त के अनुसार यह जीवात्मा अविद्या को दूर करके इस शरीर को त्याग अन्य नया कल्याणकारी स्वरूप बनाता, अर्थात् शरीर धारण करता है, कर्मकाण्डी का शरीर वा गान्धर्व शरीर वा विद्वान् शरीर वा ब्रह्मज्ञानी का शरीर वा अन्य किसी योनि का शरीर धारण करता है॥ २॥

इस श्रुति में भी पूर्व जन्म के ज्ञान–कर्म द्वारा ही सामान्य मनुष्यगति से परिणाम होकर देवयोनि वा ब्रह्मज्ञानी की योनि आदि में परिणाम होना दिखलाया है, ऐसा ही भोज वृत्ति में भी कहा है कि "यथा वा कपिलमहर्षिप्रभृतीनां जन्मसमनन्तर-मेवोपजायमाना ज्ञानादयः सांसिद्धिका गुणाः"=

अर्थ–महर्षि कपिल को उत्पन्न होते ही ज्ञानादि सांसिद्धिक गुण प्राप्त हुए, एवं महर्षि गोतम भी अपने न्यायशास्त्र में कहते हैं—

पूर्वकृतफलानुबन्धात्तदुत्पत्तिः। अ० ३। आ० २। सू० ६४।

अर्थ—पूर्व जन्मकृत कर्म और योगाभ्यास के फलानुबन्ध से समाधि की सिद्धि होती है। इस ही प्रकार सर्वत्र शास्त्रों में प्रति-पादन किया है कि पूर्व जन्म में किये हुए कर्माभ्यास उनके फला-नुबन्ध से वर्तमान जन्म में जो विचित्र परिणाम होता है यह ही जन्मपरिणाम है और जैसे कोई पुरुष मनुष्ययोनि में दुराचारादि विकर्म करते और वेदविरुद्ध चलते हैं, वह मृत्यु के पश्चात् तत्काल ही पक्षी आदि योनियों में जन्म लेकर आकाश गमनादि क्रिया करने लगते हैं, यह भी "जन्मपरिणाम" का रूप है।

"औषधसिद्धि" यह है कि उत्तम सात्त्विक आहार औषधि आदि के सेवन द्वारा चित्त में सात्त्विक परिणाम करना । इसी को "औषधपरिणाम" कहते हैं ।

"मन्त्रसिद्धि" वेदादि मन्त्रों के जप और अर्थ विचार द्वारा जो चित्त में परिणाम होता है वही मन्त्रसिद्धि है ।

"तपसिद्धि" ब्रह्मचर्य्यादि व्रत और शीतोष्णादि द्वन्द्व सहन द्वारा जो कायेन्द्रिय की सिद्धि होती है वह तपसिद्धि कहलाती है जैसा कि "कायेन्द्रियसिद्धिरशुद्धिक्षयात्तपसः" द्वितीय साधनपाद के सूत्र ४३ में कह आये हैं कि कायासिद्धि अणिमादि और दूराच्छ्रवण दर्शनादि इन्द्रियसिद्धि तप के होने पर होती हैं, इसी को "तपपरिणाम" कहते हैं ।

"समाधिसिद्धि" समाधि से उत्पन्न हुई सिद्धि पूर्व तृतीय विभूतिपाद में कही गई हैं, इस प्रकार इन पांच कारणों से चित्त की सिद्धि होती हैं ॥ १ ॥

व्या० भाष्यम्

देहान्तरिता जन्मना सिद्धिः । ओषधिभिरसुरभवनेषु रसायनेनेत्येवमादिः । मन्त्रैराकाशगमनाणिमादिलाभः । तपसा संकल्पसिद्धिः, कामरूपी यत्र तत्र कामग इत्येवमादि । समाधिजाः सिद्धयो व्याख्याताः ॥ १ ॥

तत्र कायेन्द्रियाणामन्यजातिपरिणतानाम्—

व्या० भा० पदार्थ

(देहान्तरिता जन्मना सिद्धिः) दूसरे देह की प्राप्ति जन्म सिद्धि है, अर्थात् पूर्व जन्म के देह से सम्पादन की हुई सामर्थ द्वारा जो इस जन्म में विचित्रता होती है उसको जन्म सिद्धि कहते हैं ।

(औषधिभिरसुरभवनेषु रसायनेनेत्येवमादिः) असुरों के घरों में रसायनादि औषधिसिद्धि कहलाती है। यह फिर किसी आधुनिक पौराणिक मतावलम्बी आदि ने कल्पना की है, क्योंकि रसायनादि असुरों के भवन में जो होते हैं, योगी का उन असुरों के काम से क्या सम्बन्ध ? और असुरों के समान काम करने में क्या महत्त्व ? इसमें तो योगी की हानि है, और रसायनादि कहीं देखने में भी नहीं आते केवल अज्ञानियों की भ्रान्ति है।

(मन्त्रैराकाशगमनाणिमादिलाभः) मन्त्र से आकाश गमन अणिमादि का लाभ होता है, यह भी असत्य है। क्योंकि द्वितीयः साधनपाद सूत्र ४३ में यह सिद्धि तप से कही है, और मन्त्रों के जप विचारादि से तो चित्त की सिद्धि होती है अणिमादि लाभ नहीं कहा। (तपसा संकल्पसिद्धिः, कामरूपी यत्र तत्र कामग इत्येवमादि) तप से संकल्पसिद्धि, कामरूपी = जहां तक काम की गति वहां तक, इस प्रकार और भी अणिमादि के सर्व भेद यहां जानने चाहियें, यह ठीक है यही हमारा भी कथन है कि तप से अणिमादि की सिद्धि होती हैं, मन्त्र से नहीं होती। (समाधिजाः सिद्धयो व्याख्याताः) समाधि से उत्पन्न हुई सिद्धि पूर्व तृतीय विभूतिपाद में कही गई ॥ १ ॥

(तत्र कायेन्द्रियाणामन्यजातिपरिणतानाम्) उनमें अन्य जाति में परिणाम को प्राप्त हुए शरीर-इन्द्रियों का—

भो० वृत्ति

इदानीं विप्रतिपत्तिसमुत्थभ्रान्तिनिराकरणेन युक्त्या कैवल्यस्वरूपज्ञापनाय कैवल्यपादोऽयमारभ्यते।

तत्र याः पूर्वमुक्ताः सिद्धयस्तासां नानाविधजन्मादि कारणप्रतिपादनद्वारेणैवं बोधयति। यदि या एताः सिद्धयस्ताः सर्वाः पूर्वजन्माभ्यस्तसमाधिबलाज्जन्मादिनिमित्तमात्रत्वेनाऽऽश्रित्य प्रवर्तन्ते। ततश्चानेक-

भवसाध्यस्य समाधेर्न क्षतिरस्तीति विश्वासोत्पादनाय समाधिसिद्धेश्च प्राधान्यख्यापनार्थं कैवल्यप्रयोगार्थं चाऽऽह—

भो० वृ० पदार्थ

(इदानीं विप्रतिपत्तिसमुत्थभ्रान्तिनिराकरणेनयुक्त्या कैवल्यस्वरूप-ज्ञापनाय कैवल्यपादोऽयमारभ्यते) अब अविद्या से उत्पन्न हुई भ्रान्ति दूर करने के लिये युक्ति द्वारा कैवल्य स्वरूप के उपदेशार्थ कैवल्यपाद का आरम्भ किया जाता है ।

(तत्र याः पूर्वमुक्ताः सिद्धयस्तासां नानाविधजन्मादि कारणप्रति-पादनद्वारेणैवं बोधयति) उनमें जो पूर्व पादोक्त सिद्धियां उनका नाना प्रकार के जन्मादि कारण प्रतिपादन द्वारा इस प्रकार बोध कराता है । (यदि या एताः सिद्धयस्ताः सर्वाः पूर्वजन्माभ्यस्तसमाधिबलाज्जन्मादि-निमित्तमात्रत्वेनाऽऽश्रित्य प्रवर्तन्ते) मुझ में जो यह सिद्धियें हैं, वह सर्व पूर्व जन्म में समाधि के अभ्यासरूपी बल से जन्मादि को निमित्तमात्रता से आश्रय करके वर्तती हैं । (ततश्चानेकभवसाध्य समाधेर्न क्षतिरस्तीति विश्वासोत्पादनाय समाधिसिद्धेश्च प्राधान्यख्यापनार्थं कैवल्यप्रयोगार्थं चाऽऽह) उससे यह अनुमान होता है कि अनेक जन्मों में साधन की हुई समाधि की बीच में हानि नहीं हुई है, यह विश्वास उत्पन्न करने के लिये और समाधि से सिद्ध चित्त की प्रधानता प्रकाशार्थ कैवल्यमुक्ति के प्रयोगार्थ कहते हैं—

काश्चन जन्मनिमित्ता एव सिद्धयः । यथा—पक्ष्यादीनामाकाशगम-नादयः । यथा वा कपिल महर्षि प्रभृतीनां जन्मसमनन्तरमेवोपजायमाना ज्ञानादयः सांसिद्धिका गुणाः । ओषधिसिद्धयो यथा—पारदादिरसायना-द्युपयोगात् । मन्त्रसिद्धिर्यथा—मन्त्रजपात्केषांचिदाकाशगमनादि । तपः सिद्धिर्यथा—विश्वामित्रादीनाम् । समाधिसिद्धिः प्राक्प्रतिपादिता । एताः सिद्धयः पूर्वजन्मक्षपितक्लेशानामेवोपजायन्ते । तस्मात्समाधिसिद्धाविवा-

न्यासां सिद्धीनां समाधिरेव जन्मान्तराभ्यस्तः कारणं, मन्त्रादीनि निमित्त-मात्राणि ॥ १ ॥

ननु नन्दीश्वरादिकानां जात्यादिपरिणामोऽस्मिन्नेव जन्मनि दृश्यते तत्कथं जन्मान्तराभ्यस्तस्य समाधेः कारणत्वमुच्यत इत्याशङ्क्याऽऽह—

(काश्चन जन्मनिमित्ता एव सिद्धयः) कोई एक सिद्धियें जन्म के कारण से होती हैं। (यथा पक्ष्यादीनामाकाशगमनादयः) जैसे पक्षी आदि का आकाश गमनादि। (यथा वा कपिलमहर्षिप्रभृतीनां जन्मसमनन्तरमेवोपजायमाना ज्ञानादयः सांसिद्धिका गुणाः) अथवा जैसे कपिल महर्षि प्रभृतियों को जन्म होने के पश्चात् तत्काल ज्ञानादि सांसिद्धिक गुण उत्पन्न हुए। (ओषधिसिद्धयो यथा—पारदादिरसायनाद्युपयोगात्) ओषधसिद्धि जैसे–रसायनादि के उपयोग से पारादि। (मन्त्रसिद्धिर्यथा–मन्त्रजपात्केषांचिदाकाशगमनादि) मन्त्रसिद्धि जैसे—मन्त्र जप से किन्हीं को आकाश गमनादि। (तपः सिद्धिर्यथा—विश्वामित्रादीनाम्) तप-सिद्धि जैसे–विश्वामित्रादि को, यह औषधि–मन्त्र–तप की तीनों सिद्धियें भाष्य के समान यहां वृत्ति में भी किसी पौराणिक ने मिलादी हैं जो अयुक्त हैं। इनका सत्यार्थ हम सूत्रार्थ में लिख चुके हैं वहां से जान लेना चाहिये। (समाधिसिद्धिः प्राक्प्रतिपादिता) समाधि की सिद्धियें पूर्व पाद में कही गई। (एताः सिद्धयः पूर्वजन्मक्षपितक्लेशानामेवोपजायन्ते) यह सिद्धियें पूर्व जन्म में क्लेशों के नाश करने से इस जन्म में उत्पन्न होती हैं। (तस्मात्समाधिसिद्धाविव) इस कारण समाधि सिद्धि के समान (अन्यासां सिद्धिनां समाधिरेव जन्मान्तराभ्यस्तः कारणं) अन्य सिद्धियों का भी जन्मान्तरों में किया समाधि का अभ्यास ही कारण है (मन्त्रादीनि निमित्तमात्राणि) मन्त्रादि तो निमित्तमात्र हैं॥ १ ॥

(ननु नन्दीश्वरादिकानां जात्यादिपरिणामोऽस्मिन्नेव जन्मनि दृश्यते) हम तर्क करते हैं कि नन्दीश्वरादि का जाति आदि परिणाम इसी जन्म में देखा जाता है (तत्कथं जन्मान्तराभ्यस्तस्य समाधेः कारणत्वमुच्यत

इत्याशङ्कयाऽऽह) तो फिर किस प्रकार अन्य जन्मों में किया हुआ समाधि का अभ्यास उसमें कारण कहा जाता है, इस शङ्का के निवारणार्थ अगला सूत्र कहते हैं —

जात्यन्तरपरिणामः प्रकृत्यापूरात् ॥ २ ॥

सू०—अन्य जाति में परिणत हुए शरीर और इन्द्रियों का भिन्न जाति में परिणाम प्रकृति के अवयव प्रवेश से होता है अभिप्राय इसका यह है कि औषधि आदि के अवयव प्रवेश और तप से प्रथम शरीर में, पश्चात् चित्त में परिणाम और मन्त्र, जप और उसके अर्थ विचार द्वारा चित्त के संस्कारों का परिवर्तन होता है ॥२॥

व्या० भाष्यम्

पूर्वपरिणामापाय उत्तरपरिणामोपजनस्तेषामपूर्वावयवानुप्रवेशाद्भवति । कायेन्द्रियप्रकृतयश्च स्वं स्वं विकारमनुगृह्णन्त्यापूरेण धर्मादिनिमित्तमपेक्षमाणा इति ॥ २ ॥

व्या० भा० पदार्थ

(पूर्वपरिणामापाय उत्तरपरिणामोपजनस्तेषामपूर्वावयवानुप्रवेशाद्भवति) पूर्व परिणाम के नाश होने पर उत्तर परिणाम का उत्पन्न होना, उन शरीर और इन्द्रियों में पूर्व जन्म में अवयव प्रवेश करने से होता है । (कायेन्द्रियप्रकृतयश्च स्वं स्वं विकारमनुगृह्णन्त्यापूरेण धर्मादिनिमित्तमपेक्षमाणा इति) शरीर और इन्द्रियों की प्रकृति अपने २ विकार को ग्रहण कर लेती हैं, अवयवानुप्रवेश धर्मादि निमित्त की अपेक्षा रखते हुए होता है यह अभिप्राय ॥ २ ॥

भो० वृत्ति

योऽयमिहैव जन्मनि नन्दीश्वरादीनां जात्यादिपरिणामः स प्रकृत्यापूरात्, पाश्चात्या एव हि प्रकृतयोऽमुष्मिञ्जन्मनि विकारानापूरयन्ति जात्यन्तराकारेण परिणमयन्ति ॥ २ ॥

ननु धर्माधर्मादयस्तत्र क्रियमाणा उपलभ्यन्ते तत्कथं प्रकृतीनामापूरकारणत्वमित्याह—

भो० वृ० पदार्थ

(योऽयमिहैव जन्मनि नन्दीश्वरादीनां जात्यादिपरिणामः) जो यह इस ही जन्म में नन्दीश्वरादि का जाति आदि परिणाम कहा है (स प्रकृत्यापूरात्) वह प्रकृति के अवयव प्रवेश से हुआ जानो। (पश्चात्या एव हि प्रकृतयोऽमुष्मिञ्जन्मनि विकारानापूरयन्ति) पिछले जन्म की ही प्रकृति इस जन्म में विकारों को प्रवेश करलेती हैं (जात्यन्तराकारेण परिणामयन्ति) अन्य जाति के रूप से परिणाम को प्राप्त हो जाती हैं ॥ २ ॥

(ननु धर्मादयस्तत्र क्रियमाणा उपलभ्यन्ते तत्कथं प्रकृतिनामापूरकारणत्वमित्याह) उस पूर्व जन्म में किये हुए धर्मादि उपलब्ध होते हैं तो फिर किस प्रकार प्रकृति का आपूरकारण है ? यह अगले सूत्र से कहते हैं—

निमित्तमप्रयोजकं प्रकृतीनां वरणभेदस्तु ततः क्षेत्रिकवत् ॥ ३ ॥

सू०—धर्मादि निमित्त प्रकृतियों के प्रवर्तक नहीं हैं, परन्तु जैसे किसान वरण भेद करके जल को एक क्यारी से दूसरी क्यारी में पहुंचाता है, उसी प्रकार धर्मरूपी निमित्त से अधर्मरूपी विघ्न का बाध होकर देह इन्द्रियादि की प्रकृति स्वयं विकार को प्राप्त हो जाती हैं ॥ ३ ॥

व्या० भाष्यम्

न हि धर्मादि निमित्तं तत्प्रयोजकं प्रकृतिनां भवति। न कार्येण कारणं प्रवर्त्यत इति। कथं तर्हि, वरणभेदस्तु ततः क्षेत्रिकवत्। यथा क्षेत्रिकः केदारादपां पूर्णात्केदारान्तरं पिप्लावयिषुः समं निम्नं निम्नतरं वा नापः पाणिनाऽपकर्षत्यावरणं त्वासां भिनत्ति तस्मिन्भिन्ने स्वयमेवाऽऽपः केदारान्तरमाप्लावयन्ति तथा धर्मः प्रकृतीनामावरणमधर्मं भिनत्ति

तस्मिन्भिन्ने स्वयमेव प्रकृतयः स्वं स्वं विकारमाप्लावयन्ति । यथा वा स एव क्षेत्रिकस्तस्मिन्नेव केदारे न प्रभवत्यौदकान्भौमान्वा रसान्धान्यमूलान्यनुप्रवेशयितुं, किं तर्हि मुद्गगवेधुकश्यामाकादींस्ततोऽपकर्षति । अपकृष्टेषु तेषु स्वयमेव रसा धान्यमूलान्यनुप्रविशन्ति, तथा धर्मो निवृत्तिमात्रे कारणमधर्मस्य, शुद्ध्यशुद्ध्योरत्यन्तविरोधात्, न तु प्रकृतिप्रवृत्तौ धर्मो हेतुर्भवतीति । अत्र नन्दीश्वरादय उदाहार्याः । विपर्ययेणाप्यधर्मो धर्मं बाधते । ततश्चाशुद्धिपरिणाम इति । तत्रापि नहुषाजगरादय उदाहार्याः ॥ ३ ॥

यदा तु योगी बहून्कायान्निर्मिमीते तदा किमेकमनस्कास्ते भवन्त्यथानेकमनस्का इति—

व्या० भा० पदार्थ

(न हि धर्मादि निमित्तं तत्प्रयोजकं प्रकृतीनां भवति) धर्मादि निमित्त उन देह इन्द्रियों की प्रकृति के प्रवर्तक नहीं होते । (न कार्येण कारणं प्रवर्त्यत इति) क्योंकि कार्य से कारण प्रवर्त नहीं होता । (कथं तर्हि) तो फिर किस प्रकार होता है, यह आगे कहते हैं (वरणभेदस्तु ततः क्षेत्रिकवत्) उस धर्मरूपी निमित्त से क्षेत्रिक के समान वरण भेद होता है । (यथा क्षेत्रिकः केदारादपां पूर्णात्केदारान्तरं पिप्लावयिषुः समं निम्नं निम्नतरं वा नापः पाणिनाऽपकर्षत्यावरणं त्वासां भिनत्ति) जैसे खेत को जोतने वाला किसान जल भरी हुई क्यारी से दूसरी क्यारी में पानी पहुंचाने की इच्छा करता हुआ सम = बराबर, निम्न = नीची वा, निम्नतर = उस से भी नीची क्यारी में पानी को हाथ से नहीं सींचता किन्तु उन की मेंड़ तोड़ देता है (तस्मिन्भिन्ने स्वयमेवाऽऽपः केदारान्तरमाप्लावयन्ति) उस मेंड़ के काटने पर जल स्वयं दूसरी क्यारी में भरजाता है (तथा धर्मः प्रकृतिनामावरणमधर्मं भिनत्ति) उसी प्रकार धर्म देह इन्द्रियों

की प्रकृति के प्रतिबन्धक अधर्म को नष्ट करदेता है (तस्मिनभिन्ने स्वयमेव प्रकृतयः स्वं स्वं विकारमाप्लावयन्ति) उस अधर्मरूपी प्रतिबन्धक के नष्ट होने पर देह इन्द्रियों की प्रकृति स्वयं ही अपने २ विकार को धारण करलेती हैं। (यथा वा स एव क्षेत्रिकस्तस्मिन्नेव केदारे) अथवा जैसे वही किसान उस क्यारी में (न प्रभवत्यौदकान्भौमान्वा रसान्धान्यमूलान्यनुप्रवेशयितु) जल और भूमि के रसों को धानों के मूल में प्रवेश करने को समर्थ नहीं होता, (किं तर्हि मुद्गगवेधुकश्यामकादींस्ततोऽपकर्षति) तब फिर क्या होता है कि मूँग गेहूँ श्यामकादि उस अपने मूल के द्वारा जलों को खींच लेते हैं। (अपकृष्टेषु तेषु स्वयमेव रसा धान्यमूलान्यनुप्रविशन्ति) उन जलों के खींचने पर भूमि जलादि के रस स्वयं ही धानों के मूल में प्रवेश हो जाते हैं, (तथा धर्मो निवृत्तिमात्रे कारणमधर्मस्य) वैसे ही धर्म भी अधर्म की निवृत्ति मात्र करने में कारण है, (शुद्ध्यशुद्ध्योरत्यन्तविरोधात्) शुद्धि और अशुद्धि दोनों में अत्यन्त विरोध होने से, (न तु प्रकृतिप्रवृत्तौ धर्मो हेतुर्भवतीति) प्रकृति के परिवर्तन अर्थात् परिणाम में धर्म उपादान कारण नहीं होता, किन्तु निमित्त होता है। (अत्र नन्दीश्वरादय उदाहार्याः) इस में नन्दीश्वरादि के उदाहरण हैं। (विपर्ययेणाप्यधर्मो धर्मं बाधते) विपर्ययरूप से भी अधर्म धर्म को नाश करता है। (ततश्चाशुद्धिपरिणाम इति) इस कारण यह अशुद्धिरूप परिणाम है। (तत्रापि नहुषाजगरादय उदाहार्याः) उस में भी नहुष अजगरादि के उदाहरण हैं॥ ३॥

(यदा तु योगी बहुन्कायान्निर्मिमीते तदा किमेकमनस्कास्ते भवन्त्यथानेकमनस्का इति) जब योगी बहुत से शरीरों को निर्माण करता है, तब क्या एक मन वाला होता है, वा अनेक मनवाला है। यह फिर किसी पौराणिक ने वैदिक सिद्धान्त विरुद्ध कल्पना की है, क्योंकि एक जीवात्मा अनेक शरीरों को धारण नहीं कर सक्ता,

विभु न होने से क्योंकि जीवात्मा परिच्छिन्न है और द्वितीयः साधनपाद सूत्र १३ के भाष्य में भाष्यकार लिखते हैं कि कर्मफल भोगने में अनेक शरीर एक साथ धारण नहीं हो सक्ते, प्रधान कर्मानुसार एक देह धारण कर सक्ता है, इस कारण यह कल्पना त्याज्य है—

भो० वृत्ति

निमित्तं धर्मादि तत्प्रकृतीनामर्थान्तरपरिणामे न प्रयोजकम् । न हि कार्येण कारणं प्रवर्तते । कुत्र तर्हि तस्य धर्मादेर्व्यापार इत्याह—वरणभेदस्तु ततः क्षेत्रिकवत् । ततस्तस्मादनुष्ठीयमानाद्धर्माद्वरणमावरकमधर्मादि तस्यैव विरोधित्वाद्भेदः क्षयः क्रियते । तस्मिन्प्रतिबन्धके क्षीणे प्रकृतयः स्वयमभिमतकार्याय प्रभवन्ति दृष्टान्तमाह—क्षेत्रिकवत् । यथा क्षेत्रिकः कृषीवलः केदारात्केदारान्तरं जलं निनीषुर्जलप्रतिबन्धकवरणभेदमात्रं करोति तस्मिन्भिन्ने जलं स्वयमेव प्रसरद्रूपं परिणामं गृह्णाति न तु जलप्रसरणे तस्य कश्चित्प्रयत्न एवं धर्मादेर्बोद्धव्यम् ॥ ३ ॥

यदा साक्षात्कृततत्त्वस्य योगिनो युगपत्कर्मफलभोगायाऽऽत्मीयनिरतिशयविभूत्यनुभावाद्युगपदनेकशरीरनिर्मित्सा जायते तदा कुतस्तानि चित्तानि प्रभवन्तीत्याह—

भो० वृ० पदार्थ

(निमित्तं धर्मादि) धर्मादि निमित्त हैं (तत्प्रकृतिनामर्थान्तरपरिणामे न प्रयोजकम्) वह प्रकृतियों के अन्य परिणाम होने में प्रवर्तक नहीं हैं। (न हि कार्येण कारणं प्रवर्त्तते) क्योंकि कार्य से कारण प्रवर्त नहीं होता। (कुत्र तर्हि तस्य धर्मादेर्व्यापार इत्याह) फिर वह धर्मादि का व्यापार किस प्रकार होता है यह कहते हैं कि—(वरणभेदस्तु ततः क्षेत्रिकवत्) उस धर्म से किसान के समान प्रतिबन्धक का नाश होता है। (ततस्तस्मादनुष्ठीयमानाद्धर्माद्वरणमावरकमधर्मादि) इस कारण इसे दृष्टान्त के

अनुसार उस धर्म का अनुष्ठान करने से वरण अर्थात् आवरक अधर्मादि (तस्यैव विरोधित्वाद्भेदः क्षयः क्रियते) उसका विरोधि होने से भेद अर्थात् नाश किया जाता है। (तस्मिन्प्रतिबन्धके क्षीणे प्रकृतयः स्वयमभिमतकार्याय प्रभवन्ति) उस प्रतिबन्धक के नाश होने पर प्रकृति स्वयं इष्ट कार्य के लिये समर्थ हो जाती हैं (दृष्टान्तमाह) दृष्टान्त कहते हैं—(क्षेत्रिकवत्) किसान के समान (यथा क्षेत्रिकः कृषीवलः केदारात्केदारान्तरं जलं निनीषुर्जलप्रतिबन्धकवरणभेदमात्रं करोति) जैसे खेत को जोतने वाला किसान एक क्यारी से दूसरी नीची क्यारी में जल पहुंचाने की इच्छा से प्रतिबन्धक मेंड़ को काट देता है, (तस्मिन्भिन्ने जलं स्वयमेव प्रसरद्रूपं परिणामं गृह्णाति) उसके भिन्न होने पर जल स्वयं ही प्रसरद्रूप परिणाम को ग्रहण करलेता है (न तु जलप्रसरणे तस्य कश्चित्प्रयत्नः) जल फैलाने में उसको कोई प्रयत्न नहीं करना पड़ता (एवं धर्मादिर्बोद्धव्यम्) इस प्रकार धर्मादि निमित्त को जानना चाहिये ॥ ३ ॥

(यदा साक्षात्कृततत्त्वस्य योगिनो युगपत्कर्मफलभोगायाऽऽत्मीयनिरतिशयविभूत्यनुभवाद्युगपदनेकशरीरनिर्मित्सा जायते) साक्षात् किया है तत्त्व का जिस योगी ने उसको जब एक साथ कर्म फल भोगने के लिये अपनी सबसे अधिक विभूति के अनुभव से एक साथ अनेक शरीर रचने की इच्छा उत्पन्न होती है। (तदा कुतस्तानि चित्तानि प्रभवन्तीत्याह) तब उनके चित्त किस प्रकार होते हैं यह आगे कहते हैं। इसी प्रकार भाष्य में भी यह कल्पना सूत्रभाष्य के पश्चात् की है, सो हमारी समझ में असम्भव है, और नहीं अगले सूत्र का यह अभिप्राय है—

निर्माणचित्तान्यस्मितामात्रात् ॥ ४ ॥

सू०—चित्तों का निर्माण अस्मितामात्र से होता है। चित्तों का निर्माण इस शब्द के कहने से यह अभिप्राय नहीं है कि योगी बहुत से चित्त बनाता है किन्तु यह अभिप्राय है कि चित्त में जब अहं वृत्ति उत्पन्न होती है और उस अहङ्कार से इन्द्रियभावों का निर्माण होता है,

तब प्रवृत्ति भेद से भिन्न २ विषयों में प्रवृत्ति होती हैं, इसी भाव को न समझ कर किन्हीं पौराणिकों ने अनेक शरीर रचना की कल्पना करडाली ॥ ४ ॥

व्या० भाष्यम्

अस्मितामात्रं चित्तकारणमुपादाय निर्माणचित्तानि करोति, ततः सचित्तानि भवन्ति ॥ ४ ॥

व्या० भा० पदार्थ

(अस्मितामात्रं चित्तकारणमुपादाय निर्माणचित्तानि करोति) चित्त के कारण अस्मितामात्र को लेकर चित्तों का निर्माण करता है, (ततः सचित्तानि भवन्ति) उस के पश्चात् सचित्त होते हैं अर्थात् इन्द्रियजन्य बाह्य ज्ञान होते हैं ॥ ४ ॥

भो० वृत्ति

योगिनः स्वयं निर्मितेषु कायेषु यानि चित्तानि तानि मूलकारणादस्मितामात्रादेव तदिच्छया प्रसरन्ति अग्नेर्विस्फुलिङ्गा इव युगपत्परिणमन्ति ॥४॥

ननु बहुनां चित्तानां भिन्नाभिप्रायत्वान्नैककार्यकर्तृत्वं स्यादित्यत आह—

भो० वृ० पदार्थ

(योगिनः स्वयं निर्मितेषु कायेषु यानि चित्तानि तानि मूलकारणादस्मितामात्रादेव तदिच्छया प्रसरन्ति अग्नेर्विस्फुलिङ्गा इव) स्वयं रचे हुए योगी के शरीरों में जो चित्त होते हैं, उनका मूल कारण अस्मितामात्र होने से उसकी इच्छा से वृत्तियों का विस्तार हो जाता है जैसे अग्नि के विस्फुलिङ्ग (युगपत्परिणमन्ति) एक साथ परिणाम को प्राप्त हो जाते हैं ॥४॥

(ननु बहुनां चित्तानां भिन्नाभिप्रायत्वान्नैककार्यकर्तृत्वं स्यादित्यत आह) शङ्का—बहुत से चित्तों का भिन्नाभिप्राय होने से एक कार्य करने का नहीं सामर्थ हो सक्ता इस कारण अगला सूत्र कहते हैं—

सूचना

देखो इस सूत्र से ऊपर जो कल्पना की थी उसमें एक साथ बहुत से कर्मफल भोगने के लिये योगी के अनेक शरीर धारण करने की कल्पना है। जब एक साथ बहुत से कर्मफल भोगने हैं तब यहां वृत्तिकार ने चित्तों के बहुत अभिप्राय होने से एक कार्य सिद्ध नहीं हो सका यह क्यों कहा? बहुत कर्मफल भोगने में तो बहुत ही कार्य करने की आवश्यकता है, इससे जान पड़ता है कि ऊपर की कल्पना और इस सूत्र का अर्थ वृत्तिकार का रचा हुआ नहीं है, किसी ने इसको बदल दिया है ॥ ४ ॥

प्रवृत्तिभेदे प्रयोजकं चित्तमेकमनेकेषाम् ॥ ५ ॥

सू०—प्रवृत्ति के भेद होने पर एक चित्त अनेक इन्द्रिय प्रवृत्तियों का प्रवर्तक होता है। अर्थात् यहां भी यही अभिप्राय है कि एक अहङ्कार की प्रेरणा से सर्व इन्द्रियों की प्रवृत्ति अपने २ व्यापार में होती हैं ॥ ५ ॥

व्या० भाष्यम्

बहूनां चित्तानां कथमेकचित्ताभिप्रायपुरःसरा प्रवृत्तिरिति सर्वचित्तानां प्रयोजकं चित्तमेकं निर्मिमीते ततः प्रवृत्तिभेदः ॥ ५ ॥

व्या० भा० पदार्थ

(बहूनां चित्तानां कथमेकचित्ताभिप्रायपुरःसरा प्रवृत्तिः) एक चित्त से किस प्रकार अनेक चित्तों के अभिप्राय पूर्वक प्रवृत्ति होती है (इति) इस शङ्का के उत्तर में कहते हैं (सर्वचित्तानां प्रयोजकं चित्तमेकं) सर्व चित्तों का प्रवर्तक एक चित्त है, (ततः प्रवृत्तिभेदः) उससे प्रवृत्तिभेद होता है ॥ ५ ॥

भो० वृत्ति

तेषामनेकेषां चेतसां प्रवृत्तिभेदे व्यापारनानात्वे एकं योगिनश्चित्तं प्रयोजकं प्रेरकमधिष्ठातृत्वेन, तेन न भिन्नमतत्वम्। अयमर्थः—यथाऽऽ-

त्मीय शरीरे मनश्चक्षुः पाण्यादीनि यथेच्छं प्रेरयति अधिष्ठातृत्वेन तथा कायान्तरेष्वपीति ॥ ५ ॥

जन्मादिप्रभवत्वात्सिद्धीनां चित्तमपि तत्प्रभवं पञ्चविधमेव अतः जन्मादिप्रभवाच्चित्तात्समाधिप्रभवस्य चित्तस्य वैलक्षण्यमाह—

भो० वृ० पदार्थ

(तेषामनेकेषां चेतसां प्रवृत्तिभेदे व्यापारनानात्वे एकं योगिनश्चित्तं प्रयोजकं प्रेरकमधिष्ठातृत्वेन) उन अनेक चित्तों के प्रवृत्ति भेद होने पर नानात्व व्यापार में योगी का एक चित्त अधिष्ठातृत्व से प्रेरक होता है, (तेन न भिन्नमतत्वम्) इस कारण कोई भिन्नतत्व नहीं है । (अयमर्थः) यह अर्थ है कि (यथाऽऽत्मीयशरीरे मनश्चक्षुः पाण्यादीनि यथेच्छं प्रेरयति) जैसे अपने शरीर में चक्षु हस्तादि को एक मन इच्छानुसार प्रेरणा करता है (अधिष्ठातृत्वेन) अधिष्ठातृभाव से (तथा कायान्तरेष्वपीति) उसी प्रकार दूसरों का मन दूसरों के शरीरों में भी प्रेरणा करता है ॥ ५ ॥

(जन्मादिप्रभवत्वात्सिद्धीनां चित्तमपि तत्प्रभवं पञ्चविधमेव) सिद्धियों की जन्मादि से उत्पत्ति होने के कारण पांच प्रकार के सिद्ध चित्त भी उसके साथ उत्पन्न हो जाते हैं । (अतः जन्मादिप्रभवाच्चित्तात्समाधिप्रभवस्य चित्तस्य वैलक्षण्यमाह) इस कारण जन्मादि द्वारा उत्पन्न हुए चित्तों से समाधि से उत्पन्न हुए चित्त की विलक्षणता अगले सूत्र से कहते हैं—

तत्र ध्यानजमनाशयम् ॥ ६ ॥

सू०—उन पांच प्रकार के प्रथम सूत्र में कहे अनुसार सिद्ध चित्तों में ध्यान से उत्पन्न हुआ चित्त वासना रहित है ॥ ६ ॥

व्या० भाष्यम्

पञ्चविधं निर्माणचित्तं जन्मौषधिमन्त्रतपः समाधिजाः सिद्धय इति । तत्र यदेव ध्यानजं चित्तं तदेवानाशयं तस्यैव नास्त्याशयो

रागादिप्रवृत्तिर्नातः पुण्यपापाभिसंबन्धः क्षीणक्लेशत्वाद्योगिन इति । इतरेषां तु विद्यते कर्माशयः ॥ ६ ॥

यतः—

व्या० भा० पदार्थ

(पञ्चविधं निर्माणचित्तं जन्मौषधिमन्त्रतपः समाधिजाः सिद्धय इति तत्र) जन्म, औषधि, मन्त्र, तप और समाधि से उत्पन्न चित्त की सिद्धियें जो कही हैं इन पांच प्रकार के चित्तों में (यदेव ध्यानजं चित्तं तदेवानाशयं) जो ध्यान से उत्पन्न हुआ चित्त है वही वासना रहित है (तस्यैव नास्त्याशयो रागादिप्रवृत्तिः) उसमें ही रागादि प्रवृत्ति और वासनायें नहीं होतीं (नातः पुण्यपापाभिसंबन्धः क्षीणक्लेशत्वाद्योगिन इति) इस कारण क्लेश नष्ट होने से योगी का पुण्य-पाप से भी सम्बन्ध नहीं होता । (इतरेषां तु विद्यते कर्माशयः) अयोगी पुरुषों की तो कर्म और वासनायें विद्यमान रहती हैं ॥ ६ ॥

(यतः) जिस कारण—

भो० वृत्ति

ध्यानजं समाधिजं यच्चित्तं तत्पञ्चसु मध्येऽनाशयं कर्मवासनारहितमित्यर्थः ॥ ६ ॥

यथेतरचित्तेभ्यो योगिनश्चित्तं विलक्षणं क्लेशादिरहितं तथा कर्मापि विलक्षणमित्याह—

भो० वृ० पदार्थ

(ध्यानजं समाधिजं यच्चित्तं) ध्यान से उत्पन्न हुआ अर्थात् समाधि से उत्पन्न हुआ जो चित्त है (तत्पञ्चसु मध्येऽनाशयं) उन पांचों में वह वासना रहित है (कर्मवासनारहितमित्यर्थः) कर्म और वासना से रहित है, यह अभिप्राय है ॥ ६ ॥

(यथेतरचित्तेभ्यो योगिनश्चित्तं विलक्षणं क्लेशादिरहितं) जैसे अन्यों के चित्तों से योगी का चित्त विलक्षण क्लेशादि रहित है, (तथा कर्मापि विलक्षणमित्याह) वैसे ही कर्म भी विलक्षण हैं, यह अगले सूत्र में कहते हैं—

कर्माशुक्लाकृष्णं योगिनस्त्रिविधमितरेषाम् ॥ ७ ॥

सू०—योगी के कर्म अशुक्लाकृष्ण=पुण्यपाप रहित होते हैं, और अन्य अयोगी पुरुषों के कर्म शुक्ल=पुण्यरूप और कृष्ण= पापरूप और शुक्लकृष्ण=पुण्यपाप मिश्रित तीन प्रकार के होते हैं ॥ ७ ॥

व्या० भाष्यम्

चतुष्पदी खल्वियं कर्मजातिः । कृष्णा शुक्लकृष्णा शुक्लाऽशुक्लाकृष्णा चेति । तत्र कृष्णा दुरात्मनाम् । शुक्लकृष्णा बहिःसाधनसाध्या । तत्र परपीड़ानुग्रहद्वारेणैव कर्माशयप्रचयः । शुक्ला तपःस्वाध्यायध्यानवताम् । सा हि केवले मनस्यायत्तत्वादबहिः साधनानधीना न परान्पीड़यित्वा भवति । अशुक्लाकृष्णा संन्यासिनां क्षीणक्लेशानां चरमदेहानामिति । तत्राशुक्लं योगिन एव फलसंन्यासादकृष्णं चानुपादानात् । इतरेषां तु भूतानां पूर्वमेव त्रिविधमिति ॥७॥

व्या० भा० पदार्थ

(चतुष्पदी खल्वियं कर्मजातिः) निश्चय यह कर्म जाति चार भेदोंवाली हैं । (कृष्णा शुक्लकृष्णा शुक्ला अशुक्लाकृष्णा चेति) १–पापरूप, २–पुण्यपाप मिश्रित, ३–पुण्यरूप, ४–पुण्यपाप दोनों से रहित, (तत्र कृष्णा दुरात्मनाम्) उनमें पापरूप कर्म दुराचारी पुरुषों के होते हैं । (शुक्लकृष्णा बहिः साधनसाध्या) पुण्यपाप मिश्रित बाह्य साधनों के करनेवालों के । (तत्र परपीड़ानुग्रहद्वारे-

णैव कर्माशयप्रचयः) उनमें किन्हीं को पीड़ा देने और किन्हीं पर अनुग्रह करने से कर्म वासनाओं की पुनः उत्पत्ति होती है। (शुक्ला तपःस्वाध्यायध्यानवताम्) पुण्यरूप कर्म तप, स्वाध्याय, ध्यानादि करनेवालों के होते हैं। (सा हि केवले मनस्यायत्तत्वाद्-बहिः साधनानधीना न परान्पीड़यित्वा भवति) वह केवल मन के आश्रित होने से बाह्य साधनों के आधीन न होने से दूसरों को पीड़ा देनेवाले नहीं होते। (अशुक्लाकृष्णा संन्यासिनां क्षीणक्लेशानां चरमदेहानामिति) नष्ट हो गये हैं क्लेश जिनके और जिनकी मोक्ष-में देह पड़ने तक ही देर है, ऐसे संन्यासियों के पुण्यपाप रहित कर्म होते हैं। (तत्राशुक्लं योगिन एव फलसंन्यासात्) उनमें फल के त्यागने से योगी के कर्म पुण्यरहित होते हैं, (अकृष्णं चानु-पादानात्) और पाप को ग्रहण न करने से पाप रहित होते हैं। (इतरेषां तु भूतानां पूर्वमेव त्रिविधमिति) अन्य साधारण पुरुषों के कर्म पूर्व कहे तीन प्रकार के होते हैं ॥ ७ ॥

भो० वृत्ति

शुभफलदं कर्म यागादि शुक्लम्। अशुभफलदं ब्रह्महत्यादि कृष्णम्। उभयसंकीर्णं शुक्लकृष्णम्। तत्र शुक्लकर्म विचक्षणानां दानतपः स्वाध्याया-दिमतां पुरुषाणाम्। कृष्णं नारकाणाम्। शुक्लकृष्णं मनुष्याणाम्। योगिनां तु सन्यासवतां त्रिविधकर्मविपरीतं यत्फलत्यागानुसंधानेनैवानुष्ठानान्न किंचि-त्फलमारभते ॥ ७ ॥

अस्यैव कर्मणः फलमाह—

भो० वृ० पदार्थ

(शुभफलदं कर्म यागादि शुक्लम्) शुभ फल देनेवाले यज्ञादि कर्म "शुक्ल" हैं। (अशुभफलदं ब्रह्महत्यादि कृष्णम्) अशुभ फल देनेवाले ब्रह्महत्यादि कर्म "कृष्ण" हैं। (उभयसंकीर्णं शुक्लकृष्णम्) पुण्यपाप

दोनों मिले हुए जिस में हों वह "शुक्लकृष्ण" कहलाता है। (तत्र शुक्लकर्म विचक्षणानां दानतपःस्वाध्यायादिमतां पुरुषाणाम्) उन में विचार शील दान–तप–स्वाध्यायादि करने वाले पुरुषों का कर्म शुक्ल है। (कृष्णं कर्म नारकाणाम्) नरक के अधिकारियों का कृष्ण = पापरूप कर्म होता है। (शुक्लकृष्णम् मनुष्याणाम्) साधारण मनुष्यों का पुण्यपाप मिश्रित कर्म होता है। (योगिनां तु संन्यासवतां त्रिविधकर्मविपरीतं) संन्यासी योगियों का कर्म तो तीन प्रकार के कर्म से विपरीत होता है (यत्फलत्यागानुसंधाने-नैवानुष्ठानान्न किंचित्फलमारभते) जो फल त्याग के विचार पूर्वक अनुष्ठान करने के कारण किञ्चित् भी फल को आरम्भ नहीं करता ॥ ७ ॥

(अस्यैव कर्मणः फलमाह) इसी कर्म के फल को आगे कहते हैं—

ततस्तद्विपाकानुगुणानामेवाभिव्यक्तिर्वासनानाम् ॥ ८ ॥

सू०—उन तीन प्रकार के कर्मों में से उन के फलानुकूल गुणों वाली वासनाओं की प्रकटता होती है ॥ ८ ॥

व्या० भाष्यम्

तत इति त्रिविधात्कर्मणः, तद्विपाकानुगुणानामेवेति यज्जातीयस्य कर्मणो यो विपाकस्तस्यानुगुणा या वासनाः कर्मविपाकमनुशेरते तासामेवाभिव्यक्तिः। न हि दैवं कर्म विपच्यमानं नारकतिर्यङ्मनुष्यवासनाभिव्यक्तिनिमित्तं संभवति। किंतु दैवानुगुणा एवास्य वासना व्यज्यन्ते। नारकतिर्यङ्मनुष्येषु चैवं समानश्चर्चः ॥ ८ ॥

व्या० भा० पदार्थ

(तत इति त्रिविधात्कर्मणः) उन तीन प्रकार के कर्मों में से, (तद्विपाकानुगुणानामेवेति) उस फल के अनुकूल गुणोंवाली ही (यज्जातीयस्य कर्मणो यो विपाकः) जिस कर्म की जो जाति और जो फल है (तस्यनुगुणा या वासनाः) उस के अनुकूल गुणोंवाली

जो वासनायें हैं (कर्मविपाकमनुशेरते) वह कर्मफल के आश्रय से चित्त में सोती हुई के समान रहती हैं (तासामेवाभिव्यक्तिः) उन की ही प्रकटता होती है। (न हि दैवं कर्म विपच्यमानं नारकतिर्यङ्मनुष्यवासनाभिव्यक्तिनिमित्तं संभवति) निश्चय दिव्य कर्म परिपक्व हुआ नरक तिर्यक् मनुष्य जन्म की वासनाओं के प्रकट करने में कारण नहीं हो सक्ता। (किंतु दैवानुगुणा एवास्य वासना व्यज्यन्ते) किन्तु दैव जन्मानुकूल गुणों की ही वासनायें दिव्य कर्म करनेवाले की प्रकट होती हैं। (नारकतिर्यङ्मनुष्येषु चैवं समानश्चर्चः) नरक तिर्यक् मनुष्य योनियों में भी इसी प्रकार वासनायें वर्तती हैं, इस ही समान विचारना योग्य है ॥ ८॥

भो० वृत्ति

इह हि द्विविधाः कर्म वासनाः स्मृतिमात्रफला जात्यायुर्भोगफलाश्च। तत्र जात्यायुर्भोगफला एकानेकजन्मभवा इत्यनेन पूर्वमेव कृतनिर्णयाः। यास्तु स्मृतिमात्रफलास्तासु ततः कर्मणो येन कर्मणा यादृक्शरीरमारब्धं देवमनुष्यतिर्यगादिभेदेन तस्य विपाकस्य या अनुगुणा अनुरूपा वासनास्तासामेव तस्मादभिव्यक्तिः वासनानां भवति। अयमर्थः—येन कर्मणा पूर्वं देवतादिशरीरमारब्धं जात्यन्तरशतव्यवधानेन पुनस्तथाविधस्यैव शरीरस्याऽऽरम्भे तदनुरूपा एव स्मृतिफला वासनाः प्रकटी भवन्ति। लोकोत्तरेष्वेवार्थेषु तस्य स्मृत्यादयो जायन्ते। इतरास्तु सत्योऽपि अव्यक्तसंज्ञास्तिष्ठन्ति न तस्यां दशायां नारकादिशरीरोद्भवा वासना व्यक्तिमायान्ति ॥ ८ ॥

आसामेव वासनानां कार्यकारणभावानुपपत्तिमाशङ्क्य समर्थयितुमाह—

भो० वृ० पदार्थ

(इह हि द्विविधाः कर्मवासनाः) इस शरीर में ही दो प्रकार की कर्म और वासनायें होती हैं (स्मृतिमात्रफला जात्यायुर्भोगफलाश्च) एक स्मृतिमात्र फलवाली दूसरी जाति आयु भोग फलवाली। (तत्र जात्या-

युर्भोगफला एकानेकजन्मभवा) उन में जाति, आयु, भोग फलवाली एक अनेक जन्मों के कर्म से सिद्ध हुई (इत्यनेन पूर्वमेव कृतनिर्णयाः) इस कारण से इस को पहले ही निर्णय कर चुके। (यास्तु स्मृतिमात्रफलास्तासु ततः कर्मणो) जो स्मृतिमात्र फलवाली हैं उन में उन कर्मों में से (येन कर्मणा यादृक्शरीरमारब्धं देवमनुष्यतिर्यगादिभेदेन तस्य विपाकस्य या अनुगुणा अनुरूपा वासनास्तासामेव तस्मादभिव्यक्तिः वासनानां भवति) देव, मनुष्य, तिर्यकादि में से जिस कर्म से जैसे शरीर का आरम्भ होना है, उस फल के अनुरूपा जो वासनायें हैं, उन कर्म और वासनाओं के कारण से उन की ही प्रकटता होती है। (अयमर्थः) यह अर्थ है—(येन कर्मणा पूर्वं देवतादिशरीरमारब्धं जात्यन्तरशतव्यवधानेन पुनस्तथाविधस्यैव शरीरस्याऽऽरम्भे यदनुरूपा एव स्मृतिफला वासनाः प्रकटी भवन्ति) जिस कर्म से प्रथम देवतादि शरीर आरम्भ हुआ था सैकड़ों जातियों का बीच में व्यवधान होने पर भी फिर उस प्रकार के ही शरीर के आरम्भ होने में उस के अनुरूपा ही फलवाली वासना और स्मृति प्रकट होती हैं। (लोकोत्तरेष्वेवार्थेषु तस्य स्मृत्यादयो जायन्ते) उत्तर शरीर और अर्थों में उसकी स्मृति आदि उत्पन्न होती हैं। (इतरास्तु सत्योऽपि अव्यक्तसंज्ञास्तिष्ठन्ति) अन्य वासना तो रहती हुई भी निराकार अवस्था में रहती हैं (न तस्यां दशायां नारकादिशरीरोद्भवा वासना व्यक्तिमायान्ति) उस दशा में नरकादि शरीरों से उत्पन्न हुई वासना प्रकट नहीं होती ॥८॥

(आसामेव वासनानां कार्यकारणभावानुपपत्तिमाशङ्क्य समर्थयितुमाह) इन ही वासनाओं के कार्य कारण भाव अनुत्पत्ति की शङ्का करके समर्थ होने को आगे कहते हैं—

जातिदेशकालव्यवहितानामप्यानन्तर्यं स्मृतिसंस्कारयोरेकरूपत्वात् ॥ ९ ॥

सू०—इन वासनाओं के जाति-देश-काल से दूर होने पर भी दूरत्व नहीं है, स्मृति और संस्कार के एक रूप होने से ॥ ९ ॥

व्या० भाष्यम्

वृषदंशविपाकोदयः स्वव्यञ्जकाञ्जनाभिव्यक्तः। स यदि जातिशतेन वा दूरदेशतया वा कल्पशतेन वा व्यवहितः पुनश्च स्वव्यञ्जकाञ्जन एवोदियाद्द्रागित्येवं पूर्वानुभूतवृषदंशविपाकाभिसंस्कृता वासना उपादाय व्यज्येत्। कस्मात्। यतो व्यवहितानामप्यासां सदृशं कर्माभिव्यञ्जकं निमित्तीभूतमित्यानन्तर्यमेव। कुतश्च, स्मृतिसंस्कारयोरेकरूपत्वात्। यथाऽनुभवास्तथा संस्काराः। ते च कर्मवासनानुरूपाः। यथा च वासनास्तथा स्मृतिरिति जातिदेशकालव्यवहितेभ्यः संस्कारेभ्यः स्मृतिः। स्मृतेश्च पुनः संस्कारा इत्येवमेते स्मृतिसंस्काराः कर्माशयवृत्तिलाभवशाद्व्यज्यन्ते। अतश्च व्यवहितानामपि निमित्तनैमित्तिकभावानुच्छेदादानन्तर्यमेव सिद्धमिति वासनाः संस्कारा आशाया इत्यर्थः॥ ९॥

व्या० भा० पदार्थ

(वृषदंशविपाकोदयः स्वव्यञ्जकाञ्जनाभिव्यक्तः) कर्मफल का उदय अपने प्रकाशक कर्म की सहायता से होता है। (स यदि जातिशतेन वा दूरदेशतया वा कल्पशतेन वा व्यवहितः) यदि वह जन्म सैकड़ों जाति पहले वा हजारों कोस दूर वा सहस्रों वर्ष पहले हुआ हो, अर्थात् कितना ही किसी प्रकार व्यवधान बीच में पड़ गया हो (पुनश्च स्वव्यञ्जकाञ्जन एवोदियाद्द्रागिति) तो भी फिर अपने प्रकाशक कर्म से सहायता पाकर एकदम उदय हो जाता है (एवं पूर्वानुभूतवृषदंशविपाकाभिसंस्कृता वासना उपादाय व्यज्येत) इस प्रकार पूर्व जन्म में अनुभव किये कर्मफलों से बनी हुई वासनाओं को ग्रहण करके फिर प्रकट होती हैं। (कस्मात्) क्योंकि। (यतो व्यवहितानामप्यासां सदृशं कर्माभिव्यञ्जकं निमित्तीभूतमित्यानन्तर्यमेव) जिस कारण उन जाति आदि कर्मफल

और वासनाओं के दूर होनेपर भी उनका प्रकाशक समान रूप वाला कर्म निमित्त हुआ है, इस कारण उनमें दूरत्व नहीं है अर्थात् समीप ही हैं । (कुतश्चस्मृतिसंस्कारयोरेकरूपत्वात्) क्योंकि स्मृति और संस्कार दोनों के एक रूप होने से । (यथाऽनुभवास्तथा संस्काराः) जैसा अनुभव किया है उस रूपवाले ही संस्कार होते हैं । (ते च कर्मवासनानुरूपाः) और वह संस्कार कर्म और वासना के अनुरूप होते हैं । (यथा च वासनास्तथा स्मृतिरिति) और जैसी वासना होती हैं, वैसी ही भावी जन्म में स्मृति होती है (जातिदेशकालव्यवहितेभ्यः संस्कारेभ्यः स्मृतिः) इस प्रकार जाति देश-काल से दूर हुए संस्कारों से भी स्मृति होती है । (स्मृतेश्च पुनः संस्काराः) स्मृति से फिर संस्कार उत्पन्न होते हैं (इत्येवमेते स्मृतिसंस्काराः कर्माशयवृत्तिलाभवशाद्व्यज्यन्ते) इस प्रकार यह स्मृति और संस्कार कर्म वासनानुसार वृत्ति लाभवश से प्रकट होते हैं (अतश्च व्यवहितानामपि निमित्तनैमित्तिकभावानुच्छेदा-दानन्तर्यमेव) इस कारण दूर हुओं का भी निमित्त और नैमित्तिक भाव के बने रहने से उनमें अन्तर नहीं है (सिद्धमिति) इस प्रकार सिद्ध हुए (वासनाः संस्कारा आशया इत्यर्थः) वासना, संस्कार, आशय यह अर्थ है ॥ ९ ॥

भो० वृत्ति

इह नानायोनिषु भ्रमतां संसारिणां कांचिद्योनिमनुभूय यदा योन्यन्तरसहस्रव्यवधानेन पुनस्तामेव योनिं प्रतिपद्यते तदा तस्यां पूर्वानुभूतायां योनौ तथाविधशरीरादिव्यञ्जकापेक्षया वासना याः प्रकटीभूता आसंस्तास्ताभिव्यञ्जकाभावात्तिरोहिताः पुनस्तथाविधव्यञ्जकशरीरादिलाभे प्रकटी भवन्ति । जातिदेशकालव्यवधानेऽपि तासां स्वानुभूतस्मृत्यादिफलसाधने आनन्तर्यं नैरन्तर्यम्, कुतः, स्मृतिसंस्कारायोरेकरूपत्वात् । तथा ह्यनुष्ठीयमानात्कर्मणश्चित्तसत्त्वे वासनानुरूपः संस्कारः समुत्पद्यते । स च स्वर्गनरक-

कादीनां फलनामङ्कुरीभावः कर्मणां वा यागादीनां शक्तिरूपतयाऽवस्थानम् । कर्तुर्वा तथाविधभोग्यभोक्तृत्वरूपं सामर्थ्यम् । संस्कारात्स्मृतिः स्मृतेश्च सुखदुःखोपभोगस्तदनुभवाच्च पुनरपि संस्कारस्मृत्यादयः । एवं च यस्य स्मृतिसंस्कारादयो भिन्नास्तस्याऽऽनन्तर्याभावे दुर्लभः कार्यकारणभावः । अस्माकं तु यदाऽनुभव एव संस्कारी भवति संस्कारश्च स्मृतिरूपतया परिणमते तदैकस्यैव चित्तस्यानुसंधातृत्वेन स्थितत्वात्कार्यकारणभावो न दुर्घटः ॥ ९ ॥

भवत्वानन्तर्यं कार्यकारणभावश्च वासनानां यदा तु प्रथममेवानुभवः प्रवर्तते तदा किं वासनानिमित्त उत निर्निमित्त इति शङ्कां व्यपनेतुमाह—

भो० वृ० पदार्थ

(इह नानायोनिषु भ्रमतां संसारिणां) इस जगत् में नाना योनियों में भ्रमित होते हुए संसारी जीव (कांचिद्योनिमनुभूय) किसी योनि को अनुभव करके (यदा योन्यन्तरसहस्रव्यवधानेन पुनस्तामेव योनिं प्रतिपद्यते) जब सहस्रों दूसरी योनियों का बीच में व्यवधान होने से भी फिर उसी योनि को प्राप्त होता है (तदा तस्यां पूर्वानुभूतायां योनौ तथाविधशरीरादिव्यञ्जकापेक्षया वासनाः) तब उस पूर्व की योनि में अनुभव की हुई वासना वैसे ही शरीरादि को प्रकाश करने की अपेक्षा से (याः प्रकटीभूताः) जो प्रकट हुई (आसंस्तास्तथाविधव्यञ्जकाभावात्तिरोहिताः) रहती हैं वह उस प्रकार के प्रकाशक कर्म के अभाव होने के कारण छिपी रहती हैं (पुनस्तथाविधव्यञ्जकशरीरादिलाभे प्रकटी भवन्ति) फिर उसी प्रकार के प्रकाशक शरीरादि के लाभ होने पर प्रकट होती हैं । (जातिदेशकालव्यवधानेऽपि तासां स्वानुभूत स्मृत्यादिफलसाधने आनन्तर्यं नैरन्तर्यम्) जाति—देश—काल का अन्तर होने पर भी उनकी अपनी अनुभव की हुई स्मृति आदि फल के देने में कभी भी दूर नहीं हैं, (कुतः, स्मृतिसंस्कारयोरेकरूपत्वात्) क्योंकि, स्मृति और संस्कारों का एकरूप होने से । (तथा ह्यनुष्ठीयमानात्कर्मणश्चित्तसत्त्वे वासनारूपः संस्कारः

समुत्पद्यते) वैसे ही कर्मों का अनुष्ठान करते हुए चित्त में वासनाओं के अनुरूप संस्कार उत्पन्न होते हैं । (स च स्वर्गनरकादीनां फलानामङ्कुरी-भावः कर्मणां वा यागादीनां शक्तिरूपतयाऽवस्थानम्) और वह संस्कार स्वर्ग नरकादि फलों के अङ्कुररूप से और यज्ञादि कर्मों के शक्तिरूप से रहते हैं । (कर्तुर्वा तथाविधभोग्य भोक्तृत्वरूपं सामर्थ्यम्) अथवा कर्ता की उसी प्रकार की भोग्य भोक्तृत्वरूप सामर्थ । (संस्कारात्स्मृतिः स्मृतेश्च सुखदुःखोपभोगस्तदनुभवाच्च पुनरपि संस्कारस्मृत्यादयः) संस्कारों से स्मृति, स्मृति से सुख–दुःख उपभोग और उस भोग के अनुभव से फिर भी संस्कार और स्मृति आदि । (एवं च यस्य स्मृतिसंस्कारादयो भिन्ना-स्तस्याऽऽनन्तर्याभावे) इस प्रकार जिसकी स्मृति संस्कार दोनों भिन्न हैं उसका आनन्तर्य अभाव होने पर (दुर्लभः कार्यकारणभावः) कार्य–कारण भाव दुर्लभ है । (अस्माकं तु यदाऽनुभव एव संस्कारी भवति संस्कारश्च स्मृतिरूपतया परिणमते) हमारा तो जब अनुभव ही संस्कारी होता है, और संस्कार स्मृतिरूप से परिणाम को प्राप्त होते हैं (तदैक-स्यैव चित्तस्यानुसंधातृत्वेन स्थितत्वात्कार्यकारणभावो न दुर्घटः) तब एक ही चित्त के अनुसंधातृत्वरूप से स्थित होने के कारण कार्य, कारण भाव दुर्घट नहीं है ॥ ९ ॥

(भवत्वानन्तर्यं कार्यकारणभावश्च वासनानां यदा तु प्रथममेवानु-भवः प्रवर्तते) कार्य, कारण भाव वासनाओं का आनन्तर्य तो तब होता है, जब कि पहला ही अनुभव प्रवर्त होता है (तदा किं वासनानिमित्त उत निर्निमित्त इति शङ्का व्यपनेतुमाह) तब क्या वासनायें निमित्तवाली होती हैं, अथवा निर्निमित्त होती हैं । इस शङ्का की निवृत्ति के लिये अगला सूत्र कहते हैं—

तासामनादित्वं चाऽऽशिषो नित्यत्वात् ॥ १० ॥

सू०—उन वासनाओं का अनादित्व पाया जाता है, आशी-र्वाद के नित्य होने से ॥ १० ॥

व्या० भाष्यम्

तासां वासनानामाशिषो नित्यत्वादनादित्वम्। येयमात्माशीर्मा न भूवं भूयासमिति सर्वस्य दृश्यते सा न स्वाभाविकी। कस्मात्। जातमात्रस्य जन्तोरननुभूतमरणधर्मकस्य द्वेषदुःखानुस्मृतिनिमित्तो मरणत्रासः कथं भवेत्। न च स्वाभाविकं वस्तु निमित्तमुपादत्ते। तस्मादनादिवासनानुविद्धमिदं चित्तं निमित्तवशात्काश्चिदेव वासनाः प्रतिलभ्य पुरुषस्य भोगायोपावर्तत इति।

घटप्रासादप्रदीपकल्पं संकोचविकासि चित्तं शरीरपरिमाणाकारमात्रमित्यपरे प्रतिपन्नाः। तथा चान्तराभावः संसारश्च युक्त इति। वृत्तिरेवास्य विभूनश्चित्तस्य संकोचविकासिनीत्याचार्यः।

तच्च धर्मादिनिमित्तापेक्षम्। निमित्तं च द्विविधम्—बाह्यमाध्यात्मिकं च। शरीरादिसाधनापेक्षं बाह्यं स्तुतिदानाभिवादनादि, चित्तमात्राधीनं श्रद्धाद्याध्यात्मिकम्। तथा चोक्तम्—ये चैते मैत्र्यादयो ध्यायिनां विहारास्ते बाह्यसाधननिरनुग्रहात्मानः प्रकृष्टं धर्ममभिनिर्वर्तयन्ति। तयोर्मानसं बलीयः। कथं, ज्ञानवैराग्ये केनातिशय्येते दण्डकारण्यं च चित्तबलव्यतिरेकेण शारीरेण कर्मणा शून्यं कः कर्तुमुत्सहेत समुद्रमगस्त्यवद्वा पिबेत्" ॥ १० ॥

व्या० भा० पदार्थ

(तासां वासनानामाशिषो नित्यत्वादनादित्वम्) आशीर्वाद के नित्य होने से उन वासनाओं का अनादित्व पाया जाता है। (येयमात्माशीर्मा न भूवं भूयासम्) जो यह अपने लिये आशीर्वाद है कि मैं कभी न होऊँ ऐसा मत हो, किन्तु मैं सदा रहूँ (इति सर्वस्य दृश्यते) यह सर्व प्राणियों का देखा जाता है (सा न स्वाभाविकी) वह स्वाभाविक नहीं है। (कस्मात्) क्योंकि। (जातमात्रस्य जन्तोरननुभूतमरणधर्मकस्य द्वेषदुःखानुस्मृतिनिमित्तो मरणत्रासः

कथं भवेत्) विना मरण दुःख को अनुभव किये तत्काल उत्पन्न हुए जन्तु को दुःख अनुभव के पीछे होने वाला स्मृति का निमित्त, मरणभय से द्वेष, किस प्रकार होवे। (न च स्वाभाविकं वस्तु, निमित्तमुपादत्ते) और स्वाभाविक वस्तु निमित्त को आश्रय नहीं करती। (तस्मादनादिवासनानुविद्धमिदं चित्तं निमित्तवशात्काश्चिदेव वासनाः प्रतिलभ्य पुरुषस्य भोगायोपावर्तत इति) इस कारण अनादि वासना में बंधा हुआ यह चित्त निमित्त के वश से किसी एक वासना को लब्ध करके पुरुष के भोग आयु प्राप्त कराता है। (घटप्रासादप्रदीपकल्पं संकोचविकासि चित्तं) घट में फैले हुए दीपकप्रकाश के समान संकोच विकास वाला चित्त है (शरीरपरिमाणाकारमात्रमित्यपरे प्रतिपन्नाः) कोई एक चित्त को शरीर के परिमाण आकारमात्र ही मानते हैं। (तथा चान्तराभावः संसारश्च युक्त इति) और वैसे ही चित्त के अन्तरभाव ही समस्त संसार है यह युक्त है, ऐसा कोई एक नास्तिक कहते हैं।

(वृत्तिरेवास्य विभूनश्चित्तस्य संकोचविकासिनीत्याचार्यः) इस चित्त की वृत्ति महान् संकोच विकाश धर्म वाली है, ऐसा आचार्य मानते हैं, संकोच = सुकुड़ना विकाश = फैलना, अर्थात् घटना बढ़ना। (तच्च धर्मादिनिमित्तापेक्षम्) और वह चित्त, धर्मादि निमित्त की अपेक्षा से घटने बढ़ने वाला है। (निमित्तं च द्विविधम्—बाह्यमाध्यात्मिकं च) और धर्मादि निमित्त बाह्य-आध्यात्मिक भेद से दो प्रकार का है। (शरीरसाधनापेक्षं बाह्यं स्तुतिदानाभिवादनादि) शरीर साधन की अपेक्षा से स्तुति, दान, अभिवादआदि "बाह्य" हैं, (चित्तमात्राधीनं श्रद्धाद्याध्यात्मिकम्) चित्तमात्र के आधीन श्रद्धा, वीर्य, स्मृति, समाधि, प्रज्ञा "आध्यात्मिक" हैं। (तथा चोक्तम्) वैसा ही कहा है—(ये चैते मैत्र्यादयो ध्यायिनां विहारास्ते बाह्यसाधननिरनुग्रहात्मानः प्रकृष्टं धर्ममभिनि-

वर्तयन्ति) जो मैत्री आदि के द्वारा व्यवहार करने वालों के व्यवहार हैं वह बाह्य साधन स्वार्थ रहित अति उत्तम धर्म को प्रकाशित कर देते हैं। (तयोर्मानसं बलीयः) उन दोनों में मानस साधन बलवान है। (कथं) किस प्रकार, (ज्ञानवैराग्ये केनातिशय्येते) ज्ञान—वैराग्य धर्म से अति कौन है।

(दण्डकारण्यं च चित्तबलव्यतिरेकेण शरीरेण कर्मणा शून्यं कः कर्तुमुत्सहेत) चित्त बल के विना दण्डक बन को शारीरिक कर्म से कौन शून्य करने को उत्साहित हो, (समुद्रमगस्त्यवद्वा पिबेत्) और अगस्त के समान समुद्र को कौन पिवे।

यहां यह तो प्रत्यक्ष से ही सिद्ध हो गया कि अगस्त के समान समुद्र को पीना और दण्डक बन का शून्य करना सर्वथा पौराणिक कहानी है, किसी पौराणिक ने ही इसको यहां रख कर अपना मन प्रसन्न किया है, यहां तो ज्ञान वैराग्य का प्रकरण था कि आन्तर्य चित्त शुद्धि रूप बल से योगी को परमात्म पर्यन्त साक्षात्कार होता है। इस लिये बाह्य साधनों से यह साधन महान है, न कि दण्डक बन और समुद्र पीने की कहानी यहां लिखनी चाहिये थी, कहां तक कहें हमने ऐसे अनेक स्थानों पर विचार पूर्वक जाना है और सत्य लिखा है कि इस भाष्य में अधिक वा न्यून पौराणिकों ने अपना मत और नवीन वेदान्तियों ने अपना किन्हीं सूत्रों के भाष्यान्त में लगा ही दिया है इस कारण वह त्याज्य है॥ १०॥

भो० वृत्ति

तासां वासनानामनादित्वं—न विद्यत आदिर्यस्य तस्य भावस्तत्त्वं, तासामादिर्नास्तीत्यर्थः। कुत इत्यत आह—आशिषो नित्यत्वात्। येयमाशीर्महामोहरूपा सदैव सुखसाधनानि मे भूयासुर्मा कदाचन तैर्मे वियोगो भूदिति यः संकल्पविशेषो वासनानां कारणं तस्य नित्यत्वादना-

दित्वादित्यर्थः । एतदुक्तं भवति—कारणस्य संनिहितत्वादनुभवसंस्कारादीनां कार्याणां प्रवृत्तिः केन वार्यते, अनुभवसंस्काराद्यनुविद्धं संकोचविकाशधर्मि चित्तं तत्तदभिव्यञ्जकलाभात्तत्तत्फलरूपतया परिणमत इत्यर्थः ॥ १० ॥

तासामानन्त्याद्धानं कथं संभवतीत्याशङ्क्य हानोपायमाह—

भा० वृ० पदार्थ

(तासां वासनानामनादित्वं) उन वासनाओं का अनादित्व है (न विद्यत आदिर्यस्य तस्य भावस्तत्त्वं) नहीं है आदि जिसका, उसका भाव = यथार्थ स्वरूप, (तासामादिर्नास्तित्यर्थः) उनका आदि नहीं है यह अर्थ है । (कुत इत्यत आह) किस प्रकार ? इस शङ्का के निवार्णार्थ कहते हैं–(आशिषो नित्यत्वात्) आशीर्वाद के नित्य होने से । (येयमाशीर्महामोहरूपा सदैव सुखसाधनानि मे भूयासुः) जो यह आशीर्वाद महामोह रूपी कि मेरे सुख साधन सदैव बने रहें (मा कदाचन तैर्मे वियोगो भूदिति) उनसे मेरा वियोग कभी न हो (यः संकल्पविशेषो वासनानां कारणं तस्य नित्यत्वादनादित्वादित्यर्थः) जो यह वासनाओं का कारण संकल्प विशेष है उसके नित्य अनादि होने से यह अर्थ है । (एतदुक्तं भवति) सारांश यह है कि—(कारणस्य संनिहितत्वादनुभवसंस्कारादीनां कार्याणां प्रवृत्तिः केन वार्यते) संकल्परूप कारण के समीप विद्यमान होने से अनुभव किये संस्कारादि कार्यों की प्रवृत्ति किसी कारण से नहीं निवृत्त की जाती, (अनुभवसंस्काराद्यनुविद्धं संकोचविकाशधर्मि चित्तं) अनुभव संस्कारादि से युक्त चित्त संकोच विकाश धर्मवाला है (तत्तदभिव्यञ्जकलाभात्तत्तत्फलरूपतया परिणमत इत्यर्थः) उस २ प्रकाशक कर्म और वासना के लाभ से उस २ फल रूपता से परिणाम को प्राप्त होता है, यह अर्थ है ॥ १० ॥

(तासामानन्त्याद्धानं कथं संभवतीत्याशङ्क्य हानोपायमाह) उन

वासनाओं के अनन्त होने से किस प्रकार उनका त्याग होगा यह शङ्का करके वासनाओं के त्याग का उपाय अगले सूत्र से कहते हैं—

हेतुफलाश्रयालम्बनैः संगृहीतत्वादेषामभावे तदभावः ॥ ११ ॥

सू०—वासनायें हेतु, फल, आश्रय, आलम्बन द्वारा गृहीत होने के कारण इन हेतु आदि के अभाव होने से उन वासनाओं का भी अभाव हो जाता है ॥ ११ ॥

व्या० भाष्यम्

हेतुर्धर्मात्सुखमधर्माद्दुःखं, सुखाद्रागो दुःखाद्द्वेषस्ततश्च प्रयत्नस्तेन मनसा वाचा कायेन वा परिस्पन्दमानः परमनुगृह्णात्युपहन्ति वा ततः पुनर्धर्माधर्मौ सुखदुःखे रागद्वेषाविति प्रवृत्तमिदं षडरं संसारचक्रम्। अस्य च प्रतिक्षणमावर्तमानस्याविद्या नेत्री मूलं सर्वक्लेशानामित्येष हेतुः। फलं तु यमाश्रित्य यस्य प्रत्युत्पन्नता धर्मादेः, न ह्यपूर्वोपजनः। मनस्तु साधिकारमाश्रयो वासनानाम्। न ह्यवसिताधिकारे मनसि निराश्रया वासनाः स्थातुमुत्सहन्ते। यदभिमुखीभूतं वस्तु यां वासनां व्यनक्ति तस्यास्तदालम्बनम्। एवं हेतुफलाश्रयालम्बनैरेतैः संगृहीताः सर्वा वासनाः। एषामभावे तत्संश्रयाणामपि वासनानामभावः ॥ ११ ॥

नास्त्यसतः संभवः, न चास्ति सतो विनाश इति द्रव्यत्वेन संभवन्त्यः कथं निवर्तिष्यन्ते वासना इति—

व्या० भा० पदार्थ

(हेतुर्धर्मात्सुखमधर्माद्दुःखं) "हेतु" यह है कि धर्म से सुख और अधर्म से दुःख, (सुखाद्रागो दुःखाद्द्वेषस्ततश्च प्रयत्नस्तेन मनसा वाचा कायेन वा परिस्पन्दमानः) सुख से राग

दुःख से द्वेष, उन राग द्वेष के कारण प्रयत्न उस कारण मन वाणी शरीर से चेष्टा करता हुआ (परमनुगृह्णात्युपहन्ति वा) दूसरों पर दया करता वा उनकी हानि करता (ततः पुनधर्माधर्मौ सुखदुःखे रागद्वेषौ) उससे फिर धर्म-अधर्म और सुख-दुःख राग-द्वेष (इति प्रवृत्तमिदं षडरं संसारचक्रम्) इस प्रकार यह छः अरों वाला संसार चक्र चलता है । (अस्य च प्रतिक्षणमावर्तमानस्याविद्या नेत्री मूलं सर्वक्लेशानामित्येष हेतुः) प्रतिक्षण घूमते हुए इस चक्र की अविद्या ही चलाने वाली है वह ही सर्वक्लेशों का मूल है, इस कारण यही "हेतु" है ।

(फलं तु यमाश्रित्य यस्य प्रत्युत्पन्नता धर्मादे न ह्यपूर्वोपजनः) फल तो यह है कि जिसको आश्रय करके धर्मादि की तत्काल उत्पत्ति हो उससे पूर्व उत्पत्ति न हो अर्थात् अमुक कार्य करने से अमुक फल होगा इस प्रकार का विचार जिस वस्तु विषयक हो वह ही "फल" है ।

(मनस्तु साधिकारमाश्रयो वासनानाम्) अधिकार सहित मन वासनाओं का "आश्रय" है । (न ह्यवसिताधिकारे मनसि निराश्रया वासना स्थातुमुत्सहन्ते) समाप्त हो गई हैं फल भोगरूप सामर्थ जिस मन की उसमें वह निराश्रय वासना नहीं ठहर सकतीं । (यदभिमुखीभूतं वस्तु यां वासनां व्यनक्ति तस्यास्तदालम्बनम्) जो वस्तु सन्मुख हुई जिस वासना को प्रकट करती है उसका वही "आलम्बन" है । (एवं हेतुफलाश्रयालम्बनैरेतैः संगृहीताः सर्वा वासनाः) इस प्रकार इन हेतु फल आश्रय आलम्बनों से गृहीत सर्व वासनायें हैं । (एषामभावे तत्संश्रयाणामपि वासनानामभावः) इन हेतु आदि चारों के अभाव होने पर उनके आश्रित रहने वाली वासनाओं का भी अभाव हो जाता है ॥ ११ ॥

(नास्त्यसतः संभवः, न चास्ति सतो विनाश इति द्रव्यत्वेन

संभवन्त्यः कथं निवर्तिष्यन्ते वासना इति) अभाव का कभी भाव नहीं होता और भाव पदार्थ का कभी नाश नहीं होता, इस नियमानुसार द्रव्यरूप से रहती हुई वासनायें किस प्रकार निवृत्त होंगी इसका समाधान अगले सूत्र से करते हैं—

भो० वृत्ति

वासनानामनन्तरानुभवो हेतुस्तस्याप्यनुभवस्य रागादस्तेषामविद्येति साक्षात्पारम्पर्येण हेतुः । फलं शरीरादि स्मृत्यादि च । आश्रयो बुद्धिसत्त्वम् आलम्बनं यदेवानुभवस्य तदेव वासनानामतस्तैर्हेतुफलाश्रयालम्बनैरनन्तानामपि वासनानां संगृहीतत्वात्तेषां हेत्वादीनामभावे ज्ञानयोगाभ्यां दग्धबीजकल्पत्वे विहिते निर्मलत्वान्न वासनाः प्ररोहन्ति न कार्यमारभन्त इति तासामभावः ॥ ११ ॥

ननु प्रतिक्षणं चित्तस्य नश्वरत्वाद्भेदोपलब्धेः वासनानां तत्फलानां च कार्यकारणभावेन युगपदभावित्वाद्भेदे कथमेकत्वमित्याशङ्क्यैकत्वसमर्थनायाऽऽह—

भो० वृ० पदार्थ

(वासनानामनन्तरानुभवो हेतुः) वासनाओं का हेतु पूर्व जन्म का अनुभव है (तस्याप्यनुभवस्य रागादस्तेषामविद्येति) उस अनुभव का भी कारण रागादि हैं, और उन रागादि का भी अविद्या (साक्षात्पारम्पर्येण हेतुः) साक्षात् कारण है, अन्य परम्परा से हैं । (फलं शरीरादि स्मृत्यादि च) फल शरीरादि और स्मृति आदि हैं । (आश्रयो बुद्धिसत्त्वम्) बुद्धि आश्रय है । (आलम्बनं यदेवानुभवस्य तदेव वासनानाम्) जो अनुभव का आलम्बन है वही वासनाओं का आलम्बन है (अतस्तैर्हेतुफलाश्रयालम्बनैरनन्तानामपि वासनानां संगृहीतत्वात्) इस कारण हेतु, फल, आश्रय, आलम्बन द्वारा अनन्त वासनाओं का ग्रहण होने से (तेषां हेत्वादीनामभावे ज्ञानयोगाभ्यां दग्धबीजकल्पत्वे विहिते निर्मलत्वान्न वासनाः प्रो-

हन्ति) उन हेतु आदि के अभाव होनेपर ज्ञान योग द्वारा दग्धबीज के समान होने पर ऊपर कहे अनुसार चित्त के निर्मल होने से फिर वासना उत्पन्न नहीं होतीं (न कार्यमारभन्त इति तासामभावः) फिर कार्य को आरम्भ नहीं करती यही उन का अभाव है ॥ ११ ॥

(ननु प्रतिक्षणं चित्तस्य नश्वरत्वाद्भेदोपलब्धेः) प्रतिक्षणं चित्त के विनाशी होने से और भेद के उपलब्ध होने पर (वासनानां तत्फलानां च कार्यकारणभावेन युगपद्भावित्वाद्भेदे) वासना और उन के फलों का कार्य कारण भाव से एक साथ न होने से भेद होने पर (कथमेकत्वमित्याशङ्क्यैकत्वसमर्थनायाऽऽह) किस प्रकार एकत्व है इस शङ्का को करके एकत्व समर्थन के लिये आगे कहते हैं—

अतीतानागतं स्वरूपतोऽस्त्यध्वभेदाद्धर्माणाम् ॥ १२ ॥

सू०—धर्मों का भूत, भविष्यत्, वर्तमानरूप मार्ग भेद होने से वस्तु अतीत, अनागत काल में भी द्रव्यरूप से विद्यामान् रहती हैं ॥ १२ ॥

व्या० भाष्यम्

भविष्यद्व्यक्तिकमनागतमनुभूतव्यक्तिकमतीतं स्वव्यापारोपारूढं वर्तमानं, त्रयं चैतद्वस्तु ज्ञानस्य ज्ञेयम् । यदि चैतत्स्वरूपतो नाभविष्यन्नेदं निर्विषयं ज्ञानमुदपत्स्यत । तस्मादतीतानागतं स्वरूपतोऽस्तीति । किंच भोगभागीयस्य वाऽपवर्गभागीयस्य वा कर्मणः फलमुत्पित्सु यदि निरुपाख्यमिति तदुद्देशेन तेन निमित्तेन कुशलानुष्ठानं न युज्यते । सतश्च फलस्य निमित्तं वर्तमानीकरणे समर्थं नापूर्वोपजनने । सिद्धं निमित्तं नैमित्तिकस्य विशेषानुग्रहणं कुरुते नापूर्वमुत्पादयतीति ।

धर्मी चानेकधर्मस्वभावस्तस्य चाध्वभेदेन धर्माः प्रत्यवस्थिता

न च यथा वर्तमानं व्यक्तिविशेषापन्नं द्रव्यतोऽस्त्येयमतीतमनागतं च। कथं तर्हि, स्वेनैव व्यङ्ग्येन स्वरूपेणानागतमस्ति। स्वेन चानुभूतव्यक्तिकेन स्वरूपेणातीतमिति। वर्तमानस्यैवाध्वनः स्वरूपव्यक्तिरिति न सा भवत्यतीतानागतयोरध्वनोः। एकस्य चाध्वनः समये द्वावध्वानौ धर्मिसमन्वागतौ भवत एवेति नाभूत्वा भावस्त्रयाणामध्वानामिति ॥ १२ ॥

व्या० भा० पदार्थ

(भविष्यद्व्यक्तिकमनागतम्) भविष्यत् में स्थूलरूपता जिस की हो वह अनागत स्वरूप है (अनुभूतव्यक्तिकमतीतं) जो अनुभव हो चुका वह अतीतरूप (स्वव्यापारोपारूढं वर्तमानं) अपने व्यापार में जो आरूढ़ वह वर्तमान है, (त्रयं चैतद्वस्तु ज्ञानस्य ज्ञेयम्) यह तीनों वस्तु के ज्ञान में अवश्य प्रथम जानने योग्य हैं। (यदि चैतत्स्वरूपतो नाभविष्यन्नेदं निर्विषयं ज्ञानमुत्पत्स्यत) यदि यह भूत, भविष्यत्, वर्तमान तीनों काल में वस्तु न हो तो यह निर्विषय ज्ञान भी उत्पन्न न होवे। (तस्मादतीतानागतं स्वरूपतोऽस्तीति) इस कारण अतीत, अनागत स्वरूप से भी वस्तु विद्यमान् रहती है। (किं च भोगभागीयस्य वाऽपवर्गभागीयस्य वा कर्मणः फलमुत्पित्सु यदि निरुपाख्यमिति) और यह कि भोगों के भागी वा मोक्ष के भागी पुरुष कर्मफल की इच्छा करनेवाले यदि वह भोग, मोक्ष ज्ञान का विषय न हो अर्थात् उनका अभाव हो तो (तदुद्देशेन तेन निमित्तेन कुशलानुष्ठानं न युज्येत) उस के उद्देश्य से उस निमित्त से बुद्धिमान् पुरुष उस के अनुष्ठान करने में युक्त न होवें। (सतश्च फलस्य निमित्तं वर्तमानीकरणे समर्थं) फल के सत्य होते हुए निमित्त वर्तमान होते हुए कर्म करने में समर्थ होता है (नापूर्वोपजनने) विना कारण के फल उत्पन्न करने में नहीं समर्थ होता। (सिद्धं निमित्तं नैमित्तिकस्य विशेषानुग्रहणं कुरुते) सिद्ध

निमित्त के कारण नैमित्तिक का विशेषरूप से ग्रहण किया जाता है (नापूर्वमुत्पादयतीति) विना कारण के फल को नहीं प्राप्त कर सक्ता।

(धर्मी चानेकधर्मस्वभावः) चित्त धर्मी अनेक धर्म स्वभाव वाला है (तस्य चाध्वभेदेन धर्माः प्रत्यवस्थिताः) उस के भूत, भविष्यत्, वर्तमान तीन मार्ग भेद से धर्म स्थित हैं। (न च यथा वर्तमानं व्यक्तिविशेषापन्नं द्रव्यतोऽस्त्येवमतीतमनागतं च) जैसे वर्तमान काल में व्यक्ति विशेष को धर्मी प्राप्त हुआ द्रव्य रूप से रहता है वैसा अतीत, अनागत में द्रव्यरूप से नहीं रहता। (कथं तर्हि) तब फिर किस प्रकार है? यह कहते हैं, (स्वेनैव व्यङ्ग्येन स्वरूपेणानागतमस्ति) अपने विशेष प्रकट होने योग्य रूप से अनागत है (स्वेन चानुभूतव्यक्तिकेन स्वरूपेणातीतमिति) अपने अनुभूत रूप से अतीत है। (वर्तमानस्यैवाध्वनः स्वरूपव्यक्तिरिति) वर्तमान काल में ही स्वरूप की प्रकटता है (न सा भवत्यतीतानागतयोरध्वनोः) और वह प्रकटता अतीत, अनागत काल में नहीं होती। (एकस्य चाध्वनः समये द्वावध्वानौ धर्मिसमन्वागतौ भवत एवेति) एक ही मार्ग में इकट्ठे हुए दोनों मार्ग धर्मी में मिले हुए ही रहते हैं (नाभूत्वा भावस्त्रयाणामध्वनामिति) काल के तीन भेद न होते हुए, भाव पदार्थ नहीं होता ॥ १२ ॥

सूचना

इस सूत्र के भाष्य में अतीत अनागत को सूक्ष्म होने से एक मार्ग में गिना है, अर्थात् सूक्ष्म नाम से ही दोनों को कहा है। व्यक्त अर्थात् स्थूलरूप से वर्तमान को माना है, ऐसा ही अगले सूत्र में वर्णन करेंगे ॥ १२ ॥

भो० वृत्ति

इहात्यन्तमसतां भावानामुत्पत्तिर्न युक्तिमती तेषां सत्त्वसम्बन्धायोगात्। न हि शशविषाणादीनां क्वचिदपि सत्त्वसंबन्धो दृष्टः। निरुपाख्ये च कार्ये

किमुद्दिश्य कारणानि प्रवर्तेरन्। न हि विषयमनालोच्य कश्चित्प्रवर्तते। सतामपि विरोधान्नाभावसम्बन्धोऽस्ति। यत्स्वरूपेण लब्धसत्ताकं तत्कथं निरुपाख्यतामभावरूपतां वा भजते न निरुद्धं रूपं स्वीकारोतीत्यर्थः—तस्मात्सतामभावसंभवादसतां चोत्पत्त्यसंभवात्तैस्तैर्धर्मैर्विपरिणममानो धर्मी सदैवैकरूपतयाऽवतिष्ठते। धर्मास्तु तत्रैव त्र्यधिकत्वेन त्रैकालिकत्वेन व्यवस्थिताः स्वस्मिन्स्वस्मिन्नध्वनि व्यवस्थिता न स्वरूपं त्यजन्ति। वर्तमानेऽध्वनि व्यवस्थिताः केवलं भोग्यतां भजन्ते,—तस्माद्धर्माणामेवातीतानागताद्यध्वभेदस्तेनैव रूपेण कार्यकारणभावोऽस्मिन्दर्शने प्रतिपाद्यते। तस्मादपवर्गपर्यन्तमेकमेव चित्तं धर्मितयाऽनुवर्तमानं न निह्नोतुं पार्यते॥ १२॥

त एते धर्मधर्मिणः किंरूपा इत्यत आह—

भो० वृ० पदार्थ

(इहात्यन्तमसतां भावानामुत्पत्तिर्न युक्तिमती तेषां सत्त्वसम्बन्धायोगात्) संसार में अत्यन्त असत् पदार्थों की उत्पत्ति युक्त नहीं है, क्योंकि वह बुद्धि के साथ सम्बन्ध के योग्य न होने से। (न नि शशविषाणादीनां क्वचिदपि सत्त्वसंबन्धो दृष्टः) क्योंकि शशविषाण = खरगोशादि के सींगों का कहीं भी बुद्धि से सम्बन्ध नहीं देखा जाता। (निरुपाख्ये च कार्ये किमुद्दिश्य कारणानि प्रवर्तेरन्) असत् कार्य में किस उद्देश्य से कारण द्वारा प्रवर्त हो। (न हि विषयमनालोच्य कश्चित्प्रवर्तते) विषय को विचारे विना कोई भी बुद्धिमान् उसमें प्रवर्त नहीं होता। (सतामपि विरोधान्नाभावसम्बन्धोऽस्ति) अभाव का बुद्धि से सम्बन्ध नहीं होता क्योंकि भाव अभाव दोनों में विरोध होने से। (यत्स्वरूपेण लब्धसत्ताकं तत्कथं निरूपाख्यतामभावरूपतां वा भजते न विरुद्धं रूपं स्वीकारोतीत्यर्थः) जो स्वरूप से विद्यमान वस्तु है, वह किस प्रकार प्रतिती के अयोग्य अभाव रूपता को प्राप्त होवे क्योंकि विरुद्धरूप को स्वीकार नहीं करता, यह अर्थ है। (तस्मात्सतामभावासंभवादसतां चोत्पत्त्यसंभवात्तैस्तैर्धर्मैर्विपरिणाममानो धर्मी सदैवैकरूपतयाऽवतिष्ठते) इस कारण सत् का अभाव असम्भव होने से और असत्

पदार्थ की उत्पत्ति न हो सकने से उस २ धर्म से परिणाम को प्राप्त होते हुए धर्मी सदैव एकरूपता से रहता है। (धर्मास्तु तत्रैव त्र्यधिकत्वेन त्रैकालिकत्वेन व्यवस्थिताः) धर्म तो उसी धर्मी में तीनों काल तीन से अधिक नहीं रहते (स्वस्मिन्स्वस्मिन्नध्वनि व्यवस्थिता न स्वरूपं त्यजन्ति) अपने २ मार्ग में रहते हुए स्वरूप को नहीं त्यागते हैं (वर्तमानेऽध्वनि व्यवस्थिताः केवलं भोग्यतां भजन्ते) वर्तमान मार्ग में रहते हुए केवल भोग्यता को प्राप्त रहते हैं,—(तस्माद्धर्माणामेवातीतानागताद्यध्वभेदस्तेनैव रूपेण कार्यकारणभावोऽस्मिन्दर्शने प्रतिपाद्यते) इस कारण धर्मों का ही अतीत अनागतादि रूप से मार्ग भेद है, उसी रूप से कार्य कारण भाव इस दर्शन में प्रतिपादन किया जाता है। (तस्मादपवर्गपर्यन्तमेकमेवं चित्तं धर्मितयाऽनुवर्तमानं न निह्नोतुं पार्यते) इस कारण मोक्ष पर्यन्त एक ही चित्त धर्मीरूप से वर्तते हुए को छिपा नहीं सकते ॥१२॥

(त एते धर्मधर्मिणः किंरूपा इत्यत आह) वह यह धर्म, धर्मी किस रूप वाले हैं, इस कारण अगला सूत्र कहते हैं—

ते व्यक्तसूक्ष्मा गुणात्मानः ॥ १३ ॥

सू०—वह धर्म स्थूल, सूक्ष्म दोनों रूपों वाले तीन गुण स्वरूप ही हैं ॥ १३ ॥

व्या० भाष्यम्

ते खल्वमी त्र्यध्वानो धर्मा वर्तमान व्यक्तात्मनोऽतीतानागताः सूक्ष्मात्मानः षडविशेषरूपाः। सर्वमिदं गुणानां सन्निवेशविशेषमात्रमिति परमार्थतो गुणात्मानः। तथा च शास्त्रानुशासनम्—

"गुणानां परमं रूपं न दृष्टिपथमृच्छति ।
यत्तु दृष्टिपथं प्राप्तं तन्मायेव सुतुच्छकम्" इति ॥ १३ ॥

यदा तु सर्वे गुणाः कथमेकः शब्द एकमिन्द्रियमिति—

व्या० भा० पदार्थ

(ते खल्वमीत्र्यध्वानो धर्मा) निश्चय वह धर्म तीन मार्गों वाले हैं (वर्तमाना व्यक्तात्मानोऽतीतानागताः सूक्ष्मात्मानः) वर्तमान स्थूल रूप हैं, अतीत, अनागत सूक्ष्मरूप हैं, (षडविशेषरूपाः) वह छः अविशेषरूप हैं। (सर्वमिदं गुणानां सन्निवेशविशेषमात्रमिति) यह सब गुणों का ही परिणाम विशेषमात्र है (परमार्थतो गुणात्मानः) यथार्थ में तो सब पदार्थ गुणरूप ही हैं। (तथा च शास्त्रानुशासनम्) वैसा ही शास्त्र का उपदेश है कि—

(गुणाना परमं रूपं न दृष्टिपथमृच्छति
यत्तु दृष्टिपथं प्राप्तं तन्मायेव सुतुच्छकम्। इति)

कारणरूप गुण देखने में नहीं आसक्ते और जो दीखते हैं, वह माया अर्थात् प्रकृती के विनाशी कार्यरूप हैं॥ १३॥

(यदा तु सर्वे गुणाः कथमेकः शब्द एकमिन्द्रियमिति) जब सर्व पदार्थ गुणरूप ही हैं तो फिर यह कैसे कहा जाता है कि यह एक शब्द है, यह एक इन्द्रिय है—

भो० वृत्ति

य एते धर्मधर्मिणः प्रोक्तास्ते व्यक्तसूक्ष्मभेदेन व्यवस्थिता गुणाः सत्त्वरजस्तमोरूपास्तदात्मानस्तत्स्वभावस्तत्परिणामरूपा इत्यर्थः। यतः सत्त्वरजस्तमोभिः सुखदुःखमोहरूपैः सर्वासां बाह्याभ्यन्तरभेदभिन्नानां भावव्यक्तीनामन्वयानुगमो दृश्यते। यद्यदन्वयि तत्तत्परिणामिरूपं दृष्टं यथा—घटादयो मृदन्विता मृत्परिणामरूपाः॥ १३॥

यद्येते त्रयो गुणाः सर्वत्र मूलकारणं कथमेको धर्मीति व्यपदेश इत्याशङ्कयाऽऽह—

भो० वृ० पदार्थ

(य एते धर्मधर्मिणः प्रोक्तास्ते व्यक्तसूक्ष्मभेदेन व्यवस्थिता गुणाः जो यह धर्म, धर्मी ऊपर कहे गये वह स्थूल—सूक्ष्म भेद से गुण (सत्त्वर-

जस्तमोरूपास्ततदात्मानस्तत्स्वभावस्तत्परिणामरूपा इत्यर्थः) सत्त्व, रज, तम रूप हैं, अर्थात् सत्त्व, रज, तम ही रूप और उन के ही स्वरूप परिणाम हैं, यह अर्थ है, (यतः सत्त्वरजस्तमोभिः सुखदुःखमोहरूपैः सर्वासां बाह्याभ्यन्तरभेदभिन्नानां भावव्यक्तीनामन्वयानुगमो दृश्यते) जिस कारण सत्त्व, रज, तम से ही सुख—दुःख, मोहरूप सर्व बाह्य, आभ्यन्तर भेद वाले भाव व्यक्तियों की कार्यता देखी जाती है । (यद्यदन्वयि तत्तत्परिणामिरूपं दृष्टं) जो २ कार्य हैं, वह सब परिणामिरूप देखे गये (यथा—घटादयो मृदन्विता मृत्परिणामरूपाः) जैसे घटादि मिट्टी का कार्य मिट्टी का परिणाम हैं ॥ १३ ॥

(यद्येते त्रयो गुणाः सर्वत्र मूलकारणं) जब यह तीनों गुण सम्पूर्ण कार्य पदार्थों का मूल कारण हैं (कथमेको धर्मीति व्यपदेशः) फिर किस प्रकार एक धर्मी रूप से कहा गया ? (इत्याशङ्क्याऽऽह) इस शङ्का के निवारणार्थ आगे कहते हैं—

परिणामैकत्वाद्वस्तुतत्त्वम् ॥ १४ ॥

सू०—एकत्वरूप परिणाम होने से वस्तु एक कही जाती है ॥ १४ ॥

व्या० भाष्यम्

प्रख्याक्रियास्थितिशीलानां गुणानां ग्रहणात्मकानां करणभावेनैकः परिणामः श्रोत्रमिन्द्रियं, ग्राह्यात्मकानां शब्दतन्मात्रभावेनैकः परिणामः शब्दो विषय इति, शब्दादीनां मूर्तिसमानजातीयानामेकः परिणामः पृथिवीपरमाणुस्तन्मात्रावयवस्तेषां चैकः परिणामः पृथिवी गौर्वृक्षः पर्वत इत्येवमादिर्भूतान्तरेष्वपि स्नेहौष्ण्यप्रणामित्वावकाशदानान्युपादाय सामान्यमेकविकारारम्भः समाधेयः ।

नास्त्यर्थो विज्ञानविसहचरः । अस्ति तु ज्ञानमर्थविसहचरं स्वप्नादौ कल्पितमित्यनया दिशा ये वस्तुस्वरूपमपह्नुवते ज्ञानपरिकल्पनामात्रं वस्तु स्वप्नविषयोपमं न परमार्थतोऽस्तीति य आहुस्ते

तथेति प्रत्युपस्थितमिदं स्वमाहात्म्येन वस्तु कथमप्रमाणात्मकेन विकल्पज्ञानबलेन वस्तुस्वरूपमुत्सृज्य तदेवापलपन्तः श्रद्धेयवचनाः स्युः ॥ १४ ॥

कुतश्चैतदन्याय्यम्—

व्या॰ भा॰ पदार्थ

(प्रख्याक्रियास्थितिशीलानां गुणानां ग्रहणात्मकानां करणभावेनैकः परिणामः श्रोत्रमिन्द्रियम्) ज्ञान, क्रिया, स्थिति स्वभाव वाले गुणों का ग्रहण शक्ति अर्थात् इन्द्रियरूप से एक परिणाम श्रोत्रेन्द्रिय है, (ग्राह्यात्मकानां शब्दतन्मात्रभावेनैकः परिणामः शब्दो विषय इति) ग्राह्य शब्द तन्मात्रारूप से एक परिणाम शब्द, श्रोत्रेन्द्रिय का विषय है, (शब्दादीनां मूर्तिसमानजातीयानामेकः परिणामः पृथिवी) शब्दादियों की मूर्ति आकाशादि समान जाति वालों का एक परिणाम पृथिवी है (परमाणुस्तन्मात्रावयवः) परमाणु तन्मात्राओं के अवयव हैं। (तेषां चैकः परिणामः पृथिवी, गौर्वृक्ष, पर्वत इत्येवमादिः) और उन तन्मात्राओं ही के परिणाम पृथिवी, गौ, वृक्ष, पर्वतादि हैं। (भूतान्तरेष्वपि स्नेहौष्ण्यप्रणामित्वावकाशदानान्युपादाय सामान्यमेकविकारारम्भः समाधेयः) पृथ्वी से अन्य, चारों भूतों में भी स्नेह, उष्णय, प्रणामित्व, अवकाशदानादि को ग्रहण करके सामान्य एक विकार की उत्पत्ति इसी प्रकार जानलेनी चाहिये।

(नास्त्यर्थो विज्ञानविसहचरः) अर्थ ज्ञान के आश्रित नहीं है। (अस्ति तु ज्ञानमर्थविसहचरं) किन्तु ज्ञान अर्थ के आश्रय है (स्वप्नादौ कल्पितमित्यनया दिशा ये वस्तुस्वरूपमपह्नुवते) स्वप्नादि में कल्पित ज्ञान है, इसके आश्रय से अन्य दशा में जो नास्तिक विज्ञानवादी वस्तु के स्वरूप का अभाव कहते हैं कि (ज्ञानपरिकल्पनामात्रं वस्तु) ज्ञान की कल्पनामात्र ही वस्तु है, वास्तविक

कुछ नहीं (स्वप्नविषयोपमं) स्वप्न विषय के समान है (न परमार्थतोऽस्तीति य आहुः) यथार्थ में नहीं है ऐसा जो कहते हैं (ते तथेति) वह भी उनके ही समान नास्तिक हैं (प्रत्युपस्थितमिदं स्वमाहात्म्येन वस्तु कथमप्रमाणात्मकेन विकल्पज्ञानबलेन वस्तुस्वरूपमुत्सृज्य तदेवापलपन्तः) क्योंकि अपने महत्व से जो यह वस्तु विद्यमान है किस प्रकार अप्रमाणरूप विकल्प ज्ञान के बल से वस्तु के स्वरूप को उत्पन्न करके वही फिर अभाव कहते हैं (श्रद्धेयवचनाः स्युः) तत्त्व निर्णय करने में श्रद्धा करने योग्य वचन होने चाहियें ॥ १४ ॥

(कुतश्चैतदन्याय्यम्) कौनसा इस विषय में यथार्थ नियम है, इसको आगे दिखलाते हैं—

भो० वृत्ति

यद्यपि त्रयो गुणास्तथाऽपि तेषामङ्गाङ्गिभावगमनलक्षणो यः परिणामः क्वचित्सत्त्वमङ्गि क्वचिद्रजः क्वचिच्च तम इत्येवंरूपस्तस्यैकत्वाद्वस्तुनस्तत्त्वमेकत्वमुच्यते । यथेयं पृथिवी, अयं वायुरित्यादि ॥ १४ ॥

ननु च ज्ञानव्यतिरिक्ते सत्यर्थे वस्त्वेकमनेकं वा वक्तुं युज्यते, यदा विज्ञानमेव वासनावशात्कार्यकारणभावेनावस्थितं तथा तथा प्रतिभाति तदा कथमेतच्छक्यते वक्तुमित्याशङ्क्याऽऽह—

भो० वृ० पदार्थ

(यद्यपि त्रयो गुणास्तथाऽपि तेषामङ्गाङ्गिभावगमनलक्षणो यः परिणामः) यदि गुण तीन भी हैं तो भी उनका अङ्गाङ्गि भाव से गति करना रूप जो परिणाम है कि (क्वचित्सत्त्वमङ्गि क्वचिद्रजः क्वचिच्च तम इत्येवंरूपः) कहीं सत्त्वगुण अङ्गि अर्थात् प्रधान और रज, तम उस के अङ्ग अर्थात् उस के आधीन होते हैं, ऐसे ही कहीं रज अङ्गि, कहीं तम अङ्गि, इस प्रकार रूप हैं (तस्यैकत्वाद्वस्तुनस्तत्त्वमेकत्वमुच्यते) उस के एकत्व

होने से वस्तु का स्वरूप भी एकता से कहा जाता है। (यथेयं पृथिवी) जैसे यह पृथिवी है, (अयं वायुरित्यादि) यह वायु है, इस प्रकार और भी ॥ १४ ॥

(ननु च ज्ञानव्यतिरिक्ते सत्यर्थे वस्त्वेकमनेकं वा वक्तुं युज्यते) ज्ञान से भिन्न, यथार्थ रूप में वस्तु एक वा अनेक कही जासक्ती हैं, (यदा विज्ञानमेव वासनावशात्कार्यकारणभावेनावस्थितं) और जब विज्ञान ही वासना वश से कार्य कारण रूप से अवस्थित (तथा तथा प्रतिभाति) जैसा विज्ञान वैसा २ दीखता है (तदा कथमेतच्छक्यते वक्तुमित्याशङ्क्याऽऽह) तब किस प्रकार यह कह सक्ते हैं, इस शङ्का की निवृत्ति के लिये अगला सूत्र कहते हैं—

वस्तुसाम्ये चित्तभेदात्तयोर्विभक्तः पन्थाः ॥ १५ ॥

सू०—वस्तु के एक होने पर भी चित्तों के भेद होने से उन ज्ञान और वस्तु दोनों का भिन्न २ मार्ग है ॥ १५ ॥

व्या० भाष्यम्

बहुचित्तालम्बनीभूतमेकं वस्तु साधारणम्। तत्खलु नैकचित्तपरिकल्पितं नाप्यनेकचित्तपरिकल्पितं किं तु स्व प्रतिष्ठम्। कथम्। वस्तुसाम्ये चित्तभेदात्। धर्मापेक्षं चित्तस्य वस्तुसाम्येऽपि सुखज्ञानं भवत्यधर्मापेक्षं तत एव दुःखज्ञानमविद्यापेक्षं तत एव मूढज्ञानं सम्यग्दर्शनापेक्षं तत एव माध्यस्थ्यज्ञानमिति। कस्य तच्चित्तेन परिकल्पितम्। न चान्यचित्तपरिकल्पितेनार्थेनान्यस्य चित्तोपरागो युक्तः। तस्माद्वस्तुज्ञानयोर्ग्राह्यग्रहणभेदभिन्नयोर्विभक्तः पन्थाः। नानयोः संकरगन्धोऽप्यस्तीति।

सांख्यपक्षे पुनर्वस्तु त्रिगुणं चलं च गुणवृत्तमिति धर्मादिनिमित्तापेक्षं चित्तैरभिसंबध्यते। निमित्तानुरूपस्य च प्रत्ययस्योत्पद्यमानस्य तेन तेनात्मना हेतुर्भवति केचिदाहुः—ज्ञानसहभूरेवार्थो

भोग्यत्वात्सुखादिवदिति। त एतया द्वारा साधारणत्वं बाधमानाः पूर्वोत्तरक्षणेषु वस्तुरूपमेवापह्नुवते ॥ १५ ॥

व्या० भा० पदार्थ

(बहुचित्तालम्बनीभूतमेकं वस्तु साधारणम्) बहुत चित्तों का आश्रय हुई एक वस्तु साधारण है। (तत्खलु नैकचित्तपरिकल्पितं नाप्यनेकचित्तपरिकल्पितं) निश्चय वह किसी एक चित्त की कल्पना की हुई नहीं, और अनेक चित्तों की कल्पना की हुई भी नहीं (किं तु स्व प्रतिष्ठम्) किन्तु अपने स्वरूप में स्थिर है। (कथम्) किस प्रकार कि ? (वस्तुसाम्ये चित्तभेदात्) वस्तु के एक होने पर भी ज्ञान के भेद होने से। (धर्मापेक्षं चित्तस्य वस्तु-साम्येऽपि सुखज्ञानं भवति) वस्तु के एक होने पर भी धर्म की अपेक्षा से चित्त में सुखरूप ज्ञान होता है (अधर्मापेक्षं तत एव दुःखज्ञानम्) अधर्म की अपेक्षा से वही वस्तु दुःख ज्ञान करानेवाली होती है, (अविद्यापेक्षं तत एव मूढ़ज्ञानं) अविद्या की अपेक्षा से वही मूढ़ ज्ञान का हेतु होती है (सम्यग्दर्शनापेक्षं तत एव माध्य-स्थ्यज्ञानमिति) यथार्थ दर्शन की अपेक्षा से वही सामान्य ज्ञान कराती है। (कस्य तच्चित्तेन परिकल्पितम्) तो फिर यह बतलाओ कि वह किस पुरुष के चित्त से कल्पना की गई है (न चान्यचित्त-परिकल्पितेनार्थेनान्यस्य चित्तोपरागो युक्तः) और दूसरे के चित्त से कल्पना किये हुए अर्थ के साथ उससे भिन्न पुरुष का चित्त उपराग युक्त नहीं हो सक्ता। (तस्माद्वस्तुज्ञानयोर्ग्राह्यग्रहणभेद-भिन्नयोर्विभक्तः पन्थाः) इस कारण ग्राह्य वस्तु, और ग्रहण ज्ञान, इन भिन्न २ भेद वाले दोनों का भिन्न २ मार्ग है, अर्थात् दोनों भिन्न २ वस्तु हैं (नानयोः संकरगन्धोऽप्यस्तीति) इन दोनों में एकता का गन्ध भी नहीं है।

(सांख्यपक्षे पुनर्वस्तु त्रिगुणं) फिर सांख्य पक्ष में वस्तु तीन गुणों का कार्य है (चलं च गुणवृत्तमिति) और गुणवृत्ति चल स्वभाव वाली है (धर्मादिनिमित्तापेक्षं चित्तैरभिसंबध्यते) धर्मादि निमित्त की अपेक्षा से वस्तु चित्त के साथ सम्बन्ध करती है। (निमित्तानुरूपस्य च प्रत्ययस्योत्पद्यमानस्य तेन तेनात्मना हेतुर्भवति) निमित्त के अनुरूप उत्पन्न हुई वृत्तियें उस २ रूप से आत्मा के साथ सुख दुःखादि ज्ञान की हेतु होती हैं, (केचिदाहुः) कोई दूसरा नास्तिक कहता है—(ज्ञानसहभूरेवार्थः) ज्ञान के आश्रय से उत्पन्न होने वाला अर्थ है (भोग्यत्वात्सुखादिवदिति) भोग्य होने से सुख दुःखादि के समान। (त एतया द्वारा साधारणत्वं बाधमानाः पूर्वोत्तरक्षणेषु वस्तुरूपमेवापह्नुवते) वह पुरुष इस ऊपर कहे विचार द्वारा साधारणरूप से बाध होते हुए भी पूर्व उत्तर क्षणों में वस्तु के स्वरूप का अभाव ही कहते हैं ॥ १५ ॥

भो० वृत्ति

तयोर्ज्ञानार्थयोः विविक्तः पन्था विविक्तो मार्ग इति यावत्। कथं? वस्तुसाम्ये चित्तभेदात्। समाने वस्तुनि स्त्र्यादावुपलभ्यमाने नानाप्रमातॄणां चित्तस्य भेदः सुखदुःखमोहरूपतया समुपलभ्यते। तथाहि—एकस्यां रूपलावण्यवत्यां योषिति उपलभ्यमानायां सरागस्य सुखमुत्पद्यते सपत्न्यास्तु द्वेषः परिव्राजकादेर्घृणेत्येकस्मिन्वस्तुनि नानाविधचित्तोदयात्कथं चित्तकार्यत्वं वस्तुन एकचित्तकार्यत्वे वस्त्वेकरूपतयैवावभासते। किं च चित्तकार्यत्वे वस्तुनो यदीयस्य चित्तस्य तद्वस्तु कार्यं तस्मिन्नर्थान्तरव्यासक्ते तद्वस्तुन किञ्चित्स्यात् भवत्विति चेन्न तदेव कथमन्यैर्बहुभिरुपलभ्यते, उपलभ्यते च। तस्मान्न चित्तकार्यम्। अथ युगपद्बहुभिः सोऽर्थः क्रियते, तदा बहुभिर्निर्मितस्यार्थस्यैकनिर्मिताद्वैलक्षण्यं स्यात्। यदा तु वैलक्षण्यं नेष्यते तदा कारण भेदे सति कार्यभेदस्याभावे निर्हेतुकमेकरूपं वा जगत्स्यात् एतदुक्तं

भवति–सत्यपि भिन्ने कारणे यदि कार्यस्याभेदस्तदा समग्रं जगन्नानाविधकारणजन्यमेकरूपं स्यात् ।

कारणभेदाननुगमात्स्वातन्त्र्येण निर्हेतुकं वा स्यात् । यद्येवं कथं तेन त्रिगुणात्मनाऽर्थेनैकस्यैव प्रमातुः सुखदुःखमोहमयानि ज्ञानानि न जन्यन्ते ? मैवम्, यथाऽर्थस्त्रिगुणस्तथा चित्तमपि त्रिगुणं तस्य चार्थप्रतिभासोत्पत्तौ धर्मादयः सहकारिकारणं तदुद्भवाभिभववशात्कदाचिच्चित्तस्य तेन तेन रूपेणाभिव्यक्तिः । तथा च कामुकस्य संनिहितायां योषिति धर्मसहकृतं चित्तं सत्त्वस्याङ्गितया परिणममानं सुखमयं भवति, तदेवाधर्मसहकारि रजसोऽङ्गितया दुःखरूपं सपत्नीमात्रस्य भवति, तीव्राधर्मसहकारितया परिणममानं तमसोऽङ्गित्वेन कोपनायाः सपत्न्या मोहमयं भवति । तस्माद्विज्ञानव्यतिरिक्तोऽस्ति बाह्योऽर्थः । तदेवं न विज्ञानार्थयोस्तादात्म्यं विरोधान्न कार्यकारणभावः । कारणाभेदे सत्यपि कार्यभेदप्रसङ्गादिति ज्ञानाद्व्यतिरिक्तत्वमर्थस्य व्यवस्थापितम् ॥ १५ ॥

यद्येवं ज्ञानं चेत्प्रकाशकत्वाद्ग्रहणस्वभावमर्थश्च प्रकाश्यत्वाद्ग्राह्यस्वभावस्तत्कथं युगपत्सर्वानर्थान्न गृह्णाति न स्मरति चेत्याशङ्क्य परिहारं वक्तुमाह—

भो० वृ० पदार्थ

(तयोर्ज्ञानार्थयोः विविक्तः पन्था विविक्तो मार्ग इति यावत्) उन ज्ञान और अर्थ दोनों का भिन्न पन्थ अर्थात् भिन्न मार्ग है, इतना अर्थ है । (कथं) किस प्रकार कि ? (वस्तुसाम्ये चित्तभेदात्) वस्तु के एक होने पर भी चित्तों का भेद होने से । (समाने वस्तुनि स्त्र्याद्युपलभ्यमाने नानाप्रमातॄणां चित्तस्य भेदः सुखदुःखमोहरूपतया समुपलभ्यते) समान वस्तु स्त्री आदि के प्राप्त होने पर उस में अनेक प्रमाताओं का चित्त भेद, सुख–दुःख–मोह रूप से पाया जाता है । (तथाहि—एकस्यां रूपलावण्यवत्यां योषिति उपलभ्यमानायां सरागस्य सुखमुत्पद्यते) जैसा कि—एक सुन्दररूप वाली स्त्री प्राप्त हुई में रागी को सुख उत्पन्न होता है,

(सपत्न्यास्तु द्वेषः) और उस की सपत्नी = सौत को द्वेष होता है, (परिव्राजकादेर्घृणेत्येकस्मिन्वस्तुनि नानाविधचित्तोदयात्) और सन्यासी आदि को घृणा उत्पन्न होती है, इस प्रकार एक ही वस्तु में नाना प्रकार की चित्तवृत्ति उदय होने से (कथं चित्तकार्यत्वं वस्तुनः) तो अब यह कहो कि किस प्रकार वस्तु चित्त का कार्य है, (एकचित्तकार्यत्वे वस्त्वेकरूपतयैवावभासते) एक चित्त का कार्य होने पर तो वस्तु एकरूप से ही भासित होती है। (किं च चित्तकार्यत्वे वस्तुनो यदी) और फिर यह कि चित्त का कार्य होने पर वस्तु यदि हो (यस्य चित्तस्य तद्वस्तु कार्यं तस्मिन्नर्थान्तरव्यासक्ते तद्वस्तुन किञ्चित्स्यात्) वह वस्तु जिस के चित्त का कार्य है तो उस का चित्त जिस काल में अन्यत्र लगा हुआ हो वह वस्तु उस काल में कुछ भी न हो, ? अर्थात् उस काल में उस वस्तु का अभाव होना चाहिये ? (भवत्विति) और होती है (चेन्न तदेव) यदि तब वह नहीं है (कथमन्यैर्बहुभिरुपलभ्यते) फिर किस प्रकार अन्य बहुत पुरुषों से उपलब्ध की जाती है (उपलभ्यते च) और उपलब्ध होती है। (तस्मान्न चित्तकार्यम्) इस कारण वह ज्ञान का कार्य नहीं, अर्थात् ज्ञान की कल्पनामात्र वस्तु नहीं है। (अथ युगपद्बहुभिः सोऽर्थः क्रियते) अब यदि कहो कि एक साथ बहुत चित्तों से वह अर्थ कल्पना किया जाता है, (तदा बहुभिर्निर्मितस्यार्थस्यैकनिर्मिताद्वैलक्षण्यं स्यात्) तब बहुत चित्तों से निर्माण किये हुए अर्थ का एक चित्त के निर्माण किये हुए अर्थ से उस की विलक्षणता होवे। (यदा तु वैलक्षण्यं नेष्यते) जब विलक्षणता नहीं देखते (तदा कारणभेदे सति कार्यभेदस्याभावे निर्हेतुकमेकरूपं वा जगत्स्यात्) तब कारण का भेद होने पर भी कार्य के भेद का अभाव होने पर निर्हेतुक एक रूप वस्तु होवे और समस्त जगत् भी निर्हेतुक एकरूप होवे (एतदुक्तं भवति) कहने का अभिप्राय यह है कि—(सत्यपि भिन्ने कारणे यदि कार्यस्याभेदस्तदा समग्रं जगन्नानाविधकारणजन्यमेकरूपं स्यात्) कारण के भिन्न होते हुए भी यदि कार्य का भेद न हो तो सम्पूर्ण जगत् अनेक प्रकार के कारणों से उत्पन्न हुआ भी एक रूप होवे।

(कारणभेदाननुगमात्स्वातन्त्र्येण निर्हेतुकं वा स्यात्) कारण भेद न प्राप्त होने से स्वतन्त्रता से नाना रूपों वाला जगत् निर्हेतुक होगा। (यद्येवं) ऐसा है तो (कथं तेन त्रिगुणात्मनाऽर्थे नैकस्यैव प्रमातुः सुख दुःखमोहमयानि ज्ञानानि न जन्यन्ते) किस कारण उस त्रिगुणरूप अर्थ के साथ एक ज्ञाता को सुख–दुःख, मोहमय ज्ञान नहीं उत्पन्न होते ? (मैवम यथाऽर्थस्त्रिगुणस्तथा चित्तमपि त्रिगुणं) मेरे में इस प्रकार ही जैसे तीन गुणरूप अर्थ है, वैसे ही तीन गुण रूप चित्त है (तस्य चार्थप्रतिभासोत्पत्तौ धर्मादयः सहकारिकारणं तदुद्भवाभिभववशात्कदाचिच्चित्तस्य तेन तेन रूपेणाभिव्यक्तिः) उस के अर्थ प्रकाशित करने में धर्मादि सहकारी कारण हैं, उन धर्मादि की उत्पत्ति, प्रलय वश से कभी चित्त की उस २ धर्म अधर्मरूप से प्रकटता होती है । (तथा च कामुकस्य संनिहितायां योषिति धर्मसहकृतं चित्तं सत्त्वस्याङ्गितया परिणममानं सुखमयं भवति) वैसे ही कामी पुरुष के स्त्री समीप होने पर धर्म की सहायता वाला चित्त सतोगुण की प्रधानता से परिणाम को प्राप्त हुआ सुखमय होता है, (तदेवाधर्मसहकारि रजसोऽङ्गितया दुःखरूपं सपत्नीमात्रस्य भवति) और वह चित्त अधर्म की सहकारिता से रजोगुण की प्रधानता द्वारा दुःखरूप सौतमात्र को होता है (तीव्राधर्मसहकारितया परिणममानं तमसोऽङ्गित्वेन कोपनायाः सपत्न्या मोहमयं भवति) और तीव्र अधर्म की सहकारिता से परिणाम को प्राप्त हुआ चित्त तमोगुण की प्रधानता के कारण उस से क्रोधी सौत मोहमय होती है, (तस्माद्विज्ञानव्यतिरिक्तोऽस्ति बाह्योऽर्थः) इस कारण बाह्य अर्थ विज्ञान से भिन्न वस्तु है । (तदेवं न विज्ञानार्थयोस्तादात्म्यं विरोधान्न कार्यकारणभावः) इस प्रकार व्यवस्था होने पर विज्ञान और अर्थ दोनों में विरोध होने से एकरूपता नहीं है, और न कार्य कारण भाव होसक्ता है (कारणाभेदे सत्यपि कार्यभेदप्रसङ्गादिति) कारण के भेद न होने पर भी कार्य भेद प्रसङ्ग होने से (ज्ञानाद्व्यतिरिक्तत्वमर्थस्य व्यवस्थापितम्) ज्ञान से भिन्न अर्थ का व्यवस्थापित हुआ ॥ १५ ॥

(यद्येवं ज्ञानं चेत्प्रकाशकत्वाद्ग्रहणस्वभावमर्थश्च प्रकाश्यत्वाद्ग्राह्यस्वभावः) यदि ज्ञान प्रकाशक होने से ग्रहण स्वभाव है, और अर्थ प्रकाश्य होने से ग्राह्य स्वभाव है (तत्कथं युगपत्सर्वानर्थान्न गृह्णाति) तो फिर किस प्रकार एक साथ सर्व अर्थों को ग्रहण नहीं करता (न स्मृति च) और नहीं स्मरण करता (इत्याशङ्क्य परिहारं वक्तुमाह) इस शङ्का के समाधानार्थ अगला सूत्र कहते हैं—

न चैकचित्ततन्त्रं वस्तु तदप्रमाणकं तदा किं स्यात् ॥ १६ ॥

सू०—वस्तु केवल एक चित्त के ही आश्रित नहीं है क्योंकि जब चित्त उस को विषय नहीं करता तब वह क्या हो जाती है उस की तो भाव पदार्थ अपने समवायि कारण से उत्पत्ति है, केवल चित्त की कल्पनामात्र अभावरूप नहीं है और दूसरा हेतु यह है कि जब चित्त उस को विषय नहीं करता, तब वह वस्तु क्या अभाव रूप हो जाती है ? अर्थात् नहीं होती इस कारण विज्ञान की कल्पनामात्र बाह्य पदार्थों को मानना विज्ञानवादी की भ्रान्ति है॥१६॥

व्या० भाष्यम्

एकचित्ततन्त्रं चेद्वस्तु स्यात्तदा चित्ते व्यग्रे निरुद्धे वाऽस्वरूपमेव तेनापरामृष्टमन्यस्याविषयीभूतमप्रमाणकमगृहीतस्वभावकं केनचित्तदानीं किं तत्स्यात् । संबध्यमानं च पुनश्चितेन कुत उत्पद्यते । ये चास्यानुपस्थिता भागास्ते चास्यन स्युरेवं नास्ति पृष्ठमित्युदरमपि न गृह्येत । तस्मात्स्वतन्त्रोऽर्थः सर्वपुरुषसाधारणः स्वतन्त्राणि च चित्तानि प्रति पुरुषं प्रवर्तन्ते । तयोः सम्बन्धादुपलब्धि पुरुषस्य भोग इति ॥ १६ ॥

व्या० भा० पदार्थ

(एकचित्ततन्त्रं चेद्वस्तु स्यात्) यदि एक चित्त के ही आधीन

वस्तु होवे (तदा चित्ते व्यग्रे निरुद्धे वाऽस्वरूपमेव तेनापरामृष्टम्) जब चित्त किसी अन्य विषय में फँसा हुआ वा निरुद्ध हो, वा वस्तु का स्वरूप उस चित्त के सम्बन्ध से रहित हो (अन्यस्याविषयीभूतमप्रमाणकमगृहीतस्वभावकं केनचित्तदानीं किं तत्स्यात्) और किसी अन्य के चित्त से भी अविषयरूप, अप्रमाणरूप, अगृहीतरूप हो तब वह वस्तु किस के चित्त से क्या होवे ? अर्थात् वह उस काल में भी विद्यमान् रहती है, उस का अभाव नहीं होता, इस कारण एक चित्त के ही आधीन वस्तु नहीं है। (संबध्यमानं च पुनश्चित्तेन कुत उत्पद्यते) और फिर चित्त के साथ सम्बन्ध होने से कहां से वस्तु उत्पन्न हो जावे। (ये चास्यानुपस्थिता भागास्ते चास्य न स्युरेवं नास्ति पृष्ठमित्युदरमपि न गृह्येत) और जो इस के शरीर के भाग सन्मुख नहीं हैं, क्या वह भी उस काल में नहीं है ? वैसे ही क्या नहीं हैं पीठ उदरादि क्योंकि वह ग्रहण नहीं होते, इस को इस प्रकार समझना चाहिये कि जब कोई पुरुष सन्मुख खड़ा होता है तब या तो उस की पीठ दिखाई देती है या उदर दिखाई देता है, जब उदर दिखाई देता है तब क्या पीठ नहीं होती ? और जब पीठ दिखाई देती है, तब क्या उदर नहीं होता ? अर्थात् दिखाई न देने पर भी उदर पीठ दोनों ही होते हैं, ऐसे ही जब किसी पदार्थ को चित्त विषय नहीं करता तब भी वह पदार्थ विद्यमान् रहता है, यदि चित्त की कल्पनामात्र वस्तु हो तो उस का अभाव होना चाहिये। (तस्मात्स्वतन्त्रोऽर्थः) इस कारण अर्थ स्वतन्त्र है चित्त के आधीन नहीं है (सर्वपुरुषसाधारणः स्वतन्त्राणि च चित्तानि प्रति पुरुषं प्रवर्तन्ते) सर्व पुरुष साधारण हैं और चित्त स्वतन्त्र प्रत्येक पुरुष को विषय में प्रवर्त करते हैं। (तयोः संबन्धादुपलब्धिः पुरुषस्य भोग इति) उन दोनों का विषय के साथ सम्बन्ध होने से जो विषय उपलब्ध होता है, वह पुरुष का भोग है ॥ १६ ॥

नोट

यह सूत्र भोज वृत्ति में नहीं है, इसलिए इस पर वृत्ति नहीं लिखी गई ॥ १६ ॥

तदुपरागापेक्षित्वाच्चित्तस्य वस्तु ज्ञाताज्ञातम् ॥ १७ ॥

सू०—उस पदार्थ के उपराग की चित्त को अपेक्षा होने से वस्तु ज्ञात और अज्ञात होती हैं ॥ १७ ॥

व्या० भाष्यम्

अयस्कान्तमणिकल्पा विषया अयःसधर्मकं चित्तमभिसंबन्ध्योपरञ्जयन्ति । येन च विषयेणोपरक्तं चित्तं स विषयो ज्ञातस्ततोऽन्यः पुनरज्ञातः । वस्तुनो ज्ञाताज्ञातस्वरूपत्वात्परिणामि चित्तम् ॥ १७ ॥

यस्य तु तदेव चित्तं विषयस्तस्य—

व्या० भा० पदार्थ

(अयस्कान्तमणिकल्पा विषया) विषय चुम्बक पत्थर के समान हैं (अयःसधर्मकं चित्तमभिसंबन्ध्योपरञ्जयन्ति) लोह समान चित्त है उस चित्त के साथ विषय सम्बन्ध करके उस को उपरक्त करता है । (येन च विषयेणोपरक्तं चित्तं) जिस विषय से चित्त उपरक्त हुआ है (स विषयो ज्ञातः) वह विषय ज्ञात होता है (ततोऽन्यः पुनरज्ञातः) उस से अन्य विषय अज्ञात होता है । (वस्तुनो ज्ञाताज्ञातस्वरूपत्वात्परिणामि चित्तम्) वस्तु ज्ञात और अज्ञात होने से चित्त परिणामि है ॥ १७ ॥

(यस्य तु तदेव चित्तं विषयस्तस्य) और जिस का वह चित्त भी विषय है उस को—

भो० वृत्ति

तस्यार्थस्योपरागादाकारसमर्पणाच्चित्ते बाह्यं वस्तु ज्ञातमज्ञातं च भवति । अयमर्थः—सर्वः पदार्थ आत्मलाभे चित्तं सामग्रीमपेक्षते । नीलादिज्ञानं चोपजायमानमिन्द्रियप्रणालिकया समागतमर्थोपरागं सहकारिकारणत्वेनापेक्षते, व्यतिरिक्तस्यार्थस्य संबन्धाभावाद्ग्रहीतुमशक्यत्वात् । ततश्च येनैवार्थेनास्य ज्ञानस्य स्वरूपोपरागः कृतस्तमेवार्थं ज्ञानं व्यवहारयोग्यतां नयति, ततश्च सोऽर्थो ज्ञात इत्युच्यते, येन चाऽऽकारो न समर्पितः सोऽज्ञातत्वेन व्यवह्रियते यस्मिंश्चानुभूतेऽर्थे सादृश्यादिः अर्थः संस्कारमुद्बोधयन्सहकारिकारणतां प्रतिपद्यते तस्मिन्नेवार्थे स्मृतिरुपजायत इति न सर्वत्र ज्ञानं नापि सर्वत्र स्मृतिरिति न कश्चिद्विरोधः ॥ १७ ॥

यद्येवं प्रमाताऽपि पुरुषो यस्मिन्काले नीलं वेदयते न तस्मिन्काले पीतमतस्तस्यापि कादाचित्कत्वं ग्रहीतृरूपत्वादाकारग्रहणे परिणामित्वं प्राप्तमित्याशङ्कां परिहर्तुमाह—

भो० वृ० पदार्थ

(तस्यार्थस्योपरागादाकारसमपर्णाच्चित्ते बाह्यं वस्तु ज्ञातमज्ञातं च भवति) चित्त में उस वस्तु का उपराग पड़ने से उस का आकार ग्रहण होने से बाह्य वस्तु ज्ञात और अज्ञात होती हैं । (अयमर्थः) यह अर्थ है कि—(सर्वः पदार्थ आत्मलाभे चित्तं सामग्रीमपेक्षते) सर्व पदार्थों के स्वरूप लाभ कराने में चित्त सामग्री की अपेक्षा रहती है । (नीलादिज्ञानं चोपजायमानमिन्द्रियप्रणालिकया समागतमर्थोपरागं सहकारिकारणत्वेनापेक्षते) नीलादि ज्ञान उत्पन्न हुआ इन्द्रियप्रणालि द्वारा सहकारि कारणरूप से, प्राप्त अर्थ के उपराग की अपेक्षा करता है, (व्यतिरिक्तस्यार्थस्य संबन्धाभावाद्ग्रहीतुमशक्यत्वात्) अन्य अर्थ का सम्बन्ध न होने के कारण ग्रहण करने को समर्थ न होने से । (ततश्च येनैवार्थेनास्य ज्ञानस्य स्वरूपोपरागः कृतस्तमेवार्थं ज्ञानं व्यवहारयोग्यतां नयति) उस कारण जिस

पदार्थ ने इस के ज्ञान में अपने स्वरूप का उपराग डाला है, उस ही अर्थ का ज्ञान व्यवहार की योग्यता को प्राप्त होता है, (ततश्च सोऽर्थो ज्ञात इत्युच्यते) इस कारण वह अर्थ ज्ञात है, ऐसा कहा जाता है। (येन चाऽऽकारो न समर्पितः सोऽज्ञातत्वेन व्यवह्रियते) और जिस के आकार को चित्त नहीं प्राप्त हुआ, वह अज्ञातरूप से कहा जाता है (यस्मिंश्चानुभूतेऽर्थे सादृश्यादिः अर्थः संस्कारमुद्बोधयन्सहकारि कारणतां प्रतिपद्यते) जिस अनुभव किये हुए अर्थ में समानतादि के कारण अर्थ संस्कार को उद्बोधन करता हुआ सहकारि कारणता को प्राप्त होता है (तस्मिन्नेवार्थे स्मृतिरुपजायत इति) उसी अर्थ में स्मृति उत्पन्न होती है (न सर्वत्र ज्ञानं नापि सर्वत्र स्मृतिरिति न कश्चिद्विरोधः) न सर्वत्र ज्ञान होता और न सर्वत्र स्मृति होती इस कारण कुछ विरोध नहीं है ॥१७॥

(यद्येवं प्रमाताऽपि पुरुषो यस्मिन्काले नीलं वेदयते) इस प्रकार प्रमाता पुरुष भी जिस काल में नीलादि रंग को जानता है। (न तस्मिन्काले पीतमतस्तस्यापि कदाचित्कत्वं ग्रहीतृरूपत्वादाकारग्रहणे परिणामित्वं प्राप्तमित्याशङ्कां परिहर्तुमाह) उस काल में पीतादि को नहीं जानता इस कारण उस का भी ग्रहीता स्वभाव होने से आकार ग्रहण करने में पुरुष को भी परिणामित्व प्राप्त हो इस शङ्का के निवारार्थ अगला सूत्र कहते हैं—

सदाज्ञाताश्चित्तवृत्तयस्तत्प्रभोः पुरुषस्यापरिणामित्वात् ॥ १८ ॥

सू०—चित्त की वृत्तियें इस के स्वामी पुरुष को सदा ज्ञात रहती हैं, पुरुष के अपरिणामी होने से ॥ १८ ॥

व्या० भाष्यम्

यदि चित्तवत्प्रभुरपि पुरुषः परिणमेत्ततस्तद्विषयाश्चित्तवृत्तयः शब्दादिविषयवज्ज्ञाताज्ञाताः स्युः। सदाज्ञातत्वं तु मनसस्तत्प्रभोः पुरुषस्यापरिणामित्वमनुमापयति ॥ १८ ॥

स्यादाशङ्का चित्तमेव स्वाभासं विषयाभासं च भविष्यतीत्यग्निवत्—

व्या० भा० पदार्थ

(यदि चित्तवत्प्रभुरपि पुरुषः परिणमेत्ततस्तद्विषयाश्चित्तवृत्तयः शब्दादिविषयवज्ज्ञाताज्ञाताः स्युः) यदि चित्त के समान उस का स्वामी पुरुष भी परिणाम को प्राप्त होवे तो, उस के विषय चित्त वृत्ति भी शब्दादि विषयों के समान ज्ञात अज्ञात हों। (सदाज्ञातत्वं तु मनसस्तत्प्रभो पुरुषस्यापरिणामित्वमनुमापयति) मन के स्वामी का सदा ज्ञातत्व होना पुरुष के अपरिणामित्व को अनुमान कराता है ॥ १८ ॥

(स्यादाशङ्का चित्तमेव स्वाभासं विषयाभासं च भविष्यतीत्यग्निवत्) यदि किसी को शङ्का होवे कि चित्त ही अपने को भी प्रकाशित करता है और विषय को भी अग्नि के दृष्टान्त समान, इसका उत्तर अगले सूत्र से देते हैं—

विशेष सूचना

यहां किन्हीं पुस्तकों में (वैशेषिकाणां चित्तात्मवादिनां च भविष्यतीत्यग्निवत्) ऐसा भाष्य बनाकर वैशेषिक दर्शन की भी निन्दा की है, परन्तु एक पुस्तक हमारे सामने आनन्दाश्रम पूना की छपी हुई वाचस्पतिकृत टीका है उस भाष्य के अन्दर ऐसा पाठ नहीं है और दूसरी गवर्नमेन्ट प्रेस बम्बई की छपी हुई वाचस्पतिकृत टीका में वैशेषिक दर्शन की निन्दा की है। इस से यह निसन्देह जाना गया कि नवीन मतावलम्बी पुरुषों ने इस शास्त्र में अपना मत सिद्ध करने का अतिपरिश्रम किया है, जिस को हम अनर्थ होने के कारण बार २ दिखलाते हैं। और वैशेषिक दर्शन में तो आत्मा और मन दो भिन्न २ द्रव्य माने हैं, जिन का विशेष वर्णन ग्रन्थ विस्तार भय से हम यहां नहीं कर सकते, देखो वै० अ० १। आ० १। सू० ५। इस हानि का कारण आज कल सत्य शास्त्रों का पठन पाठन छूट जाना ही है और क्या कह सकते हैं ॥ १८ ॥

भो॰ वृत्ति

या एताश्चित्तस्य प्रमाणविपर्ययादिरूपा वृत्तयस्तास्तत्प्रभोश्चित्तस्य ग्रहीतुः पुरुषस्य सदा सर्वकालमेव ज्ञेयाः, तस्य चिद्रूपतयाऽपरिणामात् परिणामित्वाभावादित्यर्थः यद्यसौ परिणामी स्यात्तदा परिणामस्य कादाचित्कत्वात्प्रमातुस्तासां चित्तवृत्तीनां सदा ज्ञातत्वं नोपपद्येत । अयमर्थ— पुरुषस्य चिद्रूपस्य सदैवाधिष्ठातृत्वेन व्यवस्थितस्य यदन्तरङ्गं निर्मलं सत्त्वं तस्यापि सदैवावस्थितत्वाद्येन येनार्थेनोपरक्तं भवति तथाविधस्यार्थस्य सदैव चिच्छायासंक्रान्तिसद्भावस्तस्यां सत्यां सिद्धं सदा ज्ञातृत्वमिति न कदाचित्परिणामित्वाशङ्का ॥ १८ ॥

ननु चित्तमेव यदि सत्त्वोत्कर्षात्प्रकाशकं तदा स्वपरप्रकाशकत्वादात्मानमर्थं च प्रकाशयतीति तावतैव व्यवहारसमाप्तेः किं ग्रहीत्रन्तरेणेत्याशङ्कामपनेतुमाह—

भो॰ वृ॰ पदार्थ

(या एताश्चित्तस्य प्रमाणविपर्ययादिरूपा वृत्तयस्तास्तत्प्रभोश्चित्तस्य ग्रहीतुः पुरुषस्य सदा सर्वकालमेव ज्ञेयाः) चित्त की जो. यह प्रमाण विपर्यय आदि रूप पांच वृत्ति हैं, वह उस चित्त के स्वामी ग्रहीता पुरुष से सर्व काल में जानने योग्य हैं, (तस्य चिद्रूपतयाऽपरिणामात्) उस का चेतन रूप न बदलने से (परिणामित्वाभावादित्यर्थः) परिणामित्व का अभाव होने से यह अर्थ है । (यद्यसौ परिणामी स्यात्तदा परिणामस्य कादाचित्कत्वात्प्रमातुस्तासां चित्तवृत्तीनां सदा ज्ञातत्वं नोपपद्येत) यदि वह परिणामि होवे तो परिणाम के कभी २ होने से प्रमाता को उन चित्त वृत्तियों का सदा ज्ञातत्व न प्राप्त होवे । (अयमर्थः) यह अर्थ है— (पुरुषस्य चिद्रूपस्य सदैवाधिष्ठातृत्वेन व्यवस्थितस्य यदन्तरङ्गं निर्मलं सत्त्वं तस्यापि सदैवावस्थितत्वाद्येनार्थेनोपरक्तं भवति) चेतनरूप पुरुष के सदा अधिष्ठातृत्वभाव से व्यवस्थित हुए का जो अन्तरङ्ग साधन निर्मल बुद्धि

है उस के भी सदैव रहने से जिस २ अर्थ के साथ वह बुद्धि उपरक्त होती है (तथाविधस्यार्थस्य) उस प्रकार के अर्थ के साथ (सदैव चिच्छायासंक्रान्तिसद्भावस्तस्यां सत्यां सिद्धं) चेतन छाया के संबन्ध का सद्भाव उस में सदैव सिद्ध है (सदा ज्ञातृत्वमिति) सदा ज्ञातृत्व यह ही है, (न कदाचित्परिणामित्वाशङ्का) कभी भी परिणामित्व की शङ्का नहीं होती ॥ १८ ॥

(ननु चित्तमेव यदि सत्त्वोत्कर्षात्प्रकाशकं तदा स्वपरप्रकाशकत्वादात्मानमर्थं च प्रकाशयतीति) शङ्का–यदि चित्त ही सत्त्व के अधिक होने से प्रकाशक है, तब अपना और दूसरे का प्रकाशकत्व होने से अपने को और अर्थ को प्रकाशित करता है (तावतैव व्यवहारसमाप्तेः किं ग्रहीत्रन्तरेणेत्याशङ्कामपनेतुमाह) तो व्यवहार समाप्ति पर्यन्त क्या अन्तर ग्रहण करने से अपने को और अर्थ को प्रकाश करता है, अथवा एक क्षण में । इस शङ्का के निवारणार्थ अगला सूत्र कहते हैं, यह क्षणिकवादी नास्तिक के मत का प्रकरण उठा कर इस का समाधान आगे करते हैं—

न तत्स्वाभासं दृश्यत्वात् ॥ १९ ॥

सू०—वह चित्त दृश्य होने से स्वयं प्रकाश नहीं है ॥ १९ ॥

व्या० भाष्यम्

यथेतराणीन्द्रियाणि शब्दादयश्च दृश्यत्वान्न स्वाभासानि तथा मनोऽपि प्रत्येतव्यम् ।

न चाग्निरत्र दृष्टान्तः । न ह्यग्निरात्मस्वरूपमप्रकाशं प्रकाशयति । प्रकाशश्चायं प्रकाश्यप्रकाशकसंयोगे दृष्टः । न च स्वरूपमात्रेऽस्ति संयोगः । किं च स्वाभासं चित्तमित्यग्राह्यमेव कस्यचिदिति शब्दार्थः । तद्यथा स्वात्मप्रतिष्ठमाकाशं न परप्रतिष्ठमित्यर्थः । स्वबुद्धिप्रचारप्रतिसंवेदनात्सत्त्वानां प्रवृत्तिर्दृश्यते—क्रुद्धोऽहं भीतोऽहममुत्र मे रागोऽमुत्र मे क्रोध इति । एतत्स्वबुद्धेरग्रहणे न युक्तमिति ॥ १९ ॥

व्या० भा० पदार्थ

(यथेतराणीन्द्रियाणि शब्दादयश्च दृश्यत्वान्न स्वाभासानि तथा मनोऽपि प्रत्येतव्यम्) जैसे दूसरी इन्द्रियें और शब्दादि विषय दृश्य होने से स्वयं प्रकाश नहीं हैं, वैसे ही जानना चाहिये कि मन भी स्वयं प्रकाश नहीं है।

(न चाग्निरत्र दृष्टान्तः) इसमें अग्नि का दृष्टान्त भी युक्त नहीं है। (न ह्यग्निरात्मस्वरूपमप्रकाशं प्रकाशयति) क्योंकि अग्नि अपने अप्रकाशरूप को प्रकाशित नहीं करती। (प्रकाशश्चायं प्रकाश्यप्रकाशकसंयोगे दृष्टः) यह प्रकाश तो प्रकाश्य और प्रकाशक के संयोग में देखा गया है। (न च स्वरूपमात्रेऽस्ति संयोगः) और स्वरूपमात्र में संयोग नहीं कहलाता। (किं च स्वाभासं चित्तमित्य-ग्राह्यमेव) इस कारण चित्त स्वयं प्रकाश है, यह ग्रहण करने योग्य नहीं है (कस्यचिदिति शब्दार्थः) किस का दृश्य है, ऐसा प्रश्न होनेपर। (तद्यथा स्वात्मप्रतिष्ठमाकाशं न परप्रतिष्ठमित्यर्थः) आकाश अपने स्वरूप में स्थिर है, दूसरे के आश्रित नहीं इस समान। (स्वबुद्धिप्रचारप्रतिसंवेदनात्सत्त्वानां प्रवृत्तिर्दृश्यते) अपनी बुद्धि के व्यवहारों को जानने से जीवों की प्रवृत्ति देखी जाती है—(क्रुद्धोऽहं भीतोऽहममुत्र मे रागोऽमुत्र मे क्रोध इति) मैं क्रोधी हूँ, मैं भय-मान् हूँ उस काल में मुझ में राग था, उस काल में मुझ में क्रोध था। (एतत्स्वबुद्धेरग्रहणे न युक्तमिति) यह अपनी बुद्धि के ग्रहण न होनेपर युक्त नहीं हो सकता, इससे सिद्ध हो गया कि बुद्धि पुरुष का दृश्य है, और वह स्वयं प्रकाश नहीं ॥ १९ ॥

भो० वृत्ति

तच्चित्तं स्वाभासं स्वप्रकाशकं न भवति पुरुषवेद्यं भवतीति यावत्, कुतः ? दृश्यत्वात्, यत्किल दृश्यं तद् द्रष्टृवेद्यं, दृष्टं यथा—घटादि, दृश्यं च चित्तं तस्मान्न स्वाभासम् ॥ १९ ॥

ननु साध्याविशिष्टोऽयं हेतुः, दृश्यत्वमेव चित्तस्यासिद्धम् । किञ्च स्वबुद्धिसंवेदनद्वारेण पुरुषाणां हिताहितप्राप्तिपरिहाररूपा वृत्तयो दृश्यन्ते । तथाहि—क्रुद्धोऽहं भीतोऽहमत्र मे राग इत्येवमाद्या संविद्बुद्धेरसंवेदने नोपपद्येतेत्याशङ्कामपनेतुमाह—

भो० वृ० पदार्थ

(तच्चित्तं स्वाभासं स्वप्रकाशकं न भवति) वह चित्त स्वयंप्रकाशरूप नहीं है (पुरुषवेद्यं भवतीति यावत्) पुरुष से जानने योग्य है, (कुतः?) किस कारण कि ? (दृश्यत्वात्) दृश्य होने से, (यत्किल दृश्यं तद्द्रष्टृवेद्यं) जो कुछ दृश्य है वह द्रष्टा से जानने योग्य है, (दृष्टं यथा—घटादि) जैसे घटादि देखे गये, (दृश्यं च चित्तं) और चित्त भी दृश्य है (तस्मान्न स्वाभासम्) इस कारण स्वयंप्रकाशरूप नहीं है ॥ १९ ॥

(ननु साध्याविशिष्टोऽयं हेतुः) हम तर्क करते हैं कि यह हेतु साध्य से विशेष नहीं है, (दृश्यत्वमेव चित्तस्यासिद्धम्) इस कारण चित्त का दृश्य होना सिद्ध नहीं है । (किं च स्वबुद्धिसंवेदनद्वारेण पुरुषाणां हिताहितप्राप्तिपरिहाररूपा वृत्तयो दृश्यन्ते) किन्तु अपनी बुद्धि के ज्ञान द्वारा पुरुषों की हित प्राप्ति और अनहित का परिहार रूप वृत्तियें देखी जाती हैं । (तथाहि) वैसे ही—(क्रुद्धोऽहं भीतोऽहमत्र मे राग इत्येवमाद्या संविद्बुद्धिरसंवेदने नोपपद्येतेत्याशङ्कामपनेतुमाह) मैं क्रोधी हूँ मैं भयमान हूँ, इस विषय में मेरा राग है, इस प्रकार का ज्ञान बुद्धि को न जानने पर नहीं उत्पन्न होता, इस शङ्का के निवाणार्थ अगला सूत्र कहते हैं—

एकसमये चोभयानवधारणम् ॥ २० ॥

सू०—एक समय में दोनों का धारण न होने से ॥ २० ॥

व्या० भाष्यम्

न चैकस्मिन्क्षणे स्वपररूपावधारणं युक्तं, क्षणिकवादिनो यद्भवनं सैव क्रिया तदेव च कारकमित्यभ्युपगमः ॥ २० ॥

स्यान्मतिः स्वरसनिरुद्धं चित्तं चित्तान्तरेण समनन्तरेण गृह्यत इति—

व्या० भा० पदार्थ

(न चैकस्मिन्क्षणे स्वपररूपावधारणं युक्तम्) एक क्षण में चित्त में अपने और दूसरे के स्वरूप का धारण करना युक्त नहीं होता, (क्षणिकवादिनो यद्भवनं सैव क्रिया तदेव च कारकमित्यभ्युपगमः) और क्षणिकवादी के मत में जो वस्तु की उत्पत्ति है वही क्रिया है और वही कारक है इसको प्राप्त हुए ॥ २० ॥

(स्यान्मतिः स्वरसनिरुद्धं चित्तं चित्तान्तरेण समनन्तरेण गृह्यत इति) ऐसी है मति जिनकी वह अपने स्वभाव से ही रुककर कहते हैं कि चित्त दूसरे समनन्तर चित्त से गृहीत है—

भो० वृत्ति

अर्थस्य संवित्तिरिदंतया व्यवहारयोग्यतापादनमयमर्थः सुखहेतुर्दुःखहेतुर्वेति । बुद्धेश्च संविदहमित्येवमाकारेण सुखदुःखरूपतया व्यवहारक्षमतापादनम् । एवंविधं च व्यापारद्वयमर्थप्रत्यक्षकाले न युगपत्कर्तुं शक्यं विरोधात्, न हि विरुद्धयोर्व्यापारयोर्युगपत्संभवोऽस्ति । अत एकस्मिन्काले उभयस्य स्वरूपस्यार्थस्य चावधारयितुमशक्यत्वान्न चित्तं स्वप्रकाशमित्युक्तं भवति । किं चैवंविधव्यापारद्वयनिष्पाद्यस्य फलद्वयस्यासंवेदनाद्बहिर्मुखतयैवार्थनिष्ठत्वेन चित्तस्य संवेदनादर्थनिष्ठमेव फलं न स्वनिष्ठमित्यर्थः ॥ १९ ॥

ननु मा भूद्बुद्धेः स्वयं ग्रहणं बुद्ध्यन्तरेण भविष्यतीत्याशङ्क्याऽऽह—

भो० वृ० पदार्थ

(अर्थस्य संवित्तिरिदंतया व्यवहारयोग्यतापादनमयमर्थः सुखहेतुर्दुःखहेतुर्वेति) यह अर्थ का ज्ञान इस लिये है कि सुख दुःख के कारण उस ज्ञान के द्वारा व्यवहार की योग्यता प्राप्त करना । (बुद्धेश्च संविदहमित्येवमाकारेण सुखदुःखरूपतया व्यवहारक्षमतापादनम्) और बुद्धि

का ज्ञान अहं वृत्तिरूप सुख दुःख रूप से व्यवहार शान्ति प्राप्त करने को है। (एवं विधं च व्यापारद्वयमर्थप्रत्यक्षकाले न युगपत्कर्तुं शक्यं विरोधात्) इस प्रकार दोनों व्यापार अर्थ प्रत्यक्षकाल में एक साथ नहीं कर सकते दोनों में विरोध होने से, (न हि विरुद्धयोर्व्यापारयोर्युगपत्संभवोऽस्ति) क्योंकि दो विरुद्ध व्यापार एक साथ नहीं हो सकते। (अतः एकस्मिन्काले उभयस्य स्वरूपस्यार्थस्य चावधारयितुमशक्यत्वाच्च चित्तं स्वप्रकाशमित्युक्तं भवति) इस कारण एक काल में दोनों के स्वरूप और अर्थ के स्वरूप धारण करने को समर्थ न होने से चित्त स्वयंप्रकाश नहीं है ऐसा कहा गया। (किं चैवंविधव्यापारद्वयनिष्पाद्यस्य फलद्वयस्यासंवेदनाद्बहिर्मुखतयैवार्थनिष्ठत्वेन चित्तस्य संवेदनादर्थनिष्ठमेव फलं न स्वनिष्ठमित्यर्थः) और यह भी है कि इस प्रकार सम्पादन हुए दोनों व्यापारों और दोनों फलों का ज्ञान न होने से बहिर्मुखता से अर्थ में निष्ठा वाले चित्त के द्वारा ज्ञान होने से अर्थनिष्ठ ही फल है, चित्तनिष्ठ नहीं ॥ २० ॥

(ननु मा भूद्बुद्धेः स्वयं ग्रहणं बुद्ध्यन्तरेण भविष्यतीत्याशङ्क्याऽऽह) बुद्धि [illegible] ग्रहण करना न सही, दूसरी बुद्धि से उसका ग्रहण हो जायगा, इस शङ्का के निवारणार्थ आगे कहते हैं—

चित्तान्तरदृश्ये बुद्धिबुद्धेरतिप्रसङ्गः स्मृतिसंकरश्च ॥ २१ ॥

सू०—चित्त दूसरे चित्त का दृश्य है और वह दूसरे का, इस प्रकार माननेपर "अतिप्रसङ्ग" होगा और स्मृतियों का भी संकर हो जायगा ॥ २१ ॥

व्या० भाष्यम्

अथ चित्तं चेच्चित्तान्तरेण गृह्येत बुद्धिः केन गृह्यते, साऽप्यन्यया साऽप्यन्ययेत्यतिप्रसङ्गः । स्मृतिसंकरश्च । यावन्तो बुद्धिबुद्धीनामनुभवास्तावत्यः स्मृतयः प्राप्नुवन्ति । तत्संकराच्चैकस्मृत्यनवधारणं

च स्यादित्येवं बुद्धिप्रतिसंवेदिनं पुरुषमपलपद्भिर्वैनाशिकैः सर्वमेवाऽऽ-कुलीकृतम्। ते तु भोक्तृस्वरूपं यत्र क च न कल्पयन्तो न न्यायेन संगच्छन्ते। केचित्तु सत्त्वमात्रमपि परिकल्प्यास्ति स सत्त्वो य एता-न्पञ्च स्कन्धान्निक्षिप्यान्यांश्च प्रतिसंदधातीत्युक्त्वा तत एव पुनस्त्र-स्यन्ति। तथा स्कन्धानां महन्निर्वेदाय विरागायानुत्पादाय प्रशा-न्तये गुरोरन्तिके ब्रह्मचर्यं चरिष्यामीत्युक्त्वा सत्त्वस्य पुनः सत्त्व-मेवापह्नुवते। सांख्ययोगादयस्तु प्रवादाः स्वशब्देन पुरुषमेव स्वामिनं चित्तस्य भोक्तारमुपयन्तीति ॥ २१ ॥

कथम्—

व्या० भा० पदार्थ

(अथ चित्तं चेच्चित्तान्तरेण गृह्येत बुद्धिः केन गृह्यते) यदि चित्त दूसरे चित्त से ग्रहण किया जाता है, यह माना जाय तो वह चित्त किससे ग्रहण किया जाता है। (साऽप्यन्ययेत्यतिप्रसङ्गः) वह अन्य से और वह फिर अन्य से इस प्रकार अतिप्रसङ्ग होगा। (स्मृतिसंकरश्च) स्मृतियों का भी एकमेक हो जायगा, (यावन्तो बुद्धिबुद्धीनामनुभवास्तावत्यः स्मृतयः प्राप्नुवन्ति) जितनी बुद्धि बुद्धियों की अनुभव करने वाली उतनी ही स्मृतियें प्राप्त होंगी। (तत्संकराच्चैकस्मृत्यनवधारणं च स्यादिति) उनके संकर हो जाने से एक स्मृति धारण नहीं हो सकती (एवं बुद्धिप्रतिसंवेदिनं पुरुष-मपलपद्भिर्वैनाशिकैः सर्वमेवाऽऽकुलीकृतम्) इस प्रकार बुद्धि को जानने वाले पुरुष का अभाव बतलाकर नास्तिक लोगों ने सबही प्रतिकूल = उलटा अर्थ किया है कि बुद्धि से भिन्न उसका जानने वाला पुरुष नहीं है। (ते तु भोक्तृस्वरूपं यत्र क्वचन कल्पयन्तो न न्यायेन संगच्छन्ते) वह तो भोक्ता के स्वरूप को जिसमें कोई भी संशय नहीं करता, अभाव ही मानते हैं, और न्याय के आश्रय से जल्पवाद करते हैं (केचित्तु सत्त्वमात्रमपि परिकल्प्यास्ति) कोई

पुरुष तो बुद्धि को भी कहते हैं कि वह बुद्धि कल्पना की हुई है (स सत्त्वो य एतान्पञ्च स्कन्धान्निक्षिप्यान्यांश्च प्रतिसंदधाति) जो उस बुद्धि के पांच ज्ञान भेदों को त्याग कर अन्यों को ही धारण करते हैं (इत्युक्त्वा तत एव पुनस्त्रस्यन्ति) वह ऐसा कह कर पुनः भयमान होते हैं । (तथा स्कन्धानां महान्निर्वेदाय विरागायानुत्पादाय प्रशान्तये गुरोरन्तिके ब्रह्मचर्यं चरिष्यामीत्युक्त्वा) उसी प्रकार कहते हैं स्कन्धों का महत्व निर्णय करने के लिये, वैराग्य के लिये, शान्ति न उत्पन्न करने के लिये, गुरु के समीप रहकर ब्रह्मचर्य धारण करूँगा, ऐसा कहकर (सत्त्वस्य पुन सत्त्वमेवापह्नुवते) पुनः बुद्धि के अस्तित्त्व को नष्ट करते हैं । (सांख्ययोगादयस्तु प्रवादाः) सांख्य-योगादितो वादमात्र हैं (स्वशब्देन पुरुषमेव स्वामिनं चित्तस्य भोक्तारमुपयन्तीति) चित्त के भोक्ता पुरुष स्वामी को स्वशब्द से मानते हैं अर्थात् पुरुष को चित्त ही बतलाते हैं कि पुरुष कोई वस्तु नहीं है एक चित्त मात्र ही है ॥ २१ ॥

(कथम्) किस प्रकार—

भो० वृत्ति

यदि हि बुद्धिर्बुद्ध्यन्तरेण वेद्यते तदा साऽपि बुद्धिः स्वयमबुद्धा बुद्ध्यन्तरं प्रकाशयितुमसमर्थेति तस्या बोधकं बुद्ध्यन्तरं कल्पनीयं तस्याप्यन्यदित्यनवस्थानात्पुरुषायुषेणाप्यर्थप्रतीतिर्न स्यात् । न हि प्रतीतावप्रतीतायामर्थः प्रतीतो भवति । स्मृतिसंकरश्च प्राप्नोति—रूपे रसे वा समुत्पन्नायां बुद्धौ तद्ग्राहिकाणामनन्तानां बुद्धीनां समुत्पत्तेर्बुद्धिजनितैः संस्कारैर्यदा युगपद्बह्व्यः स्मृतयः क्रियन्ते तदा बुद्धेरपर्यवसानाद्बुद्धिस्मृतिनां च बह्वीनां युगपदुत्पत्तेः कस्मिन्नर्थे स्मृतिरियमुत्पन्नेति ज्ञातुमशक्यत्वात्स्मृतीनां संकरः स्यात्, इयं रूपस्मृतिरियं रसस्मृतिरिति न ज्ञायेत ॥ २१ ॥

ननु बुद्धेः स्वप्रकाशत्वाभावे बुद्ध्यन्तरेण चासंवेदने कथमयं विषयसंवेदनरूपो व्यवहार इत्याशङ्क्य स्वसिद्धान्तमाह—

भो० वृ० पदार्थ

(यदि हि बुद्धिर्बुद्ध्यन्तरेण वेद्यते) यदि बुद्धि दूसरी बुद्धि से जानी जाती है (तदा साऽपि बुद्धिः स्वयमबुद्धा) तब वह भी बुद्धि स्वयं न जानती हुई (बुद्ध्यन्तरं प्रकाशयितुमसमर्थेति) दूसरी बुद्धि को प्रकाश करने के लिये असमर्थ है (तस्या बोधकं बुद्ध्यन्तरं कल्पनीयं) उसकी बोधक दूसरी बुद्धि कल्पना करने के योग्य है (तस्यापि अन्यत्) उसकी बोधक भी और बुद्धि कल्पना करने के योग्य है, इस कारण इसमें अनवस्था रूप दोष आया क्योंकि कहीं इसकी समाप्ति ही नहीं होगी (इति अनवस्थानात्पुरुषायुषेणाप्यर्थप्रतीतिर्न स्यात्) इस कारण अनवस्था होने से पुरुष को आयुभर में भी अर्थ का ज्ञान न होगा (न हि प्रतीतात्वप्रतीतायामर्थः प्रतीतो भवति) क्योंकि प्रतीत कि अप्रतीति में अर्थ प्रतीत नहीं होता। (स्मृतिसंकरश्च प्राप्नोति) स्मृतियों का भी सङ्कर प्राप्त होता है—(रूपे रसे वा समुत्पन्नायां बुद्धौ तद्ग्राहिकाणामनन्तानां बुद्धीनां समुत्पत्तेर्बुद्धिजनितैः संस्कारैर्यदा युगपद्बह्वयः स्मृतयः क्रियन्ते) बुद्धि में उत्पन्न हुए रूप वा रस उसके ग्रहण कराने वाली अनन्त बुद्धियों के उत्पन्न होने पर बुद्धि से उत्पन्न हुए संस्कारों से जब एक साथ बहुतसी स्मृतियें उत्पन्न होती हैं, (तदा बुद्धेरपर्यवसानाद्बुद्धिस्मृतिनां च बह्वीनां युगपदुत्पत्तेः कस्मिन्नर्थे स्मृतिरियमुत्पन्नेति ज्ञातुमशक्यत्वात्स्मृतीनां संकरः स्यात्) तब बुद्धियों का अन्त न होने से बहुत सी बुद्धि और स्मृतियों के भी एक साथ उत्पन्न होने पर किस अर्थ विषयक यह स्मृति उत्पन्न हुई इसके जानने के लिये असमर्थ होने से स्मृतियों का संकर = एकमेक हो जायगा, (इयं रूपस्मृतिरियं रसस्मृतिरिति न ज्ञायेत) यह रूप की स्मृति है और यह रस की स्मृति है, यह ज्ञान न होगा ॥ २१ ॥

(ननु बुद्धेः स्वप्रकाशत्वाभावे बुद्ध्यन्तरेण चासंवेदने कथमयं विषयसंवेदनरूपो व्यवहार इत्याशङ्क्य स्वसिद्धान्तमाह) बुद्धि के स्वप्रकाश-

त्वाभाव होने पर और अन्य बुद्धि से भी न जानने पर, तो किस प्रकार यह विषय ज्ञानरूप व्यवहार होता है, इस शङ्का के होने पर इसके निवारणार्थ शास्त्रकार अपना सिद्धान्त अगले सूत्र से वर्णन करते हैं—

चित्तेरप्रतिसंक्रमायास्तदाकारापत्तौ स्वबुद्धिसंवेदनम् ॥ २२ ॥

सू०—(चित्तेरप्रतिसंक्रमायाः) चेतनशक्ति पदार्थ के साथ सम्बन्ध करके उसके स्वरूप में परिणाम को न प्राप्त होने वाली है (तदाकारापत्तौ) उस चेतन के आकार को प्राप्त हुई बुद्धि वृत्ति, उस बुद्धिवृत्ति को ग्रहण करने से पुरुष को अपने स्वरूप का ज्ञान होता है और अपने स्वरूप से भिन्न बुद्धि का भी ज्ञान होता है, अर्थात् जब बुद्धि चेतन पुरुष रूपाकार होती है, उस वृत्ति को पुरुष प्राप्त होकर अपने रूप का साक्षात् करता है। तब उसको स्व स्वरूप भिन्न बुद्धि का, स्व स्वरूप से भिन्न साक्षात् हो जाता है ॥ २२ ॥

व्या० भाष्यम्

अपरिणामिनी हि भोक्तृशक्तिरप्रतिसंक्रमा च परिणामिन्यर्थे प्रतिसंक्रान्तेव तद्वृत्तिमनुपतति। तस्याश्च प्राप्तचैतन्योपग्रहस्वरूपाया बुद्धिवृत्तेरनुकारमात्रतया बुद्धिवृत्त्यविशिष्टा हि ज्ञानवृत्तिराख्यायते। तथा चोक्तम्—

न पातालं न च विवरं गिरीणां
नैवान्धकारं कुक्षयो नोदधीनाम्।
गुहा यस्यां निहितं ब्रह्म शाश्वतं
बुद्धिवृत्तिमविशिष्टां कवयो वेदयन्ते ॥ इति ॥२२॥

अतश्चैतदभ्युपगम्यते—

व्या० भा० पदार्थ

(अपरिणामिनी हि भोक्तृशक्तिरप्रतिसंक्रमा च) भोगने वाली शक्ति जीवात्मा परिणाम रहित है और पदार्थ के रूपाकार नहीं होती (परिणामिन्यर्थे प्रतिसंक्रान्तेव तद्वृत्तिमनुपतति) परिणाम स्वभाव वाली बुद्धि के अर्थ स्वरूप में सम्बन्ध करके परिणत होने पर उसकी वृत्ति को पुरुष प्राप्त होता है। (तस्याश्च प्राप्तचैतन्योपग्रहस्वरूपाया बुद्धिवृत्तेरनुकारमात्रतया बुद्धिवृत्त्यविशिष्टा हि ज्ञान-वृत्तिराख्यायते) उपरागरूप से चेतन स्वरूप को प्राप्त हुई जो बुद्धि की वृत्ति, उस वृत्ति के समनाकार मात्रता से पुरुष स्वरूप जाना जाता है, क्योंकि बुद्धि वृत्ति से ज्ञान वृत्ति विशेष नहीं है। (तथा चोक्तम्) वैसा ही कहा है—

(न पातालं न च विवरं गिरीणां, नैवान्धकारं कुक्षयो नोदधीनाम्।
गुहा यस्यां निहितं ब्रह्म शाश्वतं, बुद्धिवृत्तिमविशिष्टां कवयो वेदयन्ते॥
इति॥)

पाताल में पर्वतों की गुफा में अन्धकार में समुद्रों की खाड़ियों में परब्रह्म = परमात्मा का साक्षात् नहीं होता। किन्तु बुद्धि ही एक ऐसा स्थान है जिसमें विराजमान् हुए परमात्मा का सदैव साक्षात् होता है, बुद्धि वृत्ति से उसका स्वरूप विशेष नहीं है ऐसा ही ज्ञानी पुरुष जानते हैं॥ २२॥

(अतश्चैतदभ्युपगम्यते) इस कारण यह सिद्ध होता है—

भो० वृत्ति

पुरुषश्चिद्रूपत्वाच्चितिः साऽप्रतिसंक्रमा—न विद्यते प्रतिसंक्रमोऽन्यत्र गमनं यस्याः सा तथोक्ता, अन्येनासंकीर्णेति यावत्। यथा—गुणा अङ्गाङ्गि-भावलक्षणे परिणामेऽङ्गिनं गुणं संक्रामन्ति तद्रूपतामिवाऽऽपद्यन्ते, यथा—वा लोके परमाणवः प्रसरन्तो विषयमारूपयन्ति नैवं चितिशक्तिस्तस्याः सर्वदै-

करूपतया स्वप्रतिष्ठितत्वेन व्यवस्थितत्वात्। अतस्तत्संनिधाने यदा बुद्धिस्त-दाकारतामापद्यते चेतनेवोपजायते, बुद्धिवृत्तिप्रतिसंक्रान्ता च यदा चिच्छ-क्तिर्बुद्धिवृत्त्यविशिष्टतया संवेद्यते तदा बुद्धेः स्वस्याऽऽत्मनो वेदनं भवतीत्यर्थः॥ २२॥

इत्थं स्वसंविदितं चित्तं सर्वार्थग्रहणसामर्थ्येन सकलव्यवहारनिर्वाह-क्षमं भवतीत्याह—

भो० वृ० पदार्थ

(पुरुषश्चिद्रूपत्वाच्चितिः) चेतन स्वरूप होने से पुरुष चितिः कहलाता है (साऽप्रतिसंक्रमा) वह प्रतिसंक्रमा नहीं— (न विद्यते प्रतिसंक्रमोऽन्यत्र गमनं यस्याः सा तथोक्ता) नहीं है प्रति संक्रम अर्थात् अन्यत्र गमन जिस का वह "अप्रतिसंक्रमा" कहलाती है, (अन्येनासंकीर्णेति यावत्) अन्य के स्वरूप में नहीं बदलती इतना अर्थ है। (यथा—गुणा अङ्गाऽङ्गिभावलक्षणे परिणामोऽङ्गिनं गुणं संक्रामन्ति) जैसे तीनों गुण अङ्ग अङ्गि भावरूप में परिणाम होने पर अङ्गि गुणरूप हो जाते हैं (तद्रूपतामिवाऽऽपद्यन्ते) उस की समान रूपता को प्राप्त होते हैं, (यथाः—वा लोके परमाणवः प्रसरन्तो विषयमारूपयन्ति नैव चितिशक्तिः) अथवा जैसे संसार में परमाणु विस्तृत होकर विषय रूप हो जाते हैं, ऐसी चेतनशक्ति नहीं है, (तस्याः सर्वदैकरूपतया स्वप्रतिष्ठितत्वेन व्यवस्थित-त्वात्) उस का सदैव एकरूपता से अपने स्वरूप में स्थिर रहने से। (अतस्तत्संनिधाने यदा बुद्धिस्तदाकारतामापद्यते) इस कारण उस के समीपस्थ होने से जब बुद्धि उस की आकारता को प्राप्त होती है (चेतने-वोपजायते) चेतनशक्ति का ही ज्ञान उत्पन्न होता है, (बुद्धिवृत्तिप्रतिसं-क्रान्ता च यदा चिच्छक्तिर्बुद्धिवृत्त्यविशिष्टतया संवेद्यते) चेतनशक्ति के रूप में बुद्धि वृत्ति सम्बन्ध करके जब परिणाम को प्राप्त होती है, उस बुद्धि वृत्ति की अविशेषता से चेतन शक्ति जानी जाती है (तदा बुद्धेः स्वस्याऽऽ

त्मनो वेदनं भवतीत्यर्थः) तब बुद्धि में अपने स्वरूप का ज्ञान होता है, यह अर्थ है ॥ २२ ॥

(इत्थं स्वसंविदितं चित्तं सर्वार्थग्रहणसामर्थ्येन सकलव्यवहारनिर्वाह-क्षमं भवतीत्याह) इस प्रकार अपने से जाना हुआ चित्त सर्वार्थ ग्रहणरूप सामर्थ से सम्पूर्ण व्यवहारों का निर्वाहक होता है यह आगे कहते हैं—

द्रष्टृदृश्योपरक्तं चित्तं सर्वार्थम् ॥ २३ ॥

सू०—चित्त द्रष्टा और दृश्य दोनों से उपराग को प्राप्त होने के कारण सर्वार्थ, ज्ञान साधक है ॥ २३ ॥

व्या० भाष्यम्

मनो हि मन्तव्येनार्थेनोपरक्तं । ततः स्वयं च विषयत्वाद्विषयिणा पुरुषेणाऽऽत्मीयया वृत्त्याभिसंबद्धं, तदेतच्चित्तमेव द्रष्टृदृश्योपरक्तं विषयविषयिनिर्भासं चेतनाचेतनस्वरूपापन्नं विषयात्मकमप्यविषया-त्मकमिवाचेतनं चेतनमिव स्फटिकमणिकल्पं सर्वार्थमित्युच्यते ।

तदनेन चित्तसारूप्येण भ्रान्ताः केचित्तदेव चेतनमित्याहुः । अपरे चित्तमात्रमेवेदं सर्वं नास्ति खल्वयं गवादिर्घटादिश्च सकारणो लोक इति अनुकम्पनीयास्ते । कस्मात् । अस्ति हि तेषां भ्रान्तिबीजं सर्वरूपाकारनिर्भासं चित्तमिति । समाधिप्रज्ञायां प्रज्ञेयोऽर्थ प्रतिबि-म्बीभूतस्तस्याऽऽलम्बनीभूतत्वादन्यः । स चेदर्थश्चित्तमात्रं स्यात्कथं प्रज्ञयैव प्रज्ञारूपमवधार्यत । तस्मात्प्रतिबिम्बीभूतोऽर्थः प्रज्ञायां येना-वधार्यते स पुरुष इति । एवं ग्रहीतृग्रहणग्राह्यस्वरूपचित्तभेदात्त्रयम-प्येतज्जातितः प्रविभज्यन्ते ते सम्यग्दर्शिनस्तैरधिगतः पुरुषः ॥ २३ ॥

कुतश्चैतत्—

व्या० भा० पदार्थ

(मनो हि मन्तव्येनार्थेनोपरक्तं) मन ही विचारणीय अर्थ के साथ उपराग को प्राप्त होता है । (ततः स्वयं च विषयत्वाद्विष-

यिणा पुरुषेणाऽऽत्मीयया वृत्त्याभिसंबद्धं) वह मन स्वयं विषय होने से विषय करने वाले पुरुष की निजवृत्ति अर्थात् ज्ञान से युक्त है, (तदेतच्चित्तमेव द्रष्टृदृश्योपरक्तं विषयविषयिनिर्भासं) वह यह चित्त ही द्रष्टा और दृश्य से उपराग को प्राप्त होने वाला विषय और विषय करने वाले दोनों के स्वरूप से भासित होता है (चेतनाचेतनस्वरूपापन्नं) जड़ और चेतन दोनों के स्वरूप को प्राप्त है (विषयात्मकमप्यविषयात्मकमिवाचेतनं चेतनमिव स्फटिकमणिकल्पं सर्वार्थमित्युच्यते) वह पुरुष का विषयरूप होता हुआ भी अविषयरूप के समान, जड़ होता हुआ चेतन के समान जान पड़ता है स्फटिकमणि की भांति है इस लिये सर्वार्थ कहाजाता है ।

अभिप्राय इस का यह है कि जैसे स्फटिकमणि के नीचे रक्त पीत दो पुष्प रख दिये जांय और एक भाग खाली छोड़ दिया जाय तो स्फटिक जहां रक्त पुष्प है वहां से रक्त रूप और जहां पीत है वहां से पीत रूप और जहां खाली है वहां अपना रूप भासित करता है, इसी प्रकार चित्त जब विषय के साथ उपरक्त होता है तब विषय रूप को भासित करता और जब विषयि पुरुष के स्वरूप से उपरक्त होता है तब विषयि पुरुष के स्वरूप को प्रकाशित करता है, और जब दोनों को छोड़ कर स्वरूपमात्र का बिम्ब लेता है, तब अपने स्वरूप को दिखालाता है, इस कारण चित्त सर्वार्थ सिद्ध करता है, यह कहा जाता है ।

(तदनेन चित्तसारूप्येण भ्रान्ताः केचित्तदेव चेतनमित्याहुः) चित्त के ऊपर कहे रूप से भ्रान्त हुए लोग कोई एक, चित्त ही चेतन है, ऐसा कहते हैं। (अपरे चित्तमात्रमेवेदं सर्वं नास्ति खल्वयं गवादिर्घटादिश्च सकारणो लोक इति) और कोई एक नास्तिक कहते हैं कि चित्त की कल्पनामात्र ही यह सर्व है निश्चय यह गौ और घटादि पदार्थ और कारण सहित संसार नहीं है। (अनुकम्पनी-

यास्ते) ऐसे जो दयापात्र है, वह कहते हैं। (कस्मात्) क्योंकि। (अस्ति हि तेषां भ्रान्तिबीजं) क्योंकि उन के चित्त में भ्रान्ति का बीज है (सर्वरूपाकारनिर्भासं चित्तमिति) इस कारण चित्त सर्वरूपाकार से भासित होता है। (समाधिप्रज्ञायां प्रज्ञेयोऽर्थः प्रतिबिम्बीभूतस्तस्याऽऽलम्बनीभूतत्वादन्यः) समाधि कालीनी बुद्धि में जानने योग्य अर्थ प्रतिबिम्ब रूप हुआ उसका आलम्बनरूप होने से उस बुद्धि से भिन्न है। (स चेदर्थश्चित्तमात्रं स्यात्कथं प्रज्ञयैव प्रज्ञारूपमवधार्येत) यदि वह अर्थ भी चित्तमात्र ही होवे अर्थात् चित्त से भिन्न न हो तो किस प्रकार बुद्धि ही बुद्धि के रूप को धारण करे (तस्मात्प्रतिबिम्बीभूतोऽर्थः प्रज्ञायां येनावधार्यते स पुरुष इति) इस कारण बुद्धि में प्रतिबिम्बरूप हुआ अर्थ जिस से ग्रहण किया जाता है वह पुरुष है। (एवं ग्रहीतृग्रहणग्राह्यस्वरूपचित्तभेदात्त्रयमप्येतज्जातितः प्रविभज्यन्ते) इस प्रकार ग्रहण करने वाला ग्रहण और ग्राह्य स्वरूप चित्त के तीन भेद होने से यह तीनों जाति से भिन्न २ हैं (ते सम्यग्दर्शिनस्तैरधिगतः पुरुषः) यथार्थदर्शी ज्ञानी लोग उन तीनों से ऊपर पुरुष परमात्मा है, ऐसा जानते हैं ॥ २३ ॥

(कुतश्चैतत्) यह किस प्रकार है इस को आगे कहते हैं—

भो० वृत्ति

द्रष्टा पुरुषस्तेनोपरक्तं तत्संनिधानेन तद्रूपतामिव प्राप्तं दृश्योपरक्तं विषयोपरक्तं गृहीतविषयाकारपरिणामं यदा भवति तदा तदेव चित्तं सर्वार्थग्रहणसमर्थं भवति। यथा निर्मलं स्फटिकदर्पणाद्येव प्रतिबिम्बग्रहणसमर्थमेवं रजस्तमोभ्यामनभिभूतं सत्त्वं शुद्धत्वाच्चिच्छायाग्रहणसमर्थं भवति, न पुनरशुद्धत्वाद्रजस्तमसी। तत् तदा न्यग्भूतरजस्तमोरूपमङ्गितया सत्त्वं निश्चलप्रदीपशिखाकारं सदैवैकरूपतया परिणममानं चिच्छायाग्रहणसामर्थ्यादा मोक्षप्राप्तेरवतिष्ठते। यथाऽयस्कान्तसंनिधाने लोहस्य चलनमाविर्भवति, एवं चिद्रूप पुरुषसंनिधाने सत्त्वस्याभिव्यङ्ग्यमभिव्यज्यते चैतन्यम्। अत

एवास्मिन्दर्शने द्वे चिच्छक्ती नित्योदिताऽभिव्यङ्ग्या च नित्योदिता चिच्छक्तिः पुरुषस्तत्संनिधानादभिव्यक्तमभिव्यङ्ग्यचैतन्यं सत्त्वमाभिव्यङ्ग्या चिच्छक्तिः। तदत्यन्तसंनिहितत्वादन्तरङ्गं पुरुषस्य भोग्यतां प्रतिपद्यते।

तदेव शान्तब्रह्मवादिभिः सांख्यैः पुरुषस्य परमात्मनोऽधिष्ठेयं कर्मानुरूपं सुखदुःखभोक्तृतया व्यपदिश्यते। यस्त्वनुद्रिक्तत्वादेकस्यापि गुणस्य कदाचित्कस्यचिदङ्गित्वात्त्रिगुणं प्रतिक्षणं परिणममानं सुखदुःखमोहात्मकमनिर्मलं तत्तस्मिन्कर्मानुरूपे शुद्धे सत्त्वे स्वाकारसमर्पणद्वारेण संवेद्यतामापादयति तच्छुद्धमाद्यं चित्तसत्त्वमेकतः प्रतिसंक्रान्तचिच्छायमन्यतोगृहीतविषयाकारेण चित्तेनोपढौकितस्वाकारं चित्संक्रान्तिबलाच्चेतनायमानं वास्तवचैतन्याभावेऽपि सुखदुःखभोगमनुभवति। स एव भोगोऽत्यन्तसंनिधानेन विवेकाग्रहणादभोक्तुरपि पुरुषस्य भोग इति व्यपदिश्यते। अनेनैवाभिप्रायेण विन्ध्यावासिनोक्तं "सत्त्वतप्यत्वमेव पुरुषतप्यत्वम्" इति। अन्यत्रापि प्रतिबिम्बे प्रतिबिम्बमानच्छायासदृशच्छायोद्भवः प्रतिबिम्बशब्देनोच्यते। एवं सत्त्वेऽपि पौरुषेयचिच्छायासदृशचिदभिव्यक्तिः प्रतिसंक्रान्तिशब्दार्थः।

ननु प्रतिबिम्बनं नाम निर्मलस्य नियतपरिणामस्य निर्मले दृष्टं, यथा मुखस्य दर्पणे। अत्यन्तनिर्मलस्य व्यापकस्यापरिणामिनः पुरुषस्य तस्मादत्यन्तनिर्मलात्पुरुषादनिर्मले सत्त्वे कथं प्रतिबिम्बनमुपपद्यते ?। उच्यते प्रतिबिम्बनस्य स्वरूपमनवगच्छता भवतेदमभ्यधायि। यैव सत्त्वगताया अभिव्यङ्ग्यायाश्चिच्छक्तेः पुरुषस्य सांनिध्यादभिव्यक्तिः सैव प्रतिबिम्बनमुच्यते। यादृशी पुरुषगता चिच्छक्तिस्तच्छाया तथाऽऽविर्भवति। यदप्युक्तमत्यन्तनिर्मलः पुरुषः कथमनिर्मले सत्त्वे प्रतिसंक्रामतीति तदप्यनैकान्तिकं, नैर्मल्यादपकृष्टेऽपि जलादावादित्यादयः प्रतिसंक्रान्ताः समुपलभ्यन्ते। यदप्युक्तमनवच्छिन्नस्य नास्ति प्रतिसंक्रान्तिरिति तदप्ययुक्तं, व्यापकस्याप्याकाशस्य दर्पणादौ प्रतिसंक्रान्तिदर्शनात्। एवं सति न काचिदनुपपत्तिः प्रतिबिम्बदर्शनस्य। ननु सात्त्विकपरिणामरूपे बुद्धिसत्त्वे पुरुषसंनिधानादभिव्यङ्ग्यायाश्चिच्छक्तेर्बाह्यार्थाकारसंक्रान्तौ पुरुषस्य सुखदुःखरूपो भोग

इत्युक्तं तदनुपपन्नम्, तदेव चित्तसत्त्वं प्रकृतावपरिणतायां कथं संभवति किमर्थश्च तस्याः परिणामः ? अथोच्येत पुरुषस्यार्थोपभोगसंपादनं तया कर्तव्यम्, अतः पुरुषार्थकर्तव्यतया तस्या युक्त एव परिणामः, तच्चानुपपन्नं, पुरुषार्थकर्तव्यताया एवानुपपत्ते, पुरुषार्थो मया कर्तव्य इत्येवंविधोऽध्यवसायः पुरुषार्थकर्तव्यतोच्यते, जडायाश्च प्रकृतेः कथं प्रथममेवैवंविधोऽध्यवसायः। अस्ति चेदध्यवसायः कथं जडत्वम्। अत्रोच्यते—अनुलोमप्रतिलोमलक्षणपरिणामद्वये सहजं शक्तिद्वयमस्ति तदेव पुरुषार्थकर्तव्यतोच्यते। सा च शक्तिरचेतनाया अपि प्रकृतेः सहजैव। तत्र महदादिमहाभूतपर्यन्तोऽस्या बहिर्मुखतयाऽनुलोमः परिणामः। पुनः स्वकारणानुप्रवेशद्वारेणास्मितान्तः परिणामः प्रतिलोमः। इत्थं पुरुषस्याऽऽभोगपरिसमाप्तेः सहजशक्तिद्वयक्षयात्कृतार्था प्रकृतिर्न पुनः परिणाममारभते। एवंविधायां च पुरुषार्थकर्तव्यतायां जडाया अपि प्रकृतेर्न काचिदनुपपत्तिः। ननु यदीदृशी शक्तिः सहजैव प्रधानस्यास्ति तत्किमर्थं मोक्षार्थिभिर्मोक्षाय यत्नः क्रियते, मोक्षस्य चानर्थनीयत्वे तदुपदेशकशास्त्रस्याऽऽनर्थक्यं स्यात्। उच्यते—योऽयं प्रकृतिपुरुषयोरनादिर्भोग्यभोक्तृत्वलक्षणः संबन्धस्तस्मिन्सति व्यक्तचेतनायाः प्रकृतेः कर्तृत्वाभिमानाद्दुःखानुभवे सति कथमियं दुःखनिवृत्तिरात्यन्तिकी मम स्यादिति भवत्येवाध्यवसायः अतो दुःखनिवृत्त्युपायोपदेशकशास्त्रोपदेशापेक्षाऽस्त्येव प्रधानस्य। तथाभूतमेव च कर्मानुरूपं बुद्धिसत्त्वं शास्त्रोपदेशस्य विषयः। दर्शनान्तरेष्वप्येवंविध एवाविद्यास्वभावः शास्त्रेऽभिधीयते। स च मोक्षाय प्रयतमान एवंविधमेव शास्त्रोपदेशं सहकारिणमपेक्ष्य मोक्षाख्यं फलमासादयति। सर्वाण्येव कार्याणि प्राप्तायां सामग्र्यामात्मानं लभन्ते। अस्य च प्रतिलोमपरिणामद्वारेणैवोत्पाद्यस्य मोक्षाख्यस्य कार्यस्येदृश्येव सामग्री प्रमाणेन निश्चिता प्रकारान्तरेणानुपपत्तेः, अतस्तां विना कथं भवितुमर्हति, अतः स्थितमेतत्—संक्रान्तविषयोपरागमभिव्यक्तचिच्छायं बुद्धिसत्त्वं विषयनिश्चयद्वारेण समग्रां लोकयात्रां निर्वाहयतीति। एवंविधमेव चित्तं पश्यन्तो भ्रान्ताः स्वसंवेदनं चित्तं चित्तमात्रं च जगदित्येवं ब्रुवाणाः प्रतिबोधिता भवन्ति ॥ २३ ॥

ननु यद्येवंविधादेव चित्तात्सकलव्यवहारनिष्पत्तिः कथं प्रमाणशून्यो द्रष्टाभ्युपगम्यत इत्याशङ्क्य द्रष्टुः प्रमाणमाह—

भो० वृ०पदार्थ

(द्रष्टा पुरुषस्तेनोपरक्तं तत्संनिधानेन तद्रूपतामिव प्राप्तं) द्रष्टा पुरुष है उसके साथ चित्त उपराग को प्राप्त हुआ उसकी समीपतामात्र से उस के समान रूपता को प्राप्त द्रष्टा उपरक्त कहलाता है (दृश्योपरक्तं विषयोपरक्तं) दृश्य उपरक्त विषय से उपराग को प्राप्त कहलाता है (गृहीतविषयाकारपरिणामं यदा भवति तदा तदेव चित्तं सर्वार्थग्रहणसमर्थं भवति) जब चित्त विषयाकार परिणाम को ग्रहण किये हुए होता है तब वह सर्वार्थ ग्रहण करने को समर्थ होता है । (यथा निर्मलं स्फटिकदर्पणाद्येव प्रतिबिम्बग्रहणसमर्थम्) जैसे मलरहित स्फटिक–दर्पणादि प्रतिबिम्ब ग्रहण करने को समर्थ होते हैं (एवं रजस्तमोभ्यामनभिभूतं सत्त्वं शुद्धत्वाच्चिच्छायाग्रहणसमर्थं भवति) इसी प्रकार रज–तम से न ढका हुआ चित्त शुद्ध होने से चेतन छाया ग्रहण करने को समर्थ होता है । (न पुनरशुद्धत्वाद्रजस्तमसी) रज–तम द्वारा अशुद्ध होने से ग्रहण नहीं कर सकता । (तत् तदा न्यग्भूतरजस्तमोरूपमङ्गितया सत्त्वं निश्चलप्रदीपशिखाकारं सदैवैकरूपतया परिणममानं चिच्छायाग्रहणसामर्थ्यादा मोक्षप्राप्तेरवतिष्ठते) तब वह रज–तम दबे हुए सत्त्वगुण के प्रधान होने से निश्चल प्रदीप शिखा के समान सदैव एकरूपता से परिणाम को प्राप्त हुआ चेतन छाया के ग्रहण रूप सामर्थ से मोक्ष पर्यन्त रहता है । (यथाऽयस्कान्तसंनिधाने लोहस्य चलनमाविर्भवति) जैसे चुम्बकमणि के समीप होनेपर लोह में क्रिया उत्पन्न हो जाती है, (एवं चिद्रूपपुरुषसंनिधाने सत्त्वस्याभिव्यङ्ग्यमभिव्यज्यते चैतन्यम्) इसी प्रकार चेतन पुरुष की समीपता से बुद्धि प्रकाशित होकर चेतनशक्ति को प्रकाशित करती है । (अत एवास्मिन्दर्शने द्वे चिच्छक्ती) इस कारण इस दर्शन में दो ज्ञान शक्ति अर्थात् दो प्रकार का ज्ञान माना गया है । एक बुद्धि द्वारा होनेवाला ज्ञान और एक निज पुरुष ज्ञान (नित्योदिताऽभिव्यङ्ग्या

च) नित्य उदित और प्रकाश होने योग्य, (नित्योदिता चिच्छक्ति पुरुषः) नित्य उदित ज्ञानशक्ति पुरुष है (तत्संनिधानादभिव्यक्तमभिव्यङ्ग्यचैतन्य) उस पुरुष की समीपता से बुद्धि प्रकाश को पाकर चैतन्य को प्रकाश करती है (सत्त्वमभिव्यङ्ग्या चिच्छक्तिः) बुद्धि भी प्रकाश करने योग्य होने से ज्ञानशक्ति कहलाती है। (तदत्यन्तसंनिहितत्वादन्तरङ्गं पुरुषस्य भोग्यतां प्रतिपद्यते) बुद्धि अन्तरङ्ग साधन पुरुष का है, वह अत्यन्त समीप होने से पुरुष की भोग्यता को प्राप्त होती है। (तदेव शान्तब्रह्मवादिभिः सांख्यैः पुरुषस्य परमात्मनोऽधिष्ठेयं कर्मानुरूपं सुखदुःखभोक्तृतया व्यपदिश्यते) शान्त ब्रह्मवादी और सांख्यवालों ने कर्मानुसार सुख-दुःख भोगनेवाले पुरुष को परमात्मा द्वारा अधिष्ठेय कहा है, अर्थात् परमात्मा जीवात्मा को उस के कर्मानुसार सुख दुःखादि फल देता है।

इस सूत्र में चित्त के सर्वार्थ होने का प्रकरण है, कौन अधिष्ठाता, कौन अधिष्ठेय है, ब्रह्मवादी क्या कहते हैं, सांख्यवाले क्या कहते हैं, यह विषय सूत्रार्थ के आशय से बाहर है, परन्तु किसी प्रकार यहां तक तो स्वीकार भी किया जावे परन्तु आगे तो बारम्बार पुनरुक्ति और जड़ चित्त को सुख दुःखादि भोगों का अनुभव करनेवाला और विन्ध्यवासियों की कहानी सूत्र के अभिप्राय से असम्बद्ध, अनेक प्रकरण जिनका पूर्व पादों में और इस पाद के सूत्रों में भी अच्छे प्रकार निर्णय हो चुका है, उनको वेद विरुद्ध मतानुसार बनाने का परिश्रम किसी आधुनिक मतावलम्बी ने किया है इस कारण यह सर्व त्याज्य है। उसका मूलमात्र लिखकर छोड़ दिया जाता है क्योंकि यदि किसी को हमारे कथन में संशय हो तो मूल में उसको यह सर्व अभिप्राय विदित हो जायगा जो हमने लिखा है, इस कारण अर्थ की आवश्यकता नहीं है ॥ २३ ॥

(ननु यद्येवंविधादेव चित्तात्सकलव्यवहारनिष्पत्तिः कथं प्रमाणशून्यो द्रष्टाभ्युपगम्यत इत्याशङ्क्य द्रष्टुः प्रमाणमाह) जब इस प्रकार चित्त से सकल व्यवहार होते हैं तो फिर किस प्रकार प्रमाण शून्य द्रष्टा सिद्ध होता है, यह शङ्का करके द्रष्टा विषयक प्रमाण आगे कहते हैं—

तदसंख्येयवासनाभिश्चित्रमपि परार्थं संहत्यकारित्वात् ॥ २४ ॥

सू०—वह चित्त असंख्येय वासनाओं से चित्रित हुआ भी "पर" अर्थात् पुरुष के लिये है, क्योंकि इन्द्रियादि संघात के साथ मिलकर काम करने वाला होने से ॥ २४ ॥

व्या० भाष्यम्

तदेतच्चित्तमसंख्येयाभिर्वासनाभिरेव चित्रीकृतमिव परार्थं परस्य भोगापवर्गार्थं न स्वार्थं संहत्यकारित्वाद् गृहवत् । संहत्यकारिणा चित्तेन न स्वार्थेन भवितव्यं, न सुखचित्तं सुखार्थं न ज्ञानं ज्ञानार्थमुभयमप्येतत्परार्थम् । यश्च भोगेनापवर्गेण चार्थेनार्थवान्पुरुषः स एव परो न परः सामान्यमात्रम् । यत्तु किंचित्परं सामान्यमात्रं स्वरूपेणोदाहरेद्वैनाशिकस्तत्सर्वं संहत्यकारित्वात्परार्थमेव स्यात् । यस्त्वसौ परो विशेषः स न संहत्यकारी पुरुष इति ॥ २४ ॥

व्या० भा० पदार्थ

(तदेतच्चित्तमसंख्येयभिर्वासनाभिरेव चित्रीकृतमिव परार्थं) वह यह चित्त असंख्येय वासनाओं से चित्रित हुए के समान भी पर अर्थात् पुरुष के लिये है (परस्य भोगापवर्गार्थं न स्वार्थं) पर अर्थात् पुरुष के भोग–मोक्ष के लिये है, अपने लिये नहीं (संहत्यकारित्वात् गृहवत्) इन्द्रियादि के साथ मिलकर काम करने वाला होने से घर के समान । (संहत्यकारिणा चित्तेन न स्वार्थेन भवितव्यं) संहत्यकारी होने के कारण चित्त से अपने लिये भोग मोक्ष सम्पादन करना योग्य नहीं, (न सुखचित्तं सुखार्थं) चित्त में सुख चित्त के सुख भोगार्थ नहीं, (न ज्ञानं ज्ञानार्थम्) ज्ञान भी उसके ज्ञानार्थ नहीं (उभयमप्येतत्परार्थम्) यह दोनों ही अन्य के

लिये हैं। (यश्च भोगेनापवर्गेण चार्थेनार्थवान्पुरुषः) जो भोग मोक्ष रूप प्रयोजनवाला पुरुष है (स एव परः) वह ही "पर" शब्द से यहां कहा गया। अब कोई नास्तिक कहता है (न परः सामान्यमात्रम्) वह पर नहीं किन्तु सामान्यमात्र है। (यत्तु किञ्चित्परं सामान्यमात्रं स्वरूपेणोदाहरेद्वैनाशिकस्तत्सर्वं संहत्यकारित्वात्परार्थमेव स्यात्) जो किञ्चित् उसमें परता है वह सामान्यमात्र ही है, इस प्रकार नास्तिक लोग स्वरूप से उदाहरण द्वारा कहते हैं कि वह सर्व संहत्यकारी होने से परार्थ ही है, उनका अभिप्राय यह है कि जीवात्मा को बुद्धि का अधिष्ठाता होने से जो पर माना है वह भी बुद्धि इन्द्रियादि के साथ मिलकर काम करने वाला होने से कुछ विशेषपरता उसमें नहीं। (यस्त्वसौ परो विशेषः स न संहत्यकारी पुरुष इति) परन्तु जो वह पर विशेष पुरुष है वह संहत्यकारी नहीं है॥ २४॥

भो० वृत्ति

तदेव चित्तं संख्यातुमशक्याभिर्वासनाभिश्चित्रमपि नानारूपमपि परार्थं परस्य स्वामिनः भोक्तुर्भोगापवर्गलक्षणमर्थं साधयतीति, कुतः ? संहत्यकारित्वात्, संहत्य संभूय मिलित्वाऽर्थक्रियाकारित्वात्। यच्च संहत्यार्थक्रियाकारि तत्परार्थं दृष्टं, यथा—शयनासनादि। सत्त्वरजस्तमांसि च चित्तलक्षणपरिणामभाञ्जि संहत्यकारीणि चातः परार्थानि। यः परः स पुरुषः। ननु यादृश्येन शयनासनादीना परेण शरीरवता पारार्थ्यमुपलब्धं तद्दृष्टान्तबलेन तादृश एव परः सिध्यति। यादृशश्च भवतां परोऽसंहतरूपोऽभिप्रेतस्तद्विपरीतस्य सिद्धेरयमिष्टविघातकृद्धेतुः। उच्यते—यद्यपि सामान्येन परार्थमात्रत्वेन व्याप्तिर्गृहीता तथाऽपि सत्त्वादिविलक्षणधर्मिपर्यालोचनया तद्विलक्षण एव भोक्ता परः सिध्यति। यथा—चन्दनघनावृते शिखरिणि विलक्षणाद्धूमाद्वह्निरनुमीयमान इतरवह्निविलक्षणश्चन्दनप्रभव एव प्रतीयते, एवमिहापि विलक्षणस्य सत्त्वाख्यस्य भोग्यस्य परा-

र्सत्वेऽनुमीयमाने तथाविध एव भोक्ताऽधिष्ठाता परश्चिन्मात्ररूपोऽसंहतः सिध्यति । यदि च तस्य परत्वं सर्वोत्कृष्टत्वमेव प्रतीयते तथाऽपि ताम-सेभ्यो विषयेभ्यः प्रकृष्यते शरीरं प्रकाशरूपेन्द्रियाश्रयत्वात्, तस्मादपि प्रकृष्यन्ते इन्द्रियाणि, ततोऽपि प्रकृष्टं सत्त्वं प्रकाशरूपं, तस्यापि यः प्रका-शकः प्रकाश्यविलक्षणः स चिद्रूप एव भवतीति कुतस्तस्य संहतत्वम् ॥२४॥

इदानीं शास्त्रफलं कैवल्यं निर्णेतुं दशभिः सूत्रैरुपक्रमते—

भो० वृ० पदार्थ

(तदेव चित्तं संख्यातुमशक्याभिर्वासनाभिश्चित्रमपि नानारूपमपि परार्थं परस्य स्वामिनः भोक्तुर्भोगापवर्गलक्षणमर्थं साधयतीति) वह चित्त असंख्येय नाना रूप वासनाओं से चित्रित हुआ भी परार्थ अर्थात् पर स्वामी भोक्ता के भोग मोक्षरूप प्रयोजन को सिद्ध करता है, (कुतः ?) किस प्रकार कि (संहत्यकारित्वात) इन्द्रियादि के साथ मिलकर काम करनेवाला होने से, (संहत्य संभूय मिलित्वाऽर्थक्रियाकारित्वात्) संघात के साथ मिलकर प्रजोजनवाली क्रिया का करता होने से। (यच्च संह-त्यार्थक्रियाकारि तत्परार्थं दृष्टं) जो कोई मिलकर प्रयोजन सिद्धि के लिये क्रिया करने वाला है, वह दूसरे के लिये देखागया है, (यथा—शयना-सनादि) जैसे—शय्या आसनादि। (सत्त्वरजस्तमांसि च चित्तलक्षण-परिणामभाञ्जि संहत्यकारिणि चातः परार्थानि) और सत्त्व, रज, तम तीनों गुण भी चित्तरूप परिणाम के भेदक मिलकर काम करनेवाले हैं, इस कारण परार्थ हैं। (यः परः स पुरुषः) जो पर शब्द से कहा गया वह पुरुष है। (ननु यादृश्येन शयनासनादिना परेण शरीरवतां पारार्थ्य-मुपलब्धं) हम तर्क करते हैं कि जैसे दृष्टान्त से शय्या आसनादि को दूसरे अर्थात् शरीरधारी पर के प्रयोजनार्थ माना हैं (तद्दृष्टान्तबलेन तादृश एव परः सिध्यति) उस दृष्टान्त बल से तो वैसा ही पर भी संहत्यकारी सिद्ध होता है। (यादृशश्च भवतां परोऽसंहतरूपोऽभिप्रेत-स्तद्विपरीतस्य सिद्धेरयमिष्टविघातकृद्धेतुः) जैसा असंहतरूप पर आपको

अभिप्रेत है, उसके विपरीत सिद्ध होनेपर यह इष्ट सिद्धान्त को नष्ट करने वाला हेतु है। (उच्यते) इसका उत्तर देते हैं—(यद्यपि सामान्येन परार्थमात्रत्वेन व्याप्तिर्गृहीता तथाऽपि सत्त्वादिविलक्षणधर्मिपर्यालोचनया तद्विलक्षण एव भोक्ता परः सिध्यति) यदि सामान्यरूप से परार्थ मात्रत्व व्याप्ति ग्रहण कीगई तो भी सत्त्वादि से विलक्षण चित्त धर्मी के अवलोकन द्वारा उससे भी विलक्षण भोक्ता पर सिद्ध होता है। (यथा—चन्दनवनावृते शिखरिणि विलक्षणाद्धूमाद्वह्निरनुमीयमान इतरवह्निविलक्षणश्चन्दनप्रभव एव प्रतीयते) जैसे चन्दन वन के वृक्षों से ढके हुए पर्वत में विलक्षण धूमों से अग्नि का अनुमान होते हुए अन्य अग्नि से विलक्षण चन्दन से उत्पन्न हुई अग्नि भी जानी जाती है, (एवमिहापि विलक्षणस्य सत्त्वाख्यस्य भोग्यस्य परार्थत्वेऽनुमीयमाने) इस प्रकार यहां भी विलक्षण भोग्य बुद्धि के परार्थ होने में अनुमान किये जाने पर (तथाविध एव भोक्ताऽधिष्ठाता परश्चिन्मात्ररूपोऽसंहतः सिध्यति) वैसा ही भोक्ता अधिष्ठाता चेतन स्वरूप पर असंहत सिद्ध होता है। (यदि च तस्य परत्वं सर्वोत्कृष्टत्वमेव प्रतीयते) यदि उसका परत्व सब से श्रेष्ठ प्रतीत होता है (तथाऽपि तामसेभ्यो विषयेभ्यः प्रकृष्यते शरीरं प्रकाशरूपेन्द्रियाश्रयत्वात्) तो भी तामस विषयों से शरीर श्रेष्ठ है, प्रकाशरूप इन्द्रियों का आश्रय होने से, (तस्मादपि प्रकृष्यन्ते इन्द्रियाणि) उस शरीर से भी इन्द्रियें श्रेष्ठ हैं, (ततोऽपि प्रकृष्टं सत्त्वं प्रकाशरूपं) उन इन्द्रियों से भी प्रकाशरूप बुद्धि श्रेष्ठ है, (तस्यापि यः प्रकाशकः प्रकाश्यविलक्षणः स चिद्रूप एव भवतीति कुतस्तस्य संहतत्वम्) उस बुद्धि का भी जो प्रकाश करने वाला प्रकाश्य से विलक्षण वह चेतन स्वरूप ही होता है फिर किस कारण उसका संहतत्व है, अर्थात् नहीं है ॥ २४ ॥

(इदानीं शास्त्रफलं कैवल्यं निर्णेतुं दशभिः सूत्रैरुपक्रमते) अब शास्त्र का फल कैवल्य निर्णय करने को १० दश सूत्रों से आगे उपक्रम करते हैं—

विशेषदर्शिन आत्मभावभावनानिवृत्तिः ॥ २५ ॥

सू०—(विशेषदर्शिनः) जिस पुरुष ने चित्त से भिन्न आत्मा को विशेष रूप से देखा है, उस की आत्म स्वरूप विषयक भावना, अर्थात् इच्छा निवृत्त हो जाती है कि मैं कौन हूँ ? किस प्रकार हुआ हूँ, कैसा पहले था ? यह जन्म क्या है ? किस प्रकार हुआ है ? क्या आगे होऊंगा ? किस प्रकार का होऊंगा ? यह सब भावनायें उस योगी की निवर्त हो जाती हैं ॥ २५ ॥

व्या० भाष्यम्

यथा प्रावृषि तृणाङ्कुरस्योद्भेदेन तद्बीजसत्ताऽनुमीयते तथा मोक्ष-मार्गश्रवणेन यस्य रोमहर्षाश्रुपातौ दृश्येते तत्राप्यस्ति विशेषदर्शनबी-जमपवर्गभागीयं कर्माभिनिर्वर्तितमित्यनुमीयते।तस्याऽऽत्मभावभावना स्वाभाविकी प्रवर्तते । यस्याभावादिदमुक्तं स्वभावं मुक्त्वा दोषाद्येषां पूर्वपक्षे रुचिर्भवत्यरुचिश्च निर्णये भवति । तत्राऽऽत्मभावभावना कोऽहमासं ? कथमहमासं ? किंस्विदिदं ? कथंस्विदिदं ? के भविष्यामः ? कथं वा भविष्याम इति ? । सा तु विशेषदर्शिनो निवर्तन्ते । कुतः ? । चित्तस्यैवैष विचित्रः परिणामः, पुरुषस्तु सत्यामविद्यायां शुद्धश्चित्त-धर्मैरपरामृष्ट इति । ततोऽस्याऽऽत्मभावभावना कुशलस्य निवर्तत इति ॥ २५ ॥

व्या० भा० पदार्थ

(यथा प्रावृषि तृणाङ्कुरस्योद्भेदेन तद्बीजसत्ताऽनुमीयते) जैसे वर्षा ऋतु के आरम्भ में तृणों के अङ्कुर भूमि को फोड़कर ऊपर निकलने से उन के बीज की सत्ता अनुमान की जाती है (तथा मोक्षमार्ग-श्रवणेन यस्य रोमहर्षाश्रुपातौ दृश्येते तत्राप्यस्ति विशेषदर्शनबीजमप-वर्गभागीयं) वैसे ही मोक्ष मार्ग के श्रवण से हर्ष के कारण जिस के रोम खड़े हुए और आंसु गिरते हुए देखे जाते हैं, उस के हृदय

में विशेष दर्शन का बीज विद्यमान् है और वह मोक्ष का भागी है (कर्माभिनिर्वर्तितमित्यनुमीयते) पूर्व जन्म के कर्मों और योगाङ्ग अनुष्ठानादि के बल से वर्तमान है, यह अनुमान किया जाता है। (तस्याऽऽत्मभावभावना स्वाभाविकी प्रवर्तते) उस के चित्त में आत्मस्वरूप की भावना स्वाभाविक वर्तती है। आगे अनधिकारी पुरुष का कथन करते हैं। (यस्याभावादिदमुक्तं स्वभावं मुक्त्वा दोषाद्येषां पूर्वपक्षे रुचिर्भवत्यरुचिश्च निर्णये भवति) जिस के अभाव होने से ऐसा आगमिकों ने कहा है अविद्यादि दोषों के कारण स्वभाव से ही कल्याण मार्ग को त्यागकर जिन की सांसारिक विषयों में रूचि है और तत्त्व निर्णय में अरुचि होती है।

(तत्राऽऽत्मभावभावना कोऽहमासं) उस अधिकारी पुरुष में इस प्रकार आत्मस्वरूप की इच्छा होती है कि, मैं कौन था? (कथमहमासं) किस प्रकार का था? (किंस्विदिदं) यह जन्म क्या है? (कथंस्विदिदं) यह जन्म किस प्रकार हुआ है? (के भविष्यामः) क्या आगे हम होंगे? (कथं वा भविष्याम इति) अथवा किस प्रकार के होंगे,? (सा तु विशेषदर्शिनो निवर्तन्ते) वह इच्छायें विशेषदर्शी की निवृत्त हो जाती हैं। (कुतः) किस प्रकार? (चित्तस्यैवैष विचित्रः परिणामः) चित्त का ही यह विचित्र परिणाम है, (पुरुषस्तु सत्यामविद्यायां शुद्धश्चित्तधर्मैरपरामृष्ट इति) पुरुष तो अविद्या के रहते हुए भी शुद्ध, चित्त के धर्मों से सम्बन्ध रहित है। (ततोऽस्याऽऽत्मभावभावना कुशलस्य निवर्तत इति) उस विशेष दर्शन से इस ज्ञानी की आत्मस्वरूप विषयक इच्छा निवर्तहो जाती है॥ २५॥

भो० वृत्ति

एवं सत्त्वपुरुषयोरन्यत्वे साधिते यस्तयोर्विशेषं पश्यति अहमस्मदृष्ट

इत्येवंरूपं, तस्य विज्ञातचित्तस्वरूपस्य चित्ते याऽऽत्मभावभावना सा निवर्तते चित्तमेव कर्तृ-ज्ञातृ-भोक्तृ इत्यभिमानो निवर्तते ॥ २५ ॥

तस्मिन्सति किं भवतीत्याह—

भो० वृ० पदार्थ

(एवं सत्वपुरुषयोरन्यत्वे साधिते यस्तयोर्विशेषं पश्यति अहमस्मादन्यः) इस प्रकार बुद्धि और पुरुष दोनों की भिन्नता को जानता हुआ जो योगी उनमें विशेषता को देखता है कि मैं इस बुद्धि से भिन्न हूँ (इत्येवंरूपं तस्य विज्ञातचित्तस्वरूपस्य चित्ते याऽऽत्मभावभावना सा निवर्तते) इस प्रकार उस चित्त के स्वरूप को जानकर चित्त में जो आत्मरूप भावना वह निवर्त हो जाती है, (चित्तमेव कर्तृ-ज्ञातृ-भोक्तृ इत्यभिमानो निवर्तते) चित्त ही करनेवाला-जाननेवाला-भोगनेवाला है यह अभिमान निवर्त हो जाता है अर्थात् चित्त कर्ता-ज्ञाता-भोक्ता नहीं है किन्तु करने, भोगने, जानने का साधन है ॥ २५ ॥

(तस्मिन्सति किं भवतीत्याह) इस अवस्था में और क्या होता है यह आगे कहते हैं—

तदा विवेकनिम्नं कैवल्यप्राग्भारं चित्तम् ॥२६॥

सू०—तब पूर्व जन्मकृत कैवल्य निमित्त कर्म अभ्यास के बल से चित्त विवेकज्ञान मार्ग में निम्न हो जाता है, विषय मार्ग को त्याग कर देता है ॥ २६ ॥

व्या० भाष्यम्

तदानीं यदस्य चित्तं विषयप्राग्भारमज्ञाननिम्नमासीत्तदस्यान्यथा भवति कैवल्यप्राग्भारं विवेकजज्ञाननिम्नमिति ॥ २६ ॥

व्या० भा० पदार्थ

(तदानीं यदस्य चित्तं विषयप्राग्भारमज्ञाननिम्नमासीत्) जो इस का चित्त पूर्व जन्मकृत विषय अभ्यासरूप कारण से अज्ञान-

मार्ग में निम्न था अर्थात् चलता था (तदस्यान्यथा भवति कैवल्य-प्राग्भारं विवेकजज्ञाननिम्नमिति) वह इस का तब अन्य प्रकार अर्थात् पूर्व जन्मकृत कैवल्य निमित्त कर्म अभ्यास के भार से विवेक ज्ञान मार्ग में निम्न हो जाता है ॥ २६ ॥

भो० वृत्ति

यदस्याज्ञाननिम्नपथं बहिर्मुखं विषयोपभोगफलं चित्तमासीत्तदिदानीं विवेकनिम्नं विवेक मार्गमन्तर्मुखं कैवल्यप्राग्भारं कैवल्यफलं कैवल्यप्रारम्भं संपद्यत इति ॥ २६ ॥

अस्मिंश्च विवेकवाहिनि चित्ते येऽन्तरायाः प्रादुर्भवन्ति तेषां हेतुप्रतिपादनद्वारेण त्यागोपायमाह—

भो० वृ० पदार्थ

(यदस्याज्ञाननिम्नपथं बहिर्मुखं विषयोपभोगफलं चित्तमासीत्) जो इसका चित्त बहिर्मुख हुआ विषय भोगरूपी फल के कारण अज्ञान मार्ग में निम्न था (तदिदानीं विवेकनिम्नं विवेक मार्गमन्तर्मुखं कैवल्य-प्राग्भारं कैवल्यफलं कैवल्यप्रारम्भं संपद्यत इति) अब वह चित्त विवेक-मार्ग में निम्न अन्तर्मुख हुआ कैवल्यप्राग्भार अर्थात् कैवल्य फल वाला कैवल्य का आरम्भ करता है ॥ २६ ॥

(अस्मिंश्च विवेकवाहिनि चित्ते येऽन्तरायाः प्रादुर्भवन्ति) इस विवेकप्रवाहवाहिनि चित्त में जो विघ्न उत्पन्न होते हैं (तेषां हेतुप्रतिपादन-द्वारेण त्यागोपायमाह) उनके त्यागने का उपाय हेतु द्वारा कहते हैं—

तच्छिद्रेषु प्रत्ययान्तराणि संस्कारेभ्यः ॥२७॥

सू०—उस विवेकज्ञान के छिद्र अर्थात् अभाव काल में संस्कारों के कारण दूसरी ज्ञानवृत्ति उत्पन्न हो जाती हैं ॥ २७ ॥

व्या० भाष्यम्

प्रत्ययविवेकनिम्नस्य सत्त्वपुरुषान्यताख्यातिमात्रप्रवाहारोहिणश्चित्तस्य तच्छिद्रेषु प्रत्ययान्तराण्यस्मीति वा ममेति वा जानामीति वा न जानामीति वा । कुतः, क्षीयमाणबीजेभ्यः पूर्वसंस्कारेभ्यः इति ॥ २७ ॥

व्या० भा० पदार्थ

(प्रत्ययविवेकनिम्नस्य सत्त्वपुरुषान्यताख्यातिमात्रप्रवाहारोहिणश्चित्तस्य तच्छिद्रेषु) विवेकज्ञान में निम्न बुद्धि और पुरुष की भिन्नतामात्र के ज्ञानरूप प्रवाह में आरूढ़ हुए चित्त के छिद्रों में (प्रत्ययान्तराण्यस्मीति वा ममेति वा जानामीति वा न जानामीति वा) दूसरी ज्ञान वृत्ति, कि मैं हूँ वा यह पदार्थ मेरा है वा मैं जानता हूँ अथवा नहीं जातना हूँ यह उत्पन्न होजाती हैं । (कुतः क्षीयमाणबीजेभ्यः) प्रश्न किस प्रकार नष्ट बीज हुए संस्कारों से वृत्तियें उत्पन्न हो जाती हैं ? उत्तर-(पूर्वसंस्कारेभ्य इति) पूर्वानुभूत व्युत्थान संस्कारों से उत्पन्न हो जाती हैं ॥ २७ ॥

भो० वृत्ति

तस्मिन्समाधौ स्थितस्य तच्छिद्रेष्वन्तरालेषु यानि प्रत्ययान्तराणि व्युत्थानरूपाणि ज्ञानानि तानि प्राग्भूतेभ्यः व्युत्थानानुभवजेभ्यः संस्कारेभ्योऽहं ममेत्येवंरूपाणि क्षीयमाणेभ्योऽपि प्रभवन्ति अन्तःकरणोच्छित्तिद्वारेण तेषां हानं कर्त्तव्यमित्युक्तं भवति ॥ २७ ॥

हानोपायश्च पूर्वमेवोक्त इत्याह—

भो० वृ० पदार्थ

(तस्मिन्समाधौ स्थितस्य तच्छिद्रेष्वन्तरालेषु) उस समाधि में स्थित हुए योगी के उन छिद्रों अर्थात् अन्तरालों में (यानि प्रत्ययान्त-

राणि व्युत्थानरूपाणि ज्ञानानि) जो अन्य वृत्ति अर्थात् व्युत्थानरूप ज्ञान (तानि प्राग्भूतेभ्यः व्युत्थानानुभवजेभ्यः संस्कारेभ्योऽहं ममेत्येवं-रूपाणि क्षीयमाणेभ्योऽपि प्रभवन्ति) उन पूर्व व्युत्थानरूप संस्कारों के अनुभव द्वारा उत्पन्न हुए संस्कारों से, मैं, मेरा ऐसे रूप क्लेश नष्ट होनेपर भी उत्पन्न होते हैं (अन्तःकरणोच्छित्तिद्वारेण तेषां हानं कर्तव्यमित्युक्तं भवति) अन्तःकरण के उच्छेद नाश द्वारा उनका हान करना चाहिये, यह कहा है ॥ २७ ॥

(हानोपायश्च पूर्वमेवोक्त इत्याह) हान का उपाय प्रथम ही कहा गया वह अगले सूत्र में कहते हैं—

हानमेषां क्लेशवदुक्तम् ॥ २८ ॥

सू०—इन पूर्वानुभूत व्युत्थान जन्य संस्कारों का त्याग भी क्लेशों के समान कहागया जानना चाहिये ॥ २८ ॥

व्या० भाष्यम्

यथा क्लेशा दग्धबीजभावा न प्ररोह समर्था भवन्ति तथा ज्ञानाग्निना दग्धबीजभावः पूर्वसंस्कारो न प्रत्ययप्रसूर्भवति । ज्ञानासंस्कारास्तु चित्ताधिकारसमाप्तिमनुशेरत इति न चिन्त्यन्ते ॥ २८ ॥

व्या० भा० पदार्थ

(यथा क्लेशा दग्धबीजभावा न प्ररोह समर्था भवन्ति) जैसे क्लेश दग्धबीज भाव को प्राप्त हुए पुनः उत्पन्न नहीं होसकते (तथा ज्ञानाग्निना दग्धबीजभावः पूर्वसंस्कारो न प्रत्ययप्रसूर्भवति) वैसे ही पूर्व संस्कार भी ज्ञानाग्नि द्वारा दग्धबीज भाव को प्राप्त होने पर फिर उन की वृत्तियें उत्पन्न नहीं होती। (ज्ञानसंस्कारास्तु चित्ताधिकारसमाप्तिमनुशेरत इति न चिन्त्यन्ते) ज्ञान के संस्कार तो चित्त अधिकार समाप्ति करने को चित्त में सोए हुए के समान

रहते हैं इस कारण ज्ञानी पुरुष कुछ चिन्ता नहीं करते, भाव इस का यह है कि ज्ञान उत्पन्न होने पर चित्त का जो विषयों में चलने का अधिकार है, वह धीरे २ उस ज्ञान से नष्ट हो जाता है और फिर सर्वथा निर्विषय चित्त हो जाता है ॥ २८ ॥

भो० वृत्ति

यथा क्लेशानामविद्यादीनां हानं पूर्वमुक्तं तथा संस्काराणामपि कर्त्तव्यम् । यथा ते ज्ञानाग्निना प्लुष्टा दग्धबीजकल्पा न पुनश्चित्तभूमौ प्ररोहं लभन्ते तथा संस्कारा़ऽपि ॥ २८ ॥

एवं प्रत्ययान्तरानुदयेन स्थिरीभूते समाधौ यादृशाऽस्य योगिनः समाधिप्रकर्षप्राप्तिर्भवति तथाविधमुपायमाह—

भो० वृ० पदार्थ

(यथा क्लेशानामविद्यादीनां हानं पुर्वमुक्तं) जैसे अविद्यादि क्लेशों का त्याग पूर्व कहागया (तथा संस्काराणामपि कर्तव्यम्) वैसे ही संस्कारों का भी त्याग करना चाहिये । (यथा ते ज्ञानाग्निना प्लुष्टा दग्धबीजकल्पा न पुनश्चित्तभूमौ प्ररोहं लभन्ते) जैसे वह ज्ञानाग्नि से जले हुए दग्धबीज के समान फिर चित्त भूमि में उत्पन्न नहीं होते (तथा संस्काराऽपि) वैसे ही संस्कार भी नहीं उत्पन्न होते ॥ २८ ॥

(एवं प्रत्ययान्तरानुदयेन स्थिरीभूते समाधौ) इस प्रकार दूसरे ज्ञान उत्पन्न न होने से समाधि स्थिर होनेपर (यादृशाऽस्य योगिनः समाधिप्रकर्षप्राप्तिर्भवति तथाविधमुपायमाह) इस योगी को जैसी उत्कर्ष समाधि प्राप्त होती है उस प्रकार का उपाय आगे कहते हैं—

प्रसंख्यानेऽप्यकुसीदस्य सर्वथा विवेकख्यातेर्धर्ममेघः समाधिः ॥ २९ ॥

सू०—प्रसंख्यान ज्ञान में भी फलेच्छा रहित योगी को सर्वथा विवेकख्याति होने पर धर्ममेघ समाधि का लाभ होता है ॥ २९ ॥

व्या० भाष्यम्

यदाऽयं ब्राह्मणः प्रसंख्यानेऽप्यकुसीदस्ततोऽपि न किञ्चित्प्रार्थयते । तत्रापि विरक्तस्य सर्वथा विवेकख्यातिरेव भवतीति संस्कारबीजक्षयान्नास्य प्रत्ययान्तराण्युत्पद्यन्ते । तदाऽस्य धर्ममेघो नाम समाधिर्भवति ॥ २९ ॥

व्या० भा० पदार्थ

(यदाऽयं ब्राह्मणः प्रसंख्यानेऽप्यकुसीदस्ततोऽपि न किञ्चित्प्रार्थयते) जब यह ब्राह्मण प्रसंख्यान ज्ञान में भी फल की इच्छा से रहित हुआ उस से भी कुछ लाभ नहीं मानता । (तत्राऽपि विरक्तस्य सर्वथा विवेकख्यातिरेव भवतीति) उस में भी विरक्त हुए योगी को सर्वथा विवेकख्याति प्राप्त होती है (संस्कारबीजक्षयान्नास्य प्रत्ययान्तराण्युत्पद्यन्ते) संस्कार बीज नष्ट होने से इस के चित्त में दूसरी वृत्तियें उत्पन्न नहीं होतीं । (तदाऽस्य धर्ममेघो नाम समाधिर्भवति) तब इसकी धर्ममेघ नामवाली समाधि होती है ।

भाव इस का यह है कि विवेकख्याति बुद्धि का धर्म है, और बुद्धि प्रकृती का कार्य होने से त्याज्य पक्ष में है, इस कारण जब योगी को विवेकख्याति में भी वैराग्य उत्पन्न होता है तब उस को सर्वथा विवेकख्याति होने से वह समाधि धर्ममेघ नामवाली कहलाती है । सूत्रान्तरगत धर्ममेघ पद में धर्म शब्द का प्रयोग शास्त्रकार ने ब्रह्मानन्द के अभिप्राय से किया है इस कारण ब्रह्मानन्द वाचक जानना चाहिये और इस ही अर्थ में धर्म शब्द ईशोपनिषद् के निम्न लिखित मन्त्र में भी आया है ।

हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम् ।
तत्त्वं पूषन्नपावृणु सत्यधर्माय दृष्टये ॥ मं० १५ ॥

अर्थ—हे परमात्मन् सत्यधर्माय अर्थात् ब्रह्मदर्शनार्थ उस आवरण को आप नष्ट करदें जिससे आप "सत्यधर्मस्वरूप" का मुख ढ़का हुआ है। और निरुक्तकार यास्काचार्य्य ने भी "धर्म" शब्द को परमात्मा के नामों में पढ़ा है, इस लिये यहां पर धर्म शब्द के अर्थ ब्रह्मानन्द के ही युक्त हैं। "मेहति प्रवृषती इति मेघः" वर्षता है जो वह मेघ, कहलाता है अथ धर्ममेघ समाधिः = धर्म अर्थात् ब्रह्मानन्द वर्षता है जिस समाधि में वह धर्ममेघ समाधि। इस समाधि को प्राप्त होकर योगी कृतकृत्य हो जाता है, और नैरन्तर ब्रह्मानन्द में लीन रहता है, इसको ही जीवन्मुक्त अवस्था कहते हैं ॥ २९ ॥

भो० वृत्ति

प्रसंख्याने यावतां तत्त्वानां यथाक्रमं व्यवस्थितानां परस्परविलक्षण-स्वरूपविभावनं तस्मिन्सत्यप्यकुसीदस्य फलमलिप्सोः प्रत्ययान्तराणा-मनुदयात्सर्वप्रकारविवेकख्यातेः परिशेषाद्धर्ममेघः समाधिर्भवति। प्रकृष्ट-मशुक्लकृष्णं धर्मं परमपुरुषार्थसाधकं मेहति सिञ्चतीति धर्ममेघः। अनेन प्रकृष्टधर्मस्यैव ज्ञानहेतुत्वमित्युपपादितं भवति ॥ २९ ॥

तस्माद्धर्ममेघात्किं भवतीत्यत आह—

भो० वृ० पदार्थ

(प्रसंख्याने यावतां तत्त्वानां यथाक्रमं व्यवस्थितानां परस्परविलक्षण स्वरूपविभावनं) जितने तत्त्व परस्पर विलक्षण स्वरूप वाले हैं, उनका यथाक्रम विचार करना प्रसंख्यान कहलाता है, (तस्मिन्सत्यप्यकुसीदस्य फलमलिप्सोः प्रत्ययान्तराणामनुदयात्सर्वप्रकारविवेकख्यातेः परिशेषाद्धर्म-मेघः समाधिर्भवति) उसमें स्थिर योगी को अकुसीद अर्थात् फल की इच्छा से रहित होने के कारण अन्य ज्ञानों का उदय न होने से सर्व

प्रकार एक विवेकख्याति शेष रहने से धर्ममेघ समाधि होती है। (प्रकृष्टमशुक्लकृष्णं धर्मं परमपुरुषार्थसाधकं) अति उत्तम पुण्य-पाप रहित धर्म परम पुरुषार्थ का साधक (मेहति सिञ्चतीति धर्ममेघः) वर्षा करता है जो सो धर्ममेघ कहलाता है। (अनेन प्रकृष्टधर्मस्यैव ज्ञानहेतुत्वमित्युपपादितं भवति) इसके द्वारा ज्ञान का हेतु अति उत्तम धर्म प्राप्त किया जाता है॥ २९॥

(तस्माद्धर्ममेघात्किं भवतीत्यत आह) उस धर्ममेघ समाधि से क्या फल होता है, यह आगे कहते हैं—

ततः क्लेशकर्मनिवृत्तिः ॥ ३० ॥

सू०—उस धर्ममेघ समाधि के होने से क्लेश और कर्म सर्वथा निवृत्त हो जाते हैं॥ ३०॥

व्या० भाष्यम्

तल्लाभादविद्यादयः क्लेशाः समूलकाषं कषिता भवन्ति। कुशलाकुशलाश्च कर्माशयाः समूलघातं हता भवन्ति। क्लेशकर्मनिवृत्तौ जीवन्नेव विद्वान्विमुक्तो भवति। कस्मात्। यस्माद्विपर्ययो भवस्य कारणम्। न हि क्षीणक्लेशविपर्ययः कश्चित्केनचित्क्वचिज्जातो दृश्यत इति॥ ३०॥

व्या० भा० पदार्थ

(तल्लाभादविद्यादयः क्लेशाः समूलकाषं कषिता भवन्ति) उस धर्ममेघ समाधि के लाभ होने से अविद्यादि क्लेश मूल सहित नष्ट हो जाते हैं। (कुशलाकुशलाश्च कर्माशयाः समूलघातं हता भवन्ति) पुण्य-पापरूप कर्म और वासनायें भी मूल सहित नाश को प्राप्त हो जाती हैं। (क्लेशकर्मनिवृत्तौ जीवन्नेव विद्वान्विमुक्तो भवति) क्लेश और कर्मों की निवृत्ति होने पर जीता हुआ ही विद्वान् मुक्त

होता है । (कस्मात) क्योंकि, (यस्माद्विपर्ययो भवस्य कारणम्) जिस कारण कि विपरीत ज्ञान अविद्या ही संसार का कारण है । (न हि क्षीणक्लेशविपर्ययः कश्चित्केनचित्कचिज्जातो दृश्यत इति) क्योंकि नष्ट हो गये हैं अविद्यादि क्लेश जिसके ऐसा पुरुष कोई भी किसी कारण से भी कहीं भी उत्पन्न हुआ नहीं देखा जाता, ऐसा ही न्यायदर्शन में महर्षि गौतम ने भी कहा है,

वीतरागजन्मादर्शनात् [न्याय सू० ३ । १ । २५]

बीत गये हैं राग जिसके ऐसे पुरुष का संसार में जन्म न देखे जाने से ॥ ३० ॥

भो० वृत्ति

क्लेशानामविद्यादीनामभिनिवेशान्तानां कर्मणां च शुक्लादिभेदेन त्रिविधानां ज्ञानोदयात्पूर्वपूर्वकारणनिवृत्त्या निवृत्तिर्भवति ॥ ३० ॥

तेषु निवृत्तेषु किं भवतीत्यत आह—

भो० वृ० पदार्थ

(क्लेशानामविद्यादीनामभिनिवेशान्तानां कर्मणां च शुक्लादिभेदेन त्रिविधानां) अविद्यादि क्लेशों और पुण्य, पाप, पुण्य-पाप मिश्रित तीन प्रकार के कर्मों की (ज्ञानोदयात्पूर्वपूर्वकारणनिवृत्त्या निवृत्तिर्भवति) ज्ञान के उदय होने पर पूर्व २ कारण की निवृत्ति द्वारा निवृत्ति होती है ॥३०॥

(तेषु निवृत्तेषु किं भवतीत्यत आह) उनके निवृत्त होने पर क्या फल होता है यह आगे कहते हैं—

तदा सर्वावरणमलापेतस्य ज्ञानस्याऽऽनन्त्याज्ज्ञेयमल्पम् ॥ ३१ ॥

सू०—सर्व आवरणमल नष्ट हो गये हैं जिसके उस योगी को तब ज्ञान के अनन्त होने से ज्ञेय संसार उसकी दृष्टि में अल्प अर्थात् तुच्छ हो जाता है ॥ ३१ ॥

व्या० भाष्यम्

सर्वैः क्लेशकर्मावरणैर्विमुक्तस्य ज्ञानस्यानन्त्यं भवति। तमसाभिभूतमावृतम् ज्ञानसत्त्वम् क्वचिदेव रजसा प्रवर्तितमुद्‌घाटितं ग्रहणसमर्थं भवति। तत्र यदा सर्वैरावरणमलैरपगतमलं भवति तदा भवत्यस्याऽऽनन्त्यम् ज्ञानस्याऽऽनन्त्याज्ज्ञेयमल्पं संपद्यते। यथाऽऽकाशे खद्योतः। यत्रेदमुक्तम्—

अन्धो मणिमविध्यत्तमनङ्गुलिरावयत्।
अग्रीवस्तं प्रत्यमुञ्चत्तमजिह्वोभ्यपूजयत्॥ इति॥ ३१॥

व्या० भा० पदार्थ

(सर्वैः क्लेशकर्मावरणैर्विमुक्तस्य ज्ञानस्यानन्त्यं भवति) सर्व क्लेश और कर्मरूपी आवरण से रहित चित्त वाले योगी का ज्ञान अनन्त होता है। (तमसाभिभूतमावृत्तम् ज्ञानसत्त्वम् क्वचिदेव रजसा प्रवर्तितमुद्‌घाटितं ग्रहणसमर्थं भवति) तमोगुण से दबा हुआ अर्थात् आवृत हुआ बुद्धि का ज्ञान और कहीं रजोगुण से आवृत हुआ प्रवर्त रहता है, वह आवरण नष्ट होने पर ग्रहण करने को समर्थ होता है। (तत्र यदा सर्वैरावरणमलैरपगतमलं भवति) उन में जब सर्व आवरण करने वाले मलों से चित्त, मल रहित होता है (तदा भवत्यस्यऽऽनन्त्यम्) तब इस का ज्ञान अनन्त होता है (ज्ञानस्याऽऽनन्त्याज्ज्ञेयमल्पं संपद्यते) ज्ञान के अनन्त होने से ज्ञेय सांसारिक विषय योगी की दृष्टि में अल्प अर्थात् तुच्छ हो जाते हैं। (यथाऽऽकाशे खद्योतः) जैसे आकाश में पटबीजना = जुगनू। (यत्रेदमुक्तम्) जिस के विषय में ऐसा दृष्टान्त है—

(अन्धो मणिमविध्यत्तमनङ्गुलिरावयत्
अग्रीवस्तं प्रत्यमुञ्चत्तमजिह्वोभ्यपूजयत्॥ इति॥)

अर्थ—अन्धे ने मणियों को बींधा, और बिना अङ्गुलि वाले

ने उन में धागा पिरोया और ग्रीवा रहित के गले में डाली गई, और जिह्वा रहित पुरुष ने उस की प्रसंशा की, अर्थात् जैसे यह वाक्य आश्चर्यरूप जान पड़ता है, ऐसी ही आश्चर्यरूप दशा योगी की इस काल में हो जाती है ॥ ३१ ॥

भो० वृत्ति

आव्रियते चित्तमेभिरित्यावरणानि क्लेशास्त एव मलास्तेभ्योऽपेतस्य तद्विरहितस्य ज्ञानस्य शरद्गगननिभस्याऽऽनन्त्यादनवच्छेदात् ज्ञेयमल्पं गणनास्पदं न भवति अक्लेशेनैव सर्वं ज्ञेयं जानातीत्यर्थः ॥ ३१ ॥

ततः किमित्यत आह—

भो० वृ० पदार्थ

(आव्रियते चित्तमेभिरित्यावरणानि क्लेशास्त एव मलास्तेभ्योऽपेतस्य तद्विरहितस्य ज्ञानस्य) आवृत होता है चित्त जिन के द्वारा वह आवरण क्लेश हैं वही मल हैं, वह नष्ट हो गये हैं जिस योगी के उस का ज्ञान (शरद्गगननिभस्याऽऽनन्त्यादनवच्छेदात् ज्ञेयमल्पं गणनास्पदं न भवति) आकाश में शरद् ऋतु के चन्द्र समान प्रकाशित होकर अनन्त होने से अर्थात् कभी न कटने से ज्ञेय पदार्थ अल्प हो जाता है, कुछ गणना के योग्य नहीं रहता (अक्लेशेनैव सर्वं ज्ञेयं जानातीत्यर्थः) सुगमता से ही सर्व जानने योग्य को जानता है, यह अर्थ है ॥ ३१ ॥

(ततः किमित्यत आह) उस से क्या फल होता है, यह आगे कहते हैं—

ततः कृतार्थानां परिणामक्रमसमाप्तिर्गुणानाम् ॥ ३२ ॥

सू०—उस धर्ममेघ समाधि के उदय होने से कृत प्रयोजन हुए गुणों के परिणामरूप क्रम की समाप्ति होजाती है ॥ ३२ ॥

व्या० भाष्यम्

तस्य धर्ममेघस्योदयात्कृतार्थानां गुणानां परिणामक्रमः परिसमाप्यते। न हि कृतभोगापवर्गाः परिसमाप्तक्रमाः क्षणमप्यवस्थातुमुत्सहन्ते ॥ ३२ ॥

अथ कोऽयं क्रमो नामेति—

व्या० भा० पदार्थ

(तस्यधर्ममेघस्योदयात्कृतार्थानां गुणानां परिणामक्रमः परिसमाप्यते) उस धर्ममेघ समाधि के उदय होने से कृत प्रयोजन हुए गुणों का परिणामरूप क्रम समाप्त हो जाता है। (न हि कृतभोगापवर्गा परिसमाप्तक्रमः क्षणमप्यवस्थातुमुत्सहन्ते) निश्चय सम्पादन किया है भोग–मोक्षरूप फल जिन गुणों ने और समाप्त हो गया है परिणामरूपी क्रम जिन का वह एक क्षण भी फिर नहीं ठहर सकते अर्थात् कार्यरूप नहीं रहते कारण अवस्था को प्राप्त हो जाते हैं ॥ ३२ ॥

(अथ कोऽयंक्रमो नामेति ?) अब क्रम का क्या स्वरूप है, ? यह आगे बतलाते हैं—

भो० वृत्ति

कृतो निष्पादितो भोगापवर्गलक्षणः पुरुषार्थः प्रयोजनं यैस्ते कृतार्था गुणाः सत्त्वरजस्तमांसि तेषां परिणाम आ पुरुषार्थसमाप्तेरानुलोम्येन प्रातिलोम्येन चाङ्गाङ्गिभाव स्थितलक्षणस्तस्य योऽसौ क्रमो वक्ष्यमाणस्तस्य परिसमाप्तिर्निष्ठा न पुनरुद्भव इत्यर्थः ॥ ३२ ॥

क्रमस्योक्तस्य लक्षणमाह—

भो० वृ० पदार्थ

(कृतो निष्पादितो भोगापवर्गलक्षणः पुरुषार्थः प्रयोजनं यैस्ते कृतार्था गुणाः सत्त्वरजस्तमांसि) सम्पादन किया है भोग मोक्षरूप पुरुष का

प्रयोजन जिन्होंने, वह कृतार्थ गुण सत्त्व, रज, तम हैं (तेषां परिणाम आ पुरुषार्थसमाप्तेरानुलोम्येन प्रातिलोम्येन चाङ्गाङ्गिभाव स्थितलक्षणस्तस्य योऽसौ क्रमो वक्ष्यमाणः) उन का परिणाम, पुरुष प्रयोजन समाप्ति पर्यन्त, अनुलोम और प्रतिलोम द्वारा अङ्ग अङ्गि भाव रूपों से स्थित हुओं का जो क्रम अगले सूत्रों में कहा जायगा (तस्य परिसमाप्तिर्निष्ठा न पुनरुद्भव इत्यर्थः) उस की परम समाप्ति फिर उत्पत्ति न होना, निष्ठा है, यह अर्थ है ।

(क्रमस्योक्तस्य लक्षणमाह) ऊपर कहे क्रम का लक्षण आगे कहते हैं—

क्षणप्रतियोगी परिणामापरान्तनिर्ग्राह्यः क्रमः ॥ ३३ ॥

सू०—क्षणों के साथ सम्बन्ध रखनेवाला जो परिणाम उस की समाप्ति होने पर क्रम ग्रहण करने योग्य है ॥ ३३ ॥

व्या० भाष्यम्

क्षणानन्तर्यात्मा परिणामस्यपरान्तेनावसानेन गृह्यते क्रमः । न ह्यननुभूतक्रमक्षणा पुराणता वस्त्रस्यान्ते भवति । नित्येषु च क्रमो दृष्टः ।

द्वयी चेयं नित्यता कूटस्थनित्यता परिणामिनित्यता च । तत्र कूटस्थनित्यता पुरुषस्य । परिणामिनित्यता गुणानाम् । यस्मिन्परिणम्यमाने तत्त्वं न विहन्यते तन्नित्यम् । उभयस्य च तत्त्वानभिघातान्नित्यत्वम् । तत्र गुणधर्मेषु बुद्ध्यादिषु परिणामापरान्तनिर्ग्राह्यः क्रमो लब्धपर्यवसानो नित्येषु धर्मिषु गुणेष्वलब्धपर्यवसानः । कूटस्थनित्येषु स्वरूपमात्रप्रतिष्ठेषु मुक्तपुरुषेषु स्वरूपास्तिता क्रमेणैवानुभूयत इति तत्राप्यलब्धपर्यवसानः शब्दपृष्ठेनास्तिक्रियामुपादाय कल्पित इति ।

अथास्य संसारस्य स्थित्या गत्या च गुणेषु वर्तमानस्यास्ति क्रमसमाप्तिर्न वेति। अवचनीयमेतत्। कथम्। अस्ति प्रश्न एकान्तवचनीयः सर्वो जातो मरिष्यति मृत्वा जनिष्यत इति। ओ३म् भो इति।

अथ सर्वो जातो मरिष्यतीति मृत्वा जनिष्यत इति। विभज्यवचनीयमेतत्। प्रत्युदितख्यातिः क्षीणतृष्णः कुशलो न जनिष्यत इतरस्तु जनिष्यते। तथा मनुष्यजातिः श्रेयसी न वा श्रेयसीत्येवं परिपृष्टे विभज्य वचनीयः प्रश्नः पशूनधिकृत्य श्रेयसी देवानृषींश्चाधिकृत्य नेति। अयं त्ववचनीयः प्रश्नः संसारोऽयमन्तवानथानन्त इति। कुशलस्याति संसारक्रमपरिसमाप्तिर्नेतरस्येति अन्यतरावधारणे दोषः। तस्माद्व्याकरणीय एवायं प्रश्न इति॥ ३३॥

गुणाधिकारक्रमसमाप्तौ कैवल्यमुक्तं। तत्स्वरूपमवधार्यते—

व्या॰ भा॰ पदार्थ

(क्षणानन्तर्यात्मा परिणामस्यपरान्तेनावसानेन गृह्यते क्रमः) क्षणों के पीछे होने का है स्वरूप जिसका ऐसा जो परिणाम उस की अन्तिम सीमा से गुण परिणाम क्रम ग्रहण किया जाता है। अर्थात् क्षण के पश्चात् दूसरा क्षण क्षण क्रम कहलाता है, और गुणों में परिणाम भी क्षण २ होता है इसी को गुण परिणाम क्रम कहते हैं, परन्तु प्रत्येक क्षण में परिणाम सूक्ष्म होने से ग्रहण नहीं हो सक्ता इस कारण परिणाम के अन्त होने से गुण परिणाम क्रम ग्रहण किया जाता है।

भाव यह है कि प्रतिक्षण होने वाला परिणाम, अन्त में जब स्थूल रूपता को प्राप्त हो जाता है, तब ग्रहण होता है, परन्तु वह परिणाम किसी एक क्षण में नहीं हो सक्ता। इससे अनुमान द्वारा जाना जाता है कि वह परिणाम सूक्ष्म रूप से प्रतिक्षण होते २ अन्त में स्थूल रूप हुआ है। जैसा कि आगे दृष्टान्त से कहते हैं:—

(न ह्यननुभूतक्रमक्षणा पुराणता वस्त्रस्यान्ते भवति) वस्त्र की पुराणता क्षणक्रम अर्थात् प्रतिक्षण होने के विना अन्त में नहीं हो सकती।

इस प्रकार समझना चाहिये कि जैसे कोई वस्त्र सुरक्षित रक्खा हुआ भी जीर्ण होता २ जब अन्त में अति जीर्ण हो जाता है, तब ज्ञात होता है कि इसमें परिणाम एक दम नहीं हुआ है। प्रतिक्षण वह परिणाम साक्षात् रूप से नहीं दीखता अन्त में ज्ञात होता है। (नित्येषु च क्रमो दृष्टः) नित्य पदार्थों में भी क्रम देखा गया।

(द्वयी चेयं नित्यता) यह नित्यता दो भेदों वाली है (कूटस्थनित्यता परिणामिनित्यता च) कूटस्थनित्यता = स्वरूप से सदैव एकसा रहना, परिणामिनित्यता = अवस्था से परिणाम होना स्वरूप से सदैव एकसा रहना। (तत्र कूटस्थनित्यता पुरुषस्य) उनमें कूटस्थनित्यता पुरुष की है, (परिणामिनित्यता गुणानाम्) परिणामिनित्यता गुणों की है, (यस्मिन्परिणम्यमाने तत्त्वं न विहन्यते तन्नित्यम्) परिणाम को प्राप्त होते हुए जिसमें स्वरूप नहीं नष्ट होता वह नित्य कहलाता है। (उभयस्य च तत्त्वानभिघातान्नित्यत्वम्) और दोनों का स्वरूप नष्ट न होने से नित्य हैं। (तत्र गुणधर्मेषु बुद्ध्यादिषु परिणामापरान्तनिर्ग्राह्यः क्रमो लब्धपर्यवसानः) उनमें, गुणों के धर्म बुद्धि आदि में परिणाम के अन्त से क्रम ग्रहण करने योग्य है, क्योंकि उनकी अन्तिम सीमा प्रतीत होती है (नित्येषु धर्मिषु गुणेष्वलब्धपर्यवसानः) नित्य धर्मी गुणों में अन्तिम सीमा लब्ध नहीं होती अर्थात् गुण नित्य हैं, बुद्ध्यादि अनित्य हैं, उनका अन्त हो जाता है। (कूटस्थनित्येषु स्वरूपमात्रप्रतिष्ठेषु मुक्तपुरुषेषु स्वरूपास्तिता क्रमेणैवानुभूयत इति) स्वरूप में स्थिर कूटस्थ नित्य मुक्त पुरुषों में उनके स्वरूप की विद्य-

मानता क्रम से ही जानी जाती है (तत्राप्यलब्धपर्यवसानः) उनकी भी अन्तिम सीमा लब्ध नहीं होती अर्थात् नित्य हैं, (शब्दपृष्ठेनास्तिक्रियामुपादाय कल्पित इति) यहां कोई कुतर्की इस सिद्धान्त को न सहकर, शब्दों को पीसता हुआ अस्ति क्रिया को ग्रहण करके कल्पना करता है।

(अथास्य संसारस्य स्थित्या गत्या च गुणेषु वर्तमानस्यास्ति क्रमसमाप्तिर्न वेति) गुणों में क्रम वर्तमान रहते हुए इस संसार की स्थिति और प्रलय से उनका क्रम समाप्त होता है वा नहीं, ? (अवचनीयमेतत्) इस प्रकार यह प्रश्न करने योग्य नहीं है। (कथम्) किस प्रकार ? (अस्ति प्रश्न एकान्तवचनीयः) क्योंकि अस्ति प्रश्न एकार्थ वाचक है (सर्वो जातो मरिष्यति मृत्वा जनिष्यत इति) सर्व उत्पन्न हुए मरेंगे और मर कर पुनः उत्पन्न होंगे (ॐ भो इति) आप कहिये यह ठीक है।

(अथा) अब उत्तर देते हैं—(सर्वो जातो मरिष्यतीति मृत्वा जनिष्यत इति। विभज्य वचनीयमेतत्) सर्व उत्पन्न हुए मरेंगे और मरकर उत्पन्न होगें यह भी विभाग करके पूछने योग्य प्रश्न है। (प्रत्युदितख्यातिः क्षीणतृष्णः कुशलो न जनिष्यतः) विवेक ख्याति उदय होने पर नष्ट हो गई हैं वासनायें जिसकी ऐसा ज्ञानी पुरुष नहीं उत्पन्न होगा (इतरस्तु जनिष्यते) अन्य पुरुष उत्पन्न होंगे। (तथा मनुष्यजातिः श्रेयसी न वा श्रेयसीत्येवं परिपृष्टे विभज्य वचनीयः प्रश्न) वैसे ही मनुष्य जाति श्रेष्ठ है, वा नहीं ? इस प्रकार पूछे जाने पर विभाग करके यह प्रश्न करने योग्य है (पशूनधिकृत्य श्रेयसी देवानृषींश्चाधिकृत्य नेति) पशुओं की अपेक्षा से श्रेष्ठ है, और देवों = विद्वानों ऋषियों की अपेक्षा से नहीं है। (अयं त्ववचनीयः प्रश्नः संसारोऽयमन्तवानथानन्त इति) और यह भी प्रश्न करने योग्य नहीं है कि यह संसार अन्तवाला है अथवा अन्त रहित है ?

(कुशलस्यास्ति संसारक्रमपरिसमाप्तिर्नेतरस्येत्यन्यतरावधारणे दोषः) क्योंकि ज्ञानी पुरुष के लिये संसार क्रम की समाप्ति है, अन्यों के लिये नहीं, इस कारण अन्यथा जानना दोष है । (तस्माद्व्याकरणीय एवायं प्रश्न इति) इस कारण विशेष रूप से प्रकट करके बोलने योग्य यह प्रश्न है ॥ ३३ ॥

(गुणाधिकारक्रमसमाप्तौ कैवल्यमुक्तम्) गुणों का अधिकार क्रम समाप्त होने पर कैवल्य कहा गया है । (तत्स्वरूपमवधार्यते) उसका स्वरूप अगले सूत्र में प्रकाशित किया जाता है—

भो० वृत्ति

क्षणोऽल्पीयान्कालस्तस्य योऽसौ प्रतियोगी क्षणविलक्षणः परिणामापरान्तनिर्ग्राह्योऽनुभूतेषु क्षणेषु पश्चात्संकलनबुद्ध्यैव यो गृह्यते स क्षणानां क्रम उच्यते, न ह्यननुभूतेषु क्षणेषु क्रमः परिज्ञातुं शक्यः ॥ ३२ ॥

इदानीं फलभूतस्य कैवल्यस्यासाधारणं स्वरूपमाह—

भो० वृ० पदार्थ

(क्षणोऽल्पीयान्कालस्तस्य योऽसौ प्रतियोगी क्षणविलक्षणः परिणामापरान्तनिर्ग्राह्यः) क्षण अति अल्पकाल का नाम है, उसका वह जो प्रतियोगी = सम्बन्धि क्षणविलक्षण परिणाम उसके अन्त से ग्रहण करने योग्य (अनुभूतेषु क्षणेषु पश्चात्संकलनबुद्ध्यैव यो गृह्यते स क्षणानां क्रम उच्यते) अनुभव किये हुए क्षणों में पश्चात् उनका प्रवाह जो बुद्धि से ग्रहण किया जाता है, वह क्षणों का क्रम कहलाता है, (न ह्यननुभूतेषु क्षणेषु क्रमः परिज्ञातुं शक्यः) क्षणों के अनुभव हुए बिना उनमें क्रम नहीं जाना जा सकता ॥ ३२ ॥

(इदानीं फलभूतस्य कैवल्यस्यासाधारणं स्वरूपमाह) अब फलरूप कैवल्य का सामान्यरूप कहते हैं—

पुरुषार्थशून्यानां गुणानां प्रतिप्रसवः कैवल्यं स्वरूपप्रतिष्ठा वा चितिशक्तिरिति ॥ ३४ ॥

सू०—पुरुष प्रयोजन से शून्य गुणों का अपने कारण में लय होना कैवल्य है, वा चेतनशक्ति का स्वरूप में स्थिर होना कैवल्य है ॥ ३४ ॥

व्या० भाष्यम्

कृतभोगापवर्गाणां पुरुषार्थशून्यानां यः प्रतिप्रसवः कार्यकारणात्मकानां गुणानां तत्कैवल्यं, स्वरूपप्रतिष्ठा पुनर्बुद्धिसत्त्वानभिसंबन्धात्पुरुषस्य चितिशक्तिरेव केवला, तस्याः सदा तथैवावस्थानं कैवल्यमिति ॥ ३४ ॥

व्या० भा० पदार्थ

(कृतभोगापवर्गाणां पुरुषार्थशून्यानां यः प्रतिप्रसवः कार्यकारणात्मकानां गुणानां तत्कैवल्यं) सम्पादन कर लिया है, भोग—मोक्ष जिन्होंने, पुरुष प्रयोजन से शून्य हुए कार्य कारणरूप गुणों का अपने कारण में लीन होना कैवल्य है, (स्वरूपप्रतिष्ठा पुनर्बुद्धिसत्त्वानभिसंबन्धात्पुरुषस्य चितिशक्तिरेव केवला) स्वरूप में स्थिरता, पुरुष का पुनः बुद्धि से सम्बन्ध न होने से चेतन शक्ति की केवला अवस्था होती है, (तस्याः सदा तथैवावस्थानं कैवल्यमिति) उसका सर्वदा उसी प्रकार रहना कैवल्य है ॥ ३४ ॥

इति श्रीपातञ्जले सांख्यप्रवचने योगशास्त्रे श्रीमद्व्यासभाष्ये चतुर्थः कैवल्यपादः ॥ ४ ॥

भो० वृत्ति

समाप्तभोगापवर्गलक्षणपुरुषार्थानां गुणानां यः प्रतिप्रसवः प्रतिलोमस्य परिणामस्य समाप्तौ विकारानुद्भवः, यदि वा चितिशक्तेर्वृत्तिसारूप्यनिवृत्तौ स्वरूपमात्रेऽवस्थानं तत्कैवल्यमुच्यते ।

न केवलमस्मद्दर्शने क्षेत्रज्ञः कैवल्यावस्थायामेवंविधश्चिद्रूपो यावद्दर्शनान्तरेष्वपि विमृश्यमाण एवंरूपोऽवतिष्ठते । तथाहि—संसारदशायामात्मा कर्तृत्वभोक्तृत्वानुसंधातृत्वमयः प्रतीयतेऽन्यथा यद्ययमेकः क्षेत्रज्ञस्तथाविधो न स्यात्तदा ज्ञानलक्षणानामेव पूर्वापरानुसंधातृशून्यानामात्मभावे नियतः कर्मफलसंबन्धो न स्यात्कृतहाना कृताभ्यागमप्रसङ्गश्च । यदि येनैव शास्त्रोपदिष्टमनुष्ठितं कर्म तस्यैव भोक्तृत्वं भवेत्तदा हिताहितप्राप्तिपरिहाराय सर्वस्य प्रवृत्तिर्घटेत सर्वस्यैव व्यवहारस्य हानोपादानलक्षणस्यानुसंधानेनैव व्याप्तत्वाज्ज्ञानक्षणानां परस्परभेदेनानुसंधानशून्यत्वात्तदनुसंधानाभावे कस्यचिदपि व्यवहारस्यानुपपत्तेः कर्ता भोक्ताऽनुसंधाता यः स आत्मे त्यवस्थाप्यते । मोक्षदशायां तु सकलग्राह्यग्राहकलक्षणव्यवहाराभावाच्चैतन्यमात्रमेव तस्यावशिष्यते । तच्चैतन्यं चितिमात्रत्वेनैवोपपद्यते न पुनरात्मसंवेदनेन । यस्माद्विषयग्रहणसमर्थत्वमेव चितेरूपं नाऽऽत्मग्राहकत्वम् । तथा हि—अर्थश्चित्या गृह्यमाणोऽयमिति गृह्यते स्वरूपं गृह्यमाणमहमिति न पुनर्युगपद्बहिर्मुखतान्तर्मुखतालक्षणव्यापारद्वयं परस्परविरुद्धं कर्तुं शक्यम्, अत एकस्मिन्समये व्यापारद्वयस्य कर्तुमशक्यत्वाच्चिद्रूपतैवावशिष्यते, अतो मोक्षावस्थायां निवृत्ताधिकारेषु गुणेषु चिन्मात्ररूप एवाऽऽत्माऽवतिष्ठत इत्येवं युक्तम् । संसारदशायां त्वेवंभूतस्यैव कर्तृत्वं भोक्तृत्वमनुसंधातृत्वं च सर्वमुपपद्यते । तथा हि—योऽयं प्रकृत्या सहनादिर्नैसर्गिकोऽस्य भोग्यभोक्तृत्वलक्षणः संबन्धोऽविवेकख्यातिमूलस्तस्मिन्सति पुरुषार्थकर्तव्यतारूपशक्तिद्वयसद्भावे या महदादिभावेन परिणतिस्तस्यां संयोगे सति यदात्मनोऽधिष्ठातृत्वं चिच्छायासमर्पणसामर्थ्यं बुद्धिसत्त्वस्य च संक्रान्तचिच्छायाग्रहणसामर्थ्यं चिदवष्टब्धायाश्च बुद्धेर्योऽयं कर्तृत्वभोक्तृत्वाध्यवसायस्तत एव सर्वस्यानुसंधानपूर्वकस्य व्यवहारस्य निष्पत्तेः किमन्यैः फल्गुभिः कल्पनाजल्पैः । यदि पुनरेवंभूतमार्गव्यतिरेकेण पारमार्थिकमात्मनः कर्तृत्वाद्यङ्गी क्रियेत तदाऽस्य परिणामित्वप्रसङ्गः । परिणामित्वादनित्यत्वे तस्याऽऽत्मत्वमेव न स्यात्, न ह्येकस्मिन्नेव समये एकेनैव रूपेण परस्परविरुद्धावस्थानुभवः संभवति । तथा हि—यस्यामवस्थायामात्समवेते सुखे

समुत्पन्ने तस्यानुभवितृत्वं न तस्यामेवावस्थायां दुःखानुभवितृत्वम्, अतोऽवस्थानां नानात्वात् तदभिन्नस्यावस्थावतोऽपि नानात्वं नानात्वेन च परिणामित्वान्नाऽऽत्मत्वम्। नापि नित्यत्वम्, अत एव शान्तब्रह्मवादिभिः सांख्यैरात्मनः सदैव संसारदशायां मोक्षदशायां चैकरूपत्वमङ्गीक्रियते।

ये तु वेदान्तवादिनश्चिदानन्दमयत्वमात्मनो मोक्षे मन्यन्ते तेषां न युक्तः पक्षः। तथा हि आनन्दस्य सुखरूपत्वात्सुखस्य च सदैव संवेद्यमानतयैव प्रतिभासात्संवेद्यमानत्वं च संवेदनव्यतिरेकेणानुपपन्नमिति संवेद्यसंवेदनयोरभ्युपगमादद्वैतहानिः। अथ सुखात्मकत्वमेव तस्योच्येत तद्विरुद्धधर्माध्यासादनुपपन्नम्, न हि संवेदनं संवेद्यं चैकं भवितुमर्हति। किंचाद्वैतवादिभिः कर्मात्मपरमात्मभेदेनाऽऽत्मा द्विविधः स्वीकृतः, इत्थं च तत्र येनैव रूपेण सुखदुःखभोक्तृत्वं कर्मात्मनस्तेनैव रूपेण यदि परमात्मनः स्यात्तदा कर्मात्मवत्परमात्मनः परिणामित्वमविद्यास्वभावत्वं च स्यात्। अथ न तस्य साक्षाद्भोक्तृत्वं किंतु तदुपढौकितमुदासीनतयाऽधिष्ठातृत्वेन स्वीकरोति, तदाऽस्मद्दर्शनानुप्रवेशः, आनन्दरूपता च पूर्वमेव निराकृता। किं चाविद्यास्वभावत्वे निःस्वभावत्वात्कर्मात्मनः कः शास्त्राधिकारी। न तावन्नित्यनिर्मुक्तत्वात्परमात्मा, नापि अविद्यास्वभावत्वात्कर्मात्मा, ततश्च सकलशास्त्रवैयर्थ्यप्रसङ्गः। अविद्यामयत्वे च जगतोऽङ्गीक्रियमाणे कस्याविद्येति विचार्यते, न तावत्परमात्मनो नित्यमुक्तत्वाद्विद्यारूपत्वाच्च, कर्मात्मनोऽपि परमार्थतो निःस्वभावतया शशविषाणप्रख्यत्वे कथमविद्यासंबन्धः? अथोच्यते, एतदेवाविद्याया अविद्यात्वं यदविचाररमणीयत्वं नाम, यैव हि विचारेण दिनकरस्पृष्टनीहारवद्विलयमुपयाति साऽविद्येत्युच्यते, मैवं, यद्वस्तु किंचित्कार्यं करोति तदवश्यं कुतश्चिद्भिन्नमभिन्नं वा वक्तव्यम्, अविद्यायाश्च संसारलक्षणकार्यकर्तृत्वम् अवश्यमङ्गीकर्तव्यम्, तस्मिन्सत्यपि यद्यनिर्वाच्यत्वमुच्यते तदा कस्यचिदपि वाच्यत्वं न स्यात्, ब्रह्मणोऽप्यवाच्यत्वप्रसक्तिः, तस्मादधिष्ठातृतारूपव्यतिरेकेण नान्यदात्मनो रूपमुपपद्यते। अधिष्ठातृत्वं च चिद्रूपमेव तद्व्यतिरिक्तस्य धर्मस्य कस्यचित्प्रमाणानुपपत्तेः।

यैरपि नैयायिकादिभिरात्मा चेतनायोगाच्चेतन इत्युच्यते, चेतनाऽपि

तस्य मनः संयोगजा । तथा हि—इच्छाज्ञानप्रयत्नादयो गुणास्तस्य व्यवहारदशायामात्मामनः संयोगादुत्पद्यन्ते, तैरेव च गुणैः स्वयं ज्ञाता कर्ता भोक्तेति व्यपदिश्यते, मोक्षदशायां तु मिथ्याज्ञाननिवृत्तौ तन्मूलानां दोषाणामपि निवृत्तेस्तेषां बुद्ध्यादीनां विशेषगुणानामत्यन्तोच्छित्तेः स्वरूपमात्रप्रतिष्ठत्वमात्मनोऽङ्गीकृतं, तेषामयुक्तः पक्षः, यतस्तस्यां दशायां नित्यत्वव्यापकत्वादयो गुणा आकाशादीनामपि सन्ति, अतस्तद्वैलक्षण्येनाऽऽत्मनश्चिद्रूपत्वमवश्यमङ्गीकार्यम् । आत्मत्वलक्षणजातियोग इति चेत । न, सर्वस्यैव हि तज्जातियोगः संभवति, अतो जातिभ्यो वैलक्षण्यमात्मनोऽवश्यमङ्गीकर्तव्यम्, तच्चाधिष्ठातृत्वं, तच्च चिद्रूपतयैव घटते नान्यथा ।

यैरपि मीमांसकैः कर्मकर्तृरूप आत्माऽङ्गीक्रियते तेषामपि न युक्तः पक्षः । तथा हि—अहंप्रत्ययग्राह्यः आत्मेति तेषां प्रतिज्ञा । अहंप्रत्यये च कर्तृत्वं कर्मत्वं चाऽऽत्मन एव । न चैतद्विरुद्धत्वादुपपद्यते । कर्तृत्वं प्रमातृत्वं कर्मत्वं च प्रमेयत्वम् । न चैतद्विरुद्धधर्माध्यासो युगपदेकस्य घटते । यद्विरुद्धधर्माध्यस्तं न तदेकं, यथा भावाभावौ, विरुद्धे च कर्तृत्वकर्मत्वे । अथोच्यते—न कर्तृत्वकर्मत्वयोर्विरोधः किंतु कर्तृत्वकरणतयोः । केनैतदुक्तं विरुद्धधर्माध्यासस्य तुल्यत्वात्कर्तृत्वकरणत्वयोरेव विरोधो न कर्तृत्वकर्मत्वयोः इति । तस्मादहंप्रत्ययग्राह्यत्वं परिहृत्याऽऽत्मनोऽधिष्ठातृत्वमेवोपपन्नम्, तच्च चेतनत्वमेव ।

यैरपि द्रव्यबोधपर्यायभेदेनाऽऽत्मनोऽव्यापकस्य शरीरपरिणामस्य परिणामित्वमिष्यते तेषामुत्थानपराहत एव पक्षः । परिणामित्वे चिद्रूपताहानिश्चिद्रूपताभावे किमात्मन आत्मत्वं । तस्मादात्मन आत्मत्वमिच्छता चिद्रूपत्वमेवाङ्गीकर्तव्यम् । तच्चाधिष्ठातृत्वमेव ।

केचित्कर्तृरूपमेवाऽऽत्मनमिच्छन्ति । तथा हि—विषयसांनिध्ये या ज्ञानलक्षणा क्रिया समुत्पन्ना तस्या विषयसंवित्तिः फलं, तस्यां च फलरूपायां संवित्तौ स्वरूपं प्रकाशरूपतया प्रतिभासते, विषयश्च ग्राह्यतया आत्मा च ग्राहकतया, घटमहं जानामीत्याकारेण तस्याः समुत्पत्तेः, क्रिया-

याश्च कारणं कर्तैव भवतीत्यतः कर्तृत्वं भोक्तृत्वं चाऽऽत्मनो रूपमिति। तदनुपपन्नं, यस्मात्तासां संवित्तीनां स किं कर्तृत्वं युगपत्प्रतिपद्यते क्रमेण वा, युगपत्कर्तृत्वे क्षणान्तरे तस्य कर्तृत्वं न स्यात्। अथ क्रमेण कर्तृत्वं तदेकरूपस्य न घटते, एकेन रूपेण चेत्तस्य कर्तृत्वं तदेकस्य रूपस्य सदैव संनिहितत्वात्सर्वं फलमेकरूपं स्यात्। अथ नानारूपतया तस्य कर्तृत्वं तदा परिणामित्वं, परिणामित्वाच्च न चिद्रूपत्वम्। अतश्चिद्रूपत्वमेवाऽऽत्मन इच्छद्भिर्न साक्षात्कर्तृत्वमङ्गीकर्तव्यम्। यादृशमस्माभिः कर्तृत्वमात्मनः प्रतिपादितं कूटस्थस्य नित्यस्य चिद्रूपस्य तदेवोपपन्नम्।

एतेन स्वप्रकाशस्याऽऽत्मनो विषयसंवित्तिद्वारेण ग्राहकत्वमभिव्यज्यत इति ये वदन्ति तेऽपि अनेनैव निराकृताः।

केचिद्विमर्शात्मकत्वेनाऽऽत्मनश्चिन्मयत्वमिच्छन्ति, ते ह्याहुर्न विमर्शव्यतिरेकेण चिद्रूपत्वमात्मनो निरूपयितुं शक्यम्, जडाद्वैलक्षण्यमेव चिद्रूपत्वमुच्यते, तच्च विमर्शव्यतिरेकेण निरूप्यमाणं नान्यथाऽवतिष्ठते। तदनुपपन्नम्। इदमित्थमेवंरूपमिति यो विचारः स विमर्श इत्युच्यते। स चास्मिताव्यतिरेकेण नोत्थानमेव लभते। तथा हि—आत्मन्युपजायमानो विमर्शोऽहमेवंभूत इत्यनेनाऽऽकारेण संवेद्यते। ततश्चाऽहंशब्दसंभिन्नस्याऽऽत्मलक्षणस्यार्थश्च तत्र स्फुरणान्न विकल्परूपतातिक्रमः, विकल्पश्चाध्यवसायात्मा बुद्धिधर्मो न चिद्धर्मः। कूटस्थनित्यत्वेन चितेः सदैकरूपत्वान्नाहंकारानुप्रवेशः, तदनेन सविमर्शत्वमात्मनः प्रतिपादयता बुद्धिरेवाऽऽत्मत्वेन भ्रान्त्या प्रतिपादिता न प्रकाशात्मनः परस्य पुरुषस्य स्वरूपमवगतमिति।

इत्थं सर्वेष्वपि दर्शनेष्वधिष्ठातृत्वं विहाय नान्यदात्मनो रूपमुपपद्यते। अधिष्ठातृत्वं च चिद्रूपत्वम्, तच्च जडाद्वैलक्षण्यमेव, चिद्रूपतया यदधितिष्ठति तदेव भोग्यतां नयति यच्च चेतनाधितिष्ठितं तदेव सकलव्यापारयोग्यं भवति। एवं च सति कृतकृत्यत्वात् प्रधानस्य व्यापारनिवृत्तौ यदात्मनः कैवल्यमस्माभिरुक्तं तद्विहाय दर्शनान्तराणामपि नान्या गतिः। तस्मादिदमेव युक्तमुक्तं वृत्तिसारूप्यपरिहारेण स्वरूपे प्रतिष्ठा चितिशक्तेः कैवल्यम्।

तदेव सिद्धयन्तरेभ्यो विलक्षणां सर्वसिद्धिमूलभूतां समाधिसिद्धिमभिधाय जात्यन्तरपरिणामलक्षणस्य च सिद्धिविशेषस्य प्रकृत्यापूरणमेव कारणमित्युपपाद्य धर्मादीनां प्रतिबन्धकनिवृत्तिमात्र एव सामर्थ्यमिति प्रदर्श्य निर्माणचित्तानामस्मितामात्रादुद्भवः इत्युक्त्वा तेषां च योगिचित्तमेवाधिष्ठापकमिति प्रदर्श्य योगिचित्तस्य चित्तान्तरवैलक्षण्यमभिधाय तत्कर्मणामलौकिकत्वं चोपपाद्य विपाकानुगुणानां च वासनानामभिव्यक्तिसामर्थ्यं कार्यकारणयोश्चैक्यप्रतिपादनेन व्यवहितानामपि वासनानामानन्तर्यमुपपाद्य तासामानन्त्येऽपि हेतुफलादिद्वारेण हानमुपदर्श्यातीतादिष्वध्वसु धर्माणां सद्भावमुपपाद्य विज्ञानवादं निराकृत्य साकारवादं च प्रतिष्ठाप्य पुरुषस्य ज्ञातृत्वमुक्त्वा चित्तद्वारेण सकलव्यवहारनिष्पत्तिमुपपाद्य पुरुषसत्त्वे प्रमाणमुपदर्श्य कैवल्यनिर्णयाय दशभिः सूत्रैः क्रमेणोपयोगिनोऽर्थानभिधाय शास्त्रान्तरेऽप्येतदेव कैवल्यमित्युपपाद्य कैवल्यस्वरूपं निर्णीतमिति व्याकृतः कैवल्यपादः ॥ ३४ ॥

इति श्रीभोजदेवविरचितायां पातञ्जलयोगशास्त्रसूत्रवृत्तौ
चतुर्थः कैवल्यपादः ॥ ४ ॥

भो० वृ० पदार्थ

(समाप्तभोगापवर्गलक्षणपुरुषार्थानां गुणानां यः प्रतिप्रसवः प्रतिलोमस्य परिणामस्य समाप्तौ विकारानुद्भवः) पुरुष के भोग मोक्षरूप प्रयोजनों को समाप्त किया है जिन गुणों ने उनका जो कारण में लय अर्थात् परिणाम की समाप्ति पर विकार का उत्पन्न न होना है । (यदि वा चितिशक्तेः वृत्तिसारूप्यनिवृत्तौ स्वरूपमात्रेऽवस्थानं तत्कैवल्यमुच्यते) अथवा चेतनशक्ति की वृत्ति सारूप्यता निवृत्त होने पर स्वरूपमात्र में स्थिर होना कैवल्य कहा जाता है ॥ ३४ ॥

यहां वृत्ति समाप्त हो चुकी परन्तु इससे आगे फिर किसी पाखण्ड मतावलम्बी ने अपने मत का खण्डन देखकर पुनः उन्मत्त जैसा प्रलाप

कई एक पृष्ठों में भरा है, और सर्व दर्शनों का खण्डन करता है जो मूल से विरुद्ध और शास्त्रीय सिद्धान्त से भी विरुद्ध है, इस लिये उसका अर्थ नहीं किया गया। पाठक लोग मूल में देख सकते हैं, क्योंकि इस शास्त्र में तो नास्तिकमत, विज्ञानवादी, चित्तात्मवादी, क्षणिकवादी और अद्वैत-वादी जगत् मिथ्यावादियों का अच्छे प्रकार महर्षि पातञ्जल, और भाष्य-कार महर्षि व्यास, और वृत्तिकार राजर्षि भोज ने खण्डन करके वैदिक सिद्धान्त को अति उत्तम प्रकार से प्रकाशित किया है, देखो प्रथम समाधिपाद सूत्र २४ से २९ पर्यन्त ईश्वर को क्लेश कर्म और कर्म फल और वासनाओं के सम्बन्ध से रहित और दूसरे पुरुषों से विशेष बतलाया, जिससे पुरुषों का बहुत होना सिद्ध है और पुनः भाष्यकार ने यह भी दिखलाया कि ईश्वर वह है, जो जीवों के समान बन्धनादि को काटकर मुक्त नहीं होता, वह सदा मुक्त है और जिस प्रकार मुक्त पुरुष मुक्ति से पहले बन्धन कोटि में रहते हैं, पीछे मुक्त होते हैं, ईश्वर ऐसा नहीं है, वा जैसे प्रकृतिलीन पुरुष अन्त में पुनः बन्धन कोटि में आजाते हैं, ऐसा भी नहीं है। इस कथन से यह सिद्ध किया कि जैसे शङ्करमत में ब्रह्म अविद्या से जीवरूप होकर संसार में सुख—दुःख भोगता है और वह पुनः ज्यों का त्यों ब्रह्म हो जाता है, ऐसा भी ईश्वर नहीं है वह सदैव मुक्त है। और सर्व से बड़ा सर्व से अधिक ऐश्वर्यवान् है, न उसके कोई बराबर है, न उससे कोई अधिक, उस ईश्वर के जानने में निमित्त वेद और वेदों का निमित्त कारण वह ईश्वर है। उसमें सर्व से अधिक ज्ञान है, योगियों को जो सर्वज्ञता प्राप्त होती है, उस सर्वज्ञता का वह बीजरूप कारण है। वह परमात्मा ही सृष्टी के आदि में संसारी जीवों पर दया करके उनके कल्या-णार्थ वेदों का प्रकाश करता है, वह ईश्वर पूर्वजों का भी गुरु है [और जैसा नवीन वेदान्ति कहते हैं कि ईश्वर अन्य है, ब्रह्म अन्य है, अर्थात् जो सृष्टी की रचना करता है वह ईश्वर है और जो न कुछ करता न जानता है वह शून्य के समान ब्रह्म है। क्योंकि यदि कुछ जाने और करे तो द्वैत होता है, इस लिये जगत् रचना करने वाला ईश्वर उसका अंश उससे

छोटा है । इस भ्रान्ति को इस प्रकार खण्डन किया है कि वह ईश्वर एक ही प्रणव ओङ्कार ब्रह्मादि नामों वाला है, वही वेदों का कर्ता है ।

उस ईश्वर का वाचक नाम प्रणव = ओङ्कार है, जिसको कठोपनिषद् की श्रुति इसी प्रकार वर्णन करती है:—

सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति तपांसि सर्वाणि च यद्वदन्ति ।
यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्य्यं चरन्ति तत्ते पदं सङ्ग्रहेण
ब्रवीम्योमित्येतत् ॥ द्वि० व० । मं० १५ ॥
एतद्ध्येवाक्षरं ब्रह्म एतदेवाक्षरं परम् ।
एतद्ध्येवाक्षरं ज्ञात्वा यो यदिच्छति तस्य तत् ॥ मं० १६ ॥

अर्थ—सर्व वेद जिसको कहते हैं, वह ओङ्कार है ॥ १५ ॥ यह ओङ्कार ही अविनाशी ब्रह्म है इस को जान कर जो, जो कुछ इच्छा करता है, वही वह पाता है ॥ १६ ॥

उपरोक्त प्रकार उपनिषदों में भी ब्रह्म उद्गीथ और ओङ्कारादि नामों का वाच्य एक ही मानते हैं ।]

पश्चात् इसी प्रकरण में उसके नाम ओङ्कार का जप, उसके स्वरूप का विचार, और उससे सर्व विघ्नों का नाशरूप फल बतलाया है और योगी को उसके स्वरूप का साक्षात् दर्शन होता है वह सर्व व्यापक, शुद्ध अर्थात् अविद्यादि से रहित, प्रसन्न अर्थात् आनन्द स्वरूप, केवल, अर्थात् तीन गुणों से रहित, अनुपसर्ग = कभी उत्पन्न न होने वाला, वह निराकार होने के कारण बुद्धि अर्थात् ज्ञान से जानने योग्य है, यह सब निर्णय किया ।

चतुर्थ कैवल्यपाद सूत्र २३ में जगत् को मिथ्या बताने वाले जो इस प्रकार कहते हैं कि चित्त की कल्पनामात्र ही गौ घटादि सर्व पदार्थ हैं, और कारण सहित सर्व संसार भी नहीं है किन्तु मिथ्या प्रतीत होता

है। उन मिथ्यावादियों को भ्रान्त बतलाया, और ग्रहीता पुरुष जीवात्मा, ग्रहण बुद्धि, और ग्राह्य जगत् के पदार्थ, यह तीनों स्वरूप से भिन्न २ हैं। इन तीनों से पृथक् सर्वव्यापक सर्वशक्तिमान् सर्वानन्दप्रद पुरुष परमात्मा है। इससे पुनः अद्वैत का खण्डन करके, वैदिक आस्तिकवाद द्वैत का प्रतिपादन किया।

चतुर्थपाद के सूत्र ३३ में यह सिद्ध किया कि ज्ञानी पुरुष का संसार से सम्बन्ध नहीं रहता, और अन्य पुरुषों का रहता है। संसार का उच्छेद कभी नहीं होता।

इसी पाद के अन्तिम सू० ३४ में यह भी प्रकाशित कर दिया कि जो पुरुष कैवल्य मुक्ति को प्राप्त हो जाता है। वह बुद्धि और तीन गुणों के सम्बन्ध से रहित हो जाता है, किन्तु ब्रह्म नहीं हो जाता। एवं सर्वत्र इस शास्त्र में योग सफलता के लिये उसके सहकारी आस्तिक भाव का प्रतिपादन किया है जिससे योगी का चित्त प्रसन्न होकर ईश्वर में प्रेम करता हुआ और उसमें लीन हुआ ब्रह्मानन्द को भोगता है यही कैवल्यमुक्ति का स्वरूप है।

यह ही गति निम्नलिखित उपनिषद् वाक्य में भी वर्णन की है।

ओ३म्—ब्रह्मविदाप्नोति परम्, तदेषाभ्युक्ता सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म, यो वेद निहितं गुहायां परमे व्योमन्

सोऽश्नुते सर्वान् कामान् सह ब्रह्मणा विपश्चितेति॥

तैत्तिरीयोपनिषद् ब्रह्मानन्दवल्ली। मं० २॥

अर्थ—ओ३म् यह शब्द आद—अन्त और मध्य में वैदिक मर्यादा से आया करता है, ऐसा ही यहां भी जानना चाहिये (ब्रह्मविदाप्नोति परम्) ब्रह्म का जानने वाला परम गति मुक्ति को पाता है, (तदेषाभ्युक्ता) इस विषय में यह वेद की ऋचा प्रमाण है (सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म) सत्य अर्थात् अविनाशी और ज्ञान स्वरूप और अनन्त ब्रह्म है, (यो वेद निहितं

गुहायां परमे व्योमन्) इसको जो संसाररूपी गुहा में सर्व व्यापक रूप से विराजमान जानता है (सोऽश्नुते सर्वान् कामान् सह ब्रह्मणा विपश्चितेति) वह उस ज्ञान स्वरूप ब्रह्म के साथ २ सब फलों को भोगता है ।

इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्य श्रीस्वामी विज्ञानाश्रमजी कृत पातञ्जल योगसूत्र भाषानुवादः ॥

॥ समाप्तोऽयं चतुर्थः कैवल्यपादः ॥ ४ ॥

※ समाप्तश्चायंग्रन्थः ※

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ।

ओ३म्

अथ पातञ्जल योगसूत्राणि

प्रथमः समाधिपादः ।

अथ योगानुशासनम् ॥ १ ॥ योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः ॥ २ ॥ तदा द्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानम् ॥ ३ ॥ वृत्तिसारूप्यमितरत्र ॥ ४ ॥ वृत्तयः पञ्चतय्यः क्लिष्टाक्लिष्टाः ॥ ५ ॥ प्रमाणविपर्य्यविकल्पनिद्रास्मृतयः ॥६॥ प्रत्यक्षानुमानागमाः प्रमाणानि ॥ ७ ॥ विपर्ययो मिथ्याज्ञानमतद्रूप-प्रतिष्ठम् ॥ ८ ॥ शब्दज्ञानानुपाती वस्तुशून्यो विकल्पः ॥ ९ ॥ अभावप्रत्ययालम्बना वृत्तिर्निद्रा ॥ १० ॥ अनुभूतविषयासंप्रमोषः स्मृतिः ॥ ११ ॥ अभ्यासवैराग्याभ्यां तन्निरोधः ॥ १२ ॥ तत्र स्थितौ यत्नोऽभ्यासः ॥ १३ ॥ स तु दीर्घकालनैरन्तर्यसत्कारासेवितो दृढभूमि ॥ १४ ॥ दृष्टानुश्रविकविषयवितृष्णस्य वशीकारसंज्ञा वैराग्यम् ॥ १५ ॥ तत्परं पुरुषख्यातेर्गुणवैतृष्ण्यम् ॥ १६ ॥ वितर्क-विचारानन्दास्मितारूपानुगमात्संप्रज्ञातः ॥ १७ ॥ विरामप्रत्यया-भ्यासपूर्वः संस्कारशेषोऽन्यः ॥ १८ ॥ भवप्रत्ययो विदेहप्रकृतिलया-नाम् ॥ १९ ॥ श्रद्धावीर्यस्मृतिसमाधिप्रज्ञापूर्वक इतरेषाम् ॥ २० ॥ तीव्रसंवेगानामासन्नः ॥ २१ ॥ मृदुमध्याधिमात्रत्वात्ततोऽपि विशेषः ॥ २२ ॥ ईश्वरप्रणिधानाद्वा ॥ २३ ॥ क्लेशकर्मविपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुषविशेष ईश्वरः ॥ २४ ॥ तत्र निरतिशयं सर्वज्ञवीजम् ॥ २५ ॥ पूर्वेषामपि गुरुः कालेनानवच्छेदात् ॥२६॥ तस्य वाचकः प्रणवः ॥२७॥ तज्जपस्तदर्थभावनम् ॥ २८ ॥ ततः प्रत्यक्चेतनाधिगमोऽप्यन्तरायाभा-

वश्च ॥ २९ ॥ व्याधिस्त्यानसंशयप्रमादालस्याविरतिभ्रान्तिदर्शनाल-
ब्धभूमिकत्वानवस्थितत्वानि चित्तविक्षेपास्तेऽन्तरायाः ॥ ३० ॥
दुःखदौर्मनस्याङ्गमेजयत्वश्वासप्रश्वासा विक्षेपसहभुवः ॥ ३१ ॥ तत्प्र-
तिषेधार्थमेकतत्त्वाभ्यासः ॥ ३२ ॥ मैत्रीकरुणामुदितोपेक्षाणां सुख-
दुःखपुण्यापुण्यविषयाणां भावनातश्चित्तप्रसादनम् ॥ ३३ ॥ प्रच्छ-
र्दनविधारणाभ्यां वा प्राणस्य ॥ ३४ ॥ विषयवती वा प्रवृत्तिरुत्पन्ना
मनसः स्थितिनिबन्धनी ॥ ३५ ॥ विशोका वा ज्योतिष्मती ॥ ३६ ॥
वीतरागविषयं वा चित्तम् ॥ ३७ ॥ स्वप्ननिद्राज्ञानालम्बनं वा ॥ ३८ ॥
यथाभिमतध्यानाद्वा ॥ ३९ ॥ परमाणुपरममहत्त्वान्तोऽस्य वशी-
कारः ॥ ४० ॥ क्षीणवृत्तेरभिजातस्येव मणेर्ग्रहीतृग्रहणग्राह्येषु तत्स्थ-
तदञ्जनता समापत्तिः ॥ ४१ ॥ तत्र शब्दार्थज्ञानविकल्पैः संकीर्णा
सवितर्का समापत्तिः ॥ ४२ ॥ स्मृतिपरिशुद्धौ स्वरूपशून्येवार्थमा-
त्रनिर्भासा निर्वितर्का ॥ ४३ ॥ एतयैव सविचारा निर्विचारा च
सूक्ष्मविषया व्याख्याता ॥ ४४ ॥ सूक्ष्म विषयत्वं चालिङ्गपर्यव-
सानं ॥ ४५ ॥ ता एव सबीजः समाधिः ॥ ४६ ॥ निर्विचारवैशा-
रद्येऽध्यात्मप्रसादः ॥ ४७ ॥ ऋतंभरा तत्र प्रज्ञा ॥ ४८ ॥ श्रुतानुमा-
नप्रज्ञाभ्यामन्यविषया विशेषार्थत्वात् ॥ ४९ ॥ तज्जः संस्कारोऽन्यसं-
स्कारप्रतिबन्धी ॥ ५० ॥ तस्यापि निरोधे सर्वनिरोधान्निर्बीजः
समाधिः ॥ ५१ ॥

इति प्रथमः समाधिपादः समाप्तः ।

अथ द्वितीयः साधनपादः ।

तपः स्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि क्रियायोगः ॥ १ ॥ समाधिभा-
भावनार्थः क्लेशतनूकरणार्थश्च ॥ २ ॥ अविद्यास्मितारागद्वेषाभिनि-

...: पञ्च क्लेशाः ॥ ३ ॥ अविद्या क्षेत्रमुत्तरेषां प्रसुप्ततनुविच्छिन्नोदाराणाम् ॥ ४ ॥ अनित्याशुचिदुःखानात्मसु नित्यशुचिसुखात्मख्यातिरविद्या ॥ ५ ॥ दृग्दर्शनशक्त्योरेकात्मतेवास्मिता ॥ ६ ॥ सुखानुशयी रागः ॥ ७ ॥ दुःखानुशयी द्वेषः ॥ ८ ॥ स्वरसवाही विदुषोऽपि तथा रूढोऽभिनिवेशः ॥ ९ ॥ ते प्रतिप्रसवहेयाः सूक्ष्माः ॥ १० ॥ ध्यानहेयास्तद्वृत्तयः ॥ ११ ॥ क्लेशमूलः कर्माशयो दृष्टादृष्टजन्मवेदनीयः ॥ १२ ॥ सति मूले तद्विपाको जात्यायुर्भोगाः ॥ १३ ॥ ते ह्लादपरितापफलाः पुण्यापुण्यहेतुत्वात् ॥ १४ ॥ परिणामतापसंस्कारदुःखैर्गुणवृत्तिविरोधाच्च दुःखमेव सर्वं विवेकिनः ॥ १५ ॥ हेयं दुःखमनागतम् ॥ १६ ॥ द्रष्टृदृश्ययोः संयोगो हेयहेतुः ॥ १७ ॥ प्रकाशक्रियास्थितिशीलं भूतेन्द्रियात्मकं भोगापवर्गार्थं दृश्यम् ॥१८॥ विशेषाविशेषलिङ्गमात्रालिङ्गानि गुणपर्वाणि ॥ १९ ॥ द्रष्टा दृशिमात्रः शुद्धोऽपि प्रत्ययानुपश्यः ॥ २० ॥ तदर्थ एव दृश्यस्याऽऽत्मा ॥ २१ ॥ कृतार्थं प्रति नष्टमप्यनष्टं तदन्यसाधारणत्वात् ॥२२॥ स्वस्वामिशक्त्योः स्वरूपोपलब्धिहेतुः संयोगः ॥ २३ ॥ तस्य हेतुरविद्या ॥ २४ ॥ तदभावात्संयोगाभावो हानं तद्दृशेः कैवल्यम् ॥२५॥ विवेकख्यातिरविप्लवा हानोपायः ॥ २६ ॥ तस्य सप्तधा प्रान्तभूमिः प्रज्ञा ॥ २७ ॥ योगाङ्गानुष्ठानादशुद्धिक्षये ज्ञानदीप्तिराविवेकख्यातेः ॥ २८ ॥ यमनियमासनप्राणायामप्रत्याहारधारणाध्यानसमाधयोऽष्टावङ्गानि ॥ २९ ॥ अहिंसासत्यास्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहा यमाः ॥ ३० ॥ जातिदेशकालसमयानवच्छिन्नाः सार्वभौमा महाव्रतम् ॥३१॥ शौचसंतोषतपःस्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि नियमाः ॥३२॥ वितर्कबाधने प्रतिपक्षभावनम् ॥ ३३ ॥ वितर्का हिंसादयः कृतकारितानुमोदिता लोभक्रोधमोहपूर्वका मृदुमध्याधिमात्रा दुःखाज्ञानानन्तफला इति प्रतिपक्षभावनम् ॥ ३४ ॥ अहिंसाप्रतिष्ठायां तत्संनिधौ वैरत्यागः ॥ ३५ ॥ सत्यप्रतिष्ठायां क्रियाफलाश्रयत्वम् ॥ ३६ ॥ अस्तेयप्रतिष्ठायां सर्वरत्नोपस्थानम् ॥ ३७ ॥ ब्रह्मचर्यप्रतिष्ठायां वीर्य-

लाभः ॥ ३८ ॥ अपरिग्रहस्थैर्ये जन्म कथंतासंबोधः ॥ ३९ ॥ शौचात्स्वाङ्गजुगुप्सा परैरसंसर्गः ॥४०॥ सत्त्वशुद्धिसौमनस्यैकाग्र्येन्द्रियजयात्मदर्शनयोग्यत्वानि च ॥ ४१ ॥ संतोषादनुत्तमः सुखलाभः॥४२॥ कायेन्द्रियसिद्धिरशुद्धिक्षयात्तपसः ॥ ४३ ॥ स्वाध्यायादिष्टदेवतासंप्रयोगः ॥ ४४ ॥ समाधिसिद्धिरीश्वरप्रणिधानात् ॥ ४५ ॥ स्थिरसुखमासनम् ॥ ४६ ॥ प्रयत्नशैथिल्यानन्तसमापत्तिभ्याम् ॥ ४७ ॥ ततो द्वंद्वानभिघातः॥ ४८ ॥ तस्मिन्सति श्वासप्रश्वासयोर्गतिविच्छेदः प्राणायामः ॥ ४९ ॥ बाह्याभ्यन्तरस्तम्भवृत्तिर्देशकालसंख्याभिः परिदृष्टो दीर्घसूक्ष्मः ॥ ५० ॥ बाह्याभ्यन्तरविषयाक्षेपी चतुर्थः ॥ ५१॥ ततः क्षीयते प्रकाशावरणम् ॥ ५२ ॥ धारणासु च योग्यता मनसः ॥५३॥ स्वविषयासंप्रयोगे चित्तस्वरूपानुकार इवेन्द्रियाणां प्रत्याहारः ॥ ५४ ॥ ततः परमा वश्यतेन्द्रियाणाम् ॥ ५५ ॥

इति द्वितीयः साधनपादः समाप्तः।

अथ तृतीयः विभूतिपादः।

देशबन्धश्चित्तस्य धारणा ॥ १ ॥ तत्र प्रत्ययैकतानता ध्यानम् ॥ २ ॥ तदेवार्थमात्रनिर्भासं स्वरूपशून्यमिव समाधिः ॥ ३ ॥ त्रयमेकत्र संयमः ॥ ४ ॥ तज्जयात्प्रज्ञालोकः ॥ ५ ॥ तस्य भूमिषु विनियोगः ॥ ६ ॥ त्रयमन्तरङ्गं पूर्वेभ्यः ॥ ७ ॥ तदपि बहिरङ्गं निर्बीजस्य ॥ ८ ॥ व्युत्थाननिरोधसंस्कारयोरभिभवप्रादुर्भावौ निरोधक्षणचित्तान्वयो निरोधपरिणामः ॥ ९ ॥ तस्य प्रशान्तवाहिता संस्कारात् ॥ १० ॥ सर्वार्थतैकाग्रतयोः क्षयोदयौ चित्तस्य समाधिपरिणामः ॥ ११ ॥ ततः पुनः शान्तोदितौ तुल्यप्रत्ययौ चित्तस्यैकाग्रतापरिणामः ॥ १२ ॥ एतेन भूतेन्द्रियेषु धर्मलक्षणावस्थापरिणामा

ख्याता ॥ १३ ॥ शान्तोदिताव्यपदेश्यधर्मानुपाती धर्मी ॥ १४ ॥
क्रमान्यत्वं परिणामान्यत्वे हेतुः ॥ १५ ॥ परिणामत्रयसंयमादतीतानागतज्ञानम् ॥ १६ ॥ शब्दार्थप्रत्ययानामितरेतराध्यासात्संकरस्तत्प्रविभागसंयमात्सर्वभूतरुतज्ञानम् ॥ १७ ॥ संस्कारसाक्षात्करणात्पूर्वजातिज्ञानम् ॥ १८ ॥ प्रत्ययस्य परचित्तज्ञानम् ॥ १९ ॥ न च तत्सालम्बनं तस्याविषयीभूतत्वात् ॥ २० ॥ कायरूपसंयमात्तद्ग्राह्यशक्तिस्तम्भे चक्षुष्प्रकाशासंप्रयोगेऽन्तर्धानम् ॥ २१ ॥ सोपक्रमं निरुपक्रमं च कर्म तत्संयमादपरान्तज्ञानमरिष्टेभ्यो वा ॥ २२ ॥ मैत्र्यादिषु बलानि ॥ २३ ॥ बलेषु हस्तिबलादीनि ॥ २४ ॥ प्रवृत्त्यालोकन्यासात्सूक्ष्मव्यवहितविप्रकृष्टज्ञानम् ॥ २५ ॥ भुवनज्ञानं सूर्ये संयमात् ॥ २६ ॥ चन्द्रे ताराव्यूहज्ञानम् ॥ २७ ॥ ध्रुवे तद्गतिज्ञानम् ॥ २८ ॥ नाभिचक्रे कायव्यूहज्ञानम् ॥ २९ ॥ कण्ठकूपे क्षुत्पिपासानिवृत्तिः ॥ ३० ॥ कूर्मनाड्यां स्थैर्यम् ॥ ३१ ॥ मूर्धज्योतिषि सिद्धदर्शनम् ॥ ३२ ॥ प्रातिभाद्वा सर्वम् ॥ ३३ ॥ हृदये चित्तसंवित् ॥ ३४ ॥ सत्त्वपुरुषयोरत्यन्तासंकीर्णयोः प्रत्ययाविशेषो भोगः परार्थात्स्वार्थसंयमात्सर्वभूतरुतज्ञानम् ॥ ३५ ॥ ततः प्रातिभश्रावणवेदनादर्शास्वादवार्ता जायन्ते ॥ ३६ ॥ ते समाधावुपसर्गा व्युत्थाने सिद्धयः ॥ ३७ ॥ बन्धकारणशैथिल्यात्प्रचारसंवेदनाच्च चित्तस्य परशरीरावेशः ॥ ३८ ॥ उदानजयाज्जलपङ्ककण्टकादिष्वसङ्ग उत्क्रान्तिश्च ॥ ३९ ॥ समानजयाज्ज्वलनम् ॥ ४० ॥ श्रोत्राकाशयोः संबन्धसंयमाद्दिव्यं श्रोत्रम् ॥ ४१ ॥ कायाकाशयोः संबन्धसंयमाल्लघुतूलसमापत्तेश्चाऽऽकाशगमनम् ॥ ४२ ॥ बहिरकल्पिता वृत्तिर्महाविदेहा ततः प्रकाशावरणक्षयः ॥ ४३ ॥ स्थूलस्वरूपसूक्ष्मान्वयार्थवत्त्वसंयमाद्भूतजयः ॥ ४४ ॥ ततोऽणिमादिप्रादुर्भावः कायसंपत्तद्धर्मानभिघातश्च ॥ ४५ ॥ रूपलावण्यबलवज्रसंहननत्वानि कायसंपत् ॥ ४६ ॥ ग्रहणस्वरूपास्मितान्वयार्थवत्त्वसंयमादिन्द्रियजयः ॥ ४७ ॥ ततो मनोजवित्वं विकरणभावः प्रधानजयश्च ॥ ४८ ॥ सत्त्वपु-

रुषान्यताख्यातिमात्रस्य सर्वभावाधिष्ठातृत्वं सर्वज्ञातृत्वं च ॥ ४९ ॥ तद्वैराग्यादपि दोषबीजक्षये कैवल्यं ॥ ५० ॥ स्थान्युपनिमन्त्रणे सङ्गस्मयाकरणं पुनरनिष्टप्रसङ्गात् ॥५१॥ क्षणतत्क्रमयोः संयमाद्विवेकजं ज्ञानम् ॥ ५२ ॥ जातिलक्षणदेशैरन्यतानवच्छेदात्तुल्ययोस्ततः प्रतिपत्तिः ॥ ५३ ॥ तारकं सर्वविषयं सर्वथाविषयमक्रमं चेति विवेकजं ज्ञानम् ॥ ५४ ॥ सत्त्वपुरुषयोः शुद्धिसाम्ये कैवल्यमिति ॥५५॥

इति तृतीयः विभूतिपादः समाप्तः ।

अथ चतुर्थः कैवल्यपादः ।

जन्मौषधिमन्त्रतपः समाधिजाः सिद्धयः ॥ १ ॥ जात्यन्तरपरिणामः प्रकृत्यापूरात् ॥ २ ॥ निमित्तमप्रयोजकं प्रकृतीनां वरणभेस्तु ततः क्षेत्रिकवत् ॥ ३ ॥ निर्माणचित्तान्यस्मितामात्रात् ॥ ४ ॥ प्रवृत्तिभेदे प्रयोजकं चित्तमेकमनेकेषाम् ॥ ५ ॥ तत्र ध्यानजमनाशयम् ॥ ६ ॥ कर्माशुक्लाकृष्णं योगिनस्त्रिविधमितरेषाम् ॥ ७ ॥ ततस्तद्विपाकानुगुणानामेवाभिव्यक्तिर्वासनानाम् ॥ ८ ॥ जातिदेशकालव्यवहितानामप्यानन्तर्यं स्मृतिसंस्कारयोरेकरूपत्वात् ॥ ९ ॥ तासामनादित्वं चाऽऽशिषो नित्यत्वात् ॥ १० ॥ हेतुफलाश्रयालम्बनैः संगृहीत्वादेषामभावे तदभावः ॥ ११ ॥ अतीतानागतं स्वरूपतोऽस्त्यध्वभेदाद्धर्माणाम् ॥ १२ ॥ ते व्यक्तसूक्ष्मा गुणात्मानः ॥ १३ ॥ परिणामैकत्वाद्वस्तुत्त्वम् ॥ १४ ॥ वस्तुसाम्ये चित्तभेदात्तयोर्विभक्तः पन्थाः ॥ १५ ॥ न चैकचित्ततन्त्रं वस्तु तदप्रमाणकं तदा किं स्यात् ॥ १६ ॥ तदुपरागपेक्षित्वाच्चित्तस्य वस्तु ज्ञाताज्ञातम् ॥ १७ ॥ सदा ज्ञाताश्चित्तवृत्तयस्तत्प्रभोः पुरुषस्यापरिणामित्वात् ॥ १८ ॥ न तत्स्वाभासं दृश्यत्वात् ॥ १९ ॥ एकसमये चोभयानवधारणम् ॥ २० ॥

चित्तान्तरदृश्ये बुद्धिबुद्धेरतिप्रसङ्गः स्मृतिसंकरश्च ॥ २१ ॥ चितेर-प्रतिसंक्रमायास्तदाकारापत्तौ स्वबुद्धिसंवेदनम् ॥ २२ ॥ द्रष्टृदृश्योपरक्तं चित्तं सर्वार्थम् ॥ २३ ॥ तदसंख्येयवासनाभिश्चित्रमपि परार्थं संहत्य-कारित्वात् ॥ २४ ॥ विशेषदर्शिन आत्मभावभावनानिवृत्तिः ॥ २५ ॥ तदा विवेकनिम्नं कैवल्यप्राग्भारं चित्तम् ॥ २६ ॥ तच्छिद्रेषु प्रत्य-यान्तराणि संस्कारेभ्यः ॥ २७ ॥ हानमेषां क्लेशवदुक्तं ॥ २८ ॥ प्रसं-ख्यानेऽप्यकुसीदस्य सर्वथा विवेकख्यातेर्धर्ममेघः समाधिः ॥ २९ ॥ ततः क्लेशकर्मनिवृत्तिः ॥ ३० ॥ तदा सर्वावरणमलापेतस्य ज्ञानस्याऽऽ-नन्त्याज्ज्ञेयमल्पम् ॥ ३१ ॥ ततः कृतार्थानां परिणामक्रमसमाप्ति-र्गुणानाम् ॥ ३२ ॥ क्षणप्रतियोगी परिणामापरान्तनिर्ग्राह्यः क्रमः ॥ ३३ ॥ पुरुषार्थशून्यानां गुणानां प्रतिप्रसवः कैवल्यं स्वरूपप्रतिष्ठा वा चितिशक्तिरिति ॥ ३४ ॥

इति चतुर्थः कैवल्यपादः समाप्तः ।